एमएपीएसटी-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुलिस का विधिक परिप्रेक्ष्य

एमएपीएसटी – 02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुलिस का विधिक परिप्रेक्ष्य

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष (डॉ.) नरेश दधीच
वर्तमान कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्व विधायलय

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
डॉ. अशोक शर्मा
सह आचार्या, राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविधायलय, कोटा

सदस्य

1. **श्री ओ.पी. माथुर (आई.पी.एस.)**
   कुलपति
   रक्षा शक्ति विश्वविधायलय, अहमदाबाद, (गुजरात)
2. **श्री एम. एल. कुमावत (आई.पी.एस.)**
   कुलपति
   सरदार पटेल पुलिस सुरक्षा एवं आपराधिक न्याय विश्वविधायलय, जोधपुर
3. **श्री भूपेंद्र सिंह (आई.पी.एस.)**
   निदेशक
   राजस्थान पुलिस अकादमी, जयपुर
4. **श्री बी.एन.राय. (आई.पी.एस.)**
   निदेशक
   वल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी
5. **श्री ऋषिरज सिंह (आई.पी.एस.)**
   निदेशक
   केन्द्रीय अनवेषण ब्यूरो, मुंबई
6. **श्री राजीव त्रिवेदी (आई.पी.एस.)**
   निदेशक
   आंध्र प्रदेश पुलिस अकादमी, हैदराबाद
7. **डॉ. निखिल जे. गुप्ता (आई.पी.एस.)**
   उपनिदेशक
   महाराष्ट्र पुलिस अकादमी, नासिक
8. **प्रो. पी.डी. शर्मा**
   सेवानिवृत आचार्या
   राजनीति विज्ञान विभाग
   राजस्थान विश्वविधयला
9. **डॉ. लीलारम गुर्जर**
   सह आचार्या, राजनीति विज्ञान
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविधायलय, कोटा

सम्पादक एवं पाठ लेखन

सम्पादक
श्री अनिल दरबार (आई.पी.एस.)
पुलिस महानिदेशक (प्रशाशन) सम्पादक
हरियाणा पुलिस, पंचकुला (हरियाणा)

भाषा सम्पादक
डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्या, हिन्दी
वर्धमान महावीर खुला विश्व विध्यालय, कोटा

लेखक

1. **डॉ दीप्तिमा शुक्ल**
   व्याख्याता, राजनीति विज्ञान
   कोनोडिया स्नातकोत्तर महिला महाविधयालय जयपुर
2. **डॉ. एन. एल. गुर्जर (4,5)**
   अधिवक्ता, राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर
3. **श्री ईश कुमार (आई.पी.एस.) (6)**
   महानिदेशक पुलिस रिसर्च एंड डेव्लपमेंट, नई दिल्ली
4. **श्री रमेश दधीच (7, 11, 13, 14,)**
   सेवानिवृत अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायधीश, जयपुर
5. **डॉ शंकर सुरोलिया (आई.पी.एस.) (8, 10, 17, 18)**
   सेवानिवृत महानिदेशक, राजस्थान पुलिस, जयपुर
6. **श्री संजय कुमार पाटिल (9)**
   विधि अधिकारी, महाराष्ट्र पुलिस अकादमी, नासिक
7. **श्री अतुल माथुर (12)**
   निदेशक, नॉर्थ ईस्ट पुलिस अकादमी, शिलांग
8. **श्री रविन्द्र निकम**
   विधि अधिकारी, महाराष्ट्र पुलिस अकदमी, नासिक
9. **श्री निखिल जे. गुप्ता (आई.पी.एस.)**
   उपनिदेशक, महाराष्ट्र पुलिस अकदमी, नासिक

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रोफेसर (डॉ.) विनय कुमार पाठक	प्रो. (डॉ.) बी.के. शर्मा	प्रो. (डॉ.) पी.के. शर्मा
कुलपति	निदेशक	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविधायलय, कोटा	संकाय विभाग	क्षेत्रीय सेवाएं

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेंद्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविधायलय, कोटा

उत्पादन - मार्च 2013

इस सामाग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी बी रूप मे अथवा मिमियोग्राफी (चकमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व.म.खु.वि. कोटा के लिए कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविधालय, कोटा

विषय सूची

पुलिस का विधिक परिप्रेक्ष्य

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ सं.
इकाई -1	संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि : संविधान सभा की रचना एवं कार्यकरण तथा भारतीय संविधान की विशेषताएँ	8–28
इकाई -2	मूल अधिकार : लक्षण, वर्गिकरण और मूल्यांकन	29–41
इकाई -3	राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त	42–49
इकाई -4	राष्ट्रपति की क्षमादान और राज्यपाल की न्यायिक शक्तियाँ	50–77
इकाई -5	उच्च्तम और उच्च न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णय	78–116
इकाई -6	पुलिस से संबन्धित उच्चतम न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णय	117–130
इकाई -7	दण्ड न्यायालयों का वर्गिकरण, शक्तियाँ, एवं अभियोजन (धारा 6-36, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973)	131–142
इकाई -8	गिरफ्तारी, प्रतिप्रेषण (रिमांड), तलाशी तथा जमानत के प्रावधान	143–156
इकाई -9	जब्ती व संपत्तियों के निपटान संबन्धित प्रावधान	157–168
इकाई -10	समन व वारंट : सामान्य प्रावधान	169–179
इकाई -11	भारतीय दंड संहिता : एक अवलोकन	180–199
इकाई -12	मानव शरीर को प्रभावित करने वाले अपराध	200–206
इकाई -13	भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 : एक अवलोकन	207–219
इकाई -14	भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 : तथ्यों की सुगमता	220–231
इकाई -15	भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 : विशेषज्ञों के मत और महत्व (सेक्शन 45-51)	232–241
इकाई -16	जाँच व न्यायलय मे गवाह एवं साक्ष्य	242–254
इकाई -17	राजस्थान लघु (माइनर) अधिनियम	255–279
इकाई -18	केन्द्रीय लघु (माइनर) अधिनियम	280–295
इकाई -19	विधि एवं पर्यावरण	296–306

इकाई - 1

संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि : संविधान सभा की रचना एवं कार्यकरण तथा भारतीय संविधान की विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 भारत में संविधान सभा के सिद्धान्त का विकास

1.3 संविधान सभा की माँग की स्वीकृति

1.4 कैबिनेट मिशन योजना और संविधान सभा का निर्माण

1.5 संविधान सभा का गठन

1.6 संविधान सभा द्वारा समितियों का निर्माण

1.7 संविधान सभा के प्रमुख सदस्य

1.8 संविधान निर्माण का वृतान्त

1.9 संविधान सभा में निर्णय की प्रक्रिया

1.10 संविधान सभा का दृष्टिकोण

1.11 संविधान की प्रस्तावना

1.12 भारतीय संविधान की विशेषताएँ

1.13 सारांश

1.14 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :-

- भारतीय संविधान के निर्माण की पृष्ठभूमि में निहित सिद्धान्तों एवं दर्शन के विषय में जान सकेंगे।
- भारतीय संविधान सभा के निर्माण तथा उसकी कार्य प्रणाली से अवगत हो सकेंगे।
- भारत की भावी राजनीतिक व्यवस्था के विषय में संविधान सभा की अवधारणाओं की जानकारी पाएंगे।
- भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रत्येक स्वाधीन राष्ट्र का अपना पृथक संविधान होता है और इसी संविधान के अनुसार उस राष्ट्र की शासन व्यवस्था परिसंचालित होती है। प्रत्येक राष्ट्र का विकास तभी संभव है जब उस राष्ट्र का संविधान उसकी जनता द्वारा स्वयं या वह संविधान जनता द्वारा चुनी गई संविधान निर्मात्री सभा द्वारा निर्मित हो। संविधान के निर्माण के लिए चयनित सभा को संविधान निर्मात्री सभा कहा जाता है। भारत में संविधान सभा की अवधारणा के विकास का अपना अलग इतिहास है। इस सभा के चयन के पश्चात जो संविधान निर्मित हुआ उसी ने देश को उचित राजनीतिक दिशा प्रदान की है। भारतीय

संविधान को पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें इसके मूलभूत लक्षणों/विशेषताओं को समझना आवश्यक है।

1.2 भारत में संविधान सभा के सिद्धान्त का विकास

प्रथम महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए पराधीन देशों से अधिकाधिक सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रथम महायुद्ध (1914- 1918) में आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का समर्थन किया। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जो स्मरण-पत्र पेरिस शान्ति सम्मेलन में प्रस्तुत किया, उसमें भारत के लिए आत्म निर्णय के अधिकार की माँग रखी थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उसे अस्वीकार कर दिया था। 1920 में महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन इसीलिए चलाया था क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने इन्हें आत्मनिर्णय का अधिकार देने से मना कर दिया था। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जो स्मरण-पत्र पेरिस शान्ति सम्मेलन में प्रस्तुत किया, उसमें भारत के लिए आत्म निर्णय के अधिकार की माँग रखी थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उसे अस्वीकार कर दिया था। 1922 में महात्मा गाँधी ने घोषित किया कि,''भारतीय संविधान भारतीयों की इच्छानुसार ही होगा।''1924 में पं. मोतीलाल नेहरू ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष संविधान निर्माण की माँग रखी जिसे सरकार ने उपेक्षित कर दिया। बाद में एम.एन. राय ने संविधान सभा के विचार का औपचारिक रूप से प्रतिवादन किया, जिसे लोकप्रिय बनाने और मूर्त रूप देने का कार्य जवाहरलाल नेहरू ने किया। पं. नेहरू के प्रयत्नों से ही कांग्रेस पार्टी ने औपचारिक घोषणा करते हुए कहा कि,''यदि भारत को आत्म-निर्णय का अवसर मिलता है तो भारत के सभी विचारों के लोगों की एक प्रतिनिधि सभा बुलाई जानी चाहिए, जो सर्वसम्मत संविधान का निर्माण कर सके। यही संविधान सभा होगी।''

7 अप्रैल 1934 को महात्मा गाँधी ने स्वराज्य दल को पुनर्जीवित करने के प्रस्ताव को अपनी स्वीकृति दे दी। 1934 में स्वराज दल ने आत्मनिर्णय के अधिकार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए भारतीय प्रतिनिधियों की एक संविधान सभा की माँग की। 1936 में कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन में संविधान सभा का अर्थ तथा महत्व स्पष्ट किया गया तथा संविधान सभा की माँग को कांग्रेस की नीति का आधार स्तम्भ बताया गया, पर अंग्रेजों द्वारा इस माँग को स्वीकार किया जाना अभी प्रतीक्षित ही था। फलत: 1937-38 के कांग्रेस अधिवेशनों में निरन्तर इस माँग को उठाया गया और यह कहा गया कि प्रजातंत्र तथा स्वतंत्रता में विश्वास न रखने वाले ही इसका विरोध कर सकते हैं तथा यह भी कि संविधान सभा के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता नहीं है। महात्मा गाँधी ने कहा कि,''हम एक ऐसी संविधान सभा चाहते हैं जो भारतीय मस्तिष्क का वास्तविक दर्पण हो।'

संविधान सभा की माँग की ब्रिटिश शासन द्वारा निरन्तर उपेक्षा की जाती रही। कुछ भारतीयों ने भी अपने निहित स्वार्थों तथा विशिष्ट विचारधारा के कारण इस माँग का विरोध किया। उदारवादी, देशी नरेश तथा मुस्लिम लीग विरोध करने वालों में प्रमुख थे।

1.3 संविधान सभा की माँग की स्वीकृति

यद्यपि ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता की संविधान के माँग को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थी परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियों और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दबावों के कारण उसे विवश होकर अगस्त 1940 के प्रस्ताव में कहना पड़ा कि,''भारत का संविधान स्वत: स्वयं भारतवासी ही तैयार करेंगे।'

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मार्च 1942 में सर स्टैफर्ड क्रिप्स ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रस्ताव लेकर आये। इस समय पर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की इस माँग को स्वीकार कर लिया कि दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् भारत में एक निर्वाचित संविधान सभा का गठन होगा जो भारत के लिए संविधान तैयार करेगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स के अन्य सुझावों को अपर्याप्त समझते हुए उन्हें अस्वीकार कर दिया, परन्तु संविधान सभा का विचार बाकी रह गया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने भारत के स्वतन्त्रता अधिकार को मान्यता देते हुए 13 मार्च 1946 को कहा कि,''क्या यह कोई आश्चर्य की बात है कि आज भारत अपने आपको 40 करोड़ लोगों का राष्ट्र कहता है और जिसने दो बार अपने पुत्रों को दो महायुद्धों में स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मरने को भेजा है, वह आज अपने भाग्य का निर्णय करने की स्वतन्त्रता माँग रहा है। वर्तमान शासन में सरकार का क्या स्वरूप भारत के लिए प्रतिस्थापित होगा, यह निश्चित किया जाना है परन्तु हमारी इच्छा है कि ऐसा निर्णय करने के लिए मशीनरी का गठन किया जाए।'

1.4 कैबिनेट मिशन योजना और संविधान सभा का निर्माण

24 मार्च, 1946 को केबिनेट मिशन' दिल्ली पहुंचा। 16 मई, 1946 को मिशन ने अपनी योजना प्रकाशित की। संविधान निर्माण के प्रस्तावित संगठन के बारे में मिशन का विचार था कि वयस्क मताधिकार के आधार पर संविधान सभा का गठन वर्तमान स्थितियों में असंभव है। अत: व्यावहारिक उपाय सही है कि प्रान्तीय विधान सभाओं का निर्वाचनकारी संस्थाओं के रूप में उपयोग किया जाए।

इस संविधान सभा में कुल 389 सदस्य हो जिनमें 292 ब्रिटिश प्रान्तों के प्रतिनिधि, 4 चीफ कमिश्नर क्षेत्रों के प्रतिनिधि और 93 देशी रियासतों के प्रतिनिधि हों। योजना में यह कहा गया कि (1) प्रत्येक प्रान्त द्वारा भेजे जाने वाले सदस्यों की संख्या उसकी जनसंख्या के आधार पर निश्चित की जाए और इस सम्बन्ध में 10 लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि लेने का नियम अपनाया जाए। (2) प्रान्तों को इस आधार पर दिये गए स्थान उनमें निवास करने वाली प्रमुख जातियों में उनकी संख्या के आधार पर विभाजित कर दिए जाए। प्रत्येक जाति के प्रतिनिधि उस जाति के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किए जाएं। मतदाताओं को तीन वर्गों में बांटने का निश्चय किया जाए। साधारण, मुसलमान तथा सिख (केवल पंजाब)। (3) रियासतों को भी जनसंख्या के आधार पर ही प्रतिनिधित्व देने का निश्चय किया गया, किन्तु उनके प्रतिनिधियों के चुनाव का ब्रिटिश भारत से संविधान सभा के लिए चुने गए प्रतिनिधियों की समझौता समिति' और देशी रियासतों की तरफ से बैठाई गई समिति के बीच में आपसी बातचीत द्वारा तय होना था। (4) प्रान्तों के अलग संविधानों की भी इस योजना में व्यवस्था की गई। इसके लिए कहा गया कि संविधान सभा की प्रारम्भिक बैठक के बाद सदस्य अपने आपको तीन वर्गों में बाँट लेंगे-प्रथम, हिन्दू बहुमत वाले प्रान्तों के प्रतिनिधि, द्वितीय, मुस्लिम बहुमत वाले उत्तरपश्चिमी प्रान्तों के प्रतिनिधि, और तृतीय, मुस्लिम बहुमत वाले उत्तरपूर्वी प्रान्तों के प्रतिनिधि। इन तीन वर्गो द्वारा पहले अपने-अपने प्रान्तों और वर्गो के संविधान का निर्माण और तत्पश्चात संघीय संविधान का निर्माण किया जाएगा।

संविधान सभा के गठन और संविधान निर्माण की इस योजना में कुछ दोष अवश्य ही थे, लेकिन इसके साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों में इससे अच्छी कोई योजना प्रस्तुत नहीं की जा सकती थी। योजना का एक प्रमुख गुण यह था कि मुस्लिम लीग की इच्छा के विरूद्ध केवल एक संविधान सभा की व्यवस्था की गई थी, अत: कांग्रेस द्वारा इस योजना को स्वीकार कर लिया गया। मुस्लिम लीग द्वारा योजना की व्याख्या अपने ढंग से की गई और वर्गीय आधार पर संविधान निर्माण में पाकिस्तान

के नियम देखते हुए इस योजना को स्वीकार कर लिया गया। अन्य छोटे दलों द्वारा भी केबिनेट मिशन योजना को स्वीकार कर लिया गया।

1.5 संविधान सभा का गठन

उपर्युक्त प्रस्तावों के अनुरूप संविधान सभा के सदस्यों की संख्या 389 तय की गई थी। प्रान्तों के लिए 292, चीफ कमिनशर प्रान्तों के लिए 4 तथा देशी रियासतों के लिए 93 सदस्यों की संख्या निर्धारित की गई।

25 जुलाई 1946 में संविधान सभा के लिए चुनाव आयोजित किए गये। ये निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से प्रान्त की विधान सभाओं द्वारा 296 स्थानों के लिए किये गये। चुनाव परिणाम इस प्रकार थे :

कांग्रेस	:	208
मुस्लिम लीग	:	73
यूनियनिस्ट पार्टी	:	1
यूनियनिस्ट मुस्लिम	:	1
यूनियनिस्ट अनुसूचित जाति	:	1
कृषक प्रजा पार्टी	:	1
अछूत जाति संघ	:	1
सिक्ख:	:	1
साम्यवादी	:	1
निर्दलीय	:	8

तालिका से यह स्पष्ट है कि चुनावों में कांग्रेस को भारी विजय प्राप्त हुई। संविधान सभा की बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को नई दिल्ली में हुई। मुस्लिम लीग ने प्रारम्भ में कैबिनेट मिशन योजना तथा अन्तरिम सरकार में शामिल होना स्वीकार किया था, पर संविधान सभा में अपनी कमजोर स्थिति देखकर उसने पैंतरा बदला तथा सभा का बहिष्कार करने का फैसला किया, साथ ही माँग की कि पाकिस्तान के लिए पृथक् संविधान सभा का निर्माण किया जाए। ब्रिटिश सरकार तथा कांग्रेस ने लीग का समर्थन प्राप्त करने का बहुत प्रयास किया, पर वे सभी निरर्थक सिद्ध हुए। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों का वार्ता तथा सहमति द्वारा चुनाव होना था, वह भी न हो सका, फलत: संविधान सभा को उसका प्रतिनिधित्व भी प्राप्त नहीं हुआ।

207 सदस्यों की सभा के प्रथम अस्थायी सभापति डॉ.सच्चिदानन्द सिन्हा चुने गये। 11 दिसम्बर, 1946 को स्थायी सभापति के रूप में डॉ.राजेन्द्र प्रसाद को चुना गया। 13 दिसम्बर 1946 को पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा'उद्देश्य प्रस्ताव' रखा गया, जिसमें भारत को स्वतन्त्र प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य के रूप में स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की गई। इस उद्देश्य प्रस्ताव पर आठ दिन तक विचार-विमर्श किया गया।

वस्तुत: भारत की संविधान सभा का गठन तीन चरणों में पूरा हुआ। सर्वप्रथम,'कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन हुआ और कुल सदस्यों की संख्या 389 निश्चित की गई थी। द्वितीय चरण की शुरूआत 3 जून, 1947 की विभाजन योजना से होती है और संविधान सभा का पुनर्गठन किया गया। देश का बंटवारा हो जाने के बाद संविधान निर्मात्री सभा की कुल सदस्य

संख्या 324 रह गई थी जिसमें 235 स्थान प्रान्तों के लिए और 89 देशी राज्यों के लिए थे। तृतीय चरण देशी रियासतों से सम्बन्धित था और उनके प्रतिनिधि संविधान सभा में अलग-अलग समय में सम्मिलित हुए। हैदराबाद ही एक ऐसी रियासत थी जिसके प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हुए। जैसा कि पहले बताया गया है संविधान सभा की पहली बैठक (9 दिसम्बर, 1946) में 207 सदस्यों ने भाग लिया। संविधान सभा के गठन के बाद 14 अगस्त, 1947 को जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि'स्वाधीनता और सत्ता अपने साथ उत्तरदायित्व लाती है। वह उत्तरदायित्व अब इस भारत के लोगों की प्रतिनिधि, प्रभुसत्ता सम्पन्न संविधान सभा के कन्धों पर है।"

1.6 संविधान सभा द्वारा समितियों का निर्माण

भारत एक विशाल और विविधताओं वाला देश हैं। इसके संविधान का निर्माण करना एक कठिन कार्य था। संविधान निर्माण के लिए संविधान सभा ने अनेक समितियों का गठन किया। इन समितियों को कई भागों में बाँटा जा सकता था - (क) वे समितियाँ जो संविधान निर्माण की प्रक्रिया के प्रश्नों को हल करने के लिए गठित की गई (जैसे-प्रक्रिया समिति, वार्ता समिति, संचालन समिति एवं कार्य समिति आदि। (ख) वे समितियाँ जो संविधान निर्माण करने वाली थीं (जैसे-संघ संविधान समिति, प्रान्तीय संविधान समिति, संघ शक्ति समिति, मूल अधिकारों और अल्प संख्यकों आदि से सम्बन्धित समिति, आदि। (ग) प्रारूप समिति जिसे संविधान को अन्तिम रूप देना था।

1.7 संविधान सभा के प्रमुख सदस्य

संविधान सभा में पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, के.एम मुन्शी, गोपालास्वामी आयंगर, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर, पट्टाभि सीतारमैया, श्रीमती दुर्गाबाई, ठाकुरदास भार्गव, मौलाना अबुल कलाम आजाद का योगदान महत्वपूर्ण रहा। संविधान सभा में नेहरू और पटेल शक्ति के केन्द्र-बिन्दु थे। किसी प्रश्न पर उनमें परस्पर मतभेद की स्थिति में उनके इर्द-गिर्द समर्थक एकत्रित हो जाते थे, परिणामस्वरूप संविधान सभा में बहस लम्बी चलती थी। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद अपने प्रभाव का खुलकर प्रयोग नहीं कर पाते थे क्योंकि वे संविधान के अध्यक्ष थे। नेहरू आदर्शवादी थे तो प्रसाद और पटेल व्यावहारिक। डॉ. अम्बेडकर कानून के प्रकाण्ड विद्वान थे तो गोपालास्वामी आयंगर भी बहुत योग्य और अनुभवी पुरूष थे।

1.8 संविधान निर्माण का वृत्तान्त

जुलाई 1946 में संविधान सभा के निर्वाचन हुए। कांग्रेस चाहती थी कि संविधान सभा यथाशीघ्र संविधान निर्माण का कार्य प्रारम्भ करे। जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस की ओर से एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की जिसे संविधान सभा के लिए आवश्यक सामग्री जुटानी थी। इस समिति ने संविधान सभा के कार्य-संचालन की आवश्यक प्रक्रिया तय की।

संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन 9 दिसम्बर, 1946 को संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में प्रारम्म हुआ।डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा को सर्वसम्मति से अस्थायी अध्यक्ष चुना गया। इसके बाद सदस्यों ने अपने परिचय पत्र पेश किए तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किए। 11 दिसम्बर, 1946 को कांग्रेस के वरिष्ठ नेता. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित हुए। संविधान निर्माण की दिशा में सबसे पहला काम था जवाहरलाल नेहरू द्वारा उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तावित करना। यह प्रस्ताव 13 दिसम्बर, 1946 को प्रस्तुत किया गया था। प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए श्री नेहरू ने कहा,''मैं आपके सामने जो प्रस्ताव रख रहा हूँ उसमें हमारे उद्देश्यों की व्याख्या की गई है, योजना की रूपरेखा दी गई है और बताया गया है कि हम किस रास्ते पर चलने वाले हैं। उद्देश्य प्रस्ताव में'भारत को स्वतन्त्र

प्रभुसत्ता-सम्पन्न गणराज्य घोषित करने की आकांक्षा व्यक्त की गई। उसमें यह भी कहा गया कि प्रभुसत्ता का वास जनता में होगा तथा भारत के सभी लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना और व्यवसाय की गारन्टी दी जाएगी। 13 दिसम्बर से 19 दिसम्बर, 1946 तक संविधान सभा ने उद्देश्य प्रस्ताव पर कुल आठ दिन विचार-विमर्श किया। 20 जनवरी, 1947 को संविधान सभा में सदस्यों ने खड़े होकर सर्वसम्मति से इस प्रस्ताव को पास किया।

उद्देश्य प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद ही संविधान सभा ने संविधान निर्माण की समस्या के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में अनेक समितियाँ नियुक्त की। इनका विवरण पहले दिया जा चुका है। देशी रियासतों से बातचीत करने के लिए संविधान सभा ने एक'वार्ता समिति' पूर्व में ही गठित कर ली थी।

संविधान सभा के कार्यालय की परामर्श शाखा ने 17 मार्च, 1947 को संविधान की मुख्य विशेषताओं के सम्बन्ध में एक प्रश्न-सूची विभिन्न प्रान्तीय विधानमंडलों तथा केन्द्रीय विधानमंडल के सदस्यों के पास भी भेजी ताकि वे प्रस्तावित संविधान के बारे में अपने विचार व्यक्त कर सकें।

अक्टूबर 1947 में संविधान सभा का पहला प्रारूप तैयार हो गया, जिसकी प्रतिलिपियाँ संविधान सभा के सदस्यों में वितरित कर दी गई। अगस्त में प्रारूप समिति के गठन के साथ प्रारूप के परीक्षण का दायित्व उस समिति को सौंप दिया गया। फरवरी 1948 में प्रारूप समिति ने भारत का प्रारूप संविधान सभा के अध्यक्ष को सौंप दिया। संविधान सभा के कुल 12 अधिवेशन हुए जिसमें 165 दिन लगे। 114 दिन संविधान के प्रारूप निर्धारित करने में लगे। संविधान पर धारावार विचार-विमर्श किया गया। 26 नवम्बर, 1949 को संविधान को अन्तिम रूप दिया गया तथा 24 जनवरी 1950 को संविधान की तीन प्रतियाँ सभा पटल पर रखी गई। 2 वर्ष 11 महीने व 18 दिनों में संविधान बनकर तैयार हुआ जिसमें 395 अनुच्छेद और 8 अनसूचियॉ थी। वर्तमान में 395 अनुच्छेद व 12 अनुसूचियॉ हैं संविधान निर्माण पर कुल 63,76,729 रूपये खर्च हुए। संविधान सभा के सदस्यों के हस्ताक्षर हुए। वन्दे मातरम् तथा जन-गण-मन के गायन के साथ संविधान सभा समाप्त हुई। अब आगे उसे अन्तर्कालीन संसद के रूप में काम करना था। संविधान का कुछ भाग 26 नवम्बर, 1949 तथा शेष भाग 26 जनवरी 1950 को लागू कर दिया गया। ग्रेनविल आस्टिन के अनुसार भारत विश्व का सबसे बडा प्रजातान्त्रिक देश बन गया। उन्होंने इसे विश्व की सबसे बडी राजनैतिक घटना बताया।

1.9 संविधान सभा में निर्णय की प्रक्रिया

संविधान निर्माण में अपनायी गई प्रक्रिया के सम्बन्ध में ग्रेनविल ऑस्टिन का मत है कि भारतीय संविधान के निर्माण में अत्यधिक श्रेष्ठ प्रक्रिया को अपनाया गया है। इसमें दो बातें उल्लेखनीय है.

1. **सहमति से निर्णय**: भारतीय संविधान निर्माताओं ने निर्णय लेते समय बहुत को महत्व न देते हुए सहमति से निर्णय को महत्व दिया। इसके लिए कई तरीके अपनाये गये

(क) कांग्रेस विधान मंडल दल की बैठक में संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद पर खुलकर वाद-विवाद होता था।

(ख) संविधान निर्माण से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण समितियों, विभिन्न समुदायों एवं वर्गो के हितों को समुचित प्रतिनिधित्व दिया गया था। अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ, संविधान की प्रस्तावना और संसद के सम्बन्ध में प्रावधान इसके उदाहरण है।

एम.वी. पायली के शब्दों में,''संविधान सभा में वाद-विवाद को पूरा प्रोत्साहन मिला, आलोचना के प्रति सहनशीलता अपनाई गई, लम्बे वाद-विवाद के प्रति असन्तोष नहीं दिखाया गया, अपने विचार दूसरों पर लादने एवं शीघ्रता से कार्य समाप्त करने का प्रयास नहीं किया गया। यह एक पूर्ण लोकतान्त्रिक प्रक्रिया थी, जिस पर सभी भारतीय लोग गर्व कर सकते हैं।

2. **समायोजन का सिद्धान्त**: समायोजन से अभिप्राय है दो ऐसे तत्वों में समन्वय स्थापित करना, जो परस्पर विरोधी समझे जाते रहे हैं। जैसे:-

(क) एकात्मक और संघात्मक व्यवस्था में समन्वय: एकात्मक व्यवस्था संघात्मक व्यवस्था के विपरीत होती है परन्तु भारत के संविधान में दोनों में समन्वय किया गया है।

(ख) गणतन्त्रीय व्यवस्था के साथ राष्ट्र मंडल की सदस्यता: 1947 तक यह माना जाता था कि किसी गणतन्त्रीय राज्य के द्वारा राष्ट्रमंडल की सदस्यता को नहीं अपनाया जा सकता, परन्तु भारत के संविधान निर्माताओं ने गणतन्त्रीय राष्ट्र व्यवस्था के साथ राष्ट्र मंडल की सदस्यता स्वीकार की।

(ग) केन्द्रीय शासन और पंचायत व्यवस्था के मध्य समन्वय: संविधान सभा के अध्यक्ष एवं कुछ सदस्य नवीन संविधान में पंचायत व्यवस्था को अपनाना चाहते थे। उनका मत था कि वयस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर ग्राम पंचायतों और नगरपालिकाओं के बोर्डों का निर्माण हो। ये पंचायतें तथा बोर्ड अपने प्रतिनिधि उच्चतर संस्थाओं को भेजें और इस प्रकार संसद की रचना हो जबकि दूसरी ओर शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के समर्थक पं. नेहरू और कुछ सदस्य संसद का निर्माण प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर कराना चाहते थे। इन दोनों परस्पर विरोधी विचारों में समन्वय किया गया।

ग्रेनविल ऑस्टिन के शब्दों में'संघ तथा प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में केन्द्रीकरण के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया और प्रत्यक्ष निर्वाचन को अपनाया गया। प्रान्तीय सरकारों से नीचे के स्तर पर विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को स्वीकार किया गया और इस सम्बन्ध में व्यवस्थापन का कार्य प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओ के क्षेत्राधिकार में रखा गया। इसके साथ ही राज्य नीति के निर्देशक तत्वों में भी पंचायत व्यवस्था को स्थान दिया गया।

सुभाष कश्यप के शब्दों में,''संविधान सभा में नेताओं की बराबर कोशिश यह रही कि समझौते और समन्वय की भावना से काम हो तथा निर्णय बहुमत के आधार पर नहीं, बल्कि आम राय के आधार पर लिए जाए। इसी का परिणाम था कि जो संविधान बना उसे संविधान सभा की ही नहीं अपितु विस्तृत जनमत की भारी सहमति और स्वीकृति प्राप्त थी।

1.10 संविधान सभा का दृष्टिकोण

हर एक देश के संविधान को संविधान निर्माण का कार्य करने वाले व्यक्तियों के दृष्टिकोण के संदर्भ में ही भलीभाँति समझा जा सकता है और भारतीय संविधान के संबंध में यह बात पूर्णतया सत्य है। मार्च 1947 से पूर्व, जब तक कि भारत की एकता को बनाये रखने की आशा थी, उस समय तक संविधान सभा में जो भी प्रस्तुत किए गए, उनमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर बल दिया गया था, किन्तु जब भारत का विभाजन हो गया, तब उन्होंने विघटनकारी तत्वों के संकट का अनुभव किया। इस संबंध में के. वी. राव का यह कथन उल्लेखनीय है,''गुरूत्वाकर्षण केन्द्र का स्थान बदल गया, इस नये भय से अनुप्राणित होकर और जिसका अनुमोदन भूतकालीन इतिहास से भी होता था, आदर्शवाद ने यथार्थवाद को जन्म दे दिया, इसलिए सरकार की निरंकुशता से व्यक्ति की रक्षा करने के स्थान पर उनकी चिन्ता अब यह होने लगी कि खतरनाक व्यक्तियों तथा समाज-विरोधी तत्वों से राज्य की रक्षा किस प्रकार की जाए।" इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष, सामाजिक जीवन

की कुरीतियों और धर्म निरपेक्ष आन्दोलन, आदि अनेक तत्वों ने संविधान-निर्माताओं के दृष्टिकोण को प्रभावित किया।

संविधान के प्रमुख प्रावधानों के सम्बन्ध में संविधान सभा के दृष्टिकोण की विवेचना इस प्रकार की जा सकती

है:

1. प्रस्तावना

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जो विचार अभिव्यक्त किये गये हैं, उनको पं. नेहरू ने अपने उद्देश्य प्रस्ताव में रखा था। संविधान सभा ने उसको अपने पहले अधिवेशन में ही पारित कर दिया था।

इस प्रस्तावना पर विचार-विमर्श के समय कुछ सदस्यों ने यह प्रस्ताव रखा कि इस संविधान सभा की रचना अप्रत्यक्ष रूप से हुई है अर्थात् यह वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई है। इसकी रचना सीमित मताधिकार पर चुनी हुई विधान सभाओं के द्वारा हुई है। इसलिए वयस्क मताधिकार के आधार पर नयी संविधान सभा की व्यवस्था की जाए, परन्तु इस सुझाव को संविधान सभा ने अस्वीकार कर दिया।

दूसरे, प्रस्तावना में यह घोषणा की गई है कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य होगा। इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श के समय यह आपत्ति उठाई गई कि यदि भारत को गणराज्य घोषित कर दिया गया, तो भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य कैसे रह सकेगा? इसका उत्तर देते हुए वी.एन. राव ने कहा कि,''राष्ट्रमंडल की धारणा में स्पष्टत: विकास होता जा रहा है और अब वह उस स्तर पर पहुंच चुका है जिसमें गणतान्त्रिक संविधान वाले राज्यों को स्थान दिया जा सकता है।'

तीसरे, प्रस्तावना के सम्बन्ध में मौलाना हसरत मौलाना ने आपत्ति की, कि, प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' के स्थान पर प्रभुत्व स्वतन्त्र गणराज्य' शब्द रखा जाए क्योंकि यदि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य रहा, तो उसकी स्थिति ब्रिटेन के अधीनस्थ एक गणतान्त्रिक अधिराज्य' की हो जाएगी। इस सुझाव को अस्वीकार करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि सम्प्रभु शब्द से बाहरी और आन्तरिक दोनों प्रकार की स्वतन्त्रता प्रकट होती है और यदि एक स्वतन्त्र देश किसी दूसरे स्वतन्त्र देश के साथ किसी सन्धि से बँधता है, तो वह इस कारण किसी भी रूप में कम प्रभुत्व सम्पन्न नहीं हो जाता।

चौथे, प्रस्तावना के संबंध में यह संशोधन रखा गया कि भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतान्त्रिक समाजवादी गणराज्य घोषित किया जाए। इसका उत्तर देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि हमें भावी पीढ़ियों को किसी भी अर्थव्यवस्था को संविधान में नहीं बाँध देना चाहिए, अपितु यह कार्य भविष्य में लोगों द्वारा चुनी हुई संसदों के लिए छोड़ देना चाहिए। हरि विष्णु कामथ ने प्रस्ताव रखा कि प्रस्तावना के आरम्भ में ईश्वर के नाम पर इस शब्दावली को जोड़ा जाए। इस पर आपत्ति करते हुए हृदयनाथ कुंजरू ने कहा कि यह प्रस्ताव संविधान की भावना के प्रतिकूल है क्योंकि इसमें प्रत्येक व्यक्ति को विश्वास, धर्म तथा विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता दी गई है। संविधान सभा ने कामथ का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया

2. नीति निर्देशक सिद्धान्त

नीति निर्देशक सिद्धान्तों पर अपेक्षाकृत संक्षिप्त वाद-विवाद ही हुआ। संविधान सभा के कुछ सदस्यों - विशेषत: काजी सैयद करीमुद्दीन, हरिविष्णु कामथ, प्रो. नसिरूद्दीन और के.टी शाह, आदि ने इस बात पर बल दिया कि इन सिद्धान्तों का क्रियान्वयन राज्य के लिए अनिवार्य होना चाहिए। इसी

बात को ध्यान में रखते हुए यह संशोधन प्रस्तुत किया गया कि शीर्षक में निर्देशक के स्थान पर'मौलिक' शब्द का प्रयोग किया जाए। डॉ. अम्बेडकर ने इसको अस्वीकार कर दिया। उनके द्वारा कहा गया किया कि'मौलिक' शब्द का प्रयोग अनावश्यक है, क्योंकि मौलिक शब्द का प्रयोग न करते हुए भी इन्हें राजव्यवस्था के मौलिक सिद्धान्तों के रूप में ही मान्यता प्रदान की गई है। द्वितीय, इन सिद्धान्तों का प्रयोजन आने वाली व्यवस्थापिकाओं और कार्यपालिकाओ को निर्देश देना ही है और इस दृष्टि से'निर्देशक' शब्द ही उचित है।

इन तत्वों का उद्देश्य. आर्थिक-सामाजिक न्याय की प्राप्ति ही कहा जा सकता है, लेकिन इस सम्बन्ध में की गई समस्त व्यवस्था में स्पष्टता को अपनाने के बजाय अस्पष्टता को बनाये रखना ही उचित समझा गया। संविधान के प्रारूप में गांधीवादी आदर्शों को कोई स्थान नहीं दिया गया था, इस अभाव की पूर्ति ग्राम पंचायतों, कुटीर उद्योगों, नशाबन्दी तथा कृषि एवं पशुपालन को प्रोत्साहन आदि की व्यवस्था नीति निर्देशक तत्वों में करते हुए की गई। नीति निर्देशक सिद्धान्तों को संविधान में स्थान देकर संविधान निर्माताओं ने जनता के सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों को मान्यता प्रदान की और इस प्रकार उन्होंने समाजवादी आदर्शों में अपनी आस्था व्यक्त की, लेकिन वस्तुत: उनमें समाजवादी आदर्शो की अपेक्षा और उदारवादी आदर्शों की प्रबलता थी और इसी कारण इन नीति निर्देशक तत्वों को अवाद योग्य स्थिति ही प्रदान की गई।

3. मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान सभा के अधिकांश सदस्य ग्रेट ब्रिटेन में प्रचलित भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, सम्पत्ति का अधिकार जैसे मौलिक अधिकारों के पक्ष में थे। संविधान सभा में मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में एक उपसमिति बनायी गई। उस उपसमिति ने बहुत वादविवाद के पश्चात् यह सिफारिश की कि नागरिकों को काम पाने का अधिकार, बुढ़ापे में पेंशन पाने के अधिकार, बुढ़ापे में आराम तथा अवकाश का अधिकार मुक्त शिक्षा का अधिकार वाद योग्य न बनाया जाए और समानता, स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, सम्पत्ति का अधिकार और शोषण के विरूद्ध अधिकार को वाद योग्य बनाया जाए। संविधान सभा में वाद-विवाद के समय उपसमिति के प्रतिवेदन को चुनौती देते हुए हृदयनाथ कुंजरू ने कहा कि वाद योग्य और अवाद-योग्य अधिकारों में विभाजन रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। सोमनाथ लाहिड़ी आर्थिक अधिकारों को मौलिक अधिकारों की सूची में रखना चाहते थे। आर्थिक अधिकारों को मौलिक अधिकारों की सूची में न रखे जाने पर विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी ने कहा कि, मताधिकार को छोडकर संविधान के अन्तर्गत निर्धन व्यक्ति को कोई दूसरा अधिकार नहीं मिला है। संविधान सभा ने उप समिति की रिपोर्ट को स्वीकार किया क्योंकि उस समय राज्य अधिकारों के फलस्वरूप अतिरिक्त बोझ को सहन करने की स्थिति में नहीं था।

निवारक नजरबन्दी अधिनियम पर वाद-विवाद

अनु. 22 में तीन बातें थीं

1. गिरफ्तार किये हुए व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के कारण बताये जाएंगे।
2. गिरफ्तार किये हुए व्यक्ति को अपनी रक्षा के लिए वकील करने का अधिकार होगा।
3. गिरफ्तार किये हुए व्यक्ति को 24 घण्टे के अन्दर किसी दंडाधिकारी के न्यायालय में पेश किया जाएगा और उस पर आरोप लगाए जाएँगे।

ये तीनों धाराएँ बहुत अच्छी थीं। इसके दो अपवाद थे। प्रथम, ये अधिकार उन व्यक्तियों को नहीं मिल सकेंगे जिनका सम्बन्ध किसी शत्रु देश से है। दूसरे, ये अधिकार उन व्यक्तियों को नहीं मिल सकेंगे जो निवारक नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार किये गये हों। इनमें से पहले अपवाद का

कोई विरोध नहीं हुआ, परन्तु दूसरे अपवाद का घोर विरोध हुआ। पं ठाकुर दास भार्गव ने इसे संविधान की महान् असफलता घोषित किया और बख्शी टेकचंद ने इसे निरंकुशता का प्रपत्र बताते हुए क्हा कि,''मैं डॉक्टर अम्बेडकर, सर अल्लादी, मि. के. एम. मुंशी तथा दूसरे लोगों से पूछता हूँ कि क्या संसार में कोई ऐसा लिखित संविधान है जिसमें साधारण स्थिति में बिना मुकदमा चलाये लोगों को नजरबन्दी की व्यवस्था हो।'

डॉ. अम्बेडकर ने दूसरे अपवाद का समर्थन करते हुए कहा है कि,'हमें यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि आज की परिस्थिति में कार्यपालिका के लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसे व्यक्ति को नजरबन्द कर दे जिससे या तो सार्वजनिक व्यवस्था के लिए खतरा पैदा हो अथवा जिससे देश की प्रति रक्षा पर आँच आती हो। ऐसी परिस्थिति में मैं नहीं सोचता कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता को राज्य के हितों की बलिवेदी पर कुर्बान कर दिया जाएगा।' संविधान सभा ने इस पर विचार-विमर्श करके डॉ. अम्बेडकर के मत को स्वीकार कर लिया।

सम्पत्ति के अधिकार पर वाद-विवाद :

संविधान सभा में सम्पत्ति के अधिकार ने सबसे अधिक वाद-विवाद को जन्म दिया। अनु. 31 में कहा गया कि किसी भी सम्पत्ति को सार्वजनिक उद्देश्य को छोड़कर बलपूर्वक अधिग्रहण नहीं किया जाएगा और न ही उस पर कब्जा किया जाएगा जिस कानून के अनुसार यह सम्पत्ति ग्रहण की जाएगी, उसके अनुसार सम्पत्ति के स्वामी को मुआवजा दिया जाएगा या वह कानून यह निर्धारित करेगा कि कितना और किस तरह मुआवजा दिया जाए। ऐसे किसी भी कानून को न्यायालयों में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकेगी कि कानून के द्वारा निर्धारित मुआवजा काफी नहीं है।

संविधान में इस पर तीन प्रकार के मत थे - सरदार पटेल पूरा मुआवजा दिए जाने के पक्ष में थे, पं. नेहरू मुआवजे के विरूद्ध थे, पं. गोविन्द बल्लभ पंत जमींदारी उन्मूलन चाहते थे। पं. नेहरू ने कहा कि,'जहाँ तक संविधान का प्रश्न है सम्पत्ति पर बलपूर्वक अधिकार करने का कोई प्रश्न नहीं है परन्तु जब जनता के चुने गए प्रतिनिधि राज्य की प्रगति और सुरक्षा के लिए किसी वस्तु को आवश्यक समझते हैं तो व्यक्ति उनके मार्ग में बाधा नहीं डाल सकता परन्तु सम्पत्ति पर अधिकार करते समय विधान मंडलों के लिए यह आवश्यक है कि वे उचित एवं न्यायपूर्ण मुआवजे के लिए प्रबन्ध करें।'

अधिकारों के स्थगन पर बहस

अधिकार सम्बन्धित मसौदे की इस आधार पर आलोचना की गई कि अधिकारों पर बहुत अधिक प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं। इस प्रकार का विचार कुंजरू, एच.वी. कामथ, सोमनाथ लाहिड़ी, बख्शी टेकचन्द, महावीर त्यागी और अन्य अनेक सदस्यों द्वारा व्यक्त किया गया। लेकिन सरदार पटेल और एन.जी. रंगा आदि सदस्यों द्वारा इन प्रतिबन्धों को औचित्यपूर्ण बताया। इन प्रतिबन्धों का आधार बतलाते हुए श्री मुन्शी ने संविधान सभा में कहा था कि'सभा के अधिकांश सदस्य व्यक्तिगत स्वाधीनता की अपेक्षा सामाजिक नियन्त्रण को स्थापित करने के लिए अधिक चिन्तित थे।' इस आधार पर संविधान के 21वें अनुच्छेद में कानून की उचित प्रक्रिया के स्थान पर कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर शब्दावली को अपनाया गया।

4. राष्ट्रपति

संविधान निर्माताओं के समक्ष तीन प्रकार की कार्यपालिका थी, एक स्विस प्रकार की, दूसरी अमरीकी प्रकार की और तीसरी ब्रिटिश प्रकार की। जब संविधान के सदस्यों की राय माँगी गई तो अधिकांश सदस्य ब्रिटिश कार्यपालिका के पक्ष में थे इसलिए उसे स्वीकार कर लिया गया।

राष्ट्रपति का निर्वाचन

संविधान सभा के कुछ सदस्य राष्ट्रपति के लिए वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष निर्वाचन के पक्ष में थे। केटी शाह ने कहा कि,''राज्य के अध्यक्ष को जनता की सामूहिक क्षमता एवं प्रभुता का वास्तविक प्रतिनिधि होना चाहिए।' सभा के बहुमत ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए तीन तर्क दिए :

1. भारत जैसे विशाल देश में राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष निर्वाचित अव्यावहारिक होगा।
2. इतने बड़े चुनाव को सम्पन्न कराने के लिए बहुत बड़ी संख्या में चुनाव अधिकारियों की आवश्यकता होगी।
3. इस प्रकार का निर्वाचन संविधान में निहित राष्ट्रपति की स्थिति से मेल नहीं खाता।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि,''यह बात कुछ अटपटी सी होगी कि राष्ट्रपति को व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित किया जाए और फिर उसे वास्तविक शक्ति न दी जाए।'

अत: यह निश्चित किया गया कि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक मंडल द्वारा किया जाए, जिसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित प्रतिनिधि सदस्यों के अतिरिक्त राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य भी होंगे और यह निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर सम्पन्न हो।

राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ

राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों पर संविधान सभा में उग्र वाद-विवाद हुआ। इनकी आलोचना करते हुए मि. कॉमथ ने इसकी तुलना जर्मनी के वीमर संविधान से की, जिनका लाभ उठाकर हिटलर तानाशाह बन बैठा था। परन्तु ए.के. अय्यर ने इनका समर्थन करते हुए कहा कि,''समस्त देश में संवैधानिक व्यवस्था को कायम रखना संघीय सरकार का उत्तरदायित्व है और इन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति नहीं वरन् संसद के प्रति उत्तरदायी केन्द्रीय मन्त्रिमंडल ही करेगा।' संघीय सरकार के उत्तरदायित्व को ध्यान में रखते हुए आपातकालीन शक्तियों को संविधान में स्थान दिया गया।

5. मन्त्रिपरिषद्

मन्त्रिपरिषद् की योग्यता के सम्बन्ध में मुहम्मद ताहिर का मत था कि किसी भी ऐसे व्यक्ति को मन्त्रिपरिषद् का सदस्य नियुक्त न किया जाए तो अपनी नियुक्ति के समय संसद का निर्वाचित सदस्य न हो। डॉ. अम्बेडकर ने इस सुझाव को अस्वीकार करते हुए कहा कि,''यदि कोई योग्य व्यक्ति एक निर्वाचन क्षेत्र में किसी कारणवश पराजित हो गया हो तो उसे इस आधार पर मन्त्री बनाना अनुचित न होगा कि वह अपनी नियुक्ति के 6 माह की अवधि के भीतर किसी न किसी चुनाव क्षेत्र से निर्वाचित हो सकेगा। किसी गैर-संसद सदस्य को मन्त्री बनाने की सुविधा आखिरकार 6 माह तक ही तो सीमित रखी गई हैं।

6. संघीय संसद

के. एम. पणिक्कर, गोपालास्वामी आयंगर और अल्लादि कृष्णा स्वामी अय्यर ने द्विसदनीय संसद का समर्थन किया लेकिन मोहम्मद ताहिर ने द्वितीय सदन के प्रावधान का विरोध किया। कुछ सदस्यों ने आशंका व्यक्त की थी कि राष्ट्रपति द्वारा राज्य सभा के सदस्यों को मनोनीत किए जाने पर राष्ट्रपति आलोचना का शिकार हो सकता है, लेकिन इसके बावजूद संविधान सभा ने यह व्यवस्था की कि राज्य सभा में 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने संसद सदस्यों के लिए कुछ शैक्षिक योग्यता का प्रस्ताव रखा, परन्तु संविधान सभा ने इसे स्वीकार नहीं किया। प्रारूप समिति ने लोकसभा के निर्वाचन के लिए वयस्क मताधिकार की सिफारिश की साथ में अल्पसंख्यकों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखने की बात भी कही। इसकी आलोचना करते हुए सरदार हुकमसिंह ने कहा कि''यदि पृथक् निर्वाचन प्रणाली ने सम्प्रदायवाद

को बल पहुंचाया है तो स्थान सुरक्षित रखने की पद्धति से उसे कुछ कम बल नहीं मिलेगा।' परन्तु संविधान सभा ने प्रारूप समिति के दृष्टिकोण का समर्थन किया।

7. संघीय नगरपालिका

भारत में एकीकृत न्यायपालिका को ही अपनाया गया। प्रो. के. टी. शाह ने प्रस्ताव रखा कि"न्यायपालिका को व्यवस्थापिका और कार्यपालिका से पूर्णतया पृथक और स्वतंत्र रखा जाएगा।" प्रारूप समिति ने इसे अव्यावहारिक मानकर अस्वीकार कर दिया। के. एम. मुंशी ने कहा था कि"अमेरिका में भी, जहाँ पृथक्करण के सिद्धांत को स्वीकार किया गया है, ऐसे बहुत से न्यायिक अधिकार हैं जिन्हें कार्यपालिका और प्रशासकीय अभिकरणों में निकहत किया गया है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए प्रो. के. टी. शाह का सुझाव था कि उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को किसी भी स्थिति में किसी कार्यपालिका पद पर नियुक्त न किया जाए। डॉ. अम्बेडकर ने अपने उत्तर में सेवारत न्यायाधीशों की नियुक्ति का समर्थन किया क्योंकि,"बहुत से ऐसे मामले होते हैं जिनमें विशिष्ट प्रकार की न्यायिक क्षमता से सम्पन्न व्यक्ति की नियुक्ति बहुत आवश्यक होती है।' संविधान सभा ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांत को मान्यता तो प्रदान की, लेकिन साथ ही उन्होंने इस बात का ध्यान रखा कि सर्वोच्च न्यायालय इतना शक्तिशाली न हो जाए कि वह राज्य के अन्य अभिकरणों के कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे। इस प्रकार उन्होंने न्यायपालिका और व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता के बीच समन्वय स्थापित किया।

8. वयस्क मताधिकार व मूल अधिकार

अशिक्षित तथा निर्धन भारतीय जनता को वयस्क मताधिकार से सम्पन्न किया जाए अथवा नहीं यह एक बड़ा प्रश्न था।'मौलाना आजाद इसे पन्द्रह वर्ष के लिए स्थगित करना चाहते थे, डॉ. हृदयनाथ कुंजरू भी इस दिशा में धीरे-धीरे कदम बढाना उचित समझते थे, अन्ततः वयस्क मताधिकार के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया। अल्लादिकृष्णा स्वामी अय्यर के अनुसार इससे'सामान्य व्यक्ति की योग्यता और लोकतंत्र की सफलता' में विश्वास अभिव्यक्त हुआ।

9. जम्मू और कश्मीर

नेहरू चाहते थे कि जम्मु और कश्मीर राज्य के साथ विशेष उपबन्धों के बारे में एक धारा संविधान में शामिल की जाए जिसका अन्तर्निहित अर्थ यह था कि भारतीय संघ का अंग होने के बावजूद उस राज्य को अपना अलग विधान बनाने का अधिकार हो। पटेल चाहते थे कि कश्मीर राज्य को भारतीय संघ में विशेष स्थिति प्रदान न की जाए। मन्त्रिमंडल इस प्रश्न पर विभक्त था और संविधान सभा में मतों की प्रवृत्ति पटेल के पक्ष में थी। लेकिन जब यह प्रश्न असेम्बली के सामने प्रस्तुत हुआ तो सरकार की एकता के हित में पटेल ने अपना दृष्टिकोण वापस ले लिया।

10. अल्पसंख्यकों की सुरक्षा

संविधान सभा में इस बात पर मतभेद थे कि मुसलमानों एवं अल्पसंख्यकों के लिए विशेष प्रावधान किये जाये या नहीं। इस समस्या के समाधान में दो महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारतीय ईसाइयों की ओर से बात करते हुए राजकुमारी अमृतकौर ने कहा कि धर्म या जाति के आधार पर आरक्षण या अन्य रियायत प्रदान करने से भारतीय संघ की एकता खण्डित होती है। पटेल ने लखनऊ की बेगम एजाज रसूल से मुसलमानों का पक्ष प्रस्तुत करने को कहा। बेगम ने कहा कि जो मुसलमान भारत में रह गये हैं, वे भारत राष्ट्र का अभिन्न अंग हैं और इसलिए उन्हें विशेष सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है। पटेल ने यह बात स्वीकार करते हुऐ कहा कि मुसलमान सर्वसम्मति से संयुक्त चुनाक्षेत्रों के पक्ष में हैं।

संविधान निर्माताओं द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माता सिद्धान्त वादियाँ के स्थान पर व्यावहारिकता से प्रेरित थे।

संविधान सभा में अधिकांश निर्णय यथा संभव सामान्य राय से लिए जाने की कोशिश की गई। रजनी कोठारी लिखते हैं कि"इन दृष्टिकोणों से पता चलता है कि नये राष्ट्र की संस्थाओं का ढांचा तैयार करते समय किस प्रकार निर्णय लिए गये।' यह संविधान भारत के भविष्य की आधारशिला के समान था और इसकी रचना में नेताओं ने पुराने और नये विचारों में अधिक से अधिक सामंजस्य लाने का प्रयत्न किया।

1.11 संविधान की प्रस्तावना

संविधान का प्रारम्भ प्राय: प्रस्तावना से होता है। प्रस्तावना के द्वारा संविधान के आदर्शों, मूल्यों और आकांक्षाओं को स्पष्ट किया जाता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना निम्न प्रकार है"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास ओर धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिलती मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् 2006 विक्रमी) को एतद् द्वारा, संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

प्रस्तावना के मुख्य तत्वों की विवेचना निम्न प्रकार है:

हम, भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित तथा आत्मार्पित करते हैं - इस वाक्यांश का यह अर्थ है कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। जनता ही संविधान की निर्माता है और जनता ही इसे समाप्त कर सकती है, इसे समाप्त करने का अधिकार संघ या राज्य सरकारों को नहीं है। जनता ने ही इस संविधान को अपनी इच्छा से अंगीकार, अधिनियमित तथा आत्मार्पित किया है उसे जनता पर विदेशी सत्ता अथवा एकपक्षीय सरकार द्वारा जनता पर थोपा नहीं गया है।

सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न - सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न का अर्थ है कि भारतीय गणराज्य आन्तरिक और विदेशी मामलों में किसी अन्य शक्ति के अधीन नहीं है। इस सम्बन्ध में यह आलोचना भी की गई है कि सम्प्रभु राज्य होते हुए भी भारत राष्ट्र मंडल का सदस्य है, जिसका अध्यक्ष ब्रिटिश सम्राट होता है परन्तु राष्ट्रमंडल का सदस्य होने से भारत की सम्प्रभुता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि राष्ट्रमंडल राज्यों का एक ऐच्छिक समझौता है।

समाजवादी - यद्यपि संविधान सभा में अनेक सदस्यों द्वारा इस बात पर बल दिया गया था कि भारत को एक समाजवादी राज्य घोषित किया जाना चाहिए लेकिन तब अधिकांश सदस्यों ने इस विचार को इस आधार पर त्याग दिया था कि एक विशेष दर्शन के साथ जोड़ने से विवाद का विषय बनेगा। परन्तु सन् 1976 में आपातकाल में इन्दिरा गाँधी सरकार द्वारा संविधान की प्रस्तावना में संशोधन कर समाजवादी शब्द को इसलिए जोड़ा गया था कि भारतीय राजव्यवस्था को एक दिशा में दी जानी चाहिए। भारत में समाजवाद पश्चिमी नमूने से भिन्न है।

धर्मनिरपेक्ष - संविधान की प्रस्तावना में यह शब्द सन् 1976 में किये गये 42 वें संशोधन के द्वारा जोड़ा गया है। इसका अर्थ है कि भारत धर्म के क्षेत्र में न धर्म विरोधी है और न धर्म का प्रचारक, बल्कि वह तटस्थ है।

लोकतन्त्रात्मक - लोकतन्त्रात्मक का अर्थ है कि भारत में राजसत्ता का प्रयोग जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि करते हैं। वे जनता के प्रति उत्तरदायी होते है।

गणराज्य - गणराज्य का अभिप्राय राज्याध्यक्ष का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित होना है। भारत के राष्ट्रपति का जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन होता है।

सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय - सामाजिक न्याय का अर्थ है कि सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समानता प्राप्त हो। आर्थिक न्याय का अर्थ है कि समाज में अधिक अमीरी और गरीबी न हो। राजनीतिक न्याय का अर्थ है कि सभी नागरिकों को राजनीतिक क्षेत्र में समान और स्वतन्त्र रूप से भाग लेने का अवसर हो।

स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व - भारतीय संविधान में नागरिकों को विचार अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता दी गई है। नागरिकों को प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान की गई है। अन्त में, प्रस्तावना में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए संकल्प लिया गया है।

भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश सुबाराव के शब्दों में,'प्रस्तावना संविधान के आदर्शों व आकांक्षाओं को बताती है। संविधान सभा में एक सदस्य ने प्रस्तावना के सम्बन्ध में कहा था कि,''यह संविधान का अमूल्य अंग है। यह संविधान की कुंजी है।

1.12 भारतीय संविधान की विशेषताएँ

किसी भी देश का संविधान उस देश की शासन प्रणाली का परिचायक होता है। प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ उस देश की शासन प्रणाली को प्रभावित करती हैं। इसलिए एक देश का संविधान दूसरे देश के संविधान से भिन्न होता है अर्थात् प्रत्येक देश के संविधान की अपनी विशेषताएँ होती हैं जिनमें से कुछ विशेषताएँ अन्य देशों के संविधानों में पायी भी जा सकती है और नहीं भी। भारत के संविधान की अपनी विशेषताएँ निम्न प्रकार है.

1. प्रस्तावना

प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के उस अनुबोध की कुंजी है जिसके द्वारा वे समाज की अनिष्टकारी कुरीतियों को समाप्त करना चाहते थे। प्रस्तावना संविधान के उद्देश्यों व सरकार के लिए मार्ग निर्देशों को स्पष्ट करती है। वस्तुतः यह राष्ट्र के उन आदर्शो का प्रतीक है जिन्हें प्राप्त करने की ओर अग्रसर होने का प्रयास प्रत्येक सरकार को दलगत राजनीति से ऊपर उठकर करना चाहिए। पं. ठाकुरदास भार्गव ने प्रस्तावना को संविधान की आत्मा कहा है। प्रस्तावना में देशवासियों के सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक न्याय, समता तथा विकास के उद्देश्य को सामने रखा है। स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्र की एकता, व्यक्ति की गरिमा तथा भ्रातृत्व भाव को सबल करने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। देश के सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष तथा लोकतांत्रिक स्वरूप को रेखांकित करते हुए लोक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य सामने रखा गया है। मूल प्रस्तावना में''समाजवादी धर्मनिरपेक्ष तथा''अखण्डता' शब्दों को 42वे संविधान संशोधन 1976 के द्वारा जोड़ा गया है।

2. लिखित और निर्मित संविधान

भारतीय संविधान लिखित और निर्मित है। इसका निर्माण एक संविधान सभा द्वारा किया गया था। संविधान 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 12 अनुसूचियों में बेटा हुआ है। संविधान सभा को इसके निर्माण में 2 वर्ष, 11 महीनें और 18 दिन का समय लगा। इसको यद्यपि बहुत विस्तार से

लिखा गया है, परन्तु फिर भी कुछ अभिसमयों का इसमें प्रवेश हो गया है। संविधान को देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार ढालने के लिए उसमें एक संशोधन विधि भी दी गई है।

3. सर्वाधिक व्यापक संविधान

डॉ. आइवर जेनिंग्ज के शब्दों में."भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक व्यापक संविधान है।" संविधान की व्यापकता के अन्य भी अनेक कारण है:

(1) भारतीय संविधान संघात्मक है और संघ तथा राज्यों के बीच सम्बन्धों का संविधान में बहुत व्यापक रूप में वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त संविधान में न केवल केन्द्र के प्रशासनिक ढांचे का ही वर्णन किया गया है, वरन् इकाईयों के प्रशासनिक ढांचे का भी वर्णन किया गया है।

(2) संविधान में मौलिक अधिकारों और विभिन्न परिस्थितियों में उन पर लगाये जाने वाले प्रतिबन्धों की व्यवस्था के कारण संविधान के आकार में वृद्धि हो गई है।

(3) संविधान निर्माताओं ने संविधान में अल्पसंख्यकों और अतल-भारतीयों, अनुसूचित जाति व जनजाति क्षेत्रों से सम्बन्धित विशेष वर्गों के लिए विशेष व्यवस्था करना आवश्यक समझा और संविधान के 16वें भाग में इनके हितों की रक्षा के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की गई है।

(4) नवजात प्रजातंत्र के लिए संकट रूप में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों का सामना करने के लिए संविधान के 18वें भाग में संकटकालीन प्रावधानों से सम्बन्धित 9 अनुच्छेदों को स्थान दिया गया।

(5) संविधान की व्यापकता का सबसे बड़ा कारण यह है कि भारतीय संविधान में न केवल सिद्धान्तों का वर्णन, वरन् प्रशासनिक प्रबंधों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

4. लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

भारतीय संविधान लोक प्रभुसत्ता पर आधारित है अर्थात् यह संविधान भारतीय जनता द्वारा निर्मित और स्वीकृत है। संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट लिखा है कि,''हम भारत के लोग दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. को इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।'इस संविधान के द्वारा अन्तिम शक्ति भारतीय जनता को प्रदान की गई है। इस विचार की पुष्टि निर्वाचन सम्बन्धी अध्याय के अनुच्छेद 326 से होती है जिसके अनुसार,''लोकसभा तथा राज्य के विधान मंडलों के निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे।'इसका यह अभिप्राय है कि केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें अपनी सत्ता जनता से प्राप्त करती हैं। निश्चित अवधि के पश्चात् संसद तथा राज्य विधान मंडलों के लिए जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है। कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है तथा विधायिका जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। इस प्रकार राज्य कार्य में जनता की इच्छा महत्वपूर्ण होती है। यही लोकप्रिय प्रभुसत्ता कहलाती है।

इस प्रकार भारतीय संविधान 1935 के भारतीय शासन अधिनियम की तरह बाहरी शक्ति की कृति नहीं, वरन् भारतीय जनता द्वारा निर्मित अधिनियमित और अंगीकृत है।

5. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य होगा। इसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है:

सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न : इसका अर्थ है कि भारत आन्तरिक और बाह्य दोनों ही क्षेत्रों में किसी सत्ता के अधीन नहीं है। आन्तरिक क्षेत्र में भारत संघ सर्वोच्च सत्ता है तथा बाह्य क्षेत्र में भी भारत

पूर्ण स्वतन्त्र तथा सार्वभौम है। वह किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते या सन्धि को मानने को बाध्य नहीं है।

समाजवादी : इस शब्द को संविधान के 42वे संविधान संशोधन में जोड़ा गया है। जिसमें समाजवादी शब्द की परिभाषा न दी जाकर इसे भारतीय परिस्थितियों पर छोड़ दिया गया है किन्तु प्रजातान्त्रिक व्यवस्था होने के कारण भारतीय समाजवाद पश्चिमी समाजवाद से भिन्न होगा।

धर्मनिरपेक्ष : यह शब्द संविधान के 42वे संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया है। इसका अभिप्राय है कि राज्य की दृष्टि में सभी धर्म एक समान हैं। राज्य धार्मिक मामलों में तटस्थ है तथा उसका कोई हस्तक्षेप नहीं है। धर्म व्यक्ति का निजी क्षेत्र है।

लोकतन्त्रात्मक : लोकतन्त्रात्मक पद्धति वह होती हैं जिसमें शासन, जनता या उसके प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है। भारत में शासन जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संचालित किया जाता है। भारत में वयस्क मताधिकार पर निर्वाचित प्रजातंत्र की स्थापना की गई हैं।

गणराज्य : गणराज्य में राज्याध्यक्ष प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित होता है। भारत में राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

जैसा कि इस पाठ में पूर्व में भी बताया गया है कि इस सम्बन्ध में यह आलोचना की जाती है कि सम्प्रभुसम्पन्न गणराज्य होते हुए भी भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है जिसका प्रधान ब्रिटिश सम्राट होता है। अत: भारत की राष्ट्रमंडल की सदस्यता उसका सार्वभौमिकता के विरूद्ध है। इस आलोचना का उत्तर देते हुए पं. नेहरू ने 10 मई, 1949 को आकाशवाणी से अपने प्रसारण में कहा कि,'राष्ट्रमंडल किसी भी अर्थ में एक सर्वोपरि राज्य नहीं है। हम ब्रिटिश सम्राट को इस स्वतन्त्र संस्था का प्रतीकात्मक मुखिया मानने के लिए तैयार हो गये हैं, परन्तु राष्ट्रमंडल में सम्राट की उस पदस्थिति के साथ उसका कोई कार्य नहीं है। जहाँ तक भारत के संविधान का सम्बन्ध है, सम्राट का कोई स्थान नहीं है और हम उसकी तरफ कोई निष्ठा नहीं रखेंगे।' अत: भारत की सार्वभौमिकता पर राष्ट्रमंडल की सदस्यता से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

6. संसदीय शासन व्यवस्था

भारत में शासन संचालन के लिए संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया है। संसदीय व्यवस्था के अनुसार कार्यपालिका शक्ति यथार्थ रूप में मंत्रिमंडल में निहित है तथा मंत्रिमंडल के सदस्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी हैं। राष्ट्रपति को जो जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है, संवैधानिक अध्यक्ष का दर्जा दिया गया है। भारत में संसदीय या अध्यक्षीय व्यवस्था में से किसे अपनाया जाए, यह संविधान सभा में पर्याप्त विवाद का विषय रहा। राजनीतिक स्थायित्व तथा राष्ट्रीय एकता को दृष्टि में रखते हुए अध्यक्षीय शासन प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया जाता रहा, पर अन्तत: बहुमत संसदीय व्यवस्था के प्रति ही अभिव्यक्त हुआ। कारण स्पष्ट थे- ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारतीय नेताओं व जनता को इस शासन प्रणाली का अनुभव था, संविधान निर्माता एक शक्तिशाली, पर उत्तरदायी कार्यपालिका की स्थापना करना चाहते थे, अध्यक्षीय व्यवस्था में कार्यपालिका व व्यवस्थापिका एक-दूसरे पृथक् और स्वतन्त्र होते हैं, जिसमें संघर्ष की गुंजाइश रहती है। हमारे इस नवीन लोकतंत्र में इस तरह का जोखिम नहीं उठाया जा सकता था। राज्यों के लिए भी इसी प्रकार की शासन व्यवस्था अपनायी गई है। राज्यों में राज्यपाल को संवैधानिक प्रमुख का स्थान दिया गया है।

7. कठोर एवं लचीला संविधान

संविधान एक जीवित तथा गतिशील प्रलेख होता है। राष्ट्र की बदलती हुई परिस्थितियों के साथ उसे समायोजन करना चाहिए। इसके लिए संविधान में संशोधन विधि की आवश्यकता होती है।

भारतीय संविधान में संशोधन विधि अनुच्छेद 368 में दी गई है। संविधान में संशोधन व्यवस्था कुछ भागों के सम्बन्ध में कठोर है और कुछ भागों के सम्बन्ध में लचीली या नरम है। कठोर संविधान में संशोधन की विशिष्ट प्रक्रिया को अपनाया जाता है जबकि लचीले संविधान में विधि निर्माण की साधारण प्रक्रिया द्वारा संशोधन किया जा सकता है। कठोर संविधान का उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका का संविधान है जबकि लचीली संविधान का उदाहरण ब्रिटेन का संविधान है। भारतीय संविधान में संशोधन की तीन विधियाँ हैं:

(1) संविधान के कुछ भागों में संशोधन की विधि साधारण कानून बनाने वाली विधि के समान है - अर्थात उपस्थित सदस्यों के साधारण बहुमत द्वारा संविधान में संशोधन हो सकते है। इसके अन्तर्गत कुछ धाराएँ आती हैं जिनका सम्बन्ध राज्यों के निर्माण, वर्तमान राज्यों का पुनर्गठन, भारतीय नागरिकता के अर्थ में परिवर्तन, राज्यों में विधान परिषद् की स्थापना या समाप्ति, संसद के सदस्यों के वेतन, केन्द्र प्रशासित क्षेत्र बनाना, अनुसूचित जातियों व कबायली लोगों के शासन की व्यवस्था करना आदि है।

(2) कुछ विषयों में संशोधन के लिए संसद के सभी सदस्यों के साधारण बहुमत और उपस्थित सदस्यों के 2/3 बहुमत की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, मौलिक अधिकार तथा राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में संशोधन इसी विधि से हो सकता है।

(3) कुछ विषयों में संशोधन के लिए संसद के सभी सदस्यों के साधारण बहुमत और उपस्थित सदस्यों के 2/3 बहुमत के अतिरिक्त कम से कम आधे राज्यों की विधान सभाओं का अनुसमर्थन भी आवश्यक है। इस वर्ग में संविधान के निम्न उपबन्ध आते है-

(1) अनुच्छेद 54 (राष्ट्रपति के निर्वाचन)

(2) अनुच्छेद 55 (राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति)

(3) अनुच्छेद 73 (संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार)

(4) अनुच्छेद 162 (राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार)

(5) अनुच्छेद 24। (केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय)

(6) भाग 5 का अध्याय 4 (संघीय न्यायपालिका)

(7) भाग 6 का अध्याय 5 (राज्यों में उच्च न्यायालय)

(8) भाग 11 का अध्याय 1 (संघ तथा राज्यों में विधायी सम्बन्ध)

(9) भाग 9 (विधायी शक्तियों का विभाजन)

(10) अनुसूची 7 (जिसमें शक्तियों के विभाजन की सूचियाँ है)

(11) अनुच्छेद 368 (संविधान में संशोधन)

संविधान की इस तीसरी संशोधन विधि से संविधान में संशोधन करना जटिल हो गया है, परन्तु यह संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के समान कठोर नहीं है।

8. पंथ निरपेक्ष राज्य

संविधान के 42वे संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में''पंथ निरपेक्षता' शब्द को भी जोड़ा गया है। इसका अर्थ यह है कि भारत किसी पंथ को राज्य धर्म बनाने का इच्छुक नहीं है, न ही वह किसी पंथ विशेष की संरक्षण देना चाहता है सर्वधर्म समभाव के भारतीय दर्शन के अनुसार सभी पंथावलम्बियों को अपनी-अपनी भावना के अनुसार पूजा-अर्चना, इबादत करने की स्वतन्त्रता है। राज्य किसी पंथ का प्रचार-प्रसार नहीं करता, किसी भी राजकीय शिक्षण संस्थान में किसी पंथ विशेष की शिक्षा नहीं दी जाती। किसी भी नागरिक को उसकी इच्छा के विरूद्ध किसी पंथ विशेष का अनुसरण

करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। किसी भी पद पर निर्वाचित होने या सरकारी पद प्राप्त करने में पंथ विशेष में आस्था बाधक नहीं हो सकती।

9. एकात्मक लक्षणों सहित संघात्मक शासन

भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद,''इण्डिया अर्थात् भारत राज्यों का एक संघ होगा।' इस प्रकार भारत में संघात्मक शासन की स्थापना की गई है और इसमें संघात्मक शासन के सभी लक्षण विद्यमान हैं। संविधान ने शासन शक्ति एक स्थान पर केन्द्रित न कर केन्द्र और राज्य सरकारों में विभाजित कर दी है जिससे दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हैं। संविधान लिखित और बहुत अधिक सीमा तक कठोर है और इसे सर्वोच्च स्थिति प्रदान की गई है। उच्चतम न्यायालय को संविधान का रक्षक बनाया गया है जिसे संविधान की व्याख्या करने और केन्द्र एवं राज्यों के बीच उत्पन्न संवैधानिक झगडों के निर्णय का अधिकार दिया गया है।

इस प्रकार भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था स्थापित की गई है। किन्तु इसमें कुछ ऐसे तत्व भी है जिनसे इसका झुकाव एकात्मक शासन की ओर स्पष्ट होता है, जैसे इकहरी नागरिकता, इकहरी न्यायपालिका, अखिल भारतीय सेवाएँ, राष्ट्रपति द्वारा राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति, संसद द्वारा राज्यों के नाम, क्षेत्र तथा सीमाओं में परिवर्तन, आदि। अन्त में राष्ट्रपति के संकटकालीन अधिकारों के अन्तर्गत, संकटकाल की घोषणा द्वारा तो स्पष्ट रूप से संघात्मक व्यवस्था को एकात्मक व्यवस्था के रूप में बदला जा सकता है।

10. न्यायपालिका की सर्वोच्चता एवं संसदीय सर्वोच्चता का मिश्रण

भारतीय संविधान में ब्रिटेन की संसदीय प्रभुता तथा अमरीका की न्यायिक सर्वोच्चता इन दोनों के बीच का मार्ग अपनाकर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया हैं ब्रिटेन में संसद कानूनी दृष्टि से सर्वोच्च है। उसकी विधियों को न तो सम्राट वीटो कर सकता है और न न्यायालय उन्हें अवैध घोषित कर सकता है। जबकि दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमरीका में संविधान की व्याख्या एवं विधियों की वैधानिकता के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है जो विधियाँ अनुचित एवं संविधान के विरूद्ध होती है उन्हें न्यायालय द्वारा अवैध -घोषित किया जा सकता है। भारतीय संविधान में इन दोनों का मिश्रण है। भारतीय संविधान में ब्रिटिश संविधान की भाँति संसद की सर्वोच्चता को स्वीकार करने के साथ-साथ अमरीका के समान एवं संघात्मक व्यवस्था के आदर्श को अपनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का संरक्षण तथा व्याख्या करने का अधिकार भी दिया गया है तथा उन विधियों को अवैध घोषित करने का अधिकार भी दिया गया है जो संविधान के विरूद्ध हों। पर संसद को यह भी अधिकार है कि आवश्यकता पड़ने पर विशिष्ट बहुमत के आधार पर संविधान की धाराओं में संशोधन कर वह सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों को सीमित भी कर सकती हैं।

11. मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य

मौलिक अधिकारों का संविधान में पाया जाना प्रजातान्त्रिक सरकार की विशेषता है। भारतीय संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों का वर्णन संविधान के तीसरे भाग में अनुच्छेद 12 से 35 तक किया गया है। संविधान निर्माताओं ने सात मौलिक अधिकार गिनाये थे जो निम्न प्रकार थे - (1) समता का अधिकार, (2) स्वतन्त्रता का अधिकार, (3) शोषण के विरूद्ध अधिकार, (4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, (5) शिक्षा - निःशुल्क प्राथमिकता अधिकार, (6) संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, और (7) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

भारतीय संविधान में 44वें संविधान संशोधन के आधार पर मौलिक अधिकारों की संख्या 7 से घटाकर 6 कर दी गई है सम्पत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार न रहकर अब केवल कानूनी अधिकार

रह गया है। अब कानूनी प्रक्रिया के बिना व्यक्तियों को उनकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता। संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों को न्यायिक सुरक्षा प्राप्त है। इस संबंध में नागरिकों को यह अधिकार है कि अपने अधिकारों के हनन की दशा में वे न्यायालय की शरण ले सकते हैं। न्यायपालिका को यह अधिकार दिया गया कि वह इस प्रकार के हनन को रोकने के लिए आवश्यक निर्देश, आदेश तथा परमादेश जारी करें। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में एक बात यह भी है कि कुछ परिस्थितियों में मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध भी लगाए जा सकते है। ऐसा राष्ट्र की सुरक्षा, सामाजिक हित और व्यक्ति की उन्नति को ध्यान में रखकर किया गया है। आपातकाल में समस्त अधिकार स्थगित किए जा सकते हैं।

संविधान के 42वे संविधान संशोधन 1976 के द्वारा संविधान में एक भाग'चौथा अ' जोड़कर नागरिकों के 10 मूल कर्त्तव्यों को निश्चित किया गया है जिनका पालन करना व्यक्ति का संवैधानिक दायित्व है। इन कर्त्तव्यों का उद्देश्य समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता एवं राष्ट्रीय अखण्डता का संरक्षण करना है।

12. राज्य की नीति के निर्देशक तत्व

भारतीय संविधान के चौथे अध्याय में शासन संचालन के लिए मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है और इन्हें ही राज्य के नीति निर्देशक तत्व अर्थात् नीति निश्चित करने वाले तत्व कहा गया है। भारतीय संविधान में नीति निर्देशक तत्व का विचार आयरलैण्ड के संविधान से लिया गया है और इन तत्वों की प्रकृति के सम्बन्ध में संविधान के 37वें अनुच्छेद में कहा गया है कि,''नीति निर्देशक तत्वों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यता न दी जा सकेगी, किन्तु तो भी ये तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं।' इस प्रकार निर्देशक तत्वों को वैधानिक शक्ति तो प्राप्त नहीं है लेकिन इन्हें राजनीतिक शक्ति अवश्य प्राप्त है।

इन तत्वों में भारत राज्य को एक वास्तविक लोक-कल्याणकारी राज्य का स्वरूप देने के लिए आवश्यक सिद्धान्तों की घोषणा की गई है। श्री जी.एन. जोशी के शब्दों में, ये तत्व आधुनिक प्रजातन्त्र के लिए व्यापक राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।

13. सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का अन्त और वयस्क मताधिकार का प्रारम्भ

नवीन संविधान के अन्तर्गत साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का अन्त कर वयस्क मताधिकार के आधार पर जन प्रतिनिधित्व की पद्धति को अपनाया गया है। करोड़ों व्यक्तियों को एक साथ मताधिकार प्रदान करना संविधान सभा का निश्चित रूप से एक साहसिक कार्य था। प्रो. श्रीनिवासन के शब्दों में,'साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति की समाप्ति और वयस्व मताधिकार का प्रारम्भ नये संविधान की महान और क्रान्तिकारी विशेषता है।

14. एकल नागरिकता

भारतीय संविधान के द्वारा संघात्मक शासन की स्थापना की गई है और सामान्यता ऐसा समझा जाता रहा है कि संघ राज्य के नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त होनी चाहिए। प्रथम संघ की नागरिकता और द्वितीय, इकाई या राज्य की नागरिकता। लेकिन भारतीय संविधान के निर्माताओं का विचार था कि दोहरी नागरिकता भारत की एकता को बनाये रखने में बाधक सिद्ध हो सकती है। एकल नागरिकता के आदर्श को ही अपनाया गया है।

15. अल्पसंख्यकों व पिछड़े वर्गो को सुरक्षा

संविधान निर्माता इस बात से पूर्ण रूप से परिचित थे कि बहुसंख्यक जनता तथा सत्ताधारी दल के स्वाहित की ओर अधिक ध्यान दिए जाने की सम्भावना हो सकती हैं समाज के पिछड़े वर्ग, जो हाशिये पर छूट गये है, उन्हें धीरे-धीरे विकास की मुख्यधारा में शामिल करना आवश्यक है, साथ

ही अल्पसंख्यकों के हितों का रक्षण भी होना चाहिए। तभी समता पर आधारित सद्भावपूर्ण समाज की स्थापना संभव है। संविधान के भाग 15 के 330 से लेकर 342 तक के अनुच्छेदों में विशेष प्रावधान किये गये हैं। यथा - एंग्लो - इण्डियन समुदाय के लिए लोकसभा में प्रतिनिधित्व के लिए विशेष व्यवस्था, अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए लोकसभा व विधान सभा में स्थान आरक्षण, सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए आरक्षण आदि।

उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर अन्य पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए केन्द्रीय व राज्य विधायिकाओं तथा सरकारी नौकरियों के आरक्षण की माँग उठाई जा रही है। संविधान के 73वे तथा 74वे संविधान द्वारा ग्रामीण तथा शहरी स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किये गये है। संसद व राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत स्थानों के आरक्षण से सम्बन्धित विधेयक विचाराधीन है।

16. लोक कल्याणकारी राज्य

भारतीय संविधान निर्माताओं का लक्ष्य एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने संविधान की प्रस्तावना में संविधान के आदर्शो को स्पष्ट किया। नीति निर्देशक तत्वों के आधार पर आर्थिक न्याय, स्त्री-पुरूष को जीविकोपार्जन के समान अवसर, धन के केन्द्रीकरण को रोकने, बाल-शोषण रोकने, श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार करने की व्यवस्था की गई है। संविधान में पिछड़े वर्गो तथा अल्पसंख्यक जातियों की सुरक्षा, सहायता तथा संरक्षण की विशेष व्यवस्था है। संविधान का लक्ष्य समाजवादी ढांचे के समाज की स्थापना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए'नियोजन' पद्धति को अपनाया गया है।

17. एक राष्ट्रभाषा की व्यवस्था

राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए हमारे संविधान में हिन्दी को देवनागरी लिपि में भारत की राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है। इसके साथ ही संघीय सरकार के सभी कार्यालयों में संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद तक अंग्रेजी के प्रयोग की आज्ञा दे दी गई। संविधान में यह भी कहा गया है कि संसद के द्वारा 15 वर्ष बा भी आज्ञा जारी कर अंग्रेजी के प्रयोग की अनुमति दी जा सकती है। 1965 में संभाषा विधेयक' पास कर अनिश्चितकाल तक हिन्दी के साथ अंग्रेजी को जारी रखने की अनुमति दी गई है।

राष्ट्रभाषा की यह व्यवस्था क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति में बाधक नहीं है। संविधान में भारतीय भाषाओं को विभिन्न राज्यों में प्रादेशिक भाषा के रूप में प्रयोग के लिए स्वीकार कर लिया गया है। अब भारत में 18 भाषाओं को प्रादेशिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है।

18. विश्व शान्ति का समर्थक

'वसुधैव कुटम्बकम्' के सिद्धान्त को अपनाते हुए भारतीय संविधान में विश्व शान्ति का समर्थन किया गया है। नीति-निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद-51 के अनुसार राज्य का यह कर्त्तव्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा तथा राष्ट्रों के मध्य न्यायपूर्ण एवं सम्मानयुक्त सम्बन्धों की स्थापना करें। भारत सरकार ने स्वतन्त्रता के पश्चात् गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाया है।

19. न्यायिक पुनर्निरीक्षण

भारतीय संविधान में स्वतन्त्र न्यायपालिका के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति की व्यवस्था भी प्रदान की गई है। इसका अभिप्राय यह है कि सर्वोच्च न्यायालय संसद तथा विधानमंडलों द्वारा पास होने वाले प्रत्येक कानून का निरीक्षण कर सकता है। उसे कार्यपालिका द्वारा उठाए गए प्रत्येक पग के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का अधिकार प्राप्त है।

1.13 सारांश

भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन के दौरान ही भारतीय नेताओं में अपने राष्ट्र के लिए भारतवासियों द्वारा संविधान निर्माण की भावना पनपने लगी थी। वे अपना राजनीतिक भविष्य का निर्धारण स्वयं करना चाहते थे इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय निकट आने पर संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया गया जिसने सहमति तथा समायोजन की प्रक्रिया द्वारा भारतीय संविधान के प्रत्येक पहलू को रूप प्रदान किया। विश्व के कई प्रमुख संविधानों की विशिष्टताओं को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर स्वीकार किया गया तथा भारत की मौलिक परम्पराओं को भी ग्रहण किया। भारत का वर्तमान संविधान राष्ट्रीय एकता, लोकतंत्र, सामाजिक-आर्थिक न्याय, नागरिकों को अधिकार, धर्मनिरपेक्षता, अल्पसंख्यकों के अधिकारों का संरक्षण तथा सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को लेकर सृजित किया गया है।

1.14 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान की रचना किस प्रकार हुई? क्या भारतीय संविधान सभा को भारतीय जनता की पूर्ण प्रतिनिधि संस्था कहा जा सकता है?
2. संविधान सभा की कार्य प्रणाली की समीक्षा करते हुये स्पष्ट कीजिए कि संविधान सभा ने सहमति और समायोजन के सिद्धान्त को किस प्रकार अपनाया?
3. भारत की भावी राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में संविधान सभा की प्रमुख अवधारणों का वर्णन कीजिए।
4. भारतीय संविधान की प्रस्तावना का विश्लेषण कीजिए।
5. भारतीय संविधान की मूल विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

इकाई - 2

मूल अधिकार : लक्षण, वर्गीकरण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 अर्थ एवं महत्व
2.3 मूल अधिकारों के लक्षण व विशेषताएँ
2.4 मूल अधिकारों का वर्गीकरण
2.5 मूल अधिकारों का मूल्यांकन
2.6 मौलिक कर्त्तव्य
2.7 सारांश
2.8 अभ्यास प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप. -

- भारतीय संविधान में उल्लेखित मूल अधिकारों के अर्थ एवं महत्व को समझ सकेंगे।
- मूल अधिकारों के लक्षण एवं प्रकृति के विषय में जान सकेंगे।
- विभिन्न मूल अधिकारों के वर्गीकरण को समझ पाएंगे।
- मूल अधिकारों से सम्बन्धित आलोचनाओं का विश्लेषण कर पाएंगे।

2.1 प्रस्तावना

राज्य की पहचान अपने नागरिकों को प्रदान किये गए अधिकारों से होती है। सामान्यत: अधिकार व्यक्ति के वे दावे हैं जिन्हें राज्य मान्यता प्रदान करता है। मूल अधिकारों से तात्पर्य वे नागरिक और राजनीतिक स्वतन्त्रताएं हैं, जिन्हें राज्य संविधान में उल्लेखित करता है। इनकी विशेषता यह है कि ये राज्य के संविधान के अभिन्न अंग होते है, इन्हें संविधान की पवित्रता प्राप्त होती है और ये न्यायालयों द्वारा सुरक्षित होते हैं। ये ऐसी निषेधाज्ञाएँ हैं जो राज्य की पुलिस शक्ति को मर्यादित करती हैं। कोई इनका उल्लंघन नहीं कर सकता। कोई वादी इन्हें कार्यान्वित कराने के लिए न्यायालय की शरण ले सकता है। इनकी विशेषता यह है कि इन्हें साधारण प्रक्रिया द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। इनमें परिवर्तन करने के लिए विशेष प्रक्रिया का सहारा लेना पड़ता है। इन्हें सार्वजनिक हित में मर्यादित किया जा सकता है परन्तु मूल अधिकार निरपेक्ष नहीं होते। परन्तु मर्यादाओं के औचित्य-अनौचित्य का निर्धारण कार्यपालिका या व्यवस्थापिका नहीं करती बल्कि न्यायपालिका करती है। इस तरह मूल अधिकार लोकतंत्र के"आधार' और"आत्मा- समझे जाते हैं। साधारण परिस्थितियों में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

2.2 अर्थ एवं महत्व

सुविधाओं की प्राप्ति के लिए मनुष्य समाज के समक्ष कुछ माँगे रखता है। ये माँगे अनेक प्रकार की हो सकती हैं। कुछ पूर्णत: स्वार्थपूर्ण, कुछ सार्वजनिक कल्याण के हित में तथा कुछ तटस्थ। समाज उन माँगों को प्राय: स्वीकार कर लेता है जो सामाजिक होती हैं। समाज द्वारा स्वीकृत ऐसी माँगों को अधिकार कहते हैं।

मूल अधिकार, अधिकार का एक प्रमुख स्वरूप है। वे अधिकार जो मनुष्य के जीवन के लिए मौलिक तथा अपरिहार्य हैं मूल अधिकार कहलाते हैं। इन्हें मूल कई कारणों से कहा जाता है। प्रथम, व्यक्ति के पूर्ण नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए ये अधिकार अत्यन्त आवश्यक हैं। इनके अभाव में व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध हो जाएगा। इसीलिए लोकतन्त्रात्मक राज्य में प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के मौलिक अधिकार प्रदान किए जाते हैं। दूसरे, इन अधिकारों को मूल कहने का कारण यह है कि मौलिक विधि अर्थात् संविधान में स्थान दिया जाता है तथा सामान्यतया संवैधानिक संशोधन-प्रक्रिया के अलावा उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया जाता है। तीसरे, मूल अधिकार साधारणतया अनुल्लंघनीय हैं। विधायिका, कार्यपालिका या बहुमत दल द्वारा उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। अन्तिम, मूल अधिकार न्यायविष्ट होते हैं तथा सभी नागरिकों को एक समान प्राप्त होते हैं।

आधुनिक युग में लोकतंत्र की सबसे बड़ी समस्या नागरिक स्वतन्त्रता तथा सामाजिक नियन्त्रण का समुचित समन्वय है। व्यक्ति-स्वातन्त्रय तथा सामाजिक नियन्त्रण में समायोजन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिकांश आधुनिक लोकतांत्रिक देशों के संविधान के एक भाग में नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लेख कर दिया जाता है। ये अधिकार संविधान द्वारा सुनिश्चित होते हैं। कार्यपालिका एवं विधायिका के अतिक्रमण से उन्हें सुरक्षित किया जाता है तथा न्यायपालिका उनके संरक्षक के रूप में कार्य करती है। यद्यपि लोकतात्रिक शासन प्रणाली में स्वेच्छाचारी शासक के व्यक्तिगत शासन का खतरा नहीं रहा है, किन्तु विधायिका के द्वारा बहुसंख्यक बहुमत दल के हस्तक्षेप का खतरा काफी बढ़ गया है। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के अधिकारों का निर्वाचनों के परिणाम पर रहना हानिकारक है। अत: यह आवश्यक है कि संविधान में उनका उल्लेख कर विधायिका और कार्यपालिका की स्वेच्छाचारिता से उनकी रक्षा की जाए। आधुनिक संविधानों में, इसी उद्देश्य से मूल अधिकारों को लिपिबद्ध कर लिया जाता है। एक ओर व्यक्ति की स्वतन्त्रता की गारण्टी दी जाती है तथा दूसरी ओर शासन की शक्ति को सीमित तथा मर्यादित कर दिया जाता है। अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक स्वतन्त्र न्यायपालिका को उनका संरक्षक नियुक्त कर दिया जाता है।

आधुनिक युग में प्राय: समस्त लिखित संविधानों में मूल अधिकारों का उल्लेख देखने को मिलता है। सर्वप्रथम फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के समय राष्ट्रीय सभा ने मनुष्य के अधिकारों की घोषणा करते हुए संविधान में नागरिकों के कतिपय मूल अधिकारों का उल्लेख किया। तत्पश्चात् अमरीकी संविधान में सम्मिलित किया गया। इन संशोधनों को सामूहिक रूप से अधिकारों का पत्र कहते है। इसका प्रभाव अन्य देशों के संविधानों पर पड़ा। जर्मनी के वीमर संविधान, आयरलैण्ड, सोवियत रूस, स्विट्जरलैण्ड और जापान के संविधानों में मूल अधिकारों को लिपिबद्ध किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने'अटलांटिक चार्टर में नागरिकों की चार स्वतन्त्रताओं का उल्लेख किया है - (अ) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, (ब) अपने विश्वास के अनुसार ईश्वर की पूजा करने की स्वतन्त्रता, (स) अभाव से मुक्ति और (द) भय एवं आशंका से मुक्ति। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों का सर्वदेशीय घोषणा-पत्र निकाला है। आजकल मानव अधिकार विशेष चर्चा का विषय बन गया है।

2.3 मूल अधिकारों के लक्षण व विशेषताएँ

आधुनिक धारणा यह रही है कि नागरिकों के मूल अधिकारों को निश्चित रूप से संविधान में मान्यता मिलनी चाहिए और विधायिका शक्ति अथवा कार्यपालिका द्वारा आक्रमण से एक स्वतन्त्र न्यायपालिका द्वारा उनकी रक्षा होनी चाहिए। इस धारणा को साकार रूप देने के लिए संविधान के

निर्माताओं ने, संविधान में मूल अधिकारों की एक सूची संलग्न कर दी है। भारतीय संविधान में उल्लेखित मूल अधिकारों की कुछ विशेषताएँ निम्न प्रकार है :

(1) **अत्यधिक विस्तृत** : भारतीय संविधान में दिये गए मौलिक अधिकार विश्व के अन्य किसी भी संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों से अधिक विस्तृत हैं। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में कुल 23 अनुच्छेदों (अनु. 12 से 30 और 32 से 35) में मौलिक अधिकारों का वर्णन है। उनमें से कुछ अनुच्छेद वाक्य रचना की दृष्टि से बहुत बड़े हैं। उदाहरणार्थ केवल अनु 19 ही 450 शब्दों से अधिक में वर्णित है। संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के सविस्तार विवरण के साथ-साथ उन पर आरोपित प्रतिबंधों का वर्णन भी है।

(2) **सभी मूल अधिकार सभी को प्राप्य नहीं** : भारतीय मूल अधिकारों की विशेषता यह है कि जहाँ कुछ अधिकार सभी व्यक्तियों को अर्थात् नागरिकों और विदेशी दोनों को प्राप्त हैं वहाँ कुछ अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को प्राप्त हैं। उदाहरणत: अनुच्छेद 14 में उल्लेखित'कानून के समक्ष समानता' और'कानूनों का समान संरक्षण,' अनुच्छेद 22 में उल्लेखित प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता, अनुच्छेद 25 में उल्लेखित धार्मिक स्वतन्त्रता भारतीय नागरिकों और विदेशी दोनों को उपलब्ध हैं। दूसरी ओर, अनुच्छेद 19 में उल्लेखित नागरिक स्वतन्त्रताएं केवल भारतीय नागरिकों को उपलब्ध हैं विदेशी को नहीं।

(3) **लागू कराने के लिए संवैधानिक व्यवस्था** : संविधान-निर्माताओं ने मूल अधिकारों की व्यवस्था देने के साथ-साथ उनको लागू करने की व्यवस्था भी दी। इसके लिए संविधान में अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत संवैधानिक उपचारों का अधिकार'स्वयं' मूल अधिकार के रूप में दिया है। नागरिकों को अधिकार है कि वे अपने मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए अनु. 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय तथा अनु. 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों की शरण ले सकते हैं। इस सम्बन्ध में न्यायालयों को याचिका जारी करने का अधिकार है।

(4) **निरपेक्षता का अभाव** : मूल अधिकार निरपेक्ष, अनुल्लंघन या अहरणीय नहीं हैं। राज्य इन्हें राष्ट्रीय हित, सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था, स्वास्थ्य, नैतिकता आदि के नाम पर मर्यादित, प्रतिबन्धित या स्थगित कर सकता है। जहाँ अमरीकी संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों को प्रतिबन्धित करने की व्यवस्था नहीं हैं, वहाँ भारतीय संविधान इन्हीं उपबन्धों में अपवादों, शर्तों विशेष व्यवस्थाओं आदि द्वारा मूल अधिकारों पर मर्यादाओं की व्यवस्था करता है जिनमें उन्हें नागरिकों को प्रदान किया गया है। भारत में'मूल अधिकार' और'मर्यादाएँ' दोनों वाद योग्य हैं। आपातकाल में राष्ट्रपति प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता को छोड़कर उद्घोषणा द्वारा नागरिकों को न्यायालय के संरक्षण से वंचित कर सकता है।

(5) **सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर** : सिद्धान्त रूप में नागरिकों के मूल अधिकार अत्यधिक प्रभावपूर्ण प्रतीत होते है, परन्तु व्यवहार में उन पर लगाई गई मर्यादाओं या प्रतिबन्धों ने उन्हें अवास्तविक बना दिया है उदाहरणत: समानता के अधिकार में संरक्षित भेदभाव की व्यवस्था है। स्वतन्त्रता के अधिकार में पी.डी.ए भारत सुरक्षा अधिनियम और राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम विद्यमान है। निर्धनता, शिक्षा के अधिकार को अवास्तविक बना देती हैं आदि।

(6) **परिवर्तनीय** : मूल अधिकार स्थायी नहीं है, बल्कि इन्हें परिवर्तित या समाप्त किया जा सकता है। ये वाद योग्य हैं, परन्तु स्थायी नहीं। जब कभी न्यायालय के निर्णय कार्यपालिका को सामाजिक और आर्थिक नीतियों के विरूद्ध गए हैं, तब ही संविधान संशोधनों का सहारा लेकर उन्हें प्रभावहीन बना दिया गया है।

(7) **मूल अधिकारों के साथ-साथ मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख** : मूल अधिकारों के साथ-साथ मूल कर्त्तव्यों की भी व्यवस्था कर दी गई है। मूल अधिकारों में मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था नहीं थी। 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में 10 मूल कर्त्तव्यों को शामिल किया गया है।

(8) **राज्य की निरंकुशता पर नियन्त्रण** : भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाते हैं तथा राज्य की निरंकुशता या स्वेच्छाचारिता पर प्रभावशाली नियन्त्रण लगाते है। राज्य इनके विरूद्ध किसी तरह का कानून नहीं बना सकता है और इन अधिकारों का अतिक्रमण कर सकता है।

सामान्य उपबन्ध

अनुच्छेद -13 के दो पहलू है। एक के अनुसार, संविधान प्रारम्भ होने से पूर्व भारत राज्य क्षेत्र में प्रचलित वे समस्त विधियाँ, कानून उस सीमा तक शून्य तथा अवैध हैं जहाँ तक वे मौलिक अधिकारों के साथ मेल नहीं खाते। दूसरे के अनुसार, यह अनुच्छेद राज्य को भविष्य में ऐसी किसी विधि निर्माण को निषिद्ध कर देता है जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनती या न्यून करती हो। यदि इस प्रकार की विधि का निर्माण होगा तो वह विधि उस सीमा तक अमान्य होगी जहाँ तक प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों से उसका विरोध है। वह विधि उस सीमा तक न्यायालय द्वारा अवैध घोषित की जा सकती है। इस पहलू से मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में न्यायालयों को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार मिल जाता है।

अनुच्छेद 33 द्वारा संसद को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह सशस्त्र सेना में अनुशासन बनाये रखने के लिए तथा सैनिक कर्त्तव्यों को भली-भांति परिपालन करने की दृष्टि से भारत के सशस्त्र बल से सम्बन्धित मौलिक अधिकारों में आवश्यक संशोधन कर सकती है।

अनुच्छेद 34 किसी स्थान पर सेना विधि लागू होने पर मौलिक अधिकारों को सीमित करने की व्यवस्था करता है। यदि किसी क्षेत्र में सेना विधि लागू की जाती है तो उस क्षेत्र के मुख्य सेनापति को विशेष उपबन्धों के आधार परे यह अधिकार मिल सकता है कि वह किसी भी कार्य को जुर्म घोषित कर सके, जिसका महत्व उस स्थान के लिए पुनस्थापित विधि माना जाएगा।

अनुच्छेद 35 संसद को कुछ विषयों (जैसे - संवैधानिक उपचारों का अधिकार, सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए आवास सम्बन्धी आवश्यक योग्यता को निर्धारित करना, सशस्त्र सेना तथा सेना विधि, मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित अपराधों के सम्बन्ध में दंड निश्चित करने के लिए कानून बनाने की अनन्य शक्ति देता है।)

2.4 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

संविधान के तीसरे भाग, अनुच्छेद 12 से 35 में मूल अधिकारों की लम्बी तथा अर्थपूर्ण सूची का वर्णन किया गया है, जो विश्व के प्राय: सभी संविधानों के मूल अधिकार सम्बन्धी भाग से अधिक विस्तृत है। भारतीय जनता की धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विविधताएँ ही इस भाग की विशालता के कारण बताये जाते हैं। इन मूल अधिकारों को 7 भागों में विभाजित कर सकते है -

(1) समानता का अधिकार

प्रजातन्त्र शासन का आधारभूत सिद्धान्त समता हैं। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भारत में जनतन्त्रात्मक शासन की व्यवस्था की है। अत: समता के अधिकार को भारतीय राजनीतिक भवन का स्तम्भ बनाया गया है। समानता के अधिकार द्वारा सभी व्यक्तियों को वैधानिक, नागरिक और सामाजिक समानता प्रदान की गई है। धर्म, जाति, वर्ण, जन्म नस्ल, कुल, लिंग, जन्म स्थान इत्यादि

के आधार पर राज्य किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं कर सकता। संविधान की 14वीं से 18वीं धाराओं तक समता के अधिकारों का वर्णन है जिनके अन्तर्गत निम्नलिखित पाँच प्रकार के अधिकार आते है :-

(क) कानून के समक्ष समानता : अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि"भारत के राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।"

इस अनुच्छेद में कानून के समक्ष समानता ब्रिटिश सामान्य विधि की देन है, जिसका अर्थ है कि राज्य सभी व्यक्तियों के लिए एक सा कानून बनाए तथा उसे एक समान लागू करे। कानून के समान संरक्षण अमरीकी संविधान की देन है, जिसका अर्थ है कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से न्यायालय की शरण ले सकता है।

यह अधिकार सभी व्यक्तियों को प्राप्त है, चाहे वे नागरिक हों या विदेशी। लेकिन कानून के समक्ष समानता का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि राज्य किसी विशेष उद्देश्य से नागरिकों का उचित तथा तर्कसंगत वर्गीकरण नहीं कर सकता है। न्यायाधीश दीक्षित के अनुसार,''कानून के समक्ष समता का अर्थ व्यक्तियों की पूर्ण समानता नहीं है। बल्कि इसका यह अर्थ है कि जन्म, जाति या अन्य समान कारणों के आधार पर किसी व्यक्ति को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होगा। यदि कानून कर लगाने के सम्बन्ध में धनी और गरीब में सुविधाएँ प्रदान करने में स्त्रियों और पुरूषों में भेद करता है, तो इसे कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन नहीं माना जा सकता।

(ख) सामाजिक समानता : भारतीय संविधान की 15वीं धारा के द्वारा सामाजिक समता प्रदान की गई है और कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक केवल धर्म, मूल, वंश, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर विभेद नहीं करेगा। दुकान, होटल, सार्वजनिक भोजनालय, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान में किसी भी नागरिक का प्रवेश केवल धर्म, वंश, मूल जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर निषिद्ध नहीं हो सकता और न उपरोक्त आधार पर किसी नागरिक को कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड्कों तथा सार्वजनिक समागम के स्थानों का, जिन्हें राज्य से सहायता मिलती है या जो सार्वजनिक उपयोग के लिए हैं, उपयोग करने देने में भेदभाव किया जा सकता है। इस प्रकार धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान इत्यादि के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी भी क्षेत्र में पक्षपात नहीं किया जा सकता।

लेकिन राज्य की स्त्रियों तथा बच्चों के लिए विशेष व्यवस्थाएँ करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान के प्रथम संशोधन (सन् 1951) द्वारा राज्य को पिछड़े वर्ग के लोगों, अनुसूचित जातियों तथा आदिवासियों के विकास के लिए विशेष सामाजिक तथा शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान कर सकने का अधिकार दिया गया है।

(ग) आर्थिक समानता: संविधान के निर्माता संविधान द्वारा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जिसमें सभी नागरिकों को सरकारी पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में समान अवसर उपलब्ध हों, चाहे वे भारत के किसी भाग के निवासी क्यों न हों तथा किसी भी धर्म, जाति, वंश, लिंग आदि से सम्बन्धित क्यों न हों। संविधान के अनुच्छेद 16 में कहा गया कि (1)''राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।' (2)''केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव जन्म स्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिए राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में न अपात्रता होगी और न भेदभाव किया जाएगा।' संविधान में इस धारा के संबंध में तीन अपवादों की व्यवस्था भी की गई है। (क) राज्य के अधीन नौकरियों के सम्बन्ध में संसद निवास स्थान सम्बन्धी शर्तें लगा सकती है। (ख) राज्य की दृष्टि में जिन जातियों

का लोक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो, उनके लिए पदों व नौकरियो का आरक्षण किया जा सकता है। (ग) किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के अन्तर्गत किसी पद का अधिकारी उसी सम्प्रदाय व धर्म का सदस्य हो सकता हिय।

(घ) अस्पृश्यता का अन्त . अस्पृश्यता की प्रथा सदियों से भारतीय समाज पर एक कलंक है, जो जाति व्यवस्था का विकृत रूप है। संविधान की 17वीं धारा के अनुसार अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है और स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की गई है कि किसी भी रूप में अस्पृश्यता का आचरण निषिद्ध तथा दण्डनीय है। इस प्रकार छुआछूत से उपजी किसी प्रकार की भी अयोग्यता को लागू करना अपराध है। संविधान के इसी उपबन्ध के आधार पर भारतीय संसद ने सन् 1955 में अस्पृश्यता-अपराध सम्बन्धी अधिनियम पारित किया, जो जून 1955 से लागू है। इसके अनुसार अस्पृश्यता के आचरण करने वाले को 6 महीने तक के कारावास तथा 500 रूपये तक के जुर्माने या दोनों प्रकार की सजा दी जा सकती है।

(ड़) उपाधियों की समाप्ति : ब्रिटिश शासनकाल में सम्पत्ति के आधार पर उपाधियाँ (जैसे - राय साहिब, राय बहादुर, सरदार साहिब, सर, खॉ साहिब प्रदान की जाती थीं। भारत के नए संविधान में उनको पूर्णतया समाप्त करने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 18 में कहा गया कि - (1) सेना अथवा विद्या संबन्धी उपाधियों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की उपाधियॉ राज्य द्वारा प्रदान नहीं की जाएगी। (2) भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा। (3) कोई व्यक्ति जो भारत का नागरिक नहीं है, राज्य के अधीन किसी पद पर रहते हुए, किसी विदेशी राज्य से राष्ट्रपति की सहमति के बिना कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा। (4) राज्य के अधीन लाभ के पद पर होते हुए कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा। (5) राज्य के अधीन लाभ के पद पर रहते हुए कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से किसी रूप में कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।

(2) स्वतन्त्रता का अधिकार

वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अधिकार ऐसे तात्विक अधिकार हैं, जिनके बिना नागरिकों को जीवन में सुख और आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती और न उनके व्यक्तित्व का विकास ही हो सकता है। इस उद्देश्य को मूर्त रूप देने हेतु संविधान के विधायकों ने 19 से 22 तक की धाराओं तथा नागरिकों को अनेक प्रकार की स्वतन्त्रताएँ प्रदान की हैं। इनमें धारा 19 सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, जो संविधान में समाविष्ट मूल अधिकारों से सम्बद्ध अध्याय की कुंजी है। इस धारा द्वारा नागरिकों को निम्नलिखित छः स्वतन्त्रताएं प्रदान की गई है. -

(क) वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता: भारतीय संविधान में सभी नागरिकों को विचार करने, भाषण देने और अपने व अन्य व्यक्तियों के विचारों के प्रचार की स्वतन्त्रता प्राप्त है। प्रेस की स्वतन्त्रता भी इसमें शामिल हैं नागरिकों के इस अधिकार पर सात प्रतिबन्ध है (1) राज्य की सुरक्षा, (2) विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, (3) सार्वजनिक व्यवस्था, (4) सदाचार व नैतिकता, (5) न्यायालय का अपमान, (6) मान-हानि, (7) हिंसा को प्रोत्साहन। मूल संविधान में इन प्रतिबन्धों की संख्या कम थी। मूल संविधान में अवमानना लेख, मानहानि, न्यायालय अवमानना, सदाचार व नैतिकता का अतिक्रमण, राज्य की सुरक्षा एवं विद्रोह सम्बन्धी मामलों तक ही प्रतिबन्ध थे। संविधान के प्रथम संशोधन 1951 द्वारा यह व्यवस्था की गई कि यदि किसी भाषण या प्रकाशन से (1) राज्य की सुरक्षा को हानि पहुंचाने का डर हो, (2) विदेशियों से भारत की मित्रता क्षीण होने की संभावना हो (3) न्यायालयों की मान्यता

में कमी होने का भय हो (4) जनता के उत्तेजित होकर अपराध करने की संभावना हो, तो संसद इस अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। 16वें संविधान संशोधन, 1963 के अनुसार भारत के किसी भाग को उससे पृथक् करने सम्बन्धी प्रचार पर राज्य रोक लगा सकता है।

(ख) शान्तिपूर्ण और अस्त्र-शस्त्र रहित सम्मेलन की स्वतन्त्रता : नागरिकों को शान्तिपूर्वक सम्मिलित होने, जुलूस निकालने या प्रदर्शन करने की स्वतन्त्रता है। सार्वजनिक सुरक्षा को दृष्टि में रखते हुए इस स्वतन्त्रता को सीमित किया जा सकता है।

(ग) संघ बनाने की स्वतन्त्रता : नागरिकों को समुदाय व संघ बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। पर षड्यंत्रकारी या विध्वंसात्मक कार्यवाही से सम्बन्धित समुदाय या संघ बनाने की मनाही है।

(घ) भारत राज्य क्षेत्र में अबाध भ्रमण की स्वतन्त्रता :संविधान में प्रत्येक नागरिक को भारत के राज्य क्षेत्र में अबाध भ्रमण की स्वतन्त्रता है किन्तु राज्य सार्वजनिक हित एवं अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा के लिए इसे सीमित कर सकता है।

(ड़) भारतीय राज्य क्षेत्र में निवास करने तथा बसने की स्वतन्त्रता : भारतीय नागरिकों को राज्य के किसी भी भाग में निवास एवं बसने की स्वतन्त्रता है, परन्तु राज्य सार्वजनिक एवं अनुसूचित जातियों के हित में इसे सीमित कर सकता है।

(च) वृत्ति, आजीविका, व्यापार या कारोबार : करने की स्वतन्त्रता: संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को मनोनुकूल व्यवसाय या व्यापार या आजीविका का साधन चुनने का अधिकार है। राज्य किसी व्यवसाय विशेष के लिए आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित कर सकता है। किसी कारोबार या उद्योग को आशिक रूप से या सम्पूर्ण रूप से अपने हाथ में ले सकता है।

संविधान के अनुच्छेद 20, 21 तथा 22 नागरिकों के संरक्षण से सम्बन्धित है :

अनुच्छेद 20 व्यक्तियों को निजी स्वतन्त्रता प्रदान करता है तथा राज्य को कार्योतर विधि के निर्माण से मनाही करता है। यह अनुच्छेद इस बात की गारन्टी देता है कि प्रथम व्यक्ति को तभी दण्डित किया जा सकता है। यदि वह अपराध करते समय किसी विद्यमान कानून का उल्लंघन करता है। यदि व्यक्ति के किसी कार्य से किसी विद्यमान कानून की उल्लंघना नहीं होती तो उसे दण्डित नहीं किया जा सकता। दूसरे, दंड की मात्रा कानून में वर्णित दंड से अधिक नहीं हो सकती। तीसरे, एक अपराध के लिए अभियुक्त को एक बार ही दंड दिया जा सकता है। चौथे, किसी अभियुक्त को अपने विरूद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता अर्थात् कथित अभियुक्त से यह नहीं कहा जा सकता कि वह सिद्ध करे कि वह अपराधी नहीं है। यह अभियोक्ता का कर्त्तव्य है कि वह सिद्ध करे कि कथित अभियुक्त ने क्या अपराध किया है।

संविधान के अनुच्छेद 21 में कहा गया है,''किसी व्यक्ति को अपने जीवन तथा दैहिक (शारीरिक) स्वतन्त्रता से कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार भी वंचित नहीं किया जाएगा।' इस प्रकार अनुच्छेद में प्रत्येक व्यक्ति को सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्राण तथा शारीरिक स्वतन्त्रता का संरक्षण करता है। 44वें संवैधानिक संशोधन, 1979 द्वारा जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को और अधिक संरक्षण दिया गया है। इस संशोधन द्वारा अब आपातकाल में जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार को समाप्त नहीं किया जा सकता है।

कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण (अनुच्छेद 22)

इस अनुच्छेद द्वारा नागरिकों को मनमानी गिरफ्तारी से सुरक्षा प्रदान की गई है। इन प्रावधान के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है तो -

- बन्दी बनाये जाने के कारणों को यथाशीघ्र बताया जाए, उच्चतम न्यायालय के अनुसार गिरफ्तारी के पांच दिन के भीतर व्यक्ति को गिरफ्तारी का कारण बता दिया जाना चाहिए।
- बन्दी किए गये व्यक्ति को वकील से परामर्श लेने का अधिकार है, सफाई देने तथा याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार है।
- बन्दी बनाये जाने के 24 घण्टे के अन्दर उसे निकटतम न्यायाधीश के सामने उपस्थित किया जाना चाहिए इसमें बन्दी गृह से न्यायालय तक जाने का समय शामिल नहीं है।

ये सुविधाएँ उन अपराधियों पर लागू नहीं होती जो शत्रु से सम्बन्धित हो या निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत बन्दी बनाये गये हों।

निवारक निरोध अधिनियम, 1950

संविधान के अनुच्छेद 22(4) में निवारक निरोध अधिनियम की चर्चा की गई है। यद्यपि संविधान में निवारक निरोध की परिभाषा नहीं की गई है। इसका अभिप्राय किसी व्यक्ति को किसी अभियोग के लिए दण्ड देना नहीं बल्कि उसे अपराध करने से रोकना है। संक्षेप में यह एक सचेत करने का उपकरण है। यह शासन के हाथ में एक ऐसा यन्त्र है जिससे अपराध की आशंका मात्र पर ही व्यक्ति को अदालती जाँच के बिना बन्दी अथवा नजरबंद रखा जा सकता है। संविधान के अनुसार, इस प्रकार की निवारक निरोध की व्यवस्था सामान्य एवं संकटकाल दोनों में ही की जा सकती है।

अनुच्छेद 22 के भाग 4, 5 और 6 के अन्तर्गत संसद ने 1950 में निवारक नजरबन्दी अधिनियम पारित किया। समय-समय पर इसकी अवधि संसद द्वारा बढायी जाती रही। यह अधिनियम 31 दिसम्बर, 1969 तक चला। इस अवधि में विरोधी दलों ने अनेक बार यह आरोप लगाया कि शासन इस अधिनियम का उपयोग अपने राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर रहा है। 1969 में संसद में अपेक्षित बहुमत न होने के कारण निवारक नजरबन्दी की अवधि आगे नहीं बढायी जा सकी।

आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम

1971 में'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम' (मीसा) को अपनाया गया।'मीसा' की व्यवस्था निवारक निरोध अधिनियम से भी कठोर थी। निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत नजरबन्दी की अधिकतम अवधि एक वर्ष थी। मीसा के अन्तर्गत यह व्यवस्थ्या की गई कि एक व्यक्ति को परामर्शदाता मंडल से सलाह प्राप्त किए बिना संकटकाल की अवधि में अधिक से अधिक 21 माह तक नजरबन्द रखा जा सकता था।'मीसा के अन्तर्गत ऐसे किसी भी व्यक्ति को नजरबन्द किया जा सकता था जो कि भारत की प्रतिरक्षा, सुरक्षा, समाज के लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाओं की सुरक्षा के विरूद्ध कार्यवाही करता है।'मीसा' की इस व्यवस्था को 1974,1975 और 1976 में राष्ट्रपति द्वारा विविध आदेश जारी कर और अधिक कठोरता प्रदान कर दी गई।

निवारक निरोध के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति

निवारक निरोध कानून की व्यवस्था संविधान सभा में अत्यधिक विवाद का कारण बनी थी और संविधान लागू किए जाने के बाद भी अनेक पक्षों द्वारा इसकी आलोचना की गई। 1975 में घोषित आपातकाल के अन्तर्गत तो निवारक निरोध और'मीसा' की व्यवस्था का बहुत अधिक दुरूपयोग किया था। अत: निवारक निरोध और'मीसा' के विरूद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न होना नितान्त स्वाभाविक था। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा ऐसे कुछ प्रबन्ध किए गए, जिससे शासक वर्ग द्वारा निवारक निरोध कानून की व्यवस्थाओं का दुरूपयोग न किया जा सके। 1971 में जारी किया गया।'आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम (मीसा) 44वे संवैधानिक संशोधन के प्रतिकूल था और इस कारण अप्रैल 1979 में यह स्वत: ही रद्द हो गया।

भारत में केन्द्र और राज्यों दोनों को ही निवारक निरोध कानून बनाने और लागू करने का अधिकार प्राप्त है। अत: केन्द्रीय स्तर पर'मीसा' की व्यवस्था समाप्त हो जाने पर भी अधिकांश राज्यों में निवारक निरोध कानून की व्यवस्थाएँ लागू रही।

राष्ट्रीय सुरक्षा कानून

जनवरी 1980 में सत्ता परिवर्तन के बाद केन्द्र में स्थापित इन्दिरा कांग्रेस सरकार द्वारा 22 सितम्बर, 1980 को राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश जारी किया गया। घोषणा की गई कि यह अध्यादेश जम्मु-कश्मीर के अतिरिक्त भारतीय संघ के अन्य सभी राज्यों पर लागू होगा। फरवरी 1981 में इस अध्यादेश को कानून का रूप प्रदान कर दिया गया। राष्ट्रीय सुरक्षा कानून निवारक निरोध' की व्यवस्था की है।

इसके अतिरिक्त 22 जून, 1984 को राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (दूसरा संशोधन) अध्यादेश, 1984'जारी किया गया। अध्यादेश में कहा गया कि वह जम्मु-कश्मीर राज्य के अतिरिक्त सम्पूण भारत में लागू होगा और इसके आधार पर राष्ट्रीय सुरक्षा कानून' की व्यवस्थाओं में निम्न परिवर्तन करते हुए इसे और कठोर बना दिया गया।

1. यह संशोधन किया गया कि किसी व्यक्ति को नजरबन्दी के आदेश की अवधि खत्म होने या आदेश रद्द हो जाने के बाद नया जारी करके उसे नजरबन्द किया जा सकेगा।
2. नजरबन्दी के प्रत्येक कारण पर अदालतों को अलग-अलग विचार करके फैसला करना, जबकि इससे पहले तक स्थिति यह थी कि नजरबन्दी के अनेक कारणों में से किसी एक को भी अदालत अवैध पाती थी, तो नजरबन्दी को गैर-कानूनी घोषित करके नजरबन्द व्यक्ति को रिहा करने का निर्णय सुना देती थी।
3. एक व्यक्ति के विरूद्ध दूसरी बार नजरबन्दी आदेश जारी करने पर सम्पूर्ण नजरबन्दी की कुल अवधि पंजाब और चण्डीगढ के अशान्त प्रदेशों में दो वर्ष और शेष देश में एक वर्ष से ज्यादा नहीं होगा।

   आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीय सुरक्षा कानून' श्रेणी का एक कानून'विदेशी मुद्रा संरक्षण व सरकारी निरीक्षण अधिनियम, 1974,19 दिसम्बर, 1974 से लागू है। 13 जुलाई 1984 को एक अध्यादेश के आधार पर इस अधिनियम को संशोधित कर तस्करों के लिए नजरबन्दी की सीमा एक वर्ष से बढाकर दो वर्ष कर दी गई है।

टाडा : टाडा अर्थात्'आतंकवाद एवं विध्वंसक गतिविधियाँ (निरोधक) अधिनियम' भारत के पंजाब, कश्मीर और अन्य राज्यों में बढ रही आतंकवादी गतिविधियों पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से 1985 में लागू किया गया। 30 धाराओं वाले इस कानून में प्रावधान है कि पुलिस अधीक्षक स्तर के पुलिस अधिकारी के समक्ष दिये गये बयानों एवं संस्वीकृतियो को अपराधी के विरूद्ध साक्ष्य माना जाएगा। गवाहों के नाम एवं पते गुप्त रखे जाने का प्रावधान है जिससे कोई भी व्यक्ति निर्भय होकर बयान दे सकें।

पोटा : टाडा की समाप्ति के पश्चात् तथा बढ़ती आतंकवादी गतिविधियों की पृष्ठभूमि में कठोर व प्रभावी निधि की आवश्यकता बराबर अनुभव की जा रही थी। अत: विधि आयोग द्वारा आतंकवाद निरोधक विधेयक तैयार किया गया। केन्द्र सरकार द्वारा आतंकवाद निरोधक अध्यादेश 2001 (पोटा-1) जारी किया गया, जिसका भारी विरोध हुआ। अत: इसे संसद में प्रस्तुत न किया जा सका। 25.10.2001 को जारी अध्यादेश अन्तत: 30.12.2001 को समाप्त हो गया। केन्द्र सरकार द्वारा पुन: अध्यादेश द्वारा पोटा जारी करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। अत: 31 दिसम्बर, 2001 से पोटा-2 को लागू किया गया। 26 मार्च, 2002 को संसद का संयुक्त अधिवेशन प्रस्तुत किया गया विधेयक

के पक्ष में 425 तथा विपक्ष में 296 मत पड़े। इस प्रकार पोटो अब पोटा अर्थात् आतंकवाद निरोधक कानून के नाम से जाना जाता है।

पोटा की परिधि में भारत का समस्त भू-भाग आता है। जम्मु-कश्मीर भी इसकी परिधि में है। विदेशों में बस रहे भारतीय नागरिक भी पोटा के अन्तर्गत आ जाते हैं। पोटा के जारी होने के साथ ही इसकी भारी आलोचना हुई। पत्रकार, बुद्धिजीवी, सचेत नागरिकों ने इसे निरंकुश व अत्याचारी कहकर अपना विरोध प्रकट किया। पर 11 सितम्बर, 2001 का अमेरिका में हुए आतंकवादी हमले व पुन: भारत के संसद भवन व जम्मु कश्मीर की विधानसभा पर हुए आतंकवादी हमले को देखते हुए एक कठोर व प्रभावी विधि का होना आवश्यक है। राष्ट्रीय एकता की रक्षा के लिए ऐसे विकल्पों को स्वीकार करना ही पड़ता है।

3. शोषण के विरूद्ध अधिकार

अनुच्छेद 23 मानव के दुर्व्यापार और बेगार (बलातश्रम) की मनाही करता है। किसी रूप में इसका प्रचलन दण्डनीय अपराध है। देवदासियों, हरिजनों, खेतिहर श्रमिकों और बच्चों के शोषण की प्रथाओं को समाप्त कर दिया गया है। कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अनैच्छिक कार्यों को करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। अनुच्छेद 24 बच्चों की रक्षा करता है और 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को कारखानों, खानों और अन्य संकटमय रोजगारों में काम करने की मनाही करता है।

4. धर्म-स्वातंत्र्य का अधिकार

संविधान के अनुसार भारत में एक धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है। भारत जैसे विशाल देश में विभिन्न धर्म के लोग निवास करते हैं। संविधान के निर्माता सभी धर्म के लोगों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता तथा धार्मिक आचार-विचार एवं प्रचार के सम्बन्ध में समान अधिकार के पक्षपाती थे और चाहते थे कि धार्मिक बातों में राज्य तटस्थ रहे। इसी कारण संविधान में धार्मिक मामलों में राज्य को पूर्णत: निरपेक्ष घोषित किया गया है और नागरिकों को पूर्णत: धार्मिक स्वतन्त्रता दी गई है। 25,26,27 तथा 28 धाराओं में धर्म स्वतंत्र के अधिकार का उल्लेख है। धारा 25 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सार्वजनिक सुव्यवस्था, नैतिकता तथा स्वस्थ्य के अधीन रहते हुए अन्तःकरण की स्वतन्त्रता, किसी भी धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने या प्रचार करने का समान अधिकार है लेकिन राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह धार्मिक आचरण से सम्बद्ध आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक तथा लौकिक क्रियाओं को कानून द्वारा नियमित या प्रतिबन्धित कर सकता है। उसे सामाजिक कल्याण तथा सुधार के लिए सार्वजनिक हिन्दू संस्थाओं को कानून के द्वारा सभी वर्गों तथा विभागों के हिन्दुओं के लिए खोल सकने का भी अधिकार है।

धारा 26 के अनुसार, सभी धार्मिक सम्प्रदायों को सार्वजनिक सुव्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के अधीन रहते हुए धार्मिक संस्था स्थापित करने और धर्म-सम्बन्धी बातों के प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता है। धारा 27 में यह घोषणा की गई है कि राज्य किसी धर्म को अपनी ओर से प्रोत्साहित नहीं कर सकता और न धार्मिक प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति को कर देने के लिए बाध्य ही कर सकता है। धारा 28 के अनुसार, राज्य द्वारा संचालित शिक्षणालय में, जिनका पूरा खर्च राज्यनिधि से मिलता है, धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती और उन शिक्षणालयों में, जिनका प्रबन्ध धार्मिक संस्थाएँ करती हैं, किसी व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य नही किया जा सकता है। लेकिन वैयक्तिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने में कोई बाधा नहीं, क्योंकि इस उपबन्ध में उसका उल्लेख नहीं है।

धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार सन्कधी उपरोक्त चार धाराओं को'धार्मिक स्वतन्त्रता' का अधिकार-पत्र कहा गया है। इन अधिकारों द्वारा भारतीय जनता की धार्मिक भावनाओं का आदर किया गया है और उसे धार्मिक सहिष्णुता का सन्देश दिया गया है।

(5) सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

संविधान ने भारतीय नागरिकों, विशेषत: अल्पसंख्यक वर्गों के लिए सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों की व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 29 के अनुसार,''नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को अपना भाषा, लिपि या संस्कृति सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार है।'' साथ ही यह भी कहा गया है कि, राज्य या राज्य सहायता से संचालित विद्यालयों मे मूलवंश, जाति, धर्म और भाषा या इनमें से किसी एक कारण प्रवेश के संबंध में भेदभाव नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30(1) के अनुसार धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाएँ खोलने और उनका प्रशासन करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 30(2) के अनुसार, शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरूद्ध इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है।

(6) सांवैधानिक उपचारों का अधिकार

नागरिकों के मूल अधिकारों को वास्तविक बनाने के लिए संविधान अनुच्छेद 32 से अनुच्छेद 35 में सांविधानिक उपचारों की व्यवस्था करता है। जब कभी कार्यपालिका आदेश या कार्य या व्यवस्थापिका के कानून नागरिक अधिकारों पर आक्रमण करते हैं या उनकी उल्लंघना करते हैं तो असन्तुष्ट पक्ष न्यायालय की शरण ले सकता है। अनुच्छेद 32(2) उच्चतम न्यायालय को यह उत्तरदायित्व सौंपता है कि वह नागरिकों के मूल अधिकारों को लागू करने के लिए उनके संरक्षण और गारन्टीकर्त्ता के रूप में कार्य भरे तथा आवश्यकता पड़ने पर बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा, उत्प्रेषण आदि लेखों (रिट) को जारी करे। इन लेखों का एकमात्र उद्देश्य नागरिकों के मूल अधिकारों को लागू करना, असन्तुष्ट पक्ष को शीघ्र न्याय दिलाना और उसे अन्तरिम सहायता प्रदान करना है। संविधान नागरिक अधिकारों को''पवित्र इच्छाएँ'' मात्र नहीं बनाता, बल्कि उन्हें कार्यान्वित करने की ठोस व्यवस्था भी करता है।

व्यक्ति के बचाव और उसकी सुरक्षा की दृष्टि से सांविधानिक उपचारों का अधिकार सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अभाव में संविधान''शून्य'' हो जाता और अधिकार निरर्थक बन जाते। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इसे''संविधान की आत्मा और हृदय'' कहा है। यह अधिकारों के शीर्ष पर है। यह उस परकोटे के समान है जो नागरिकों के मूल अधिकारों की कार्यपालिका निरंकुशता और व्यवस्थापिका के अत्याचारों से रक्षा करता है।

सांविधानिक उपचारों के अधिकार को राष्ट्रपति आपातकाल में स्थगित कर सकता है, परन्तु प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार को निलम्बित नहीं कर सकता।

(7) शिक्षा का अधिकार

अनुच्छेद 21 ए के अनुसार छ: से चौदह वर्ष तक के बच्चों को राज्य द्वारा निर्धारित मुफ्त एवं आवश्यक शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी।

मूल अधिकारों का स्थगन

मूल अधिकारों को साधारण परिस्थितियों में तो स्थगित नहीं किया जा सकता, परन्तु सारे देश या किसी भाग में संकट उत्पन्न होने पर राष्ट्रपति आपातकालीन स्थिति की घोषणा करके उन्हें स्थगित कर सकता है। ऐसी स्थिति में न्यायालय इन अधिकारों को लागू नहीं कर सकते और न लागू

करने के लिए आदेश दे सकते है। आपातकाल समाप्त होते ही नागरिकों को ये अधिकार पुन: मिल जाते है।

2.5 मूल अधिकारों का मूल्यांकन

भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों की कुछ आलोचकों ने निम्न आधारों पर कड़ी आलोचनाएँ की

है:

(1) आर्थिक अधिकारों का अभाव कुछ आलोचकों ने संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों की आलोचना इस आधार पर की है कि इनमें केवल राजनीतिक अधिकार ही दिए है। अनेक आर्थिक अधिकार जैसे काम का अधिकार, विश्राम तथा अवकाश का अधिकार तथा शिक्षा का अधिकार आदि नहीं दिये गए हैं।

(2) मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध: मौलिक अधिकारों पर इतने अधिक प्रतिबन्ध लगाये गये हैं कि यह कहा जाने लगा है कि मौलिक अधिकार के रूप में एक हाथ से जो कुछ दिया गया है, वह दूसरे हाथ से ले लिया गया है। जसपत राय कपूर ने संविधान सभा में व्यंग्यपूर्वक कहा था कि मौलिक अधिकारों के अध्याय का नाम'मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध' अथवा'मौलिक अधिकार और उन पर प्रतिबन्ध' रखना चाहिए।

(3) अस्पष्टता: एक आलोचना इनकी भाषा की जटिलता तथा अस्पष्टता है। इसीलिए एक सदस्य ने संविधान सभा में संविधान को वकीलों का स्वर्ग कहा था।

(4) निलम्बन: संकटकाल में मौलिक अधिकारों का कारण निलम्बन तथा सामान्य परिस्थितियों में निवारक निरोध की व्यवस्था भी आलोचना का कारण रही है। हरिविष्णु कामथ के शब्दों में,''हम समग्रवादी पुलिस राज्य की स्थापना कर रहे हैं।' लेकिन राष्ट्र की सुरक्षा की दृष्टि से अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान सभा में कहा था कि,''यह व्यवस्था अत्यन्त ही आवश्यक है। यही व्यवस्था संविधान का जीवन होगी। इससे प्रजातंत्र की हत्या नहीं वरन् रक्षा होगी।'

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद टी.के. टोप का कथन सत्य प्रतीत होता है कि,''निःसन्देह मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित अध्याय में कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं लेकिन इस पर भी यह अध्याय सामूहिक रूप से सन्तोषजनक है।

2.6 मौलिक कर्त्तव्य

42वे संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान के भाग (4) के पश्चात् नया भाग(4-क) जोड़ा गया है जिसमें मौलिक कर्त्तव्यों का समावेश किया गया है। नये अनुच्छेद 51 के अनुसार, 10 मौलिक कर्त्तव्यों का पालन प्रत्येक नागरिक को करना होगा। 10 मौलिक कर्त्तव्य निम्नलिखित है

1. प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गीत का आदर करे।
2. राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष के उच्च आदर्शों को धारण करे और उनका पालन करे।
3. भारत की सम्प्रभु, एकता और अखण्डता की रक्षा करें।
4. राष्ट्र की रक्षा करें।
5. भारत के सभी नागरिकों में समान बन्धुत्व की भावना का विकास करें।

6. राष्ट्र की समन्वित संस्कृति की गौरवपूर्ण परम्परा को बनाए रखें।
7. प्राकृतिक वातावरण का संरक्षण तथा संवर्धन करे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और जिज्ञासा का विकास करें।
9. सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा करें।
10. सभी दिशाओं में वैयक्तिक और सामूहिक उत्कर्ष का लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास करें।

2.7 सारांश

संविधान के अन्तरंग के रूप में मूल अधिकारों का बहुत अधिक महत्व है। यह प्रजातंत्र के आधार स्तम्भ है। यह प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करते है तथा उन आधारभूत स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था भी करते हैं जिनके बिना उचित रूप में नागरिक जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता। भारतीय संविधान में मूल अधिकारों को भारतीय आवश्यकताओं के अनुसार ढाला गया है। भारत में मूल अधिकारों की संख्या सात है। (1) समानता का अधिकार (2) स्वतन्त्रता का अधिकार (3) शोषण के विरूद्ध अधिकार (4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (5) संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (7) शिक्षा (निःशुल्क प्राथमिक) का अधिकार। संविधान में मूल अधिकारों के साथ-साथ मौलिक कर्त्तव्यों का भी उल्लेख मिलता है।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. मूल अधिकारों से आप क्या समझते है' भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्रदान किये गये मूल अधिकारों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय संविधान में जो मूल अधिकार दिये गए हैं, उनकी समीक्षा कीजिए। कब तक और किस प्रकार इन अधिकारों को सीमित तथा निलम्बित किया जा सकता है?
3. 'मूल अधिकारों का मूल्यांकन' विषय पर लेख लिखिए।
4. मूल अधिकारों के लक्षण व विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. मूल अधिकारों के वर्गीकरण को संक्षेप में समझाते हुए'शिक्षा का अधिकार' पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई - 3

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 निर्देशक सिद्धान्तों का वर्गीकरण
3.3 नीति निर्देशक तत्वों का महत्व
3.4 राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की आलोचना
3.5 निर्देशक सिद्धान्तों का क्रियान्वयन
3.6 निर्देशक सिद्धान्तों और मौलिक अधिकारों में अन्तर
3.7 सारांश
3.8 अभ्यास प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप -

- निर्देशक सिद्धान्तों के वर्गीकरण से परिचित हो पाएंगे।
- इन सिद्धान्तों के महत्व को समझ पाएंगे।
- नीति निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन से अवगत होगे।
- मूल अधिकारों और निर्देशक तत्वों में भेद को समझ पाएंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारत के संविधान के चौथे भाग में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का वर्णन किया गया है। ये तत्व वे विचार है जिन्हें संविधान निर्माताओं ने भविष्य में बनने वाली सरकारों के समक्ष एक पथ प्रदर्शक के रूप में रखा। इन्हें आयरलैण्ड के संविधान से अपनाया गया है। ये संविधान के वास्तविक उद्देश्य को दर्शाते हैं। नीति निर्देशक तत्व राज्य की कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के समक्ष व्यावहारिक निर्देश के रूप में हैं। इन्हें प्रशासन के मूलभूत सिद्धान्तों के रूप में स्वीकारा गया है। प्रत्येक सरकार का कर्त्तव्य होगा कि इन्हें क्रियान्वित करे। उच्चतम न्यायालय ने भी कई निर्णयों में कानूनों की वैधता की जाँच करने में इन सिद्धान्तों को प्राथमिकता दी है।

3.2 निर्देशक सिद्धान्तों का वर्गीकरण

संविधान की धारा 38 से 51 तक राज्य की नीति निर्देशक तत्वों का वर्णन किया गया है चूँकि इन सिद्धान्तों को संविधान में किसी युक्तियुक्त योजना के अनुसार नहीं वर्णित गया है, अत: उनका वर्गीकरण करना कठिन है। फिर भी इन तत्वों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है:

(1) समाजवादी सिद्धान्त:

नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य एक लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। इनमें से निम्नलिखित समाजवादी सिद्धान्तों से अनुप्राणित हैं:

अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रयत्न करेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सभी संस्थाओं के अन्तर्गत होगा।

अनुच्छेद 39 में कहा गया है कि राज्य ऐसी नीति निर्देशित करेगा, जिसमें -

(क) सभी नागरिकों पुरूष एवं महिलाओं को समान रूप से जीवन-यापन करने के साधन प्राप्त हो सकें।

(ख) समाज के भौतिक साधनों का स्वामित्व व नियन्त्रण समाज के कल्याण के अनुरूप हो।

(ग) धन के केन्द्रीकरण को रोका जाए।

(घ) पुरूषों व स्त्रियों को समान काम के लिए समान वेतन।

(ड़) ऐसी औद्योगिक नीति व हालात बनाए जाए, जिनमें शोषण न हो, स्त्रियों व बच्चों की सुकुमारावस्था का दुरूपयोग न हों। आयु के प्रतिकूल कार्य न लिया जाए।

(च) राज्य बच्चों व युवकों की शोषण से तथा भौतिक या नैतिक परित्याग से रक्षा करेगा।

42वे संशोधन (1978) के द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 39 (ए) जोड़ दिया गया है। इसके अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि राज्य यह देखेगा कि कानूनी व्यवस्था समान अवसर के आधार पर न्याय को प्रोत्साहित करती है। साथ ही साथ राज्य कमजोर वर्गो के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद 41 में कहा गया है कि एक नागरिक को काम पाने, शिक्षा प्राप्त करने, शिक्षा और बेकारी में सरकार द्वारा उचित संरक्षण दिया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 42 में कहा गया है कि राज्य महिलाओं के प्रति प्रसूति तथा मजदूरों के लिए काम की उचित परिस्थिति के निर्माण के लिए प्रयत्न करे।

अनुच्छेद 43 में उल्लेखित है कि राज्य कानून द्वारा ऐसी परिस्थितियों का निर्माण हो जिनसे मजदूरों का शोषण न हो, उनका जीवन स्तर ऊँचा उठे तथा सामाजिक अवसर प्राप्त हों।

42वें संशोधन (1976) के द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 43 (ए) जोड़ दिया गया है। अनुच्छेद 43 (ए) के अनुसार,'राज्य उचित व्यवस्थापन या अन्य प्रकार से औद्योगिक संस्थाओं के प्रबन्ध में कर्मचारियों को भागीदार बनाने के लिए कदम उठाएगा।'

44वें संवैधानिक संशोधन (अप्रैल, 1978) द्वारा आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्व में एक और तत्व जोड़ा गया है। इसमें कहा गया है कि, राज्य न केवल व्यक्तियों की आय और उनके सामाजिक स्तर, सुविधाओं और अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को कम से कम करने का प्रयत्न करेगा, वरन् विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले विभिन्न व्यवसायों में लगे हु ए व्यक्तियों के समुदायों के बीच विद्यमान आय, सामाजिक स्तर, सुविधाओं और अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को भी कम से कम करने का प्रयत्न करेगा।'

अनुच्छेद 46 में वर्णित है कि राज्य पिछड़े वर्ग (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) की शिक्षा और अर्थ संबंधी सहायता करें।

अनुच्छेद 47 राज्य नागरिकों के स्वास्थ्य को सुधारने के लिए प्रयत्न करेगा, इसलिए मादक-वस्तुओं पर प्रतिबन्ध लगाये।

(2) गाँधीवादी सिद्धान्त :

भारतीय संविधान राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के दर्शन से प्रभावित है। नीति निर्देशक तत्वों का एक बडा भाग यह प्रभाव दिखाता है। वे अनुच्छेद निम्न प्रकार है -

अनुच्छेद 40 के अनुसार, राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करेगा। उन्हें स्वायत्त शासन की इकाई के लिए अधिक शक्तियाँ प्रदान करेगा।

अनुच्छेद 46 के अनुसार, राज्य हरिजन व अन्य पिछड़े वर्गों को शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान करेगा।

अनुच्छेद 43 के अनुसार, राज्य कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करेगा।

अनुच्छेद 48 के अनुसार, गौरक्षा, कृषि का वैज्ञानिकीकरण राज्य के प्रयत्न होंगे।

42वे संशोधन के द्वारा नया अनुच्छेद 48 (ए) जोड़ा गया है। उनके अनुसार राज्य प्राकृतिक वातावरण को सुधारने तथा वन्य जीवन और जंगलों का सुरक्षित करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद या के अनुसार, राज्य मादक द्रव्यों के प्रयोग को निषिद्ध करेगा।

(3) उदारवादी सिद्धान्त:

उदारवादी सिद्धान्त निम्नलिखित है. अनु. 44 के अनुसार राज्य समस्त भारत में समान व्यवहार संहिता बनाने का प्रयत्न करेगा तथा राज्य 14 वर्ष से कम उस के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने का प्रयत्न करेगा। अनुच्छेद 50 के अनुसार, राज्य कार्यपालिका को न्यायपालिका से पृथक् करने का प्रयत्न करेगा।

अनुच्छेद 51 में विदेशी नीति के सम्बन्ध में कहा गया है कि राज्य (क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए, (ख) राज्यों के मध्य सम्मानपूर्ण सम्बन्धों, तथा (ग) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने के लिए प्रयत्नशील होगा।

(4) सामान्य सिद्धान्त:

कुछ नीति निर्देशक तत्व सामान्य प्रकृति के है। अनुच्छेद 37 और 38 में नीति निर्देशक तत्वों को परिभाषित किया गया है।

अनु. 49 में वर्णित है कि वह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह ऐतिहासिक व कलात्मक महत्व के प्रत्येक स्मारक या वस्तु को, जिसे ससंद राष्ट्रीय महत्व का घोषित करे उसे दूषित होने, स्थानान्तरित किये जाने अन्यथा बाहर जाने से रोके व उनकी रक्षा करें।

3.3 नीति निर्देशक तत्वों का महत्व

संवैधानिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से नीति निर्देशक तत्वों का बहुत अधिक महत्व हैं इन तत्वों के महत्व का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है:

(क) प्रेरक ऊँचे लक्ष्य : नीति निर्देशक तत्व के ऊँचे प्रेरक लक्ष्य हैं जिन्हें कोई भी सरकार पाना चाहेगी। नीति निर्देशक तत्व वस्तुतः संविधान की प्रस्तावना का विस्तार ही है जिसमें सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय की आकांक्षा व्यक्त की गई है, जीवन के हर क्षेत्र में समता लाने के प्रयास का संकल्प किया गया है। इन लक्ष्यों को सामने रखकर ही तो सरकारें नीतियाँ व कार्यक्रम बनाती आई हैं।

(ख) नैतिक आदर्शो के रूप में महत्व : यदि निर्देशक तत्वों को केवल नैतिक धारणाएँ ही मान लिया जाए, तो इस रूप में भी उनका अपार महत्व हैं ब्रिटेन में मैग्ना कार्टा, फ्रांस में मानवीय तथा नागरिक अधिकारों की घोषणा तथा अमरीकी संविधान की प्रस्तावना को कोई कानूनी अनुशक्ति प्राप्त नहीं रही है, फिर भी इन देशों के इतिहास पर इनका प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार उचित रूप में यह आशा की जा सकती है कि ये निर्देशक तत्व भारतीय शासन की नीति को निर्देशित और प्रभावित करेंगे।

(ग) संविधान की व्याख्या में सहायक : ये सिद्धान्त भारतीय न्यायालयों के मार्गदर्शक हैं। न्यायालयों ने भी बहुत से मुकदमों को फैसला करते समय इन्हें उचित महत्व दिया है जिससे इस तथ्य का प्रमाण मिलता है कि ये निश्चय ही भारतीय शासन के आधार है। मुम्बई राज्य बनाम एफ.एम. बालासोर के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देशक सिद्धान्तों की धारा 47 पर विचार किया। इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह के मुकदमे

में धारा 39 की व्याख्या की। एम.सी. सीतलवाड के शब्दों में, राजनीति के इन मूलभूत सिद्धान्तों का वैधानिक प्रभाव न होते हुए भी इनके द्वारा न्यायालयों के लिए उपयोगी प्रकाशस्तम्भ का कार्य किया जाता है।'

(**घ) लोक कल्याणकारी राज्य का प्रतीक :** नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से संविधान निर्माता यह स्पष्ट करना चाहते थे कि भारत को एक''राजनीतिक प्रजातंत्र' के साथ-साथ''आर्थिक प्रजातंत्र' के लक्ष्य को भी प्राप्त करना है। विस्तृत विश्लेषण आने वाली सरकारों तथा बदलते समय की आवश्यकताओं के अनुकूल परिवर्तन के लिए छोड़ दिया गया है। ऐसा इसलिए किया गया ताकि सरकारों के सामने नीति निर्माण के लिए लोचशीलता रहें। साथ ही सामाजिक परिवर्तन के लिए भी दिशा-निर्देश हैं। महिलाओं, बच्चों, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए विशेष प्रयास के लिए निर्देश है ताकि सदियों से हाशिये पर छूट गये समाज के इन उपेक्षित वर्गों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ा जा सकें।

(ड़) जन आकांक्षाओं के प्रतीक : नीति निर्देशक तत्व भारतीय जनता की आकांक्षाओं के प्रतीक हैं, जनसामान्य को समर्पित हैं। अत: उनके पीछे वैधानिक बाध्यता की आवश्यकता नहीं है। यदि जनता अपने अधिकारों के प्रति सजग व जागरूक है तो वह किसी भी सरकार को बाध्य कर सकती है वह निर्देशक सिद्धान्तों की अनुपालन करे। अन्यथा उसे सत्ताच्युत किया जा सकता है। यह शक्ति वैधानिक आधार से ज्यादा महत्वपूर्ण, प्रभावी तथा स्थायी है। ऐसी ही भावना संविधान सभा में अभिव्यक्त की गई थी। अल्ला कृष्णा स्वामी अय्यर आदि ने भी ऐसी ही भावना अभिव्यक्त की थी,''कोई भी लोकप्रिय मंत्रिमंडल संविधान के चतुर्थ भाग के उपबंदों के उल्लंघन का साहस नहीं कर पाएगा।'

(च) चरम सीमाओं से रक्षा : हमारे संविधान निर्माता इस तथ्य से पूर्णतया परिचित थे कि प्रजातान्त्रिक राज्य में परिवर्तनशील जनमत के परिणामस्वरूप विभिन्न समस्यों में विभिन्न राजनीतिक दल सत्तारूढ़ हो सकते हैं। कभी दक्षिणपंथी दल शासन सत्ता पर अधिकार कर सकता है और कभी कोई वामपंथी दल। निर्देशक तत्व दोनों प्रकार की सरकारों को मर्यादित रखेंगे तथा उन्हें किसी प्रकार का एक तरफा व्यवहार करने से रोकेंगे। श्री अमरनन्दी के अनुसार,''संविधान के निर्देशक तत्व इस बात का आश्वासन देते हैं कि अनुदार दल अपनी नीति के निर्धारण में इन तत्वों की पूर्ण अवहेलना नहीं कर सकेगा और एक उग्रगामी दल अपने दल के आर्थिक या अन्य कार्यक्रम को पूरा करने के लिए संविधान का अन्त करना आवश्यक नहीं समझेगा। इस प्रकार निर्देशक तत्व वाम और दक्षिण पंथ की चरम सीमाओं से सुरक्षा प्रदान करते है।

(छ) न्यायालयों के लिए मार्गदर्शन प्रस्तुत करते हैं : न्यायालय संविधान के रक्षक है। जब-जब न्यायाधीशों ने यह अनुभव किया कि कोई कार्यपालिका का कार्य या व्यवस्थापिका का कानून मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है तो उन्होंने उस स्थिति को नीति निर्देशक तत्वों के प्रकाश में सोचने-समझने व व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। संविधान ने जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय व समता का लक्ष्य सामने रखा है उन्हें राजनीतिक दलों की स्वेच्छाचारिता से बचाना न्यायालय का फर्ज है। न्यायाधीश केनिया के अनुसार,''निर्देशक सिद्धान्त विधायिका में बहुमत की अस्थायी इच्छा का प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि उनमें राष्ट्र की बुद्धिमत्तापूर्ण स्वीकृति बोल रही है जो संविधान के माध्यम से व्यक्त हुई है।'

3.4 राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की आलोचना

संविधान निर्माण करते समय संविधान सभा में और बाहर भी नीति निर्देशक सिद्धान्तों के उपबन्धों की कड़ी आलोचना हुई। आलोचना करने के आधार निम्न प्रकार थे:

(क) वैधानिक शक्ति का अभाव : आलोचना का पहला आधार यह माना गया या कि अनु. 47 के अनुसार ये सिद्धान्त न्याय योग्य नहीं हैं अर्थात् न्यायालय इन्हें क्रियान्वित नहीं करा सकते है। इन्हें तो राज्य की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। संविधान सभा के सदस्य नासिरूद्दीन ने इन्हें'नववर्ष के प्रथम दिन पास किये गये शुभकामना प्रस्ताव' कहा। प्रो. केटी शाह ने कहा कि,'यह एक ऐसा चैक है जिसका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया हैं प्रो. केसी. हीयर ने इन्हें,''उद्देश्यों और आकांक्षाओं का घोषणा-पत्र' कहा। प्रो. एनआर. राघवचारी ने कहा कि,''ये ललित पत्रावली में व्यक्त उच्च ध्वनित भावनाओं की ऐसी पंक्तियाँ हैं जिनका वैधानिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है।'

(ख) अस्पष्ट तथा अतार्किक रूप में संग्रहीत : नीति निर्देशक तत्वों के विरूद्ध यह भी आलोचना की जाती है कि ये किसी निश्चित या संगतिपूर्ण दर्शन पर आधारित नहीं हैं वे अस्पष्ट हैं, उनमें क्रमबद्धता का अभाव है और एक ही बात को बार-बार दोहराया गया है। उदाहरण के लिए, इन तत्वों में पुराने स्मारकों की रक्षा (अनु. 4) जैसे महत्वहीन प्रश्न अपेक्षाकृत अत्यन्त महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों के साथ मिला दिए गए है। प्रो. श्रीनिवासन के शब्दों,''इस अध्याय में कुछ बेढंगे तरीके से आधुनिक को पुरातन के साथ और तर्क तथा विज्ञान द्वारा सुझाए उपबन्धों को विशुद्ध रूप से भावुकता और पूर्वाग्रह पर आधारित उपबन्धों के साथ मिला दिया गया है।'

(ग) प्रभुता सम्पन्न राज्य में आदेश अस्वाभाविक : विधिवेत्ताओं का मानना है कि प्रभुत्ता सम्पन्न राज्य के लिए किसी प्रकार के आदेश अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। औपनिवेशिक व्यवस्था में तो उच्च सत्ता द्वारा उपनिवेशों के लिए आदेश-निर्देश दिये जाना सहज प्रक्रिया है, पर एक स्वतन्त्र व प्रभुता सम्पन्न राज्य में यह आदेश विरोधाभास से लगते हैं।

(घ) अव्यावहारिक : ये अव्यावहारिक भी है उदाहरण के लिए मद्य-निषेध (अनु. 4) से सम्बन्धित उपबन्धों से राष्ट्रीय कोष पर भार पड़ेगा तथा नैतिकता थोपी भी नहीं जा सकती हैं। मद्य-निषेध शराब के अवैध व्यापार को बढ़ाएगा।

(ड़) बदलती आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं : सर आइवर जेनिंग्स संविधान में निर्देशक तत्वों को शामिल किये जाने की आवश्यकता पर ही प्रश्न चिड़ लगाते हैं। उनका मानना है कि यह राजनीतिक दर्शन 19वीं शती के ब्रिटिश अनुभव से अभिप्रेरित है जिसे भारत के लिए उपयोगी मानने की गलती की गई है। ये निर्देशक तत्व 21वीं शती में उपयोगी हो सकेंगे। इसमें संदेह है। ये पुरातन व अनावश्यक हो जाऐंगे, ऐसी उम्मीद ज्यादा है।

(च) संवैधानिक द्वन्द्व के कारण : संवैधानिक विधिवेत्ताओं ने यह आशंका व्यक्त की कि ये तत्व भारतीय शासन में संवैधानिक द्वन्द्व और गतिरोध के कारण भी बन सकते हैं। संविधान सभा में श्री स्तथानम ने यह आशंका व्यक्त की थी कि इन निर्देशक तत्वों के कारण राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री अथवा राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं। प्रश्न यह है कि अगर प्रधानमंत्री इन सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है तो स्थिति क्या होगी? एक पक्ष कहता है कि राष्ट्रपति इस आधार पर किसी भी विधेयक पर निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है कि वह शासन के मूलभूत सिद्धान्त निर्देशक तत्वों के विरूद्ध है। भारतीय संविधान

के प्रसिद्ध लेखक दुर्गादास बसु के द्वारा भी उपर्युक्त विचार व्यक्त किया गया है। आलोचकों का कथन है कि इस प्रकार की घटनाएँ राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच तीव्र मतभेद को जन्म देगी और इससे संसदात्मक प्रजातंत्र को गंभीर आघात पहुंच सकता है।

3.5 निर्देशक सिद्धान्तों का क्रियान्वयन

नीति निर्देशक सिद्धान्तों के संविधान का भाग बनाते समय से ही उनकी उपयोगिता पर प्रश्न-चिहन लगाये जाते रहे है तथा उनकी व्यावहारिकता के सम्बन्ध में आलोचनाएँ की जाती रही हैं। इन सिद्धान्तों के उद्देश्य अत्यन्त व्यापक है जिसे थोड़े समय में पूरा करना संभव नहीं है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों के सरकारी कामकाज, नीतियों व कार्यक्रमों का यदि विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि निर्देशक सिद्धान्तों ने सत्ता की नीतियों व कार्यक्रमों को पर्याप्त प्रभावित किया है।

(क) जमींदारी प्रथा का उन्मूलन : जमींदारों ने सदियों से भारतीय किसानों का शोषण किया है तथा स्वयं आराम व सम्पन्नता का जीवन जिया है। किसान वर्ग सहज व सामान्य मानवोचित जीवन के लाभ के लिए उम्रभर बाट जोहते रहे। ग्रामीण जीवन में व्याप्त इस आर्थिक विषमता को दूर करने तथा सामान्य कृषक को प्रजातंत्र के अनुकूल मानवीय जीवन-यापन का यापन का अवसर देने के उद्देश्य से 1951 में जमींदारी व जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया। साथ ही भूमि सुधारों के माध्यम से भूमिहीनों को भूस्वामी बनाने के कार्यक्रम बनाये गए। निर्देशक सिद्धान्तों के लिए प्रतिबद्धता का यह एक सटीक उदाहरण हैं।

(ख) पंचवर्षीय योजनाएँ : देश के आर्थिक विकास के लिए नियोजन के मार्ग को अपनाया जाए। अब तक 11 पंचवर्षीय योजनाएँ क्रियान्वित की जा चुकी हैं और अब बारहवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप पर विचार किया जा रहा है। इन योजनाओं में कृषि, जल-संसाधन, पशु-नस्ल सुधार, ग्रामीण विकास, ऊर्जा, उद्योग, वाणिज्य, परिवहन, संचार, श्रम, आवास, स्वास्थ्य पर्यावरण, वैज्ञानिक अनुसंधान और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में विविध कार्यक्रम अपनाकर उन्हें क्रियान्वित किया जा रहा है। कुटीर उद्योग और लघु उद्योगों को प्रोत्साहित किया गया हैं। इसी उद्देश्य से अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड और लघु उद्योग बोर्ड आदि अनेक संगठनों की स्थापना की गई है।

(ग) सामाजिक सुरक्षा : युवक वर्ग व बालकों की शोषण से रक्षा करने के लिए अनेक कानून पारित किए गए हैं। कुछ राज्य सरकारों द्वारा वृद्धावस्था पेटन्स योजना लागू की गई है। बीमारी तथा दुर्घटना के विरूद्ध सुरक्षा के लिए कुछ सीमा तक मजदूर वर्ग बीमा योजना लागू की गई है तथा बेरोजगारी बीमा योजना को लागू करने और रोजगार की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। राज्य सामाजिक कल्याण की दिशा में धीमी गति से ही सही, लेकिन निरन्तर आगे बढ़ रहा है।

(घ) आर्थिक क्षेत्र में सार्वजनिक नियन्त्रण बढ़ाने का प्रयास : व्यापार व उद्योग में यदि एकाधिकार की प्रवृत्ति पनपने लगे तो उपलब्धियों तथा विकास के लाभ का समुचित वितरण सर्वसाधारण तक हो पाना संभव नहीं है। इसी एकाधिकार को समाप्त करने के लिए बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया। देश के बड़े उद्योग जो आर्थिक विकास को गति देते हैं वे राज्य के द्वारा नियन्त्रित व संचालित है। भिलाई तथा दुर्गापुर जैसे संस्थान तथा अन्य परिवहन, कोयला खान, विद्युत आपूर्ति, ट्रेन, हवाई जहाज, आदि संस्थान राज्य के नियन्त्रण में है। चौदह बैंकों के राष्ट्रीयकरण को भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है। आर्थिक न्याय व समता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राजतंत्र के अवशेष के रूप में प्रिवीपर्स को भी समाप्त कर दिया गया।

(ड़) न्यायिक व्यवस्था में सुधार : न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक्करण किया गया, जिसमें जनता को निष्पक्ष न्याय मिल सके। इसी प्रकार शीघ्र न्याय की प्राप्ति के लिए'लोक अदालतों' की व्यवस्था को अपनाया गया तथा निःशुल्क कानूनी सहायता के लिए भी कुछ व्यवस्थाएँ की गई है।

(च) सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए पंचायती राज : स्थानीय स्वशासन का परिकल्पना नीति निर्देशक सिद्धान्तों का महत्वपूर्ण भाग है। 1959 में ही पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया गया तथा इसमें लगातार सुधार किया गया। प्रारम्भ में कोई उत्साहजनक परिणाम नहीं आए। पंचायतों के चुनाव समय पर नहीं हो सके। अत: 73 तथा 74वें संविधान संशोधन द्वारा ग्रामीण तथा शहरी स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को मजबूत करने का प्रयास किया गया। सत्ता का केन्द्रीकरण न हो यह राष्ट्रपिता गाँधीजी का भी सपना था, उस सिद्धान्त को नीति निर्देशक तत्वों में शामिल किया गया। सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया जा रहा है।

(छ) कमजोर वर्गो का कल्याण : अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछडे वर्ग के लोगों के लिए संविधान और शासन के विशेष सुविधाएँ, उपलब्ध करवाई हैं। सरकारी नौकरियों में इनके लिए'विशेष दावों क्री व्यवस्था' को अपनाया गया है, जिसके लिए निर्धारित सीमा समय-समय पर बढ़ाई गई है और संसद तथा विधानमंडलों में इनके लिए जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित हैं।

अस्पृश्यता निवारण के लिए कठोर कानूनों का निर्माण किया गया है। अनुसूचित तथा जनजातियों के बालक-बालिकाओं के लिए उदारतापूर्वक छात्र वृत्तियों, पोशाक और निःशुल्क शिक्षा एवं भोजन की व्यवस्था के आधार पर उन्हें शिक्षित करने की प्रत्येक संभव चेष्टा की जा रही है। 1990 में 65वें संविधान संशोधन अधिनियम के आधार पर एक उच्चस्तरीय 7 सदस्यीय'अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग की स्थापना कर उसे संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। इन जातियों पर अत्याचार से सम्बद्ध घटनाओं की यह आयोग जाँच कर सकेगा। भारतीय समाज के अन्तर्गत महिलाएँ भी समाज के कमजोर वर्गों में ही आती हैं। 73वे और 74वे संविधान संशोधन के आधार पर पंचायती राज संस्थाओं और शहरी क्षेत्र की स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गए हैं। आशा की जाती है कि यह कदम महिला जागृति की दिशा में निरन्तर आगे बढ़ाएगा। इसके अतिरिक्त 8 सितम्बर, 1993 से केन्द्र सरकार की नौकरियों में अन्य पिछडा वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण लागू किया गया है। राज्य स्तर पर इस संबंध में अलग-अलग व्यवस्थाएँ है।

3.6 निर्देशक सिद्धान्तों और मौलिक अधिकारों में अन्तर

यद्यपि निर्देशक सिद्धान्त और मौलिक अधिकार दोनों का सम्बन्ध नागरिक के विकास से है, इसलिए दोनों एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। फिर भी दोनों में निम्नलिखित अन्तर है -

(क) मौलिक अधिकार न्याय योग्य हैं जबकि निर्देशक सिद्धान्त न्याय योग्य नहीं है : मौलिक अधिकारों को कानूनी मान्यता प्राप्त है अर्थात् यदि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों पर आक्षेप होता है तो वह न्यायालय से न्याय की माँग कर सकता है ओर न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि वह उसे न्याय देने के लिए उचित पग उठाये, परन्तु निर्देशक सिद्धान्तों को लागू कराने का अधिकार न्यायालय का नहीं है।

(ख) मौलिक अधिकार राज्य को कुछ विशेष कार्य करने से रोकते है, जबकि निर्देशक सिद्धान्त उसे कुछ कार्य करने का निर्देश देते है : मौलिक अधिकार निषेधात्मक हैं। ये राज्य की शक्तियों

पर प्रतिबन्ध लगाते है और उसे कुछ विशेष कार्य करने से रोकते हैं जैसे राज्य नागरिकों के अधिकारों को छीनने का प्रयास नही करेगा, यदि वह करता है तो न्यायालय इस प्रयास को रोक सकता है जबकि निर्देशक सिद्धान्त राज्य को कुछ निश्चित कार्य करने का निर्देश देते है (जैसे कुटीर उद्योग का विकास, मद्य निषेध, स्त्री-पुरूष का समान कार्य के लिए समान वेतन देना आदि की व्यवस्था करना।

(ग) मौलिक अधिकारों के मुकाबले में निर्देशक सिद्धान्त कम महत्वपूर्ण है : संवैधानिक दृष्टि से मौलिक अधिकार नीति-निर्देशक तत्वों से श्रेष्ठ है। चेन्नई बनाम चम्पारन दोराइजन विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त जिन्हें अनु. 37 में न्यायालय द्वारा प्रवर्त्तन योग्य नहीं माना गया है। मौलिक अधिकारों से श्रेष्ठ नहीं है। हमारे विचार में नीति निर्देशक सिद्धान्तों को मौलिक अधिकारों के अनुरूप होकर चलाना होगा। बिहार राज्य बनाम कुरैशी विवाद में भी सर्वोच्च न्यायालय का यही मत था।

3.7 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से यद्यपि यह सिद्ध होता है कि नीति निर्देशक तत्वों को लगातार राज्य द्वारा महत्व दिया जाता रहा है किन्तु यह सिद्ध नहीं होता कि भारत अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल भी रहा है। कई क्षेत्रों में जहाँ सफलता प्राप्त हुई है जैसे मद्यनिषेध, स्त्री आरक्षण, साक्षरता आदि वहीं दूसरी ओर गरीबी हटाओ महज एक नारा बनकर रह गया है। बाल श्रम जैसी समस्या अभी भी व्याप्त है। बहुत से ऐसे कल्याणकारी कार्यक्रम है जो सरकार द्वारा चलाये जा रहे हैं, पर उनकी जानकारी लाभार्थियों तक नहीं पहुँच पाई है। निर्देशक तत्वों की क्रियान्विति नारेबाजी पर नहीं, वरन् ठोस कार्यों पर निर्भर करती है। सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में ठोस कार्य करने की आवश्यकता है।

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान में वर्णित राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों को बताइए।
2. राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त से आप क्या समझते है? भारत के संविधान में कौन-कौन से नीति निर्देशक सिद्धान्त है?
3. नीति-निर्देशक तत्वों को बताते हुए समझाइए कि वे किस प्रकार लोककल्याणकारी राज्य के लक्ष्य तक पहुंचाते हैं?
4. नीति निर्देशक तत्वों के महत्व पर प्रकाश डालिए।
5. राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
6. निर्देशक सिद्धान्तों और मौलिक अधिकारों में अन्तर स्पष्ट कीजिए तथा समाजवादी सिद्धान्त की विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई - 4

राष्ट्रपति की क्षमादान और राज्यपाल की न्यायिक शक्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 राष्ट्रपति और राज्यपाल की स्थिति के बारे में सामान्य प्रावधान

4.3 राष्ट्रपति और राज्यपाल के कार्य एवं शक्तियाँ

4.4 अनुच्छेद 72,161 तथा 142 और 145 की व्याख्या

4.5 अनुच्छेद 71, 161 तथा धारा 433 दण्ड प्रक्रिया संहिता, में सम्बन्ध व्यवस्थाएं

4.6 क्षमादान शक्ति को प्रयोग करने की सीमाएं

4.7 क्षमादान पर सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों की न्यायिक प्रवृत्तियाँ

4.8 अनुच्छेद 72 के खण्ड 2 एवं 3 में की गई व्यवस्था

4.9 राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के उपलब्ध विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियाँ

4.10 राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की संवैधानिक प्रस्थिति

4.11 राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान शक्ति प्रयोग में प्रभेद

4.12 राष्ट्रपति की निषेधाधिकार (वीटो) शक्ति की औचित्यता

4.13 राज्य के राज्यपालों के प्रदत्त कृत्य एवं शक्तियाँ

4.14 सारांश

4.15 अभ्यास प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भली प्रकार से यह जान सकेंगे कि. -

- राष्ट्रपति और राज्यपाल के बारे में संवैधानिक सामान्य प्रावधान क्या-क्या है?
- राष्ट्रपति और राज्यपाल के सामान्यकालीन और संकटकालीन कृत्यों और शक्तियों या अधिकारों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। राष्ट्रपति और राज्यपाल को प्रदत्त विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को समझ सकेंगे।
- राष्ट्रपति तथा राज्यपाल निषेधाधिकार (वीटो) क्षमादान और अध्यादेश शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन कर पाएंगे।
- राष्ट्रपति और राज्यपाल की प्रास्थिति के बारे में अवलोकन कर सकेंगे।
- राष्ट्रपति और राज्यपाल की न्यायिक प्रवृत्तियों का ज्ञान ले सकेंगे।
- राष्ट्रपति की निषेधाधिकार (वीवो) शक्ति से सुविज्ञ हो सकेंगे।
- क्षमादान आदेश की चुनौती के आधारों/कारणों से सुपरिचित हो सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान ने भारत में संसदीय सरकार की स्थापना की है। संसदीय सरकार में राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष होता है और वास्तविक शक्तियाँ केन्द्र सरकार की मंत्री परिषद में निहित होती है। मंत्री परिषद के केन्द्र में प्रधानमंत्री तथा राज्यों में मुख्यमंत्री मुखिया होते हैं। मंत्रीपरिषद केन्द्र में संसद और राज्यों में विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। राष्ट्रपति भारतीय गणतंत्र का प्रधान और

औपचारिक कार्यपालक है, भारतीय संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति का पद विशेष महत्व को सुशोभित किए हुए है। इसके महत्व के निम्न चार प्रमुख कारण बताये गये हैं

(1) राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद और राज्यों की विधानसभाओं द्वारा होता है, जिसमें सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधित्व का समावेश होता है।

(2) राष्ट्रपति द्वारा शपथ संविधान रक्षार्थ ली जाती है।

(3) राष्ट्रपति को पद से हटाने के लिए महाभियोग की व्यवस्था की गई है।

(4) राष्ट्रपति देश के प्रतिरक्षा बलों का सर्वोच्च सेनापति होता है। संघ, राज्य और केन्द्र शासित राज्यों की शक्तियों को तीन भागों में विभक्त किया गया है - (1) कार्यपालिका, (2) विधानपालिका (3) न्यायपालिका, संघीय कार्यपालिका राष्ट्रपति एवं केन्द्रीय मंत्री-परिषद से मिलकर बनती है जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति, स्वयं भारतीय संसद का अभिन्न अंग माना जाता है। राज्यों की कार्यपालिका के अन्तर्गत राज्यपाल तथा राज्य मंत्रीपरिषद को शामिल किया गया हैं सरकार का चौथा पाया खबर पालिका (मीडिया) को कहा जाता है। भारतीय संविधान के भाग-पांच के अध्याय एक में अनुच्छेद 52 से 78 तक संघ कार्यपालिका के बारे में बताया गया है। इसी तरह संविधान के भाग-छः के अध्याय-दो में अनुच्छेद 153 से 167 तक में राज्य कार्यपालिका के बारे में प्रकाश डाला गया है। संघ की कार्यपालिका शक्ति क्रमशः राष्ट्रपति और राज्यपाल में निहित होती है। लेकिन वास्तविक शक्ति मंत्रीमण्डल में निहित होती है। राष्ट्रपति एवं राज्यपाल का पद केन्द्र और राज्य सरकार के अध्यक्ष के रूप में एक संवैधानिक पद सृजित किया गया है। इस प्रकार संघीय कार्यपालिका में राष्ट्रपति और मंत्रीपरिषद तथा राज्य कार्यपालिका में राज्यपाल और मंत्रीपरिषद होंगे।

4.2 राष्ट्रपति और राज्यपाल की स्थिति के बारे में सामान्य प्रावधान

राष्ट्रपति और राज्यपाल क्रमशः केन्द्र व राज्य शासन की कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान होते हैं और मंत्रीपरिषद कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान होता है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में राष्ट्रपति वहाँ का संवैधानिक अध्यक्ष होता है तथा वास्तविक शक्तियाँ मंत्रीपरिषद में निहित होती है। मंत्रीपरिषद का प्रधान केन्द्रीय सरकार में प्रधानमंत्री होता है तथा राज्य सरकारों में मंत्रीपरिषद के मुखिया मुख्यमंत्री होते हैं। अधीनस्थ अधिकारियों की पदावली के अन्तर्गत एक मंत्री भी शामिल है। भारत का राष्ट्रपति बनने के लिए निम्न योग्यताएँ निश्चित की गई है :-

(1) वह भारत का नागरिक हो

(2) वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो

(3) वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो

(4) वह भारत सरकार, राज्य सरकार या स्थानीय सरकार में पदाधिकारी नहीं हो। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल और संघ अथवा राज्य के मंत्रियों को सरकारी अधिकारी नहीं समझा जाता है राष्ट्रपति और राज्यपाल को क्रमशः संसद और राज्यों के विधानमण्डल के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होना चाहिए तथा अपने कार्यकाल में कोई वेतनभोगी लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकते हैं।

राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के लोकसभा और राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य, राज्य विधानसभाओं और 70वे संवैधानिक संशोधन अधिनियम (1992) के अनुसार संघशासित क्षेत्रों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य करते हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के तहत एक संक्रमणीय गुप्त मतदान द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की पदावधि अपने

पदग्रहण करने की तारीख से 5 वर्ष तक पद ग्रहण किए रहेंगी। राष्ट्रपति को उसके पद से महाभियोग लगाकर हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बंधित विवादों की जाँच या शंकाओं का विनिश्चय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाकर उसका निर्णय अंतिम होता है। राष्ट्रपति तथा राज्यपाल के कार्यकाल की अवधि 5 वर्ष तक निश्चित की गई है। राष्ट्रपति तथा राज्यपाल के विरूद्ध पद पर रहते हुए किसी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है और न गिरफ्तारी का वारंट जारी किया जा सकता है और न ही कैद किया जा सकता है। राष्ट्रपति और राज्यपाल एक बार निर्वाचित होने के बाद पुन: निर्वाचन के योग्य माने गये है। राष्ट्रपति अपने पद संभालने से पूर्व शपथ सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति अथवा उसकी अनुपस्थिति में वरिष्ठतम न्यायमूर्ति के समक्ष शपथ ग्रहण करता है। राज्यपाल के पद की शपथ उस राज्य के मुख्य न्यायाधिपति या वरिष्ठतम न्यायाधिपति के समक्ष ली जाती हैं।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की परिलब्धियां और भत्ते वहीं होंगे जो संविधान की दूसरी अनुसूची में उल्लेखित किए गए हैं। राष्ट्रपति तथा राज्यपाल के पद त्याग देने के पश्चात् या पदावधि समाप्त होने पर वार्षिक पेंशन देने की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रपति या राज्यपाल पद की शर्त यह है कि (1) संसद या राज्य विधानमंडल का सदस्य नहीं हो (2) किसी सदन का सदस्य हो तो वह पद रिक्त समझा जाता है। (3) लाभ का अन्य कोई पद धारण नहीं कर सकते है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा केन्द्र एवं राज्यों के मन्त्रियों के पद को लाभ का पद नहीं माना गया है। राष्ट्रपति या राज्यपाल को पदावधि के दौरान प्रथम विकृत चित नहीं हो, द्वितीय अनुन्मोचित दिवालिया नही हो तथा तृतीय संसद या विधान मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन निर्योग्य नहीं होना चाहिए। यदि राष्ट्रपति तथा राज्यपाल का पद मृत्यु, त्यागपत्र, या महाभियोग से हटाने के कारण रिक्त होता है तो रिक्ती की तारीख से 6 माह के अंदर चुनाव करवाया जाना अपेक्षित किया गया है। उसकी पदावधि समाप्त हो जाने के बाद उसके उत्तराधिकारी के पद ग्रहण करने तक पद पर आसीन रहेंगे। राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उपराष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति की अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की जिम्मेदारियों का निर्वहन करेंगे।

4.3 राष्ट्रपति और राज्यपाल के कार्य एवं शक्तियाँ

संविधान के विभिन्न उपबन्धों के अधीन भारत के राष्ट्रपति और राज्यपाल को निम्न अधिकार शक्तियाँ और कृत्य प्रमेय हैं। राष्ट्रपति की समस्त शक्तियों को प्राथमिक रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है :-

(1) सामान्य कालीन शक्तियाँ और

(2) संकटकालीन शक्तियाँ।

राष्ट्रपति और राज्यपाल की संविधान के अन्तर्गत हमारे संविधान के भाग पांच के अध्याय एक में अनुच्छेद 52 से 78 तक में राष्ट्रपति के कृत्यों, शक्तियों, स्थिति (व कर्त्तव्यों के बारे में स्पष्ट वर्णन किया गया है। निम्न शक्तियाँ विभक्त की गई है।

4.3.1 कार्यपालिका शक्ति

हमारे देश के संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित की गई है। कार्यपालिका शक्ति को हम प्रशासनिक शक्ति भी कह सकते हैं। संविधान में राष्ट्रपति को वृहत कार्यपालिका की शक्ति प्राप्त हैं। वह भारतीय गणतंत्र का अध्यक्ष होता है। भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका-कार्यवाही राष्ट्रपति के नाम से की जाती है (अनुच्छेद 77), वह देश के सभी उच्चाधिकारियों की नियुक्ति करता है। राष्ट्रपति व्यक्तिगत रूप से मंत्रियों, राज्यपाल तथा भारत के

महान्यायवादी को पदमुक्त भी कर सकता है। संविधान में कार्यपालिका शक्ति को किसी भांति परिभाषित नहीं किया गया है, परन्तु इसमें न्यायपालिका व विधानपालिका के कार्यो के अतिरिक्त शेष कार्यो को करने का दायित्व कार्यपालिका पर है।

राष्ट्रपति को प्रशासकीय कार्य यद्यपि सुपुर्द नहीं किए जाते है तथापि संघ सरकार के समस्त प्रशासकीय कार्य राष्ट्रपति के नाम से निष्पादित किए जाते हैं। राष्ट्रपति की प्रशासकीय शक्तियों में उसके द्वारा उच्चाधिकारियों की नियुक्तियाँ करना भी शामिल है। राष्ट्रपति, भारत के प्रधानमंत्री, प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर अन्य केन्द्रीय मंत्रियों को नियुक्त करता है अनुच्छेद 75 अनु. 124(2)126 उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीशों, अनुच्छेद 217 व 222 राज्यों के राज्यपालों, अनुच्छेद 76, भारत के महान्यायवादी, भारत के नियत्रण एवं महालेखा परीक्षक, अनुच्छेद 148, संघ लोक सेवा आयोगों के अध्यक्ष और सदस्यों, अनुच्छेद 316, अन्तर्राज्यीय परिषद के सदस्य, मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य चुनाव आयुक्तों तथा अनुच्छेद 324 विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुसूचित जातियों और विशेषाधिकारी अनुच्छेद 338, निर्वाचन आयोग, वित आयोग अनुच्छेद 280, राजभाषा आयोग अनुच्छेद 344 केन्द्रीय सूचना आयोग आदि के अध्यक्षों एवं सदस्यों की नियुक्तियां करते हैं। विधि आयोग, अन्तर्राज्यीय परिषद, प्रतिवेदन पेश करते हैं। शासन संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति के पास होती है। इस सम्बन्ध में उसके द्वारा विभिन्न प्रकार के नियम बनाए जा सकते हैं। वह संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों, सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति तथा नियंत्रक व महालेखा परीक्षक की शक्तियों से सम्बन्धित नियमों का निर्माण करता हैं। मंत्रीपरिषद के सदस्यों के बीच विभागों का वितरण भी राष्ट्रपति के द्वारा ही किया जाता है।

4.3.2 विधायी शक्तियाँ

राष्ट्रपति को निम्नलिखित विधायी शक्तियाँ दी गई है :-

(1) संसद के सदनों से सम्बन्धित शक्तियाँ

(2) सदस्यों की योग्यता के प्रश्नों पर विनिश्चय (अनुच्छेद 103)

(3) राज्यसभा की सदस्यता के लिए नाम मनोनीत करना, (अनुच्छेद 80)

(4) संसद का सत्रारंभ, सत्रावसान और विघटन (अनुच्छेद 85)

(5) सदनों को संयुक्त सम्बोधित करना (अनुच्छेद 86)

(6) संदेश भेजने का अधिकार (अनुच्छेद 86(2))

(7) वित्त विधेयक की सिफारिश (अनुच्छेद 117(1))

(8) विधेयकों पर अनुमति अनुच्छेद 111 (2) नियम बनाने की शक्ति अनुच्छेद 77(2) (3) 98(3) 118(3), 145,146,309 तथा 318 में प्रदत्त)

राष्ट्रपति को वृहद विधायिनी शक्ति प्राप्त होती है, क्योंकि वह विधायिका का अभिन्न अंग है। जब तक संसद के दोनों सदनों के द्वारा पारित किसी विधेयक पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर नहीं हो जाते, तब तक वह विधेयक अधिनियम का रूप धारण नहीं कर सकता है। लेकिन इसका प्रयोग सामान्यतया राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की मंत्रणा के आधार पर ही करता है। **अनुच्छेद 80(3)** में राष्ट्रपति को राज्यसभा में 12 सदस्य मनोनीत करने की शक्ति दी गई है। ये सदस्य साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा विषयों का विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले होते हैं। **अनुच्छेद 85** में राष्ट्रपति को संसद के दोनों सदनों को आहूत करने, उसका सत्रावसान करने तथा लोकसभा के विघटन करने

की शक्ति दी गई है। **अनुच्छेद 108** में कुछ दशाओं में राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत कर सकता है। **अनुच्छेद 86** में संसद में लम्बित किसी विधेयक पर संदेश भेजने का अधिकार तथा अनुच्छेद व में लोकसभा के लिए प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के प्रारम्भ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ में सम्मिलित रूप से संसद में अभिभाषण करने की शक्ति दी गई है। राष्ट्रपति को संसद द्वारा पारित विधेयक को अनुमोदित करने की शक्ति दी गई है। **अनुच्छेद 331** में राष्ट्रपति लोकसभा में प्रर्याप्त प्रतिनिधित्व के अभाव में एंग्लो-इंडियन समुदाय के अधिकतम दो सदस्यों को मनोनीत कर सकते हैं। राष्ट्रपति संसद के समक्ष बजट पेश करते हैं। वह महालेखा परीक्षक वित आयोग, संघलोकसेवा आयोग, अनुसूचित, आदिम और पिछडी जातियों के विशेष अधिकारी और भाषायी अल्पसंख्यकों के विशेष अधिकारी के प्रतिवेदनों को भी संसद के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। नए राज्यों के निर्माण, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तित करने, धन विधेयक, व्यापार की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन आरोपित करने को पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति की पूर्वानुमति आवश्यक है। राष्ट्रपति को, पारित विधेयक पर अनुमति देने तथा पुन: विचार के लिए लौटाने और अनुमति न देने की शक्तियाँ दी गई है। वह धन विधयेक को पुन: विचार के लिए नहीं लौटा सकता, उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति बाध्यकर होती है। राष्ट्रपति राज्य विधान मण्डल द्वारा प्रेषित पुनर्विचारित विधेयक को भी अनुमति देने से इकार करने की शक्ति रखता है ऐसी स्थिति में विधेयक समाप्त हो जाता है। **अनुच्छेद 123** में राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने की शक्ति दी गई है। प्रतिरक्षा बलों का सर्वोच्च समादेश राष्ट्रपति में निहित होता है। इसका प्रयोग वह संसद द्वारा बनाई गई विधि के तहत ही कार्य करता है। राष्ट्रपति पर निषेधाधिकार के प्रयोग करने की पूर्ण, निलम्बनकारी और जेबी वीटो की शक्ति दी गई है। धन विधेयक पर दोनों सदनों की असहमति की अवस्था में राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त अधिवेशन बुला सकते हैं। राष्ट्रपति से अनपूरक बजट, तथा व्यय सम्बन्धी विधेयक में संसद में प्रस्तुत करने से पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य किया गया है।

4.3.3 अध्यादेश-शक्ति

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 123,213 तथा 239 (ख) में क्रमश: राष्ट्रपति, राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के राज्यपाल एवं उपराज्यपालों को जब संसद या विधानसभा का अधिवेशन नहीं हो रहा हो तो इस विश्रान्तिकाल के दौरान अध्यादेश जारी करने का अधिकार अथवा शक्ति दी गई है। इन अध्यादेशों को संसद व विधानसभा द्वारा पारित किए गये अधिनियमों के समान ही मान्यता एवं प्रभाव प्राप्त होने की व्यवस्था की गई है। ये अध्यादेश विधानपालिका के अधिवेशन प्रारम्भ होने के 6 सप्ताह बाद तक लागू रहेंगे लेकिन संसद/विधानसभा चाहे तो इस अवधि के पूर्व भी इन अध्यादेशों को समाप्त किया जा सकता है। संसद/विधानसभा सत्र प्रारंभ होने के 6 सप्ताह के अदर यदि संसद/विधानसभा द्वारा अध्यादेश का अनुमोदन नहीं हो पाता है तो अध्यादेश संसद के प्रारंभ होने के 6 सप्ताह पश्चात् समाप्त हो जायेगा। अध्यादेश जारी करने की शक्ति राष्ट्रपति/राज्यपाल के वैयक्तिक समाधान पर आधारित है। न्यायालय, अध्यादेश जारी किये जाने के कारणों की जाँच नही कर सकते है। आर. के गर्ग बनाम भारत संघ व अन्य सन् 1981 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 123 के संदर्भ में कहा है कि अनुच्छेद 123 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करने की शक्ति संसद की शक्ति के साथ सहविस्तारी है। अध्यादेश को नैतिकता के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है। किन्तु आक्षेपित अध्यादेश को अस्पष्टता, मनमाने प्रयोग, युकायुक्तता और जनहित के आधार पर चुनौती दी जा सकती है। राष्ट्रपति, राज्यपाल अध्यादेश जारी करने की अपनी शक्ति का प्रयोग मंत्री परिषद की सलाह पर करता है। राष्ट्रपति/राज्यपाल का वैयक्तिक समाधान मंत्रीपरिषद का समाधान होता है,

क्योंकि मंत्रीपरिषद का अस्तित्व सदैव बना रहता है चाहे लोकसभा/विधानसभा का विघटन क्यों न हो जाए। राष्ट्रपति/राज्यपाल किसी समय अपने द्वारा जारी किए गए अध्यादेशों को वापस ले सकता है। यह अध्यादेश उन्हीं विषयों से सम्बन्धित होता है जिन पर संसद विधानसभा को विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है।

किसी अध्यादेश को लाकर नागरिकों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। अध्यादेश को अनुच्छेद 13 (क) के अधीन विधि माना जाता है। अध्यादेश जारी करने के लिए परिस्थितियाँ मौजूद है या नहीं इसका अंतिम निर्णय राष्ट्रपति/राज्यपाल ही करते है। अध्यादेश कार्यपालिका को सदन नहीं चलने के दौरान आकस्मिक परिस्थितियों से निपटने की राष्ट्रपति/राज्यपाल को शक्ति देता है। इसमें न्यायालय द्वारा किसी विधि के अविधिमान्य घोषित किए जाने से उत्पन्न परिस्थिति भी शामिल की गई है जिसके निपटारे के लिए अध्यादेश जारी किया जा सकता है। अध्यादेश द्वारा कर विधियों में संशोधन परिवर्तन भी राष्ट्रपति को आकस्मिक परिरिथतियो से निपटने के लिए अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है। 38वे संविधान संशोधन अधिनियम 1975 द्वारा अध्यादेश के सम्बन्ध में''राष्ट्रपति के समाधान को अंतिम और निर्णायक माना गया है, जिसको किसी भी आधार पर भारतीय न्यायालयों में चुनौती नहीं दी जा सकती है। न्यायालय राष्ट्रपति से अध्यादेश पारित करने संबंधी उसके वस्तुनिष्ठ समाधान के विषय में जाँच पडताल नहीं कर सकते है। राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा अध्यादेश जारी करने की शक्ति को संसद की विधायनी शक्ति का ही अभिन्न अंग माना जाता है। लेकिन इसका उपयोग केवल आपातकालीन स्थितियों में बहुत ही कम मौकों पर किया जाए। अध्यादेश जारी करने की शक्ति अल्पकालीन होती है। सदनों के सत्र में रहते हुए यदि अध्यादेश जारी किया जाता है तो वह असंवैधानिक अध्यादेश माना जाएगा। लेकिन ऐसी स्थिति में अध्यादेश पारित किया जा सकता है जबकि संसद/विधानपालिका का केवल एक सदन ही सत्र में चल रहा हो। राष्ट्रपति राज्यपाल द्वारा अध्यादेश जारी करने की शक्ति को अनेकों संवैधानिक विधि-वेताओं द्वारा अलोकतांत्रिक बताया है।

अमेरिका और इंगलैण्ड में वहाँ की कार्यपालिका को अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान नहीं की गई है। विश्व की किसी भी लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली में कार्यपालिका को ऐसी शक्ति प्रदन नहीं की गई है। डी. बाधवा बनाम बिहार राज्य के मामले में 1987 में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने कहा कि 14 वर्षा तक 256 अध्यादेशों को विधानमंडल द्वारा अनुमोदित किए बिना बार-बार जारी करके जीवित रखना'विधानमंडल के विधि बनाने की शक्ति को कार्यपालिका द्वारा अपहरण करना बताया था। जिसे ऐसा नहीं करना चाहिए। अध्यादेश का प्रयोग असाधारण परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिए, बल्कि किसी राजनीतिक उद्देश्य से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। एकेराय बनाम भारत संघ के मामले में सन् 1982 में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश, 1980 को संवैधानिक घोषित किया था लेकिन न्यायालय ने यह अवधारणा पारित की है कि अध्यादेश को संविधान के अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत युकायुक्त वर्गीकरण के सिद्धान्तों के अनुरूप एवं जनहित में समुचित होना जरूरी बताया गया है।

4.3.4. आपातकालीन शक्ति

राष्ट्रपति को निम्न तीन परिस्थितियों में आपातकाल स्थिति उदघोषित करने की शक्ति प्राप्त है, इसे हम संकटकालीन शक्ति के नाम से भी जान सकते है।

1. युद्ध या बाहय आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न आपात स्थिति (अनुच्छेद 352)
2. राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता से उत्पन्न होने वाली आपात स्थिति (अनुच्छेद 356) तथा
3. वित्तीय आपात स्थिति (अनुच्छेद 360)

यदि राष्ट्रपति को यह सुनिश्चित हो जाए कि गंभीर आपात या संकट की स्थिति विधमान है जिससे भारत या उसके राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह अनुच्छेद 352 के अनुसार आपात् की उद्घोषणा कर सकता है और आपात उद्घोषणा के परवर्तीकाल में संघ और राज्यों के बीच राजस्वों के वितरण सम्बन्धी उपबंधों को परिवर्तित कर सकता है। मूल अधिकारों के प्रवर्तन को निलम्बित कर सकता है। अनुच्छेद 356 में राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की स्थिति में आपात् उदघोषणा जारी करने की शक्ति राष्ट्रपति को दी गई है। इसके अलावा अनुच्छेद 360 के अधीन वितीय आपात् के बारे में उदघोषणा जारी करने की शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त है। आपातकालीन अथवा संकटकालीन शक्तियाँ राज्यों के राज्यपालों को प्रत्यक्ष रूप से नहीं दी गई है। राज्यों में सांविधानिक तंत्र के असफल होने की स्थिति के समाधान होने पर ही राज्यपाल अपने प्रतिवेदन को राष्ट्रपति के पास संप्रेषित करते है। आपात्काल में अनुच्छेद 19 के प्रावधान स्वत: निलम्बित हो जाता है। केन्द्रीय सरकार राज्यों को यह निर्देश दे सकती है कि वे अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस रीति से प्रयोग करेंगे। इस समय संसद को राज्यसूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। आपात् से सम्बन्धित उक्त तीनों स्थितियों में'राष्ट्रपति के समाधान' पर विशेष बल दिया गया है। 38वें संविधान संशोधन अधिनियम 1975 के द्वारा राष्ट्रपति के समाधान को अन्तिम और निश्चायक माना गया है जिसे भारतीय न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती है? आपातकाल उद्घोषणा के दौरान भी अनुच्छेद 20 ओर 21 सम्बन्धी मौलिक अधिकारों के निलम्बन नहीं करने की व्यवस्था की गई है। आपात् की उदघोषणा के पश्चात् राष्ट्रपति राज्यपाल में निहित शक्तियों को स्वयं संचालित कर सकता है। इसी प्रकार राज्य विधान मण्डल की विधि निर्माण सम्बन्धी समस्त शक्तियाँ केन्द्रीय संसद द्वारा संचालित की जा सकती है। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा राष्ट्रपति को आपात् उदघोषणा सम्बन्धिंत शक्ति पर निम्न प्रतिबंध लगा दिए गये है :-

1. अनुच्छेद 352 में'आन्तरिक अशान्ति' के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह पदावली का प्रयोग किया गया है। जिससे राष्ट्रपति आन्तरिक अशान्ति की स्थिति में सभी आपात् उद्घोषणा कर सकेगा।
2. राष्ट्रपति द्वारा आपात् की उद्घोषणा तभी की जा सकेती है जब केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा लिखित सूचना प्रेषित कर दी गई हो।
3. संसद द्वारा आपात् उद्घोषणा का एक माह की अवधि के भीतर अनुमोदन करना जरूरी है अन्यथा एक माह बाद आपात् स्थिति समाप्त समझी जायेगी।
4. अनुमोदन के बाद आपात् उदघोषणा का प्रवर्तन 6 माह तक बना रहेगा। 6 माह की अवधि में वृद्धि संसद के अनुमोदन लेने पर ही हो सकती है।
5. संसद के साधारण बहुमत द्वारा आपात् उदघोषणा को समाप्त किया जा सकता है। 44वें संशोधन द्वारा 38वें संविधान संशोधन को भी रद्द कर दिया गया है। अब आपातकालीन घोषणा को न्याय योग्य बना दिया गया है, अर्थात् न्यायालयों में आपातकाल को चुनौती दी जा सकती है। संकटकाल में नागरिक अब अनुच्छेद 20 व 21 के सिवाय मौलिक हकों की रक्षा हेतु न्यायालय की शरण नहीं ले सकेंगे।

42वे संविधान संशोधन 1976 द्वारा अब यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति, मंत्रीमण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य है। अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत अब तक तीन बार संकट काल की घोषणा की गई है। (1) सन् 1962 में भारत पर चीन के (2) सन 1971 में भारत पर पाकिस्तान के आक्रमण की स्थिति में तथा (3) सन 1975 में आपातकाल आन्तरिक अव्यवस्था उत्पन्न होने की आशंका के नाम पर। अनुच्छेद 356 के इन उपबंधों का जनवरी 2003 तक 116 बार प्रयोग किया जा चुका है। पहली बार 1951 में पंजाब में भार्गव मंत्रीमण्डल के पतन के कारण ऐसी उदघोषणा की

गई और अंतिम बार उत्तर प्रदेश में फरवरी 2002 में सम्पन्न विधानसभा चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने पर 8 मार्च 2002 को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। अनुच्छेद 356 तथा सन् 1974 में निहित शक्तियों का प्रयोग संघीय क्षेत्रों हेतु भी किया जा सकता है। सन् 1967 गोवा व मणिपुर में, पाण्डिचेरी एवं मणिपुर में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। अगस्त 2003 में श्रीनगर में सम्पन्न अन्तरराज्यीय परिषद की आठवीं बैठक में यह आम सहमति बनी कि केन्द्र सरकार राष्ट्रपति शासन लगाने के लिए अनुच्छेद 356 को अंतिम उपाय के रूप में ही इस्तेमाल करेगी। देश में अनुच्छेद 360 के तहत आर्थिक संकट लागू करने का अवसर अभी तक नहीं आया है। अनु. 356 अनुसार संकटकालीन स्थिति में राज्यपाल को केवल प्रतिवेदन देने की शक्ति दी गई है।

4.3.5 वित्तीय शक्तियाँ

अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारंभ में संसद के दोनों सदनों के सम्मुख भारत सरकार का उस वर्ष के लिए'वार्षिक-वित्तीय विवरण' अर्थात् आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत करने की शक्ति दी गई है। राष्ट्रपति की आज्ञा के बिना धन विधेयक अथवा वित विधेयक और अनुदान माँगे लोकसभा में प्रस्तावित नहीं की जा सकती हैं। राष्ट्रपति, अनुच्छेद 113 के अन्तर्गत अनुदान की कोई भी माँग प्रस्तुत करते है। अनुच्छेद 115 के अधीन राष्ट्रपति अनुपूरक, अपर या अधिकार अनुदान की माँग के सम्बन्ध में विधेयक प्रस्तुत करते है। राष्ट्रपति की वितीय शक्ति के सम्बन्ध में अनुच्छेद 117 में यह उपबंधित किया गया है कि कोई भी वित विधेयक अथवा संशोधन राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना प्रस्तावित नहीं किए जा सकेंगे। अनुच्छेद 280 में राष्ट्रपति को वित्त आयोग स्थापित करने तथा अनुच्छेद 285 में वित आयोग की सिफारिशों को संसद के सम्मुख प्रस्तुत करने की शक्ति दी गई है। भारत की आकस्मिकता निधि अनुच्छेद 267 पर भी राष्ट्रपति का नियंत्रण होता है। वह आकस्मिक व्यय के लिए इस निधि से धनराशि दे सकता है। इसके लिए बाद में संसद की स्वीकृति आवश्यक होती है। आयकर से प्राप्त धनराशि केन्द्रीय और राज्य सरकारों में बांटने तथा पटसन से प्राप्त होने वाली आय के बदले पश्चिम बंगाल उड़ीसा और बिहार राज्यों को आर्थिक सहायता देने के कार्य भी राष्ट्रपति ही करते है।

इसी प्रकार अनुच्छेद 202 से 207 तक में राज्य के राज्यपालों को वितीय शक्तियाँ प्रदत की गई है। राज्य विधानसभा में राज्यपाल की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई भी धनविधेयक (अनुच्छेद 197 से 199 तक) प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। वह व्यवस्थापिका के समक्ष प्रतिवर्ष अनुच्छेद 202 के तहत आय-व्यय विवरण (बजट) प्रस्तुत करवाता है और उसकी अनुमति के बिना किसी भी अनुदान की माँग (अनुच्छेद 204 से 206 तक) नहीं की जा सकती है। राज्यपाल विधानमण्डल के पूरक, अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदानों की भी माँग कर सकता है। राज्य की संचित निधि राज्यपाल के ही अधिकार में रहती है। इस निधि में से राज्यपाल व्यय कर सकते है और बाद में विधानसभा से यह व्यय स्वीकार हो जाता है। संविधान के अनुच्छेद 266 के अन्तर्गत भारत की संचित निधि के बारे में उपबंध किया गया है।

4.3.6 सैनिक शक्तियाँ

राष्ट्रपति भारत की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति होता है। अनुच्छेद 53(2) के अनुसार संघ की प्रतिरक्षा बलों का सर्वोच्च समादेश राष्ट्रपति में निहित होता है किन्तु इस अधिकार का प्रयोग वह कानून के अनुसार ही कर सकता है। प्रतिरक्षा सेवाओं, युद्ध और शांति आदि के विषय में कानून बनाने की शक्ति केवल संसद को प्राप्त है। राष्ट्रपति युद्ध की घोषणा संसद की अनुमति के आधार पर

अथवा संसद की पश्चात् अनुमति के विश्वास के आधार पर ही कर सकेगा तथा प्रतिरक्षा बलों का प्रयोग कर सकेगा। भारतीय राष्ट्रपति की सैनिक शक्तियाँ अमेरिका के राष्ट्रपति से अपेक्षाकृत कम की गई है। भारत की तीन प्रमुख सेनाएं प्रतिरक्षा मत्रालय के अधीन गठित की गई है जिन्हें (1) स्थल सेना, (2) वायु सेना (3) नौसेना या जल सेना कहते है। प्रत्येक सेना का राष्ट्रीय स्तर पर एक सेनापति होता हैं। स्थल सेनापति, वायु सेनापति, एवं नौ सेनापति के ऊपर राष्ट्रपति सर्वोच्च सेनापति होता है। राज्यपाल को सैनिक शक्तियाँ प्रदत्त नहीं की गई है।

4.3.7 कूटनीतिक शक्तियाँ

इसे हम राजनयिक शक्ति भी कह सकते है। भारतीय संघ का वैधानिक प्रमुख होने के नाते राष्ट्रपति वैदेशिक क्षेत्र में भारत का प्रतिनिधित्व करता है, वह विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों व राजनेयिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है और विदेशों के राजदूत एवं राजनेयिक प्रतिनिधियों के प्रमाण पत्रों को स्वीकार करता है। विदेशों से सन्धियां और समझोता भी राष्ट्रपति के नाम से किए जाते है। यद्यपि इन समझौतों के सम्बन्ध में पहल मंत्रियों के हाथ में रहती है। और इसकी संसद से पुष्टि आवश्यक होती है। समस्त राजनयिक कार्यवाहियां स्वयं राष्ट्रपति द्वारा या राष्ट्रपति के नाम से सम्पादित की जाती है। सभी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियां राष्ट्रपति के नाम पर की जाती है। संसद द्वारा सभी संधियों का अनुसमर्थन किया जाता है। इसके अभाव में कोई संधि विधिमान्य नहीं होती है। कूटनीतिक अथवा राजनयिक शक्तियाँ राज्यपालों को संविधान के अन्तर्गत प्रदत नहीं की गई है।

4.3.8 निर्वाचन और मनोनयन की शक्तियाँ

भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद में सांसदों की निर्वाचित सूची की अभिपुष्टि राष्ट्रपति करता है तथा राज्य सभा में 12 सांसदों को अनुच्छेद 80(1) (क) के अनुसार साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा में विशिष्ट ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले सदस्यों को मनोनीत करता है। किसी राज्य के राज्यपाल की शक्तियाँ राष्ट्रपति की शक्तियों के समान है। अंतर केवल इतना है कि राज्यपाल को कोई सैनिक, आपातकालीन या राजनैतिक शक्तियाँ प्रदान नहीं की गई है।

4.3.9 क्षमादान की शक्तियाँ

4.3.9.1 संविधान के अनुच्छेद 72 तथा अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत क्रमशः

राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपालों को क्षमादान अथवा न्यायिक शक्तियाँ प्रदान की गई है। क्षमादान एक अनुग्रह है, जिस की माँग अधिकार के रूप में नहीं की जा सकती है। क्षमादान न केवल दण्ड को समाप्त करता है परन्तु दण्डित व्यक्ति को उस स्थिति में ला देता है जैसे कि उसने अपराध किया ही न हो। क्षमदान लेने के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल के समक्ष क्षमादान हेतु सजा काट रहे व्यक्ति की ओर से दया याचिका प्रस्तुत की जाती है। क्षमादान याचिका स्वीकार होने पर ही वह व्यक्ति निर्दोष हो जाता है। अनुच्छेद 72 द्वारा राष्ट्रपति को कुछ अपराधों के सम्बन्ध में दिए गए दंड और दंडादेशों को क्षमा, प्रविलम्बन, विराम परिहार या लघुकरण (Reprieve, Respite, Remission, or Commute) की शक्ति दी गई है। राष्ट्रपति को क्षमादान की शक्ति अनुच्छेद. 72 में निम्नलिखित मामलों में प्राप्त है।

(क) यदि दण्ड अथवा दण्डोदेश सेना न्यायालय ने दिया हो

(ख) दण्ड अथवा दण्डादेश ऐसे विषय से सम्बन्धित विधि के विरूद्ध अपराध है जिस विषय पर संघ कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है

(ग) उन सभी मामलों में जिनमें दण्डादेश मृत्यु दण्डादेश है। राष्ट्रपति अपनी क्षमादान की उपर्युक्त शक्तियों का प्रयोग सदैव मंत्रीपरिषद द्वारा दी गई मंत्रणा अथवा परामर्श के आधार पर ही कर सकेगा। अमेरिकी राष्ट्रपति न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि से पूर्व भी क्षमादान की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। जबकि भारत के राष्ट्रपति को क्षमादान करने की शक्ति न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पश्चात् ही प्रदान की गई है। दुर्गादास बसु ने क्षमादान के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इसके'द्वारा न्यायिक त्रुटियों को दूर किया जा सकता है क्योंकि कोई भी मानवीय व्यवस्था आत्यंतिक रूप से सही नहीं कही जा सकती है। अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्य के राज्यपाल को भी किसी दोषसिद्ध व्यक्ति के दण्ड को क्षमा, प्रविलम्बन विराम, या परिहार करने अथवा दण्डादेश का प्रविलम्बन, परिहार या लघुकरण करने की शक्ति दी गई है।

4.3.9.2 क्षमादान का विषय-क्षेत्र

अनुच्छेद 72 तथा 161 के अन्तर्गत क्रमश: राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपाल को क्षमादान की शक्ति दी गई है। इन अनुच्छेदों द्वारा राष्ट्रपति और राज्यपाल को कुछ अपराधों के सम्बन्ध में दिये गये दंड और दण्डादेशो को क्षमा, प्रविलम्बन, विराम, परिहार और लघुकरण की शक्ति दी गई है। इस अनुच्छेद से सेना न्यायालय अधिकारियों को सेना न्यायालयों व राज्यपाल की अन्य विधि से मिली शक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं माना गया है। वे सम्बन्धित विधि से मिली शक्तियों का प्रयोग कर सकते है। धारा 337(1) दण्डप्रक्रिया संहिता 1973 में क्षमादान से तात्पर्य क्षमादान एक वह अनुग्रह है जिससे दोषसिद्ध व्यक्ति को उसके किए गए अपराध से उसे पूर्णतया दोषमुक्त मानकर निर्दोष मान लिया जाता है। क्षमादान की माँग अधिकार के रूप में नहीं की जा सकती है। यह तो पूर्णतया राष्ट्रपति या राज्यपाल की विवेकीय और न्यायिक शक्ति है। प्रविलम्बन (Reprieve) का अर्थ है मृत्यु दंड का अस्थायी विलम्बन करना जबकि सिद्धदोष व्यक्ति को क्षमादान के लिए या दण्डादेश के लघुकरण के लिए राष्ट्रपति को आवेदन देना होता है। विराम (Respite) का तात्पर्य किन्हीं विशेष कारणों से दण्ड को कम कर देना। जैसे गर्भवती स्त्री के मृत्यु-दण्डादेश को साधारण कारावास के दण्ड में बदल देना या इसके अन्तर्गत व्यक्ति का दंड कम भी किया जा सकता है तथा उसकी प्रकृति को भी बदला जा सकता है। परिहार (Remission) का मतलब है कि दण्डादेश की मात्रा को उसकी प्रकृति में परिवर्तन किए बिना कम कर देने से है जैसे एक वर्ष के कारावास के दण्ड को घटा कर 6 माह कारावास का कर देना और लघुकरण (Commute) धारा 222 दण्ड प्रक्रिया संहिता का तात्पर्य है एक के बदले में दूसरा दण्ड देना अर्थात् बड़े दण्ड को कम करना जैसे कठोर कारावास को साधारण कारावास में बदलना। क्षमादान का प्रयोग परीक्षण सें पूर्व उसके दौरान और उसके पश्चात् सभी स्थितियों में किया जा सकता है। भारत का राष्ट्रपति और राज्यपाल क्षमादान शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा दोषसिद्धी करने के पश्चात् ही कर सकता है। अमेरिका में राष्ट्रपति केवल अमेरिकीय फेडरेशन (केन्द्र) के विरूद्ध किए गए अपराधों को क्षमा कर सकता है और वह परीक्षण के दौरान और परीक्षण के पश्चात् तीनो स्थितियों में क्षमादान शक्ति का प्रयोग कर सकता है। क्षमादान निरपेक्ष भी हो सकता है और सशर्त भी हो सकता है। क्षमादान करने के बाद कोई व्यक्ति दोषमुक्त एवं निर्दोष माना जा सकता है।

4.3.9.3 क्षमादान के उद्देश्य

इस शक्ति के प्रदान करने के उद्देश्य और आवश्यकता के संबंध में के.एम. नानावती बनाम मुम्बई राज्य के मामले 1960 में बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने बहुत ही अच्छे

शब्दों में कहा कि'क्षमा की शक्ति न्यायपालिका से भिन्न अन्य प्राधिकारी में निहित करने की जरूरत सदैव से अनुभवित की जा रही है। न्यायाधीश केवल न्यायिक दृष्टि से देखता है और सिवाय उन तथ्यों के जो न्यायिक तरीके से उनके समय पेश किए जाते है, उन्हें कुछ पता नहीं। उन्हें कानून के अनुसार ही काम करना होता है।'कानून कभी इतना कठोर हो सकता है कि उसकी कठोरता कम करने की जरूरतें न्याय के हित में हो सकती है। जैसे धारा 397 भारतीय दंड संहिता में कुछ अपराधों के लिए न्यूनतम दण्ड निर्धारित किया गया है। इसमें न्यायाधीश कम दण्ड नहीं कर सकता है।

कभी-कभी न्यायपालिका द्वारा की गई गलती को ठीक करने का कोई तरीका होना चाहिए। इसलिए राज्यपाल को क्षमा व दया शक्ति प्रदान करने की बुद्धिमता पर संदेह किया जा सकता है। यह शक्ति भी व्यापक क्षेत्र में होनी चाहिए, क्योंकि उन सब परिस्थितियों का जहाँ इसका उपयोग होना है पहले से ही सोच लेना संभव है अत: यह शक्ति वास्तव में न्याय की सहायता के लिए है। बाद में 1961 में इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मुम्बई के राज्यपाल के निलम्बन के आदेश को अवैध घोषित कर दिया था और न्यायालय ने यह पारित किया है कि अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल की दण्ड को निलम्बित करने की शक्ति उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन बनाए गए नियम के अधीन है जिसके अनुसार उच्चतम न्यायालय में अपील करने पर अभियुक्त को पुलिस हिरासत में रहना जरूरी बताया है। न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने श्रीकृष्णा गाउद बनाम आन्द्रप्रदेश राज्य के मामले 1976 में सर्वोच्च न्यायालय में अपने दिए गए फैसले में कहा कि'क्षमादान की शक्ति ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह (प्रभुसतात्मक) है, राजनैतिक दृष्टिकोण से यह अवशिष्ट शक्ति है वह मानवता के दृष्टिकोण से यह'अमूर्त' न्याय सहायता के लिए है जहाँ अंधेरी न्याय प्रक्रिया के परे मानवता के कल्याण के लिए अति सूक्ष्म निर्मित कार्य करते है।'

नानावती वाले मामले में मुख्य न्यायाधीश ने इस संबंध में बताया कि क्षमादान उन बहुत से परमाधिकारों में से एक है जो अति प्राचीनकाल से प्रभुसता में निहित माना गया है। चाहे यह प्रभुसता कही भी अर्थात् बादशाह लोकतंत्र या संवैधानिक प्रधान में हो प्रधान न्यायाधीश टैट ने क्षमादान के उद्देश्य को स्पष्ट उजागर करते हुए एक्स पार्टी ग्रोसमैन के मामले में कहा है कि'न्यायिक प्रक्रिया द्वारा दंडित व्यक्तियों की कठिनाइयों को कम करने के लिए राज्याध्यक्ष को इस प्रकार की शक्ति दी जाती है वैसे वह प्रभुसता का भी लक्षण माना जाता है कि वहाँ किसी भी दोषी व्यक्ति को क्षमादान करके दण्ड से मुक्त कर दे। इस तरह क्षमादान के निम्नलिखित उद्देश्य रखे गये है-

1. किसी दण्ड या दण्डादेश से क्षमा, प्रविलम्बन विराम, परिहार या लघुकरण करना है।
2. क्षमादान विवेकीय अनुग्रह है बल्कि अधिकार के रूप में माँग नहीं की जा सकती है।
3. क्षमादान का ध्येय प्रभुसतात्मक, अवशिष्ट शक्ति, अमूर्त न्याय सहायता प्रदान करना है।
4. क्षमादान द्वारा मानवता के कल्याण को निर्मित रखना है।
5. क्षमादान को परमाधिकारों में शामिल करना है।
6. दोषी व्यक्ति को क्षमादान करके न्यायिक दण्ड से मुक्त कराना है तथा
7. क्षमादान के लिए दया याचिका के स्वीकृत होने पर ही दण्डादेश से छुटकारा दिलवाना रहा है।

4.3.9.4 दण्ड या दण्डादेश

किसी व्यक्ति के विरूद्ध सर्वप्रथम पुलिस थाने या सक्षम न्यायालय के समक्ष आरोपित अपराध के लिए प्रथम सूचना प्रतिवेदन (प्राथमिक) या परिवाद-पत्र (इस्तगासा) प्रस्तुत किया जाता है। इसके जाँच ऐजेन्सी अपराध के घटित होने की सत्यता और असत्यता के बारे में अन्वेषण पूरा करने के बाद अंतिम प्रतिवेदन या अरोपपत्र चालान न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। मामला सक्षम विचारण

करने वाले न्यायालय के समक्ष उपार्पित किया जाता है। अभियुक्तगण को न्यायालय द्वारा चालान की प्रतिलिपि दस्तावेजात सहित उपलब्ध करवाई जाती है। इसके पश्चात् न्यायालय द्वारा आरोप विचारित किया जाता है। इसके बाद अभियोजन/अभियोगी पीड़ित पक्षकार की गवाही ली जाती है। मुलजिमान की तरफ से बचाव में गवाह परीक्षित करवाए जाते हैं। इसके बाद लोक अभियोजक और बचाव पक्ष के वकीलों द्वारा लिखित या मौखिक रूप में अंतिम बहस की जाती है। न्यायिक दृष्टांत, दस्तावेजी गवाह, तर्क अपने पक्षकारों के हित/बचाव में वकील पेश करते हैं और अंत में निर्णय पारित किया जाता है। न्यायालय अपने फैसले में दोषमुक्ति (बरी) या दोषियाँ दोषसिद्धी का आदेश पारित करता है। इसके बाद सजा देते समय दण्ड के विभिन्न सिद्धान्तो को ध्यान में रखकर ही तथा सजा के बिन्दुओं को सुनने के बाद ही न्यायालय द्वारा फैसला दिया जाता है। अपराध में निर्धारित किए गए दंड में से कितने दण्ड/अर्थदण्ड का जुर्माना निर्धारित किया जायेगा यह तय किया जाता है। दण्ड देते समय एक न्यायाधीश/दण्डनायक को 1. प्रतिरोधात्मक सिद्धान्त, 2. प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त, 3. निरोधात्मक सिद्धान्त, 4. सुधारात्मक सिद्धान्त, 5. प्रायश्चित सिद्धान्त, 6. निर्दोषिता का सिद्धान्त तथा 7. संदेह से परे साबित करने का सिद्धान्त आदि को ध्यान में रखना होता है।

किसी व्यक्ति को किसी अपराध में दोषसिद्ध साबित होने पर दण्ड दिया जाता है। इस तरह अंतिम आदेश देने तक तीन प्रक्रियाएँ मुख्यतया पूरी की जाती है।

(1) विचारण/अन्वीक्षा (Trial) न्यायालय में दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य (गाहना और दस्तावेजात) पेश करना

(2) निर्णय (Judgement) दोषी या निर्दोषी बताना साभ्य पर विचार करके न्यायालय अपना निर्णय उद्घोषित करता है या तो वह व्यक्ति दोष सिद्ध होता है या वह निर्दोष साबित होकर दोष मुक्त हो जाता है। जब दोषसिद्ध होता है तो दण्ड का भागी होता है और उसे संक्षेप में दण्डित करना कहा जाता है।

(3) दण्डादेश (Sentence) सिद्धदोष होने पर दण्ड की प्रकृति का आदेश दिया जाता है जैसे कारावास (सश्रम या सादा) मृत्युदण्ड जुर्माना या इनके स्थान पर परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है। इसे ही दण्डादेश कहते है। क्षमादान में अन्तिम दोनों प्रकार के मामलों में (दण्ड व दण्डादेश) राज्य सत्ता द्वारा हस्तक्षेप करने की शक्ति दी गई है। जबकि केवल दण्डादेश के प्रकार में हस्तक्षेप किया जाता है, तो उनका निलंबन, परिहार या लघुकरण किया जाता है, इसमें दोष बना रहता है। केवल दण्ड के प्रकार पर प्रभाव पड़ता है। जब दण्ड में हस्तक्षेप किया जाता है तो इससे दोषसिद्ध का स्वरूप बदलता या समाप्त हो जाता है।

4.3.9.5 दण्ड का क्षमादान:-

भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 53 में दण्डों के प्रकारों के बारे में बताया गया है। दण्ड दोषसिद्ध साबित हुए दोषी व्यक्ति को निम्न प्रकार से दण्ड दिया जा सकता है (1)मृत्यु दण्ड (2) आजीवन कारावास (3) कालेपानी/निर्वासन को 1949 में हटा दिया (4) कारावास (सश्रम व सादा) (5) समपहरण सम्पत्ति का तथा अर्थदण्ड (जुर्माना) में निम्न चार प्रकार से हस्तक्षेप करने का प्रावधान किया गया है।

4.3.9.5.1 क्षमा (Pardon):-

इसके बारे में दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 337(1) में क्षमादान के बारे में बताया गया है। क्षमादान से वह व्यक्ति उस अपराध से ही दोषमुक्त मान लिया जाता है जिसमें वह दोषी

माना गया था। सरतचन्द्र बनाम खगेन्द्र नाथ के मामले 1961 में सर्वोच्च न्योयालय ने कहा कि इंग्लैंड तथा भारत दोनों देशों में निर्विवाद है कि क्षमादान का प्रभाव यह है कि वह व्यक्ति उस अपराध के दोष से नहीं वरन् अपराध से होने वाले सब परिणामों जैसे अनर्हताओं इत्यादि से मुक्त हो जाता है। क्षमादान प्राप्त किए गए व्यक्ति को फिर भी उसी अपराध में दोषी कहना एक प्रकार से उसकी मानहानि कुडिंगटन बनाम विलिफन्स (1615) के मामले में व्यक्त की है। उसके खिलाफ उसी अपराध जिसमें उसे क्षमादान मिला है, के लिए दुबारा अभियोग नहीं चलाया जा सकता है। क्षमादान सशर्त होने की अवस्था में शर्त लगाने से पूर्व सम्बन्धित व्यक्ति की सहमति लेना आवश्यक है, लेकिन शर्तरहीत क्षमादान होने पर सम्बन्धित व्यक्ति की सहमति लेना जरूरी नहीं माना गया है।

4.3.9.5.2 प्रविलम्बन व विराम (Reprieve and respite):-

यह दोनों शब्द सामान्यतया एक ही प्रभाव की ओर इंगित करते है इनसे दण्डादेश का कार्यान्वयन कुछ काल के लिए स्थगित हो जाता है। प्रविलम्बन का तात्पर्य उस विधिक प्रक्रिया से है जब मृत्युदण्डादेश की क्रियान्विति को तब तक के लिए रोक दिया जाता है जब तक कि किसी व्यक्ति द्वारा क्षमादान या दण्डादेश के लघुकरण के लिए आवेदन पर कोई निर्णय नहीं लिया गया हो। नानावती मामले में मुख्य न्यायाधीश ने यही कहा कि प्रविलम्बन एक प्रकार से दण्डादेश के कार्यान्वयन को कुछ काल के लिए वापस लेना होता है, अर्थात् उसका कार्यान्वयन निलम्बित रहता है। विराम (Respite) का भी यही तात्पर्य है सजा को स्थिगित किया जाना कहा जाता है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में दण्डादेश के क्रियान्वयन को रोकने से है। जैसे दोषसिद्ध व्यक्ति का पागलपन एवं गर्भावस्था आदि। दण्ड के परिप्रेक्ष्य में यह शब्द असंगत है ये तो दण्डादेश के सम्बन्ध ही उपयुक्त है।

4.3.9.5.3 परिहार (Remission):-

के बारे में धारा 332(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में प्रावधान किया गया है कि यह भी दण्डादेश के सम्बन्ध में होना चाहिए। इसका तात्पर्य दण्डादेश की मात्रा में कमी करना होता है, दण्डादेश के प्रकार में बदलाव नहीं किया जाता है।"परिहार शब्द स्थिति की ओर संकेत करता है जबकि दण्डादेश की प्रकृति में कोई परिवर्तन किए बिना उसकी मात्रा में कमी कर दी जाती है, यथा एक वर्ष के कठोर कारावास के स्थान पर 6 माह के साधारण कारावास का आदेश प्रसारित करना।

4.3.9.5.4 दंडादेश के बाद क्षमादान के तरीके

इस सम्बन्ध में तीन प्रकार से हस्तक्षेप करने का प्रावधान किये गये हैं:

4.3.9.5.4.1 निलम्बन (Supersion) - इसके अन्तर्गत दण्डादेश का कार्यान्वयन कुछ काल के लिए जैसे अपील की सुनवाई के दौरान या अपील के निस्तारण करने तक (धारा 389 एवं 432 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973) या कारावकाश पर कुछ समय के लिए रिहा/छोड़ देने पर स्थगित कहलाता हैं।

4.3.9.5.4.2 परिहार या छूट (Remission):- धारा 432 दण्ड प्रक्रिया संहिता में यह उक्त दण्ड में वर्णित किया गया है। इसे दण्ड में छूट देना भी कहा जाता है।

4.3.9.5.4.3 लघुकरण (Commute):- धारा 222 एवं 433 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में व्यक्त किया गया है। इसमें लघुकरण का सामान्य अर्थ कठोर सजा का सरलीकरण करने से है जैसे मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में तथा कठोर कारावास को सामान्य कारावास में तथा कारावास के स्थान पर जुर्माने में परिवर्तन करना शामिल है।

4.4 अनुच्छेद 72,161 तथा 142 और 145 की व्याख्या

अनुच्छेद 142 में सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों और आज्ञाप्तियों की प्रभावशीलता तथा ऐसे आदेशों के प्रकटीकरण इत्यादि के बारे में व्यवस्था की गई है। इसी तरह अनुच्छेद 145 में न्यायालय के नियमों इत्यादि के बारे में प्रावधान किया गया है।

के.एम. नानावती मामले में राज्यपाल की अनुच्छेद 161 की शक्ति (जो कि इस अनुच्छेद 72 की शक्ति के समान है।) व सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपील की प्रक्रिया के लिए बनाए गए नियमों में परस्पर विरोध उठाया गया। राज्यपाल ने नानावती को उच्चतम न्यायालय में अपील करने (अनुच्छेद 134 या 136) व उसकी सुनवाई तक उच्च न्यायालय बम्बई द्वारा दिए गए दण्ड को निलम्बित करने का अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत आदेश दिया उधर सर्वोच्च न्यायालय का यह नियम था कि अपील करने वाले व्यक्ति को अपील की सुनवाई से पहले जेल में आत्मसमर्पण करना होगा' जब तक कि उसे जमानत न दे दी जावें। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 161 की शक्ति का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। यह शक्ति बहुत थोड़े क्षेत्र में अनुच्छेद 142/145 में भी है अर्थात् न्यायालय की अपील की सुनवाई के दौरान भी दण्डादेश को निलम्बित करने की अधिकारिता दी गई है। इसलिए यदि किसी क्षेत्र में दो शक्तियाँ कार्य करती है तो समन्वित निर्वाचन के सिद्धान्त को लागू किया जाना चाहिए ताकि आपस में टकराव न हो। अत: जहाँ अनुच्छेद 142 का प्रयोग होता है वहाँ अनुच्छेद 161 का प्रयोग न होना माना जाना चाहिए। इसलिए राज्यपाल का आदेश निरस्त किया गया था। राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय से अनुच्छेद 143 में सलाहकारी शक्ति भी दी गई है।

4.5 अनुच्छेद 71,161 तथा धारा 433 का दण्ड प्रक्रिया संहिता में सम्बन्ध व्यवस्थाएं

धारा 433 क में कुछ मामलों में परिहार या छूट या लघुकरण की शक्तियों पर निर्बन्धन लगाने की व्यवस्था की गई है। यह प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता में 1978 के संशोधन द्वारा अन्त: स्थापित किया गया है। जब धारा 432 और 433 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के अधीन किसी व्यक्ति को दिए गए मृत्युदण्डादेश का आजीवन कारावास के रूप में लघुकरण किया गया है, वहाँ ऐसे व्यक्ति को कारावास से 14 वर्ष पूरे किए बिना नहीं छोडने की व्यवस्था की गई है। माडूराम बनाम भारत संघ के 1981 के मामले व अन्य बहुत से मामलों में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 क की संवैधानिकता का प्रश्न उठाया गया। प्रार्थियों की ओर यह कहा गया कि यह प्रावधान अनुच्छेद 161 की व्यापक शक्ति के विरोध में है। जहाँ राष्ट्रपति व राज्यपाल के लघुकरण की शक्ति बिना शर्त मिली है। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इन अनुच्छेदों (72 व 161) द्वारा प्रदत्त शक्ति संवैधानिक है जबकि धारा 433 क कानून से प्रदत शक्ति है। इस कानूनी शक्ति को संसद कम कर सकती है, बदल सकती है, परन्तु संवैधानिक शक्ति को नहीं। अत: धारा 433 क के होते हुए भी राष्ट्रपति या राज्यपाल अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। व कभी भी किसी को क्षमा या उसके दण्ड का परिहार कर सकते हैं। लेकिन यह भी धारित किया गया था कि क्षमादान की शक्ति का प्रयोग निरंकुश या मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है। अत: अपने मार्गदर्शन के लिए कुछ नियम बनाए जा सकते हैं, परन्तु जब तक नियम नहीं बनाए गए हो तो सरकार इस धारा में वर्णित मार्गदर्शक सिद्धान्तों के अनुसार राष्ट्रपति या राज्यपाल को सलाह दे सकती है।

4.6 क्षमादान शक्ति को प्रयोग करने की सीमाएं

क्षमादान शक्ति का प्रयोग करते समय राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के समक्ष कितनी बार दया-याचिका प्रस्तुत कर सकते हैं? इसके लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है। शिवमोहन सिंह बनाम राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 1977 में अपने निर्णय में यह प्रतिपादित किया था कि कोई अपराधी कितनी ही बार दया के लिए प्रार्थना कर सकता है। और राष्ट्रपति के लिए इस बात का कोई प्रभाव नहीं होगा कि पहले सजायाफ्ता की कितनी प्राथनाएं खारिज कर दी गई थी। यह उसी तरह से है जिस प्रकार अपराधी द्वारा कितने ही जमानत प्रार्थनापत्र पेश किए जा सकते है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी आपराधिक अपील (अनुच्छेद 134 फौजदारी अपील) विशेष अनुमति याचिका अनुच्छेद 136 तथा धारा 379 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 को ग्रहण किया तब जाकर अंतिम रूप से सुनवाई करके निर्णय पारित कर दिया जाता है। तो अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेशों में निर्णयों के विरूद्ध पुनर्विलोकन (नजरसानी) याचिका प्रस्तुत की जा सकती है। इसका निर्णय देने के बाद में ही अनुच्छेद 72 के अन्तर्गत क्षमादान के लिए दया-याचिका प्रस्तुत की जा सकती है। पुनर्विलोकन याचिका प्रस्तुत नहीं होने की स्थिति में अपील के फैसले के बाद ही दया याचिका राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है।

4.7 क्षमादान पर सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों की न्यायिक प्रवृत्तियां

क्या क्षमादान की शक्ति न्यायालय द्वारा नियंत्रित हो सकती है?

(1) के.एम. नानावती बनाम मुम्बई राज्य ए.आई.आर 1961 एस.सी. 112 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी की ओर से 1961 में उठाया गया था। अपीलार्थी ने कहा था कि राज्यपाल की शक्ति असीमित है अत: वह न्यायपालिका द्वारा नियंत्रित नहीं की जा सकती है, लेकिन इस बात पर न्यायालय ने कोई मत प्रकट नहीं किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया था कि अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल की दण्ड को निलम्बित करने की शक्ति उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन बनाए गए नियम के अन्तर्गत आती है। जिसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने पर अभियुक्त को पुलिस हिरासत में रहना आवश्यक है। न्यायालय ने राज्यपाल के निलम्बन आदेश को अवैध घोषित कर दिया।

(2) जी.वृष्टा गाउद बनाम आन्ध्रप्रदेश राज्य (1976) 1 एस.सी.सी 157 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यक्त करते हुए कहा कि जनतंत्र में कोई शक्ति उतरदायित्वहीन नहीं हो सकती है। फिर यह मत व्यक्त किया कि हमारे संविधान में दो सीमाएं है, प्रथम सीमा यह है कि"न्यायालय हर क्षेत्र में एक सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व्यक्ति की तरह हस्तक्षेप नहीं कर सकता है इसलिए जहाँ संविधान ने राष्ट्राध्यक्ष को क्षमादान की शक्ति दी है और इस तरह न्यायपालिका द्वारा हस्तक्षेप अपवर्जित किया है, तब सर्वोच्च न्यायालय के लिए हस्तक्षेप करना अनुचित होगा।" दूसरी सीमा सब शक्तियों के प्रयोग के लिए है। प्रत्येक शक्ति चाहे कितने ही बड़े अधिकारी में निहित हो उसे सदभावनापूर्वक प्रयोग किया जायेगा। मनमाने ढंग से प्रयोग तथा राजनैतिक दुर्भावना से प्रेरित नहीं होनी चाहिए इसलिए न्यायालय उत्तरदात्विहीन नहीं है। दयादान की अधिकारिता राज्याध्यक्ष को प्रदत्त की गई है।

(3) मारूराम बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 363 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि क्षमादान की शक्ति का प्रयोग करते समय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 (क) में निहित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर प्रयोग करना चाहिए।

न्यायालय ने कहा कि क्षमादान की शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति मंत्रीमण्डल के परामर्श से करता है।

(4) चन्नूगाडू इन री आई.एल.आर (1955) मद्रास 92 के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने यह धारित किया कि राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की क्षमादान की शक्ति विवेकीय है और इसमें न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं।

(5) उपमहानिरीक्षक बनाम राजाराम ए.आई.आर. 1960 आन्धप्रदेश 259 के मामले में आन्द्रप्रदेश उच्च न्यायालय ने कहा कि राष्ट्रपति क्षमादान की शक्ति का प्रयोग करने पर दया याचिका को खारिज करने से पूर्व उसकी सुनवाई करने के लिए बाध्य नहीं है।

(6) गौडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य ए.आई.आर. 1961 एस.सी.31 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि क्या राष्ट्रपति अपनी शक्ति के प्रयोग करने हेतु नये सिरे से साक्ष्य को परीक्षित कर सकता है? चाहे राष्ट्रपति अपील न्यायालय की तरह नहीं बैठा हो उसकी शक्ति न्यायालय की स्वतंत्रता है। राष्ट्रपति साक्ष्य की गलती को भी सुन सकता है।

(7) सूरत बनाम खगेन्द्र ए.आई.आर. 1961 एस.सी.. 334 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया है कि राष्ट्रपति के ऐसे सभी मामलों पर सभी सुसंगत बातों पर विचार करना चाहिए।

(8) जसवंत बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1967 एस.सी.. 155 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने क्षमादान शक्ति के प्रयोग करने के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

(9) रमईयया बनाम अधीक्षक केन्द्रीय कारागृह ए.आई.आर. 1974 एस.सी.3 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि राष्ट्रपति की क्षमादान की शक्ति के प्रयोग करने के लिए सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए। यह राष्ट्रपति को प्रदत्त न्यायिक विवेकीय शक्ति है।

(10) कृष्ण बनाम आन्धप्रदेश राज्य (1975) यूजे.एस.सी.951 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि राष्ट्रपति की क्षमादान की शक्ति का सहारा लेने के लिए सजायाबी को लिखित में दयायाचिका प्रस्तुत करनी चाहिए। राष्ट्रपति द्वारा मौखिक सुनवाई का अवसर देना विवैकीय है।

(11) हुकम सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1975 पंजाब व हरियाणा 902 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने कहा है कि राष्ट्रपति को क्षमादान की शक्ति संवैधानिक एवं परमाधिकार की तरह है।

(12) मोहिन्द्र सिहं बनाम पंजाब राज्य (1977) एस.सी.सी 1467 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अर्जीदार की लेखयाचिका पर न्यायालय तब तक कोई आदेश या निर्देश जारी नहीं कर सकता है जब तक कि किसी दोषसिद्ध व्यक्ति की क्षमादान प्रार्थना पर राष्ट्रपति द्वारा विचार कर निर्णय नहीं दे दिया गया हो।

(13) शिवमोहन सिंह बनाम दिल्ली प्रशासन (1977) 2 एस.सी.सी.238 के मामले में न्यामूर्ति कृष्ण अय्यर ने यह विचार अभिव्यक्त किया है कि राष्ट्रपति के क्षमादान के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति तब तक कई बार प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर सकता है। जब तक कि उसे प्रलय-दिवस के रोज फांसी नहीं दे दी जाती है।

(14) कुलजीत सिंह रंगा बनाम उपराज्यपाल दिल्ली (1981) एस.सी.सी 107 जो रंगा और बिल्ला के नाम से प्रसिद्ध है। के मामले में न्यायमूर्ति चन्द्रचूड ने अर्जीदार की समावेदन याचिका ग्रहण करते हुए कहा कि अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 में कार्यपालिका को क्षमादान की शक्ति को युक्तियुक्त और उचित रूप से प्रयोग करना चाहिए। अनुच्छेद 72 राष्ट्रपति को क्षमादान

करने का अधिकार प्रदान करता है, लेकिन अधिकार के साथ राष्ट्रपति पर कर्त्तव्य भी अधिरोपित किए गए है। राष्ट्रपति को दयायाचिका खारिज करते समय निश्चित कारण भी बताने चाहिए। राष्ट्रपति ने रंगा और बिल्ला की दया याचिका को खारिज कर दिया था और सर्वोच्च न्यायालय ने दोनों को दिए मृत्युदण्ड की सजा को अनुमोदित कर दिया था।

(15) शेरसिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 774 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र और राज्य सरकारों को यह सुझाव दिया है कि वे अनुच्छेद 72 तथा अनुच्छेद 161 अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 तथा 433 के अधीन क्षमा हेतु दिए गए आवेदनों को यथाशीघ्र निपटाने का प्रयास करें, क्षमादान याचिका को प्राप्त होने की तिथि से 3 माह में निपटा दिया जाए। दया याचिका के निपटारे में विलम्ब होने के कारण न्याय में अवरोध उत्पन्न होने से जनसाधारण का न्यायप्रशासन से विश्वास उठ जाता है। यह मामला जम्मु कश्मीर सरकार ने 8 वर्ष से लम्बित कर रखा था।

(16) हरबंस व उत्तर प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 849 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि क्षमादान में न्यायालयों को पुनर्विलोकन की शक्ति सीमित प्रयोग के लिए दी जाती है। अत: राष्ट्रपति को फैसले पर पुन: विचार करना चाहिए।

(17) केहर सिंह बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1989 एस.सी. 653 यह मामला पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की हत्या का है। इस विनिश्चय में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवधारणा धारित की है कि क्षमादान की राष्ट्रपति की शक्ति का किस रीति से उपयोग किया जायेगा, यह पूर्णतया राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर है। राष्ट्रपति के समक्ष व्यक्तिश: सुनवाई करवाने का अवसर लेने का अधिकार केहर सिंह को नहीं है। न्यायालय इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन नहीं दे सकता है, न ही राष्ट्रपति को यह निर्देश दिया जा सकता है कि वह अपने कथित आदेश के सम्बन्ध में कारण प्रस्तुत करे। राष्ट्रपति के आक्षेपित क्षमादान आदेश का पुन: विलोकन नहीं किया जा सकता है।

(18) पंजाब राज्य बनाम जोगिन्दर सिंह ए.आई.आर. 1990 एस.सी.. 1396 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति के बारे में कहा कि यह राष्ट्रपति की न्यायिक विवेकीय शक्ति है। इसमें न्यायालय तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब राष्ट्रपति या राज्यपाल राजनीति, धर्म, जाति से औतप्रौत होकर दुर्भावना से ग्रसित होकर दया याचिका खारिज या स्वीकार कर लें।

(19) जुमन खाँ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1991) 1 एस.सी.सी 752 इस मामले में अर्जीदार जुमन खाँ ने एक 6 वर्षीय बालिका के साथ बलात्कार करके उसकी निर्मम हत्या कर दी थी। आगरा के सत्र न्यायाधीश ने उसे मृत्युदण्ड दिया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तुत अपील को अमान्य कर दिया। राज्य के राज्यपाल तथा राष्ट्रपति ने क्षमादान की दया याचिका को खारिज कर दिया। गृह मंत्रालय द्वारा पुन: प्रस्तुत क्षमा याचिका को भी राष्ट्रपति ने अक्ट्रबर 1988 में खारिज कर दिया।

(20) स्वर्ण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 1998 एस.सी.. 2026 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया है कि अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल की शक्तियों के विषय मे यह दर्शाया गया है कि यदि आदेश सारभूत तथ्यों को दिखाए बिना दिया गया है तो न्यायिक पुनर्विलोकन हो सकता है। स्वर्ण के मामले में दूधनाथ सिंह को जोगिन्दर सिंह की हत्या का दोषी पाया गया और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उसकी उच्च एवं सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपीलें खारिज हो गई थी। दो वर्षो के अंदर उत्तर

प्रदेश के राज्यपाल ने शेष कारावास का दण्ड माफ कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने राज्यपाल के आदेश को खारिज कर दिया कि राज्यपाल को तात्विक तथ्यों की जानकारी नहीं दी गई थी।

(21) ई. सुधाकर बनाम आन्धप्रदेश सरकार ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 3385 में भी सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 72 राष्ट्रपति और अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल के क्षमादान आदेश की शक्ति का पुनर्विलोकन किया जा सकता है। क्षमादान की शक्ति का प्रयोग राजनीतिक, धर्म और जाति के कारणों से नहीं किया जा सकता है। इस मामले में एक कांग्रेस दल के कार्यकर्त्ता ने तेलगु देशम दल के एक व्यक्ति की हत्या कर दी थी। न्यायालय ने उसे मृत्यु दण्ड की सजा सुना दी थी। आन्धप्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल एस.के. शिन्दे जो संप्रग सरकार में केन्द्रीय उर्जा मंत्री रहे थे एवं वर्तमान में गृह मंत्री है ने उसको क्षमदान प्रदान कर दिया था। क्षमादान को राजनीतिक आधार पर चुनौती देने पर आन्धप्रदेश उच्च न्यायालय ने राज्यपाल के क्षमादान आदेश को अविधिमान्य घोषित कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि कर दी और कहा कि यदि क्षमादान की शक्ति का प्रयोग राजनीतिक, धर्म और जाति के आधार पर किया जाता है तो वह मनमाना और संविधान की अवहेलना होगा इसलिए न्यायालय उसकी विधि मान्यता का न्यायिक परीक्षण कर सकता है :-

क्षमादान आदेश के चुनौती के आधार कारण

न्यायालयों ने यह भी प्रतिपादित किया है कि क्षमादान के आक्षेपित आदेशों को निम्नलिखित आधार पर न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है।

1. यदि आदेश बिना विचार किए पारित कर दिया जाए।
2. यदि आदेश असदमावपूर्ण रूप में दिया जाए।
3. यदि आदेश पूर्णतया: असंगत, विषयेतर आधारों पर पारित किया जाए।
4. यदि आदेश सुसंगत तथ्यों पर विचार किए बिना पारित कर दिया जाए।
5. यदि आदेश मनमाने पन या स्वैच्छाचारिता से दिया जाए।
6. यदि आदेश कपटतापूर्वक प्राप्त कर लिया जाए।
7. यदि आदेश भूलवश पारित कर दिया जाए।
8. यदि आदेश अनुचित कारणों से दिया जाए।
9. यदि आदेश राजनीतिक, धर्म या जाति से प्रेरित होकर दिया जाए।
10. यदि आदेश अवधि असंवैधानिक या अवैधानिक हो जाए।

4.8 अनुच्छेद 72 के खण्ड 2 एवं 3 में की गई व्यवस्था

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 72 के खण्ड (1) के बारे में हम उपर्युक्त अध्याय में इससे पहले ही विस्तार पूर्वक विवेचना कर चुके है। अनुच्छेद 72 के खण्ड (2) के अन्तर्गत सेनाधिकारियों की विभिन्न अधिनियमों में क्षमादान की शक्ति पर कोई प्रभाव इस अनुच्छेद में नहीं है। 1. सेना अधिनियम 1950 (अध्याय- 14) 2. वायु सेना अधिनियम 1950 (अध्याय- 16) तथा नौसेना अधिनियम 1957 (अध्याय- 16) से इस सम्बन्ध में विभिन्न अधिकारियों को शक्ति मिली है। इस अनुच्छेद 72 के खण्ड (3) द्वारा राज्यपाल की भी किसी विधि द्वारा मिली शक्ति को अक्षुण्ण रखा गया है। राज्यपाल को क्षमादान के आदेश देने की शक्ति अनुच्छेद 161 में दी गई है। इसके अतिरिक्त समुचित सरकार चाहे वह प्रादेशिक सरकार हो या केन्द्रीय सरकार को, धारा 432 एवं 433 दण्ड प्रक्रिया

संहिता 1973 में निलम्बन, परिहार और लघु करण की शक्ति दी गई है। ये सरकारें भी राष्ट्रपति और राज्याध्यक्ष अर्थात् राज्यपाल के नाम से इस क्षमादान शक्ति का प्रयोग करती है। यह प्रश्न आन्धप्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया कि अनुच्छेद 72 व 161 में समन्वय कैसे हो सकता है, जिस पर तय किया गया कि जहाँ अनुच्छेद 72 लागू हो वहाँ राज्यपाल अनुच्छेद 161 में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है परन्तु यह न्योचित नहीं है। अनुच्छेद 161 में भी राज्यपाल की शक्ति व्यापक व असीमित है। अत: जहाँ उसके प्रावधान लागू होते है वहाँ वे केवल अपनी प्रदत की गई शक्ति का प्रयोग कर सकते है।

4.9 राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के उपलब्ध विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियाँ

हमारे देश के राष्ट्रपति और राज्य के राज्यपालों को निम्नलिखित विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ प्रदान की गई है। संविधान में राष्ट्रपति को सर्वाधिक गरिमामय व सम्मानजनक स्थान दिया गया है।

1. अनुच्छेद 361 के अन्तर्गत राष्ट्रपति और राज्यपाल को न्यायिक कार्यवाही से वैयक्तिक उन्मुक्ति प्रदान की गई है अर्थात् वे अपने पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्त्तव्यों के पालन में किए गए कार्यो के लिए किसी न्यायालय में उत्तरदायी नहीं होंगे। कोई न्यायालय उनके विरूद्ध किसी प्रकार की रिट, आदेश या निर्देश जारी नही कर सकता है। कोई न्यायालय उन्हें अपने शक्ति के प्रयोग अथवा कर्त्तव्यों के पालन करने या न करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।
2. राष्ट्रपति और राज्यपाल के विरूद्ध उसकी पदावधि में किसी प्रकार की दण्ड कार्यवाही किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण में न तो संस्थित की जायेगी और न ही ऐसी कार्यवाही को चालू रखा जायेगा। उनके विरूद्ध अवमानना की कार्यवाही भी नहीं की जा सकती है।
3. राष्ट्रपति और राज्यपाल को उनकी पदावधि में न तो बंदी बनाया जा सकेगा और न ही कोई न्यायालय उन्हें कारावासित करने के लिए किसी प्रकार की आदेशिका जारी कर सकता है। इस प्रकार उन्हें कारावासित किए जाने से उन्मुक्ति प्रदान की गई है।
4. राष्ट्रपति और राज्यपाल के विरूद्ध कोई दीवानी कार्यवाही तब तक न्यायालय में शुरू नहीं की जा सकेगी जब तक कि प्रथम इस सम्बन्ध में सम्बन्धित पक्षकार द्वारा लिखित सूचना प्रेषित न कर दी गई हो या उनके कार्यालय में न छोड़ दी गई हो और द्वितीय उक्त सूदना प्रेषित किए जाने के बाद 2 माह का समय न बीत गया हो। इस प्रकार राज्यपाल और राष्ट्रपति को न्यायिक उज़किा, आपराधिक कार्यवाही से उन्तुकिा, कारावासित किए जाने से उन्मुक्ति दी गई है, लेकिन दीवानी कार्यवाही में आशिक उम्युक्ति प्रदान की गई है। राज्यपाल को भी राष्ट्रपति के समान ही विशेषाधिकार और उज़कि।यां दी गई है। सातवे संविधान संशोधन अधिनियम 1956 के द्वारा दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक ही राज्यपाल नियुक्त करने सम्बन्धी उपबंध किए गए हैं।

4.10 राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की संवैधानिक प्रस्थिति

4.10.1 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

भारत का राष्ट्रपति, दूसरे देशों के राष्ट्रपति, प्रधान अथवा राष्ट्राध्यक्ष के समकक्ष माना गया है। राष्ट्रपति का पद बहुत महत्वपूर्ण होता है तथा वह निर्वाचित राज्याधिपति होता है। राष्ट्रपति के निर्वाचन में संसद तथा राज्य विधानमंडलों के सदस्य भाग लेते हैं। इसलिए वह केन्द्र और राज्य दोनों

का ही प्रतिनिधित्व करता है। उसको दलगत राजनीति से परे रखा गया है। वह किसी राजनैतिक पार्टी का सदस्य नहीं हो सकता है। राष्ट्रपति संवैधानिक राज्याधिपति होता है। वास्तविक कार्यपालिका शक्ति संसदीय प्रणाली में मंत्री परिषद में निहित होती है। हमारे राष्ट्रपति केवल रबड़ की मोहर के समान बताया गया है। अनुच्छेद 53 मे समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है। जिसका प्रयोग वह स्वयं अथवा अधिनस्थ पदाधिकारियों के माध्यम से करता है। राष्ट्रपति को हमारे संविधान में कार्यपालिका विधायिनी, न्यायिक, वादक, राजनयिक, आपातकालीन, वित्तीय तथा अध्यादेश जारी करने की व्यापक शक्तियाँ दी गई है। लेकिन राष्ट्रपति द्वारा उक्त सभी शक्तियों का प्रयोग केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद को मन्त्रणा के आधार पर किया जाता है। यश्वें संविधान संशोधन कानून 1976 के द्वारा केन्द्रीय मंत्रीपरिषद की मंत्रणाएं बाध्यकारी व्यक्त की गई है। इस प्रकार राष्ट्रपति की व्यापक शक्तियों को मन्त्रीपरिषद द्वारा नियंत्रित किया गया है। भारत का राष्ट्रपति वंशानुगत न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति होता है। इसलिए भारत को गणराज्य घोषित किया गया है। भारत में राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद और विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों के निर्वाचक मण्डल द्वारा परोक्ष रूप से करवाने की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रपति अनुच्छेद 53(1) 75(1) 75(3) के अनुसार ही कार्य कर सकता है।

4.10.2 राज्यपाल की संवैधानिक प्रस्थिति

हमारे संविधान में संघीय शासन की तरह राज्यों की शासन-व्यवस्था में भी संसदीय शासन प्रणाली को प्रतिस्थापित किया गया है। राज्य के राज्यपालों को कुछ विवेकाधीन शक्तियाँ अनुच्छेद 164 में प्रदान की गई है जबकि ऐसी विवेकाधीन शक्तियाँ राष्ट्रपति को नहीं दी गई है। अनुच्छेद 239(2) में राज्यपाल संघ राज्यक्षेत्र का प्रशासक होने से प्रशासकीय कार्य स्वविवेक से करेगा। अनुच्छेद 371 (क) में नागालैण्ड राज्य के लिए विशेष उपबंध बनाए गए हैं। अनुच्छेद 371 (छ) सिक्किम में शांति'और साम्यतापूर्ण प्रकध करने का उत्तरदायित्व राज्यपाल को दिया गया है। छठी अनुसूची के खण्ड 9(2) में आसाम के जनजाति क्षेत्रों के शासन दिया गया है। राज्यपाल को राष्ट्रपति की तरह से (1) कार्यपालिका (2) विधायी (3) वित्तीय (4) न्यायिक और अध्यादेश सम्बन्धी शक्तियाँ दी गई है। राज्यपाल मुख्यमंत्री, मंत्रियों को नियुक्त एवं पदच्युत कर सकता है। विधानसभा का विघटन, राष्ट्रपति के पास विचारार्थ विधेयकों को रक्षित करना, अनुच्छेद 356 में वस्तुस्थिति रिपोर्ट, मंत्री परिषद से जानकारी, विधानमण्डल को संदेश भेजना, मंत्री परिषद के विचारार्थ विषय रखवा सकता है। राज्यपाल राज्य का प्रधान होता है तथा वह भारत में संघीय सरकार का अभिकर्ता या प्रतिनिधि होता है।

4.11 राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान शक्ति प्रयोग में प्रभेद

भारत के संविधान में क्रमश: अनुच्छेद 72 और 161 के अधीन राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपाल दोनों को ही क्षमादान की शक्ति दी गई है। राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान शक्ति में निम्नलिखित अंतर भेद किया गया है-

राष्ट्रपति	राज्यपाल
1. सेना न्यायालय द्वारा दिए गए दंड या दंडादेश की बाबत क्षमता प्रविलंबन, विराम, निलंबन, परिहार, या लघुकरण की शक्ति दी गई है।	1. जबकि राज्यपाल लो सेना न्यायालयों द्वारा दिये गए दंड या दंडादेश के विरूद्ध कोई शक्ति नहीं दी गई है।
2. जहाँ दंड या दंडादेश ऐसी विदी के विरुद्ध अपराध के लिए है जो ऐसे विषय से संबन्धित है जिस पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का	2. जबकि ऐसी विधि के विरुद अपराध के संबंध में जो ऐसे विषय से संबंध है जिसे पर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है,

विस्तार है वहाँ उपर्युक्त शक्ति प्रयोग की जाती सकती है।	राष्ट्रपति की शक्तियों के समान शक्तियां है (मृत्यु दंड देश को छोडकर जिसके लिए नीचे देखिए)
3. उन सभी दशाओं में जहां दंडादेश मृत्युदंड है वहाँ उपर्युक्त सभी प्रकार की शक्ति दी गई है।	3. जबकि मृत्यु दंडादेश की दशा मे क्षमा करने की शक्ति नहीं दी गई है। किन्तु विधि द्वारा यदि निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति प्रदान की गई है तो वह अप्रभावित है।

राष्ट्रपति को निम्नलिखित मामलों में क्षमादान की शक्ति दी गई है : -

1. मृत्यु दंडादेश में क्षमादान करने का प्राधिकार केवल राष्ट्रपति को दिया गया है।
2. सैन्य न्यायालय द्वारा दंड के सभी मामलों में राज्यपाल को इस प्रकार की शक्ति नहीं दी गई है। इस शक्ति का प्रयोग सिर्फ राष्ट्रपति कर सकते है।
3. संघ और समवर्ती सूची के अधीन बनाई गई विधियों के अन्तर्गत अपराध (समवर्ती क्षेत्र की विधियों के बारे में राष्ट्रपति की आधिकारिता राज्यपाल के समवर्ती होगी) दंडादेश के बारे मे पृथक उपबंध किया गया है।

4.12 राष्ट्रपति की निषेधाधिकार (वीटो) शक्ति की औचित्यता

संविधान द्वारा राष्ट्रपति को स्पष्ट निषेधाधिकार की शक्ति प्रदान नहीं की गई है। संविधान के उपबंधों तथा स्थापित परम्पराओं से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रपति को निम्नांकित तीन प्रकार की वीटो शक्तियाँ प्राप्त है -

1. पूर्ण वीटो, 2. निलम्बनकारी वीटो, 3. जेबी वीटो

1. पूर्ण विटो :- जब राष्ट्रपति किसी विधेयक को अनुमति नहीं देता है तो यह कहा जाता है कि उसने पूर्ण वीटो की शक्ति का प्रयोग ऐसे विधेयक पर अनुमति न प्रदान करने के लिए किया है।

2. निलम्बनकारी वीटो :- जब राष्ट्रपति किसी विधेयक के प्रभाव को निलम्बित रखने के लिए अनुमति देने हेतु अपने पास प्रेषित विधेयक को संसद के पास पुनर्विचार के लिए भेजता है तो यह कहा जाता है कि उन्होंने निलम्बनकारी निषेधाधिकार का प्रयोग किया है।

3. जेबी वीटो :- जब राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित करके अनुमति के लिए भेजे गए विधेयक पर न तो अनुमति देता है और न ही उसे पुनर्विचार के लिए वापस भेजता है, तो यह कहा जाता है कि उसने जेबी वीटो का प्रयोग किया है इस वीटो का प्रयोग राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक विधेयक के संदर्भ में किया था। विवादास्पद डाक विधेयक पर राष्ट्रपति ने अनुमति नहीं दी और बस अपने पास रख लिया। यदि राष्ट्रपति अनुच्छेद 111 (ख) के अनुसार विधेयक पर अपनी अनुमति रोक लेता है तो विधेयक नष्ट हो जाता है। राष्ट्रपति अपने निषेधाधिकार का प्रयोग मन्त्रिमण्डल की सलाह के अनुसार ही करता है। भारत में पेप्सु विनियोग विधेयक पर वीटो का प्रयोग किया गया था। जिस पर मन्त्रिमण्डल ने अपनी सलाह दी थी कि उस विधेयक की जरूरत ही समाप्त हो गई। यदि राष्ट्रपति अपने निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करता और विधेयक को सदन के पुनर्विचार के लिए भेज देता है तो वह निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है।

4.13 राज्य के राज्यपालों के प्रदत्त कृत्य एवं शक्तियाँ

प्रस्तावना - किसी राज्य के राज्यपाल की शक्तियाँ राष्ट्रपति की शक्तियों के समान है परन्तु राज्यपाल को राष्ट्रपति के समान कोई सैनिक, आपातकालीन या राजनयिक शक्तियाँ प्रदान नहीं की

गई है। हमारे संविधान के भाग छः के अध्याय एक में अनुच्छेद 153 से 167 तक में राज्यपाल के कृत्यों, शक्तियों एवं कर्त्तव्यों के बारे में विशद विवेचना की गई है। भारत के संविधान ने प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को जो शक्तियाँ प्रदान की गई है उनका उल्लेख इस प्रकार है -

भारत की संघात्मक व्यवस्था में प्रान्तीय शासन व्यवस्था का स्वरुप भी संघात्मक है एवं प्रान्तीय स्तर पर राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख राज्यपाल होता है, जिस की नियुक्ति केन्द्र सरकार की सम्मति से राष्ट्रपति द्वारा नामांकन करके की जाती है। दो या अधिक राज्यों के लिए भी एक ही राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है। (अनुच्छेद 153) यह अपनी कार्यपालिका शक्तियों का उपयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों जिसमें राज्य के मन्त्रीगण भी सम्मिलित है के सहयोग से करता है। राज्यपाल के पद पर वही व्यक्ति नियुक्त किया जा सकता है जो भारत का नागरिक हो तथा 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो(अनुच्छेद 157), राज्यपाल संसद के किसी सदन का या राज्य के विधान मण्डल का सदस्य नहीं रह सकता और न ही लाभ का कोई पद धारण कर सकता है। राज्यपाल पद ग्रहण के पूर्व राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अथवा उसकी अनुपस्थिति में वरिष्ठतम न्यायाधीश के सम्मुख शपथ ग्रहण करता है। अनुच्छेद 159 राज्यपाल का कार्यकाल राष्ट्रपति की इच्छा प्रसाद पर्यन्त पर निर्भर है। राज्यपाल की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए की जाती है। यदि नए राज्यपाल की नियुक्ति नहीं की जाती है और निवर्तमान राज्यपाल भी अपने पद पर निरंतर नहीं रहता है तो कार्यवाहक राज्यपाल की नियुक्ति की जाती है। सामान्यतः कार्यवाहक राज्यपाल के पद पर उस राज्य के उच्चनयलाया के मुख्य न्यायाधीश को नियुक्त किया जाता है। परन्तु अब किसी दूसरे राज्य के राज्यपाल को अतिरिक्त प्रभार देकर रिक्त स्थान पर राज्य का राज्यपाल बनाए जाने की परिपाटी प्रचलन में हो गई है। अनुच्छेद 154 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होती है। राज्यपाल उस राज्य के राज्याधिपति की हैसियत से कार्य करता है। राज्यपालों की नियुक्ति केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की राय से राष्ट्रपति करता है। वह राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करते हैं। राज्यपाल केन्द्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य करते हैं। राज्यपाल राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल होने पर अनुच्छेद 356 के अनुसार राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन पेश करता है। इसके बाद ही राष्ट्रपति उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की घोषणा कर सकते हैं। राज्यपाल राज्य विधान मण्डल के कानूनों पर भी ध्यान रखता है और किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित कर सकता है।

4.13.1 कार्यपालिका शक्तियाँ

राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्य में निहित होती है। अनुच्छेद 154 जिसका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधिनस्थ अधिकारियों द्वारा करेगा। राज्य के समस्त कार्यपालिका कार्य राज्यपाल के नाम से किए जाते है। राज्य की शासन व्यवस्था एवं मंत्रियों में कार्य विवरण हेतु नियमों का निर्माण राज्यपाल ही करता है। राज्यपाल की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत मुख्यमंत्री एवं अन्य मंत्रियों की नियुक्ति अनुच्छेद 163(1) मंत्रीमंडल को अपदस्थ करना, राष्ट्रपति को आपात् घोषणा करने का परामर्श देना, (अनुच्छेद 356) राज्यलोक सुवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यगण की नियुक्त करना अनुच्छेद (316 (1)) राज्यवित्त आयोग का अध्यक्ष एवं सदस्य नियुक्त करना, अनुच्छेद 243 (वाई) है तथा राज्य के महाधिवक्ता अनुच्छेद 165, को नियुक्त करता है।

4.13.2 वित्तीय शक्तियाँ

राष्ट्रपति की भांति, राज्य के राज्यपाल को भी धन-विधेयक तथा वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में कुछ शक्तियाँ और कर्त्तव्य प्रदान किए गए है। राज्यपाल की अनुमति के बिना कोई भी धन-विधेयक

अथवा वित्त विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत नही किया जा सकता है। अनुच्छेद 203(1) राज्य की आकस्मिक (निधि का संचालन राज्यपाल के हाथ में होता है। अनुदान के लिए कोई भी माँग राज्यपाल की सिफारिश से ही की जा सकती है। अनुच्छेद 205 के अन्तर्गत राज्यपाल को राज्य विधानमण्डल से अनुपूरक, अतिरिक्त या आधिक्य अनुदान राशि की माँग करने की शक्ति प्राप्त है। राज्यपाल राज्य का प्रतिवर्ष आय-व्यय विवरण (बजट) अनुच्छेद 202 के अनुसार सदन में पेश करता है। राज्यपाल अब अनुच्छेद 243(1) में राज्य वित्त आयोग का गठन भी करता है।

4.13.3 विधायी शक्तियाँ

अनुच्छेद 168 अनुसार राज्य विधान मण्डल राज्यपाल तथा कुछ राज्यों में दो सदनों और शेष में एक सदन से मिलकर बनेगा। इस प्रकार राज्यपाल राज्य विधानमंडल का अभिन्न अंग है। विधानमंडल से सम्बन्धित निम्न शक्तियाँ राज्यपाल को प्राप्त है -

1. सदस्यों की अनर्हता के विषय में विनिश्चय करना (अनुच्छेद 192)
2. सदनों के अधिवेशन को आहूत करना (अनुच्छेद 174(1))
3. विधान परिषद में सदस्यों के नाम निर्दिष्ट करना (अनुच्छेद 171) वह साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आन्दोलन या सामाजिक सेवा में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभवी व्यक्ति को मनोनीत करता है।
4. सत्रावसान एवं विघटन करना (अनुच्छेद 174)
5. सदनों को सम्बोधित करना (अनुच्छेद 175)
6. वित्तीय सदनों को संदेश भेजना (अनुच्छेद 175(2))
7. वित्तीय मामलों में सिफारिश करना (अनुच्छेद 203(3))
8. विधेयकों पर अनुमति देना अनुच्छेद 200 राज्यपाल को निम्न नियम बनाने की शक्ति दी गई है :-

   अनुच्छेद 166(2) आदेशों और अन्य लिखितों का प्रमाणीकरण।

   अनुच्छेद 166(3) कार्य सुविधा तथा मंत्रियों में कार्य का बँटवारा करना।

   अनुच्छेद 166 (3) विधानसभा तथा विधानपरिषद के सचिवीय कर्मचारियों की नियुक्ति।

   अनुच्छेद 187(3) दोनों सदनों में परस्पर संचार सम्बन्धी नियम

   अनुच्छेद 206 वित्त मामलों की प्रक्रिया सम्बन्धित नियम।

   अनुच्छेद 229(3) उच्चन्यायालय के कर्मचारियों एवं अधिकारियों की नियुक्ति।

   अनुच्छेद 309 राज्य सेवा हेतु कर्मचारियों की नियुक्ति, भर्ती, सेवाशर्त नियम।

   अनुच्छेद 316 राज्य के लोकसेवा आयोग के सदस्यों तथा कर्मचारियों की सेवाशर्त नियम।

4.13.4 अध्यादेश शक्तियाँ

1. राज्य के राज्यपाल को अनुच्छेद 213 खण्ड के उपबंध है कि जिस समय राज्य विधानसभा और विधान परिषद भी है दोनों सदनों के सदन सत्र में न हो।
2. विधान मंडल में पुनःस्थापन हेतु राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी आवश्यक है।
3. राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित करना (अनुच्छेद 200)
4. अध्यादेश 6 माह तक प्रवर्तन में रहेगा। राज्यपाल किसी भी समय अध्यादेश वापस ले सकता है।

5. अध्यादेश को सदन में दो सदन होने पर विधान मंडल और विधान परिषद के समक्ष पेश करेंगे। राज्यपाल की समाधान को न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती है।

4.13.5 आपात शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा राज्य में आपात की उद्घोषणा ऐसी स्थिति में की जा सकती है जबकि राज्यपाल ने अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को यह संकेत देते हुए प्रेषित किया है कि राज्य का शासन तंत्र अपना राज्यकार्य करने में पूर्णतया विफल हो गया है। तथा संवैधानिक दायित्वों को पूरा करने में राज्य प्रशासन पूर्णतया असफल रहा है जब धारा 356 की रिपोर्ट राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को भेजने के बाद समाधान होने पर राष्ट्रपति राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की उद्घोषणा करता है। तब राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका शक्ति का वास्तविक प्रधान बन जाता है। और राज्य में विधानसभा भंग करने का आदेश दे दिया जाता है। आपातकाल के दौरान राज्यपाल केन्द्र की शक्तियों का पुंज बन जाता है। तथा केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त सलाहकार के माध्यम में राज्य के समस्त प्रशासन का संचालन करता है।

4.13.6 प्रकीर्ण शक्तियाँ

राज्यपाल राज्य के लोक सेवा आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन प्राप्त कर उसे समीक्षा के लिए राज्य मंत्रिपरिषद को प्रस्तुत करते हैं। प्रतिवेदन के साथ समीक्षा युक्त प्रलेख दोनों को राज्यविधान मंडल के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु उसके अध्यक्ष को प्रेषित करता है। राज्य का आय व्यय विवरण, राज्य मानवाधिकार आयोग, राज्य महिला आयोग, सम्बन्धित प्रतिवेदन को भी राज्यपाल द्वारा इसी तरह निपटाया जाता है। राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 356 में राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल होने की सूचना राष्ट्रपति के पास भेजने का संवैधानिक दायित्व बताया है। राज्य में सभी निविदाएँ राज्यपाल के नाम से संपादित की जाती है।

4.13.7 क्षमादान या न्यायिक शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद 161 के अनुसार प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह क्षमा, प्रविलम्बन विराम या परिहार अथवा दण्डादेश का निलम्बन परिहार या लघुकरण कर सकता है। इसमें राज्यपाल को आजीवन निर्वासन के दण्ड को क्षमा करने की शक्ति भी सम्मिलित है। राष्ट्रपति को अनुच्छेद 72 में प्रदत्त की गई शक्तियों के समान ही राज्यपाल को क्षमादान शक्ति दी गई है लेकिन राज्यपाल सेना न्यायालय के मामलों तथा मृत्युदण्ड के मामले में कोई शक्ति नहीं रखता है। यह शक्ति तो केवल राष्ट्रपति को ही दी गई है। यद्यपि राज्यपाल को मृत्युदण्ड के क्षमादान करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। किन्तु मृत्युदण्ड के निलम्बन, परिहार, या लघुकरण के मामले में उसकी शक्ति राष्ट्रपति के समान ही दी गई है। राज्यपाल की यह शक्ति सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के अधीन भी है। यदि उच्चतम न्यायालय में किसी दोषसिद्धी के विरूद्ध अपील विचाराधीन है तो राज्यपाल अपनी क्षमादान शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है। राज्यपाल की उक्त शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित होगी जिनके सम्बन्ध में संविधान द्वारा राज्य की कार्यपालिका शक्ति प्रदान की गई है तथा वही के विधान मंडल को विधिनिर्माण की शक्ति प्राप्त है। कमाण्डर के.एम. नानावती बनाम बम्बई राज्य ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 112 का मामला राज्यपाल की न्यायिक शक्तियों के संदर्भ में प्रस्तुत किया जा सकता है। न्यायालय ने अपने निर्णय में यह पारित किया है कि राज्यपाल की क्षमादान की शक्ति उच्चतम न्यायालय द्वारा नियमाधीन होगी।

4.13.8 विवेकाधीन शक्तियाँ

संसदीय प्रणाली का सामान्य नियम यही है कि राज्यपाल को मंत्रि-परिषद की मंत्रणा के अनुसार ही कार्य करना चाहिए, बल्कि अपने विवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अनुच्छेद 163(2) के अनुसार राज्यपाल का स्वविवेक से किया गया विनिश्चय अंतिम होगा, अनुच्छेद 164 में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि कुछ मामलों में संविधान में राज्यपाल से यह अपेक्षा की गई है कि वह स्वविवेक से कार्य करे बल्कि मंत्रिपरिषद की राय से कार्य नहीं करें।

राज्यपाल निम्नलिखित मामलों में विवेकीय शक्तियों का इस्तेमाल करके कार्य करेगा :-

(1) अनुच्छेद 239(2) राज्यपाल जिस राज्यक्षेत्र का प्रशासक भी है वहाँ वह प्रशासन सम्बन्धी कार्य स्वविवेक से करेगा।

(2) अनुच्छेद 371 (क) नागालैण्ड राज्य के बारे में विशेष उपबंध।

(3) अनुच्छेद 371 (च) (छ) सिक्किम में शांति और सम्यपूर्ण प्रबन्ध का विशेष उत्तरदायित्व राज्यपाल को सौंपा गया है।

(4) छठी अनुसूची का खण्ड 9(2) में आसाम के जनजाति क्षेत्रों के शासन का संचालन राज्यपाल अपनी स्वविवेक से करता है। राज्यपाल निम्नलिखित मामलों में भी स्वविवेकीय शक्तियों का इस्तेमाल करता है।

(5) मुख्यमंत्री की नियुक्ति

(6) मंत्री परिषद को पदच्युत करना

(7) विधानसभा का विघटन

(8) राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों को रक्षित करना

(9) अध्यादेश जारी करने के लिए राष्ट्रपति से अनुदेश लेना

(10) राज्य में प्रशासनिक तंत्र विफल होने पर प्रतिवेदन राष्ट्रपति को भेजना

(11) मंत्री परिषद से जानकारी माँगना

(12) विधानमंडल को संदेश भेजना तथा

(13) मंत्रिपरिषद के विचारार्थ कोई विषय रखवाना आदि।

उक्त सभी कार्य राज्यपाल के विवेकाधीन शक्तियों में शामिल किए गए हैं।

4.14 सारांश

राष्ट्रपति और राज्यपाल की क्षमादान या न्यायिक शक्तियों को समझाने से पूर्व हम राष्ट्रपति तथा राज्यपाल को प्रदत्त समाप्त शक्तियों की विवेचना की है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 तथा अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत क्षमादान या न्यायिक शक्ति को वर्णित किया गया है। राज्यपाल राज्यों का तथा राष्ट्रपति केन्द्र सरकार का राज्याध्यक्ष होता है। हमने समस्त प्रकार की शक्तियों को मुख्यतया दो भागों में विभक्त कर समझाने की भरसक चेष्टा की है यथा 1. सामान्यकालीन शक्तियाँ और 2. आपातकालीन या संकटकालीन शक्तियाँ राष्ट्रपति और राज्यपाल को निम्न शक्तियाँ समान- रूप से दी गई है -

1. कार्यपालिका शक्ति
2. विधायी शक्ति
3. वित्तीय शक्ति
4. अध्यादेश शक्ति

5. क्षमादान या न्यायिक शक्ति
6. प्रकीर्णन-शक्ति

इसके अलावा राष्ट्रपति को

1. सैनिक शक्ति
2. कूटनीतिक शक्ति तथा
3. आपातकालीन शक्तियाँ अतिरिक्त प्रदान की गई है।

इसके पश्चात् क्षमादान/न्यायिक शक्ति में दण्ड और दण्डादेश के प्रविलम्बन विराम, परिहार तथा लघुकरण के बारे में बताया गया है। राज्यपाल और राष्ट्रपति की संवैधानिक, स्थिति, न्यायिक शक्ति में अंतर, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों, न्यायिक प्रवृत्तियों तथा निषेधाधिकार (वीटो) शक्ति के बारे में वर्णन किया गया है। और अंत में राज्यपाल की विभिन्न शक्तियों जिसमें न्यायिक शक्ति (क्षमादान) को विशेष रूप से विवेचना की गई। सन् 1960 से लेकर 2006 तक के क्षमादान पर 21 मामलों में प्रतिपादित सिद्धान्तों, तर्कों, विधिक मुद्दों को स्पष्टतः उल्लेखित किया गया है।

4.15 शब्दावली

1. राष्ट्रपतिः- भारत सरकार के कार्यपालिका का प्रधान जो हमारे राष्ट्र का राज्याध्यक्ष होता है (अनुच्छेद 52)
2. राज्यपालः- प्रान्तीय स्तर राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख राज्यपाल होता है। राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है (अनुच्छेद 153)
3. आपातकालः- संविधान के अनुच्छेद 352 से 360 तक राष्ट्रपति को संकटकालीन स्थिति से निपटने की शक्ति दी गई है।
4. अपराधः- ऐसे कार्य या लोप जिससे विधि का उल्लंघन होता है अपराध कहते है।
5. दण्डः- अपराध के बदले में अपराधी को दंड संहिता के अनुसार न्यायालय द्वारा सजा प्रदान करना ही दण्ड है।
6. दण्डादेशः- अपराधी को कानून के अनुसार दोष सिद्ध साबित होने के बाद सजा के बिन्दु को सुनने के बाद समक्ष न्यायालय द्वारा सजा का आदेश देना ही दण्डादेश कहलाता है।
7. अध्यादेशः- जब संसद या राज्य की विधानसभा का सत्र नहीं चल रहा हो और विश्रान्तिकाल चल रहा है। तब राष्ट्रपति या राज्यपाल के द्वारा अनुच्छेद 123 तथा 213 के अन्तर्गत कानून के समान दिया गया आदेश।
8. क्षमादानः- सक्षम न्यायालय द्वारा पारित की गई सजा से मुक्त करना क्षमादान कहलाता है।
9. दोषसिद्धः- अपराधी को सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी साबित होने को दोष सिद्ध कहा जाता है।
10. 10.दोषमुक्तः- अपराध के आरोप को सक्षम न्यायालय द्वारा निर्दोषी साबित होने पर दोषमुक्त/बरी कहते है।
11. अपीलः- इसे हम पुनरावेदन भी कहते है यह विचारण न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध उच्च या उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।
12. विचारण (अन्वीक्षा):- यह सक्षम न्यायालय के समक्ष गवाहों को परीक्षित करवाना तथा दस्तावेजात को प्रदर्शित कराने हेतु सैशन, वारण्ट सम्मन और संक्षिप्त सुनवाई को ही विचारण कहते है।

13. विशेष अनुमति याचिका:- यह उच्च न्यायालय के निर्णय/विनिश्चय के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 136 में दायर की जाती है।
14. पुनर्विलोकन याचिका:- यह भी सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उसके निर्णय के विरूद्ध अनुच्छेद 137 में प्रस्तुत की जाती है।
15. पुन:रीक्षण:- इस हम निगरानी का नाम से जानते हैं यह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 से 401 में सैशन/उच्च न्यायालय के सम्मुख पेश की जाती है।
16. प्रविलम्ब/प्रतिविलम्ब:- अर्थ है मृत्यु दंड को अस्थायी निलम्बन करना जबकि दोषसिद्ध व्यक्ति क्षमादान के लिए या दण्डादेश के लिए राष्ट्रपति को आवेदन देता है।
17. विराम (छूट):- विराम का अर्थ किन्हीं विशेष कारणों से दंड को कम कर देना, जैसे गर्भवती स्त्री एवं पागल व्यक्ति के दण्डादेश की साधारण कारावास के दंड में बदल देना ही विराम कहलाता है।
18. परिहार: परिहार का अर्थ दण्डादेश की मात्रा को उसकी प्रकृति में परिवर्तन किए बिना कम करना जैसे एक वर्ष के कारावास को 6 माह कर देना परिहार कहलाता है।
19. लघुकरण: लघुकरण का अर्थ एक के बदले में दूसरा, अर्थात् बड़े दण्ड को कम करना जैसे कठोर कारावास को साधारण कारावास में बदलने को लघुकरण कहते है।
20. दयायाचिका: दयायाचिका यह सक्षम न्यायालय द्वारा दण्डादिष्ट किन्तु अभियुक्त व्यक्ति द्वारा अनुच्छेद 72 एवं 161 के भारतीय संविधान के अनुसार क्रमश: सर्वोच्च अथवा उच्च न्यायालय के समक्ष क्षमादान के पाने के लिए पेश की जाती है।
21. निलम्बन: निलम्बन दोषसिद्ध व्यक्ति के दण्डादेश को स्थगित करना ही निलम्बन कहा जाता है। यह अपील के दौरान दण्ड का निलम्बन धारा 389 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत किया जाता है।
22. अपराधी: ऐसा कोई कार्य या लोप जो कानून के अनुसार वर्जित हो और सक्षम न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध होने पर अपराधी कहलाता है।
23. अभियुक्त: मुलजिमान का अर्थ उस व्यक्ति से है जिसके विरूद्ध दाण्डिक संहिता या विधि के अनुसार अपराध करने का आरोप लगा हों।
24. परिवीक्षा: अपराधी को परिवीक्षा अवधि में अच्छा व्यवहार करने के लिए सशर्त छोडना परिवीक्षा कहलाता है।
25. कारावकाश (पैरोल): जेल मे 1/4 सजा व्यतीत करने पर सजायाफ्ता व्यक्ति को उसके सदाचरण के आधार पर कुछ दिनों घर जाने के लिए छुट्टी देना पैरोल कहलाता है।

4.15 अभ्यास प्रश्न

1. दण्ड और दण्डादेश के बारे में आप क्या समझते है? राष्ट्रपति एवं राज्यपाल से सम्बन्धित सामान्य प्रावधानों पर प्रकाश डालिए।
2. क्षमादान से आप क्या समझते है यह शक्ति संविधान के अधीन कौन प्रयोग कर सकते है? राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की क्षमादान शक्ति में भेद बताइए।
3. दयायाचिका से आप क्या समझते है यह किसके समक्ष पेश की जाती है तथा कितनी बार पेश की जा सकती है।
4. भारतीय संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति को प्रदत्त विभिन्न शक्तियों एवं कृत्यों को स्पष्ट उजागर कीजिए।

5. भारतीय संविधान के अधीन राज्य के राज्यपालों को दी गई विभिन्न शक्तियों एवं कृत्यों के बारे में प्रकाश डालिए।
6. भारतीय संविधान राष्ट्रपति एवं राज्यपाल को प्रदत्त की गई क्षमादान या न्यायिक शक्तियों के बारे में विवेचना कीजिए।
7. राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के प्रदत्त विशेषाधिकारों एवं उन्मुक्तियों पर निबन्ध लिखिए।
8. क्षमादान पर सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों की न्यायिक प्रवृतियों के बारे में बताइये।
9. राष्ट्रपति और राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति के बारे में प्रकाश डालिए।
   1. क्षमादान आदेश को चुनौती देने वाले विभिन्न आधारों या कारणों को बताइये?

4.16 संदर्भ ग्रंथ

1. 1.भारत का संविधान; महावीर सिंह, प्रथम सं. ईस्टर्न बुक कम्पनी, 1987, लखनऊ (उ.प्र.)
2. भारत का संविधान; प्रो. जी. एस. पाण्डेय, आठवां संस्करण, 2009, मैं यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि., जयपुर (राज0)
3. भारत का संविधान : वी.एन. शुक्ला, पुन: मुद्रित, 2006, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ (उ.प्र.)
4. भारत का संविधान. दुर्गादास बसु, 7वां संस्करण प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया प्रा. लि., नई दिल्ली
5. भारत का संविधान : डॉ. जी. एस. शर्मा, 2006, कमल बुक डिपो, जयपुर।
6. भारत का संविधान; डॉ. जयनारायण पाण्डेय, 42 वां संस्करण, 2009, सेंट्रल ली एजेन्सी, इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश)
7. अपराधशास्त्र एवं दण्ड प्रशासन. डॉ. ना.वि परांजपे, छवां संस्करण, पुन: मुद्रित 2010, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद (उ.प्र.)
8. भारत का संविधान बेयर एक्ट पी.एम. बक्शी 10वां संस्करण 2010, यूनिवर्सलिस लॉ पब्लिशिंग कम्पनी

इकाई - 5

उच्चतम और उच्च न्यायालयों की शक्तियाँ, क्षेत्राधिकार एवं स्वतंत्रताएँ

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ, क्षेत्राधिकार और कार्य

5.3 उच्च न्यायालयों की शक्तियाँ, क्षेत्राधिकार और कार्य

5.4 उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के लेख क्षेत्राधिकार में विभेद

5.5 उत्प्रेषण एवं प्रतिषेध लेख में भेद

5.6 उच्च न्यायालयों के अधीनस्थ न्याय व्यवस्था

5.7 सारांश

5.8 अभ्यास प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के बारे में विस्तारपूर्वक यह जान सकेंगे।
- उच्चतम और उच्च न्यायालयों की रचना, स्थिति, आवश्यकता एवं महत्व को स्पष्ट समझ सकेंगे।
- उच्चतम न्यायालय को संविधान एवं विधानों में प्रदत की गई सभी शक्तियों, क्षेत्राधिकार तथा कार्यो के बारे में आप अवगत हो सकेंगे।
- उच्च न्यायालयों को प्रदत्त किए गए संवैधानिक एवं वैधानिक शक्तियों, क्षेत्राधिकार एवं कृत्यों की आप पूरी जानकारी ले सकेंगे।
- उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों को प्रदत की गई न्यायिक एवं प्रशासनिक शक्तियों के बारे में लाभान्वित हो सकेंगे।
- सर्वोच्च एवं उच्च नयायालयों के विभिन्न अधिकारिता, क्षेत्राधिकारी, जैसे अभिलेखीय आरंभिक, अपीलीय, परामर्शीय पुनरावलोकन, पुनर्विलोकन, पुन:रीक्षण निर्देश तथा विविध अधिकारिता के बारे में जानकार हो सकेंगे तथा हम लेख याचिकाओ के इंकार करने के आधार को जान सकेगें।
- उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों को प्रदत न्यायिक पुर्नविलोकन एवं न्यायिक सक्रियतावाद से आप परिचित हो सकेंगे।
- उच्चतम और उच्च न्यायालयों की लेख अधिकारिता के अन्तर्गत जारी की जाने वाली विभिन्न लेख (समावेदन) याचिकाओं के बारे में विस्तार से हम पढ सकेंगे।
- उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों के लेख क्षेत्राधिकार के प्रभेद को हम जान पाएँगे।
- उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की प्रदत स्वतंत्रताओं से अवगत हो सकेगें।
- अधीनस्थ न्यायालयों, न्यायाधिकरणों, तथा न्यायिक एवं अर्धन्यायिक, प्राधिकारियों के बारे में हम समुचित ज्ञान हासिल कर सकेंगे।

- न्यायपालिका की न्यायिक प्रवृत्तियों के बारे में हम परिचित हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

भारतीय संघीय और राज्य शासन प्रणाली के अन्तर्गत विधानपालिका कार्यपालिका, और न्यायपालिका प्रमुख अंग माने गए हैं। व्यवस्थापिका कार्यपालिका और न्यायपालिका का प्रमुख कार्य क्रमश: कानून बनाना, लागू करना तथा निर्वचन/व्याख्या करने का सौंपा गया है। खबरपालिका (मीडिया) भी शासन तंत्र का चौथा पाया माना गया है। जिसका कार्य समीक्षा करना है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 50 के अन्तर्गत स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका को पृथक् से स्थापित करवाने की व्यवस्था की गई है। हमारे संविधान तथा अन्य बनाई गई विधियों के प्रावधानों को दृष्टिगत रखते हुए ही न्यायपालिका न्याय प्रशासन के द्वारा आम/विशेषजन को न्याय प्रदान करती है। न्यायालयों में न्याय हासिल करने हेतु परम्परागतवाद/लेख अपील/निर्देश/पुनरीक्षण/प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करने होते हैं। जनहित से सरोकार रखने वाली समस्याओं का निदान उच्च एवं उच्चतम न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32,226 एवं 227 के अनुसार स्वप्रेरणा या आवेदन के आधार पर प्रसंज्ञान भी लेते हैं। हमारे संविधान के अनुच्छेद 124 से 147 तक उच्चतम न्यायालय तथा अनुच्छेद 214 से 232 उच्च न्यायालयों एवं 233 से 237 में अधीनस्थ न्यायालयों के बारे में बताया गया है। उच्चतम एवं अधीनस्थ न्यायालयों के गठन, स्थिति, क्षेत्राधिकारिता शक्तियों, कार्यो विशेषाधिकारों तथा न्यायाधीशों की नियुक्ति, अहर्ताएं, पदावधि महाभियोग, वेतन, भत्तों, सुविधाओं, स्थानान्तरण, कार्यकारी, तदर्थ, भूतपूर्व न्यायाधीशों, मुख्य न्यायाधीश तथा प्रतिबंधों के बारे में विवेचना की गई है।

संविधान के अनुच्छेद 323 क एवं 323 ख के अन्तर्गत प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को स्थापित करने संबन्धी व्यवस्था की गई है। भारत का संविधान शासन की संघात्मक व्यवस्था प्रस्तुत करता है। जिसकी मुख्य विशेषता है, संघ और राज्यों के बीच क्षेत्र का बंटवारा करना रहा है। फलस्वरूप इस अधिकार क्षेत्र को लेकर संघ सरकार और राज्य सरकार या राज्य सरकारों में परस्पर विवाद उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे समस्त उत्पन्न होने वाले विवादों का निपटारा सांवैधानिक एवं वैधानिक उपबंधों के आधार पर किया जाता है। प्राकृतिक न्याय की यह सार्वभौम मान्यता है कि राज्यों के पारस्परिक विवादों को एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष प्राधिकरण द्वारा अभिनिर्णीत किये जाने चाहिए। भारत का सर्वोच्च न्यायालय संघीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत इसका अभिन्न अंग होता है तथा इसी तरह राज्यों में स्थित उच्च न्यायालय भी राज्य शासन व्यवस्था के अभिन्न अंग होते हैं। उच्चतम न्यायालय ऐसे विवादों का मध्यस्थ कहलाता है तथा संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का संरक्षक होता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में संभाव्य बहुसंख्यक द्वारा अल्पसंख्यक के अधिकार अतिक्रमण के विरूद्ध अल्पसंख्यकों के हकों का रक्षक है। सर्वोच्च न्यायालय हमारे संविधान तथा नागरिक अधिकारों का प्रहरी है। यह संघात्मक व्यवस्था का रक्षक कहा जाता है। यह संविधान के उपबंधों एवं देश की सामान्य विधि का सर्वोच्च एवं अंतिम निर्वाचक है। यह दण्डात्मक और व्यावहारिक मामलों का सर्वोच्च एवं अंतिम अपीलीय न्यायालय है। उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित निर्णय विधि भारत-राज्य क्षेत्र के सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होती है।

भारत के राज्य क्षेत्र के सभी व्यवहार एवं न्यायिक अधिकारी सर्वोच्च न्यायालय की सहायतार्थ कार्य करते है। यदि व्यवस्थापिका, कार्यपालिका या अन्य कोई सत्ताधिकारी नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं में किसी प्रकार का हस्तक्षेप/स्वेच्छा धारिता करती है तो उच्चतम एवं उच्च न्यायालय क्रमश: अनुच्छेद 32 एवं 226 के अन्तर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण समावेदन (लेख) याचिका में आदेश निर्देश जारी कर नागरिक के हकों की रक्षा करते हैं। इस प्रकार संविधान के संघात्मक व्यवस्था तथा मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में उच्चतम न्यायालय

सर्वाधिक महत्वपूर्ण, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष शीर्षस्थ संवैधानिक न्यायिक संस्था है। उच्च न्यायालयों द्वारा लेख याचिकाएँ मूलाधिकारों एवं अन्य विधिक सांविधिक हकों के अतिलंघन होने की अवस्था में जारी की जाती है। रिट जारी करने के मामलों में उच्चतम न्यायालय की निस्पद उच्च न्यायालयों को व्यापक असाधारण क्षेत्राधिकार आहूत किया गया है। न्यायपालिका पर आमजन को न्याय दिलवाने के प्रति आज भी पूर्ण आस्था और विश्वास देखी जा सकता है। पीड़ित तथा जरूरतमंद व्यक्ति को समुचित न्याय दिलवाना भी न्यायिक आस्था का प्रतीक माना जाता है। इसी कारण सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों की स्थापना की आवश्यकता पडी है तथा इनका महत्व लगातार बढ रहा है।

5.2 उच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ, क्षेत्राधिकार और कार्य

सर्वोच्च न्यायालय हमारे देश का उच्चतम न्यायालय है। मूलरूप से प्रारंभ में सर्वोच्च न्यायालय के लिए एक मुख्य न्यायाधीश तथा 7 अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई थी और संविधान के द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार, न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते या सेवा शर्तें निश्चित करने का अधिकार संसद को, दिया गया था। संसद के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में सन् 1960, 1977,1965 तथा 2008 में सर्वोच्च न्यायालय न्यायाधीशों की संख्या संशोधन अधिनियमों द्वारा क्रमश: एक मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की संख्या की गई है। 13,17, 27 और 30 हैं। सर्वोच्च न्यायालय का मुख्यालय सिर्फ नई दिल्ली में स्थापित किया गया है। मुख्य न्यायाधीश, राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेकर दिल्ली के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर सर्वोच्च न्यायालय की बैठकें बुला सकता है। अब तक हैदराबाद और श्रीनगर में इस प्रकार की बैठकें की जा चुकी है। भारत के संविधान के भाग-5 के अध्याय-3 में अनुच्छेद 124 से 147 तक में सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार शक्तियों, कृत्यों और न्यायाधीशों की स्वतंत्रताओं के बारे में विभिन्न प्रावधान किए गए हैं। सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न क्षेत्राधिकार को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते है।

5.2.1 अभिलेखीय अधिकारिता

संविधान के अनुच्छेद 129 के अधीन उच्चतम न्यायालय को एक अभिलेख न्यायालय का दर्जा दिया गया है। अभिलेखीय न्यायालय के अभिलेखों का अभिसाक्ष्यि मूल्य होता है। ऐसे अभिलेख किसी भी न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत होने पर शंकाओं से परे विश्वसनीय होते हैं। भारतीय संविधान में उच्चतम न्यायालय को उसके अवमान करने वाले को दण्ड देने की शक्ति की व्यवस्था विशेष रूप से की गई है। डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि'अभिलेख न्यायालय वह होता है जिसके अभिलेखों का साक्ष्य की दृष्टि से महत्व हो, अतएव जब उन्हें किसी न्यायालय में प्रस्तुत किया जाये तो उन पर कोई संदेह न किया जा सके।'

5.2.2 प्रारंभिक, समवर्ती या असाधारण अधिकारिता

अनुच्छेद- 32(2) एवं 226(1) में संविधान द्वारा प्रदत मौलिक अधिकारों को लागू करने के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालयों को भी अधिकार प्रदान किये गये हैं। अत: मौलिक अधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित जो विवाद है, वे चाहे तो पहले किसी राज्य के उच्च न्यायालय में और चाहे तो सीधे सर्वोच्च न्यायालय में उप स्थापित किए जा सकते है। उच्चतम या उच्च न्यायालयों के समक्ष निम्न लेख/समावेदन याचिकाएं प्रस्तुत की जा सकती है।

संविधान के भाग-3 में नागरिकों को कतिपय मूल अधिकार प्रदान किए गये है। अनुच्छेद 32 के अधीन मूल अधिकारों के अतिलंघन की स्थिति में उनको प्रवृत कराने के लिए व्यथित व्यक्ति सीधे

ही उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन करने का अधिकार दिया गया है। इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उच्चतम या उच्च न्यायालयों को विस्तृत क्षेत्राधिकारिता दी गई है। इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए वह न केवल बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, अधिकार-पृच्छा, उत्प्रेषण व प्रतिषेध आदि प्रकृति के लेख/समावेदन जारी नहीं करता है। बल्कि अन्य आदेश या निर्देश भी जारी कर सकता है। आपातकाल की घोषणा की अवधि में भारत का राष्ट्रपति पृथक से आदेश जारी कर कतिपय मूलाधिकारों का निलम्बन कर सकता है। अब 44वे संविधान संशोधन अधिनियम 1978 के द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई है कि आपात् उद्घोषणा के दौरान भी राष्ट्रपति अनुच्छेद 20 और 21 को निलम्बित नहीं कर सकता है। एतदर्थ, नागरिकों के प्राण और दैहिक स्वतंत्रता सम्बन्धी मूलाधिकार आपातकाल में भी बने रहेंगे। इस प्रयोजन हेतु अनुच्छेद 32 और 226 के अधीन क्रमश: उच्चतम एवं उच्च न्यायालय निम्नलिखित कोई आदेश, निर्देश अथवा समावेदन या लेख याचिका जारी कर सकेंगे।

बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख (writ of habeas corpus) हैबियस का एक लैटिन शब्द है जिसका तात्पर्य हैं हैव दी बॉडी (have the body) अर्थात् निरूद्ध व्यक्ति को सशरीर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करो। इस लेख याचिका का उद्देश्य अवैध रूप से निरुद्ध या गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को रिहा कर शीघ्र उपचार प्रदान करना है। मैग्नाकार्टा (1215) के पूर्व से ही इंग्लैंड में बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख जारी करने की व्यवस्था की गई थी। भारतीय वैधानिक इतिहास में 1774 के चार्टर कानून के बाद उच्च न्यायालय के स्थापना के साथ ही लेख जारी करने का हक किलकता उच्च न्यायालय ने राज्य द्वारा वैयक्तिक स्वतंत्रता के अतिलंघन करने की स्थिति में बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख जारी किया था जिस व्यक्ति को अवैधानिक रूप से बंदी बनाया जाए उसे न्यायालय के समक्ष पेश किया जाए। सन् 1974 से पूर्व अवैध रूप से विरूद्ध या गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को न्यायालय में पेश करना अनिवार्य कर रखा था। सरकार ने कानून सान्याल बनाम जिला दण्डनायक दार्जिलिंग के मामले में सन 1974 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया था कि अब निरूद्ध व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने की जरूरत नहीं है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख स्वयं बंदीव्यक्ति के अलावा भी उसके रिश्तेदार, सम्बन्धी, मित्र, हितैषी, अभिभावक द्वारा भी प्रस्तुत की जा सकती है। यह लेख याचिका आपातकाल के दौरान भी अनुच्छेद 20 एवं 21 में मूल अधिकारों के अतिलंघन होने पर दायर की जा सकती है। यह एक प्रक्रियात्मक लेख याचिका है। बंदी आदेश, विद्वेषपूर्ण भावना एवं बदनीयती से जारी किया गया हो तथा पुलिस द्वारा आधिक्य शक्ति का प्रयोग करके बंदी बनाने पर यह लेख जारी किया जा सकता है। प्रतिवेश लेख सरकार के विरूद्ध जब तक वह कार्यपालक कृत्य कर रही हो जारी नहीं किया जा सकता है। किन्तु किसी प्राधिकारी का कोई प्रशासनिक कार्य न्यायिक कल्प रूप का हो तो प्रतिषेध लेख जारी किया जा सकता है। इस लेख याचिका जारी करने का उद्देश्य यह है कि ऊपर न्यायालयों को अपनी अधिकारिता की सीमाओं में रहने के लिए बाध्य किया जाए। प्रतिषेध और परमादेश के समावेदनो में यह अंतर है कि परमादेश लेख कुछ कार्य करने का समादेश करती है जबकि प्रतिषेध लेख नकारात्मक या निष्क्रिय समादेश देती है। परमादेश लेख न्यायिक और प्रशासनिक प्राधिकारियों के विरूद्ध उपलब्ध है। प्रतिषेध और उत्प्रेषण लेख केवल न्यायिक और न्यायिककल्प प्राधिकारियों के विरूद्ध जारी की जाती है। प्रतिषेध लेख ऐसे लोक अधिकारी के विरूद्ध जारी नहीं की जा सकती है, जो न्यायिक कृत्य नहीं संपादित करते हैं।

अधिकार-पृच्छालेख (writ of quq warranto)'अधिकार-पृच्छा' शब्द का शाब्दिक अर्थ है'आपका प्राधिकार क्या है।' जब किसी लोक पद पर किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है अथवा पहले से ही कोई व्यक्ति लगातार उस पद को धारण किए हुए है, जौ वैधरूप से उस पद पर नियुक्त होने

अथवा उस पद की धारण करने की योग्यता नहीं रखता है अर्थात् उस व्यक्ति को वह पद धारण करने का वैध अधिकार प्राप्त नहीं होता हैं, तो कोई भी व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष अधिकार-पृच्छा लेख जारी करने के लिए लेख याचिका प्रस्तुत कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति के स्वयं के किसी मूलअधिकार का हनन हुआ है तो वह सीधे अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह लेख याचिका पेश कर सकता है। यदि याची ने सारवान तथ्य प्रस्तुत नहीं किए है अथवा छिपाए हैं तो अधिकार पृच्छा लेख जारी नहीं किया जा सकता है। अधिकार पृच्छा लेख जारी करवाने के लिए निम्नलिखित शर्तो की पूर्ति होना आवश्यक है:-

1. वह लोक पद संविधान के उपबंधों द्वारा या सामान्य विधि के प्रावधानों द्वारा सृजित किया गया होना चाहिए।
2. वह पद लोक प्रकृति का होना चाहिए।
3. वह पद स्वतंत्र प्रकृति का होना जरूरी है।
4. विवादास्पद व्यक्ति द्वारा वह पद धारण किया हुआ होना चाहिए
5. वह व्यक्ति विधिक रूप से उस पद धारण के लिए अयोग्य होना चाहिए।

किसी भी निजी कॉलेज के प्राचार्य का पद लोक पद नहीं होने के कारण इसके विरूद्ध अधिकार-पृच्छा लेख जारी नहीं किया जा सकता है। राज्य के महाधिवक्ता का पद अनुच्छेद 165 के अधीन स्वतंत्र प्रकृति का पद होता है। अधिकार-पृच्छा लेख लोक पदों को हथियाने के विरूद्ध एक शक्तिशाली उपकरण है। अधिकार-पृच्छा लेख किसी अधिष्ठायी लोक-पद या विशेषाधिकार पर कब्जा करने वाले या बलातग्राही के विरूद्ध न्यायिक उपचार है। लोक प्रकृति के पद के अन्तर्गत कोई ऐसा पद आता है जिसमें जनता का हित होता है। अत: लोकपद से प्रभुतासम्पन्न शक्ति का प्रत्यायोजन विवक्षित रूप से होता है। विश्वविद्यालय के सिंडीकेट, प्रबन्ध मंडल के सदस्य, संकाय के अधिष्ठाता और विभागाध्यक्ष पद आदि भी लोकपद में आते हैं। लोक अभियोजक का पद अधिष्ठायी प्रकृति का पद होता हैं और जनता का इसमें अत्यावश्यक हित होने से यह एक लोकपद है। अधिकार-पृच्छा एवं बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख की कार्यवाही किसी भी नागरिक द्वारा प्रारंभ की जा सकती है भले ही वह व्यक्ति नहीं हो। इन लेख याचिकाओं को मंजूर या नामंजूर करना आदि न्यायालयों के विवेकाधिकार में आता है।

उत्प्रेषण लेख (write of certiorari) उत्प्रेषण लेख वरिष्ठ न्यायालय द्वारा अवर अथवा अधीनस्थ न्यायालय अथवा न्यायिक या न्यायिक-कल्प कार्य करने वाले निकायों में प्रारंभ किये गये विभिन्न मामलों की कार्यवाही का अभिलेख वरिष्ठ न्यायालय के पास भेजने के आदेश दिए जाते हैं जिससे उनके निर्णय की पुन: जाँच की जा सके। यदि वे दोषपूर्ण पाये जाते हैं तो उन्हें रद्द कर दिया जाता है। इस लेख को जारी करने का मुख्य उद्देश्य अपर न्यायालय की कार्यवाही को वरिष्ठ न्यायालय द्वारा पुनर्विलोकन करना है। यदि मामला न्यायालय के समक्ष विचाराधा न चल रहा है तो वरिष्ठ न्यायालय द्वारा उसे ठीक करने का आदेश जारी किया जा सकता है और यदि न्यायालय ने इस मामले में अपना विनिश्चय सुना दिया है तो उक्त लेख द्वारा ऐसे विनिश्चय को खारिज/रद्द किया जा सकता है। वरिष्ठ न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय, न्यायिक अथवा न्यायिक कल्प निकायों के विरूद्ध निम्न आधारों पर उत्प्रेषण लेख जारी कर सकते हैं :-

1. यदि क्षेत्राधिकार के अभाव की दृष्टि से कोई त्रुटि रही है।
2. क्षेत्राधिकार के आधिक्य की स्थिति में रही हैं।
3. यदि अधिकारिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं किया गया है।,
4. यदि निर्णय में स्पष्ट या वैधानिक त्रुटि रही है।

5. यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया गया है।

क्षेत्राधिकार का प्रभाव निम्न कारणों से हो सकता है :-

1. विवाद की विषय-वस्तु की प्रकृति के कारण
2. पूर्व कार्यवाही के प्रभाव के कारण
3. न्यायालय का विधिक रूप से गठन न होने के कारण
4. न्यायालय के स्वयं के द्वारा किसी नियोक्ता से ग्रस्त होने के कारण

प्राकृतिक न्याय के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित होते हैं :-

1. कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता है।
2. विवाद के दोनों पक्षकारान को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।
3. केवल वही महत्वपूर्ण नहीं है कि न्याय किया गया है बल्कि न्याय किया हुआ प्रतीत भी होना चाहिए।

इस लेख को जिसके अधिकारों का उल्लघंन कर दिया गया है वहीं लेख याचिका दायर कर सकता है। उत्प्रेषण लेख किसी प्रशासनिक आदेश के विरूद्ध जारी नहीं की जा सकती है।

समावेदन'लेख याचिकाओं के जारी करने की सीमाएं' अस्वीकार करने के आधार - अनुच्छेद 32 और 226 के अन्तर्गत उपचार तभी मिल सकता है जब याची के किसी प्रवर्तनीय अधिकार का अतिक्रमण हो गया हो तब न्यायालय निम्न कारणों या आधारों के पाये जाने पर लेख याचिका को ग्रहण करने से मना कर सकते है।

1. जब सुने जाने (locus standi) का अधिकार जनहित याचिका के सिवाय याची/पीड़ित पक्षकार का नहीं बनता है।
2. जहाँ कोई याची का प्रवर्तनीय अधिकार न बनता हो।
3. जहाँ कोई समावेदन याची ने विलम्ब से उपस्थापित किया हो।
4. जहाँ दायर की गई लेख याचिका कालपूर्व की श्रेणी में शामिल हो।
5. जहाँ बंदी प्रत्यक्षीकरण समावेदन याचिका के अलावा पूर्वन्याय का सिद्धान्त अर्थात यदि पहले से याचिका उन्हीं पक्षों के बीच अंतिम निर्णीत कर दी गई हो।
6. जहाँ याची ने अपने लेख में सारवान तथ्यों को छिपा दबा दिया हो।
7. जहाँ समावेदन याचिका दायर करने वाला उद्देश्य/उपचार निष्फल हो गया हो।
8. जहाँ याची ने न्यायालय के सका तुच्छ याचिका पेश की हो।
9. जहाँ याची ने अपनी लेख याचिका में भ्रान्त धारण पैदा की हो।
10. जहाँ याची को उच्चतम/उच्च न्यायालय के समक्ष आने से पहले विधि के अनुसार वैकल्पिक उपचार उपलब्ध हों।
11. जहाँ याचिका तंग करने, अनुचित विलम्ब उत्पन्न करने, या असदभावनापूर्ण आशय से प्रेरित होकर दायर की गई हो।
12. जहाँ याचिका निर्वाचन सम्बन्धी विवाद उत्पन्न होने पर दायर की हो।
13. जहाँ लेख याचिका पक्षकारों के अवैधता में रहते दायर की हो।
14. जहाँ लेख याचिका पक्षकारों में किसी संविदा की शर्तें के अनुरूप दायर नहीं की गई हो तथा
15. जब पक्षकारों के आग्रह करने पर या अन्य न्यायालय को क्षेत्राधिकार हासिल हो उक्त सभी कारण या आधार मौजूद होने पर उच्चतम या उच्च न्यायालय कोई भी लेख याचिका को ग्रहण करने से इंकार कर सकता है।

अनन्य/आरंभिक अधिकारिता (अनुच्छेद 131) उच्चतम न्यायालय को निम्नलिखित मामलों के विचार एवं विनिश्चय करने के लिए आरंभिक क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। उच्चतम न्यायालय के प्रारंभिक एकमेव क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निम्न विषय आते है-

1. भारत सरकार, तथा अन्य राज्य सरकारों या राज्यों के मध्य में उत्पन्न विवाद, या
2. भारत सरकार, संघ का कोई राज्य सरकारों या राज्यों तथा एक या अधिक राज्यों के बीच उत्पन्न हुए विवाद
3. दो या दो से अधिक राज्य सरकारों के बीच संवैधानिक विषयों के संबंद में उत्पन्न कोई विवाद। प्रारंभिक एकमेव अधिकारिता से आशय उन विवादों से है जिनकी सुनवाई केवल भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा की जा सकती है। अनुच्छेद 131 में संघ या राज्यों या राज्यों के बीच न्याय विवादों के निर्णय का प्रारम्भिक तथा एकमेव क्षेत्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा गया है।

5.2.3 अपीलीय अधिकारिता (अनुच्छेद 132-138)

उच्चतम न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार के साथ-साथ संविधान ने अपीलीय क्षेत्राधिकार भी प्रदान किया और यह भारत का अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। उसे समस्त राज्यों एवं केन्द्र शासित राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरूद्ध अपील (पुनरावेदन) सुनने का अधिकार दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार को हम सुविधापूर्वक जानकारी के लिए निम्न पाँच वर्गो में विभाजित कर सकते है -

1. संवैधानिक विषयों में अपीलीय क्षेत्राधिकार।
2. व्यवहार मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार।
3. फौजदारी/आपराधिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार (1) प्रमाण पत्र सहित तथा (2) प्रमाण पत्र रहित,
4. विशिष्ट संघीय मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार तथा
5. विशेष अनुमति से अपीलीय क्षेत्राधिकार व्यक्त किए गए हो।

5.2.3.1 सांविधानिक अधिकारिता (अनुच्छेद - 132)

संविधान के अनुच्छेद 132 के अनुसार यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विवाद में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कानून का कोई महत्वपूर्ण सारवान प्रश्न निहित है। अन्तर्ग्रस्त विधिक प्रश्न सारवान होना चाहिए तथा उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाण-पत्र देना जरूरी है, तो उच्च न्यायालय के निर्णय की अपील सर्वोच्च न्यायालय में दायर की जा सकती है। यदि उच्च न्यायालय ऐसा प्रमाण-पत्र नहीं जारी करता है तो सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह ऐसी अपील दायर करने की अनुमति प्रदान कर सकता है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय को यह विश्वास/समाधान हो जाना चाहिए कि उस विषय में संविधान से सम्बन्धित कोई सारवान महत्वपूर्ण सवाल सम्मिलित है। संविधान का अनुच्छेद 132(1) इस विषय पर निम्न उपबंध प्रस्तुत करता है। इस अनुच्छेद में यह उपबंध किया गया है कि भारत राज्य क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के निर्णय, आज्ञप्ति, या अंतिम आदेश के विरूद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी। अर्थात् किसी उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय आज्ञप्ति या अंतिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी। यदि सम्बंधित क्षेत्राधिकार रखने वाले उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 134 क के अधीन यह प्रमाणित कर दिया जाता

है कि वह उस विषय में संविधान के निर्वचन से सम्बन्धित कोई सारवान विधिक प्रश्न अन्तर्गस्त है चाहे ऐसा निर्णय डिक्री या अंतिम आदेश किसी दीवानी, दांडिक या अन्य कार्यवाही में दिया गया हो।

अनुच्छेद 132(2) में उस स्थिति स्पष्ट का उल्लेख किया गया है जहाँ उच्च न्यायालय द्वारा उक्त प्रमाण-पत्र देने में अस्वीकृति प्रकट की जाती है। अनुच्छेद 132(1) के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है अथवा अनुच्छेद 132(2) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति प्रदान कर दी जाती है। अपील में अनुमति देने का तात्पर्य यह नहीं है कि उच्चतम न्यायालय उस अपील को स्वीकार कर ही लेगा। किसी मामले के अपील योग्य न होने पर उच्चतम न्यायालय में स्वयं पक्षकारों या उच्च न्यायालय के निर्णय से कोई पीड़ित व्यक्ति को दायर करने हेतु अधिकृत किया गया है। यदि किसी एक प्रश्न का निपटारा एक बार उच्चतम न्यायालय द्वारा कर दिया जाता है तो वह फिर सारभूत नहीं रह जाता है। 1978 से पूर्व उच्च न्यायालय का प्रमाण-पत्र जारी करना अत्यन्त अनिवार्य माना जाता था, लेकिन 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा उक्त प्रावधान को निरस्त कर दिया गया था। अंतिम आदेश वह आदेश होता है जो पक्षकारों के अधिकारों का अंतिम रूप से निपटारा करता है। यदि आदेश के बाद भी वह जीवित है अर्थात् अधिकारों का अभी निपटारा किया जाना शेष है तो उसके विरूद्ध अपील नहीं की जा सकती है।

5.2.3.2 दीवानी अधिकारिता (अनुच्छेद 133)

इस सम्बन्ध में मूल संविधान के अन्तर्गत जो व्यवस्था थी उसे 1973 में हुए संशोधन के 30वे संशोधन द्वारा संशोधित कर दिया गया है। इस संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 133 को संशोधित कर धनराशि की सीमा को हटाते हुए अब यह निश्चित कर दिया गया है कि उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में ऐसे सभी दीवानी विवादों की अपील की जा सकेगी, जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा यह प्रमाणित कर दिया जाए कि इस विवाद में कानून की व्याख्या से सम्बन्धित सारपूर्ण प्रश्न अन्तर्वस्तु है। तथा उच्च न्यायालय की राय में उस प्रश्न का उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चय किया जाना आवश्यक है। सिविल प्रक्रिया से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत कोई पक्षकार अपने सिविल अधिकारों के उल्लंघन को न्यायालय के समक्ष चुनौती देता है और जिसके लिए वह प्रतिकर नुकसानी, या कर्जे की अदायगी का अनुतोष पाने का हकदार होता है। उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत लेख याचिका दायर करना सिविल प्रक्रिया होती है। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सिविल अपील निम्न आधारों पर दायर की जाती है:

1. प्रकरण में विधि का सारवान् प्रश्न हो
2. लोकमहत्व का विधिक प्रश्न होना चाहिए तथा
3. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चय होना आवश्यक है।

अनुच्छेद 133 के अन्तर्गत विधि-प्रश्न संविधान के उपबंधों के निर्वचन से सम्बन्धित होना चाहिए, परन्तु अनुच्छेद 133 के अन्तर्गत विधि-प्रश्न सामान्य महत्व का होना चाहिए, संविधान-निर्वचन सम्बन्धी होना आवश्यक नहीं है। जो प्रश्न उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश या पीठ के समक्ष नहीं उठाया गया वह उच्चतम न्यायालय में प्रथम बार नहीं उठाया जा सकता है। संविधान (तीसवां संशोधन) अधिनियम 1972 के पूर्व अनुच्छेद 133 के अधीन उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार अत्यन्त सीमित था संशोधन से पूर्व किसी उच्च न्यायालय से दीवानी मामले में उच्चतम न्यायालय में अपील दायर तभी हो सकती थी जब वह उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता था कि विवाद विषय की राशि 20 हजार रूपये से कम न थी। इस 30वें संशोधन से बीस हजार रूपये या उतनी सम्पत्ति की शर्त हटा दी गई है। अनुच्छेद 133 में प्रयुक्त सिविल कार्यवाही से तात्पर्य ऐसी कार्यवाही से है जिसमें पक्षकार अपने सिविल अधिकारों को प्राप्त करना चाहते हैं।

5.2.3.3 फौजदारी दाण्डिक अधिकारिता (अनुच्छेद- 134)

निम्नलिखित मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा किसी दाण्डिक कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश या दंडादेश के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में दो प्रकार से अपील दायर हो सकती हैं:

5.2.3.3.1 उच्च न्यायालय के प्रमाण-पत्र सहित अपील

5.2.3.3.2 उच्च न्यायालय के प्रमाण-पत्र रहित अपील

5.2.3.3.1 उच्चतम न्यायालय में प्रमाण-पत्र सहित अपील

अनुच्छेद 134 के खण्ड (ग) के अनुसार यदि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 134 (क) (जो 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 के द्वारा जोड़ा गया है।) के अधीन यह प्रमाणित करता है कि यह मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील करनेलायक है, तो उसमें अपील की जायेगी। दाण्डिक विषयों में अपील का प्रमाण-पत्र देने का अधिकार उच्च न्यायालय का एक विवेकाधिकार है किन्तु उच्च न्यायालय अपने विवेकाधिकार है और इसका प्रयोग मान्य और सुनिश्चित सिद्धान्तों के आधार पर, जो इन मामलों को विनियमित करता है और न्यायिक ढंग से किया जाना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 134 क में उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए प्रमाण पत्र उच्च न्यायालय द्वारा देने की व्यवस्था की गई है। इस संशोधन के पूर्व उच्च न्यायालय पीड़ित पक्षकार के आवेदन करने पर ही प्रमाण-पत्र देता था। किन्तु नये अनुच्छेद 134 क के अधीन उच्च न्यायालय अब यदि उच्च न्यायालय उचित समझे तो स्वयं भी प्रमाण-पत्र जारी कर सकता है।

5.2.3.3.2 उच्च न्यायालय की प्रमाण-पत्र रहित अपील

निम्नलिखित मामलों में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर हो सकती है। (क) उस उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति को दोषमुक्ति के आदेश की उलट दिया है। और उसको मृत्यु दण्डादेश दिया है या (ख) उस उच्च न्यायालय ने अपने प्राधिकार के अधीनस्थ किसी न्यायालय से किसी मामले को विचारण के लिए अपने पास मंगवा लिया है और ऐसे विचारण में अभियुक्त व्यक्ति को सिद्धदोष ठहराया है और उसको मृत्युदण्डादेश दिया है। किन्तु उन मामलों में जिनमें उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति को दोषसिद्धि के आदेश को उलट दिया है और उसमें रिहाइ का आदेश दे दिया है, उच्चतम न्यायालय में अपील नहीं की जायेगी यहां'दोषमुक्ति' से तात्पर्य केवल किसी अपराध के दण्डादेश से पूर्ण विमुक्ति ही नहीं है बल्कि इसमें मृत्युदण्ड को बदल कर आजीवन कारावास की सजा भी शामिल की गई है।

5.2.3.4 विशिष्ट/संघीय अधिकारिता की अपील

हमारे संविधान के अनुच्छेद 135 के अन्तर्गत विशिष्ट या संघीय क्षेत्राधिकारिता उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त की गई है। कुछ ऐसे मामले भी हो सकते हैं जो उपर्युक्त श्रेणी के क्षेत्राधिकारों में नहीं आते है। लेकिन उच्चतम न्यायालय का हस्तक्षेप आवश्यक हो सकता है। अनुच्छेद 135 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि सैनिक न्यायालय के सिवाय वह भारत के अन्य किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण/न्यायमण्डल के निर्णय के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति प्रदान कर दे। अपीलीय क्षेत्राधिकार की दृष्टि से भारतीय सर्वोच्च न्यायालय विश्व में सबसे शक्तिशाली है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को अपीलीय क्षेत्राधिकार

में इतनी व्यापक शक्तियाँ नहीं दी गई है। जहाँ पर अनुच्छेद 133 व 134 के उपबंध लागू नहीं होते है। यह अधिकारिता एवं शक्तियाँ होगी यदि उस विषय के सम्बन्ध में इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी विद्यमान विधि के अधीन अधिकारिता और शक्तियाँ फेडरल न्यायालय 1935 के अन्तर्गत एक संघीय न्यायालय (फेडरल कोर्ट) की स्थापना की गई थी। संविधान लागू होने के बाद इस न्यायालय के सभी न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनाए गये थे और उच्चतम न्यायालय को फेडरल न्यायालय की प्रदत्त अधिकारिता को सौंपा गया था।

5.2.3.5 विशेष अनुमति याचिका द्वारा अपील ग्रहण की अधिकारिता (अनुच्छेद 136)

संविधान के अनुच्छेद 136 के अनुसार उच्चतम न्यायालय को स्वयं भी यह अधिकारिता प्राप्त है कि वह सैनिक न्यायालय को छोडकर भारत राज्य क्षेत्र के किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्णय के विरूद्ध अपने यहां अपील की अनुमति प्रदान कर सकता है। उच्चतम न्यायालय को इस अपील के लिए विशेष इजाजत देने की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं किया गया है। अनुच्छेद 136 के खण्ड (2) में केवल एक ही अपवाद है वह यह है कि इसे सशस्त्र बलों से सम्बद्ध किसी विधि के अधीन गठित किसी न्यायालय के निर्णय आदि से अपील की विशेष इजाजत नहीं दी जा सकती है। यह अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को अत्यन्त विस्तृत शक्ति एवं नमनशीलता प्रदान करता है। इसके अधीन दी गई शक्तियाँ उन विशिष्ट या अवशिष्ट शक्तियों की प्रकृति की है जो साधारण कानून (अनुच्छेद 132 से 135) के अन्तर्गत साधारण अपील अधिकारिता से सरोकार रखने वाली है, के बाहर प्रयुक्त करने योग्य हैं (किसी न्यायालय के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय, न्यायाधिकरण, अधीनस्थ न्यायालय अथवा प्राधिकरण के फैसलों के विरूद्ध अपील सुनने वाले न्यायालय भी शामिल है।

उच्चतम न्यायालय अंतिम एवं अंतरिम आदेशों के विरूद्ध अपील ग्रहण कर सकता है। उच्चतम न्यायालय किसी भी दीवानी, फौजदारी, आयकर, राजस्व, या श्रम विवादों से सम्बन्धित कार्यवाही के विरूद्ध अपील सुन सकता है। सामान्य विधि के अन्तर्गत ऐसे निर्णयों की अपील का प्रावधान नहीं होने या होने पर भी ग्रहण कर सकता है। इस तरह की अधिकारिता को सामान्य विधि द्वारा भी परिसीमित नहीं किया जा सकता है केवल संवैधानिक संशोधन द्वारा ही इसके क्षेत्राधिकार में कमी या वृद्धि की जा सकती है। यदि किसी सामान्य कानून द्वारा न्यायालयों अथवा न्यायाधिकरणों के अंतिम निर्णय के विरूद्ध भी अनुच्छेद 136 के अधीन ऐसे निर्णयों के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की जा सकेगी। अनुच्छेद 136 में अधीनस्थ न्यायालयों के फैसलों की अपील सुनने का क्षेत्राधिकार पूर्णतया उच्चतम न्यायालय के विवेकाधीन की गई है। इस तरह सर्वोच्च न्यायालय अपने स्व विवेकाधिकार के अनुसार किसी भी मामले की अपील सुन सकता है। अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत आपराधिक मामलों में भी अपील की जा सकेगी लेकिन इस प्रकृति की अपील केवल निम्न स्थितियों में ही ग्रहण की जा सकेगी:-

1. यदि वह अनुच्छेद 133 की परिधि या दायरें से बाहर है।
2. यदि उच्चन्यायालय ने अपील के लिए प्रमाण पत्र देने से मना कर दिया है।
3. यदि ऐसा मामला सर्वोच्च न्यायालय के आपराधिक क्षेत्राधिकार की परिधि से बाहर होने पर विशेष अनुमति याचिका के रूप में अपील ग्रहण कर ली जायेगी।

5.2.4 पुनरावलोकन अधिकारिता (अनुच्छेद 137)

इसे हम पुनर्विचार सम्बन्धी क्षेत्राधिकार के नाम से भी पहचानते हैं। संविधान के अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को यह अधिकारिता प्राप्त की गई है कि वह स्वयं द्वारा पारित किए गए आदेशों या विनिश्चयों पर पुनर्विचार या पुनरावलोकन कर यदि उचित समझे तो उसमें आवश्यक परिवर्तन कर सकता है। ऐसा उस समय किया जाता है जबकि उच्चतम न्यायालय को यह संदेह हो कि इसके द्वारा पारित किए गए निर्णय में किसी पक्षकार के प्रति न्याय हासिल नहीं हुआ है। यदि उस विवाद के सम्बन्ध में कोई नवीन तथ्य उजागर हो रहे हों तभी सर्वोच्च न्यायालय उस मामले में पुनर्विचार को न्यायिक पुनरावलोकन के रूप में ग्रहण कर सकता है। अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को अपने पूर्वनिर्णयो अथवा आदेशों के पुनरावलोकन की शक्ति प्रदान की गई है। लेकिन न्यायालय द्वारा पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि अथवा अनुच्छेद 145 के अधीन निर्मित नियमों के अनुसार ही किया जा सकता है। निम्न स्थितियों में ही सर्वोच्च न्यायालय पुनरावलोकन या पुनर्विचार की शक्ति का प्रयोग कर सकता है :-

1. यदि कोई न्यायोचित समुपयुक्त या समुचित कारण स्पष्ट प्रतीत हो रहा हो
2. यदि साक्ष्य सम्बन्धी नए महत्वपूर्ण मामले दृष्टिगत हुए हो तथा
3. यदि कोई स्पष्टतः त्रुटि अभिलेख के अवलोकन करने पर प्रकट हुई हो।

सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोपरि न्यायालय होने के कारण इसके द्वारा पारित किए गए निर्णय अंतिम निर्णय होते हैं इसलिए उच्चतम न्यायालय के निर्णयों अथवा आदेशों का पुनरावलोकन अपवादिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसे हम नजरसानी शक्ति भी कहते है।

5.2.5 परामर्शीय अधिकारिता (अनुच्छेद 143)

हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 में उच्चतम न्यायालय को परामर्श विषयक क्षेत्राधिकार प्रयोग करने की शक्ति दी गई है। अनुच्छेद 143 के अनुसार यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा विवाद पैदा हो गया है जो सार्वजनिक महत्व का है, तो वह उस विवाद पर उच्चतम न्यायालय से परामर्श माँग सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के परामर्श को स्वीकार या अस्वीकार करना राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर किया गया है। इसके लिए राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को सलाह हेतु पत्र संप्रेषित कर राष्ट्रीय सार्वजनिक महत्व के ज्वलंत समसामयिक विवादित विषय पर सलाह देने की अपेक्षा करते है। इस प्रकार जो सन्दर्भ उच्चतम न्यायालय के पास भेजे जाएंगे उन पर उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायमूर्तियों की संवैधानिक न्यायपीठ द्वारा समझा जाकर विचारित किया जाता है। परामर्शीय क्षेत्राधिकार से सम्बन्धित प्रावधान अमेरिका व आस्ट्रेलिया जैसे देशों के राष्ट्रीय संविधानों में देखने को नहीं मिला है। हमारे संविधान निर्माताओं ने कनाडा के राष्ट्रीय संविधान में उल्लेखित परामर्शीय क्षेत्राधिकारिता का अनुसरण भारत के संविधान में किया है। अनुच्छेद 143(2) में राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त है कि वह संविधान के लागू होने के पहले की गई किसी भी संधि, समझौते इत्यादि के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए विवादों को उच्चतम न्यायालय के पास परामर्श हेतु सन्दर्भित करें। उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 143(2) से सम्बन्धित विषयों पर अपनी सम्मति देने के लिए बाध्य नहीं है। उच्चतम न्यायालय को कौन से प्रश्न सौंपे जाएँ इसका निर्धारण स्वयं राष्ट्रपति ही करता है। राष्ट्रपति के इस सलाहकारी निर्णय पर किसी के द्वारा भी आपत्ति नहीं की जा सकती है। यह राय अनुच्छेद 144 में विधि नहीं होने के कारण न्यायालयों पर बाध्यकारी नहीं है। अब तक राष्ट्रपति ने उच्चतम न्यायालय से परामर्श प्राप्त करने के लिए निम्न संदर्भ प्रस्तुत किए है:

1. 1951 में'दि देहली लॉज एक्ट अजमेर, मेरवाड़ा से सम्बन्धित कानून और भाग-बी अधिनियमित की वैधता के प्रश्न पर,
2. 1957 में केरल शिक्षा विधेयक के प्रश्न पर,
3. 1956 में इन री बेरीबारी के प्रश्न पर
4. 1962 में इन री.बी.सी कस्टम्स एक्ट के प्रश्न पर,
5. 1965 में उत्तर प्रदेश की विधानसभा से सम्बन्धित संसदीय विशेषाधिकार के प्रश्न पर,
6. 1974 में राष्ट्रपति के निर्वाचन के प्रश्न पर
7. 1978 में विशेष न्यायालयों की स्थापना के प्रश्न पर,
8. 1992 कावेरी जल विवाद बंटवारे के प्रश्न पर,
9. 1994 में अयोध्या विवाद के प्रश्न पर
10. 2002 में गुजरात विधानसभा समय से पूर्व भंग हो जाने के कारण चुनाव कराने के प्रश्न पर,
11. सेलफोश लेने के कारण युवकों की मौत के मामलों के प्रश्न पर राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को संदर्भित किए गए हैं।

5.2.6 उच्चतम न्यायालय की विविध-अधिकारिताऐ या शक्तियाँ :-

5.2.6.1- आतरिक्त अधिकारिता (अनुच्छेद 138) अनुच्छेद 138 संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि संसद संघ सूची में वर्णित विषयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को अतिरिक्त क्षेत्राधिकार एवं शक्ति प्रदान कर सकती है।

5.2.6.2 - कुछ लेखों के जारी करने की शक्ति (अनुच्छेद 139) के अन्तर्गत संसद अनुच्छेद 32(2) में वर्णित बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण लेख याचिकाओं के अलावा अन्य लेख जारी करने के निर्देश या आदेश के लिए शक्ति देने की परिपुष्टि कर सकेगा। इसे हम विशेष समावेदन शक्ति के नाम से जान सकते है।

5.2.6.3 - न्यायाधीशों के स्थानान्तरण करने की शक्ति (अनुच्छेद 222) राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह करने के बाद (7वे संविधान संशोधन अधिनियम 1956) द्वारा एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानान्तरण कर सकता है। 15वें संविधान संशोधन अधिनियम 1963 के अनुसार राष्ट्रपति ऐसे स्थानान्तरित किए न्यायाधीश को संसद द्वारा बनाए गए नियमानुसार क्षतिपूर्ति भत्ता देने के बारे में राष्ट्रपति को यह आदेशित करने की शक्ति दी गई है।

5.2.6.4 - मामलों के अंतरण करने की शक्ति:- संविधान के अनुच्छेद 139 क के अनुसार जब विधि के सारवान प्रश्न समान हो और कोई मामले, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के समक्ष लम्बित चल रहे है तो सर्वोच्च न्यायालय स्वयं या महान्यायवादी या प्रकरण के पक्षकारों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष ऐसा सारभूत प्रश्न आम महत्व का है के आवेदन करने पर सन्तुष्ट होने पर सभी मामलों को सुनवाई करने के लिए उच्च न्यायालयों से अपने पास मंगवा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय न्यायहित में अपील, वाद या कोई कार्यवाही एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय के समक्ष प्रेषित कर सकता है।

5.2.6.5 अनुपूरक या आनुषंगिक शक्ति (अनुच्छेद 140) इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संसद को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को ऐसी अनुपूरक शक्तियाँ प्रदान करे

जो संविधान के अन्य उपबंधों से किसी भांति विसंगतिपूर्ण न हो और जो उच्चतम न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग अधिक प्रभावपूर्ण रूप से करने में सहायक सिद्ध होती हो।

5.2.6.6 निर्णयों की बंधनकारी शक्ति (अनुच्छेद 141) संविधान के इस अनुच्छेद 141 के अनुसार उच्चतम न्यायालय द्वारा उद्घोषित विधि तथा विनिश्चय भारत राज्य क्षेत्र के भीतर समस्त न्यायालयों को सर्वथा मान्य होंगे। अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उच्चतम न्यायालय को कोई आज्ञप्ति अथवा आदेश प्रसारित कर सकता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी की गई कोई आज्ञप्ति अथवा आदेश भारत राज्य क्षेत्र में सर्वत्र ऐसी रीति से प्रवर्तनीय होगी जो संसद द्वारा विधिनिर्माण कर विहित की गई है (अनुच्छेद 142)। इसी प्रकार अनुच्छेद 144 में कहा गया है कि भारत राज्यक्षेत्र के समस्त असैनिक तथा न्यायिक प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता तथा उसके अधीन न्याय-निर्णयन सम्बन्धी कार्य करने को बाध्य है। इस तरह अनुच्छेद1 41 के अधीन उच्चतम न्यायालय के समस्त निर्णयों को बंधनकारी स्वरूप प्रदान किया गया है। उच्चतम न्यायालय पर उसके द्वारा निर्णित किए गए फैसलों में पूर्ण विनिश्चिय कोई बाध्यता आरोपित नहीं करते है। सर्वोच्च न्यायालय अपने समस्त निर्णयों को अधिभावित कर एक नया निर्णय प्रदान कर सकता है। उच्चतम न्यायालय के किसी मामले में निर्णयानुसरण का सिद्धान्त उच्च एवं अधीनस्थ न्यायालयों पर बाध्यकारी होता है। किन्तु इतरोक्ति को विभिन्न उच्च न्यायालयों ने पक्ष एवं विपक्ष में अपने निर्णयों में मत व्यक्त किए है। उच्चतम न्यायालय के निर्णय न केवल भावी न्यायिक कार्यवाही पर प्रभावकारी बंधन प्रस्तुत करते है, बल्कि समस्त लम्बित न्यायिक कार्यवाही को भी प्रभावित करेंगे।

5.2.6.7 निर्णय और आदेशों के प्रवर्तन की शक्ति (अनुच्छेद 142)

यदि पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय अपने द्वारा पारित किए गए किसी आज्ञप्ति या आदेश को प्रवर्तन में लाने के लिए ऐसा जरूरी आदेश पारित करने की शक्ति दी गई है। संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन सर्वोच्च न्यायालय ऐसी आदेश/निर्णय को प्रर्वतन में लाने के लिए इस क्षेत्राधिकार शक्ति का प्रयोग कर सकता है और सर्वोच्च न्यायालय किसी व्यक्ति को न्यायालय में उपस्थित कराने, किसी दस्तावेजात के प्रस्तुत या प्रकट करने, अन्वेषण करने की शक्ति या इसके किसी न्यायालय अवमान का दण्ड दे सकता है। सर्वोच्च न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग उस मामले में भी कर सकता है जो अपील में निर्णीत कर दिया हो या अपील नहीं चल रही हो।

5.2.6.8 अधिकारियों द्वारा सहायता करने की शक्ति (अनुच्छेद 144)

इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था की गई है कि सर्वोच्च न्यायालय की सहायता सभी व्यवहार एवं न्यायिक प्राधिकारीगण करेंगे। सर्वोच्च न्यायालय अपनी सहायता करने वाला ऐसा कोई निर्देश दे सकता है। जो अधिकारी सहायता करने में सजग या सक्रिय नहीं है अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षित सहायता करने में विलम्ब करता है या कोई जानबूझकर लापरवाही या उदासीनता बरतता है तो ऐसे दोषी कर्मचारी/अधिकारी के विरूद्ध उदाहरणीय हर्जाना लगा सकता है।

5.2.6.9 नियम बनाने की शक्ति (अनुच्छेद 145)

हमारे संविधान में संसद द्वारा बनाए गए नियमों तथा राष्ट्रपति से अनुमोदन के साथ समय-समय पर उच्चतम न्यायालय को नियम बनाने की शक्ति प्रदत की गई है। न्यायालय की कार्यवाही सामान्यतया वकालत को विनियमित करने के लिए निम्न नियम बनाए जा सकते हैं:-

1. न्यायालय के समक्ष वकालत कर रहे व्यक्तियों के बारे में नियम।
2. अपील की सुनवाई के दौरान प्रक्रिया सम्बन्धी नियम।

3. संविधान के धारा तीन में प्रदत मूलाधिकारों के प्रवर्तन के लिए नियम।
4. मामलों के स्थानान्तरण करने सम्बन्धी नियम।
5. अनुच्छेद 134(1) (ग) के अन्तर्गत अपील को ग्रहण करने सम्बन्धी नियम।
6. निर्णय उद्घोषित करने या पुनर्विचार हेतु आवेदनों से सम्बन्धी नियम।
7. किसी कार्यवाही में शुल्क, आनुषांगिक कार्यवाहियों या हर्जाना सम्बन्धी नियम।
8. जमानत मंजूर करने सम्बन्धी नियम।
9. किसी कार्यवाही के स्थगन सम्बन्धी नियम।
10. विलम्ब करने, तंग करने, तुच्छ, बेतुका अपीलों के संक्षिप्त निर्धारण सम्बन्धी नियम।
11. अनुच्छेद 317 के अन्तर्गत जाँच के लिए प्रक्रिया सम्बन्धी नियम तथा
12. न्यायालय में बैठने हेतु न्यूनतम संख्या में न्यायाधीशों के तय करने संबंधी नियम बनाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को सशक्त किया गया है।

5.2.6.10 न्यायिक क्षेत्र की प्रशासनिक शक्ति (अनुच्छेद 148)

इस अनुच्छेद में सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक क्षेत्र के प्रशासन का अधिकार भी प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 146 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को अपने कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उनकी सेवा शर्तें निर्धारित करने का अधिकार प्राप्त है लेकिन राष्ट्रपति आवश्यक समझे तो निर्देश दे सकता है कि इस प्रकार की नियुक्तियाँ लोक सेवा आयोग से परामर्श के बाद की जाए। सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालयों को भी न्यायिक प्रशासन के सम्बन्ध में उचित निर्देश दे सकता है।

5.2.6.11 निर्वचन की शक्ति (अनुच्छेद 147)

हमारे संविधान के अनुच्छेद 147 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को संवैधानिक एवं वैधानिक मामलों में व्याख्या करने की शक्ति दी गई है। निर्वचन का सहारा लेकर उच्चतम न्यायालय किसी भी मामले में निर्णय पारित करते समय नवीन सिद्धान्तों की प्रतिपादना कर सकता है। इस अध्याय में और भाग 6 के अध्याय 5 में इस संविधान के निर्वचन के बारे में विधि के किसी सारवान प्रश्न के प्रति निर्देशों का अर्थ यह लगाया जाएगा कि उनके अन्तर्गत भारत शासन अधिनियम 1935 के (जिसके अन्तर्गत उस अधिनियम की संशोधक या अनुपूरक कोई अधिनियमिति भी शामिल है।) अथवा किसी सपरिषद आदेश या उसके अधीन बनाए गए किसी आदेश के अथवा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के या उसके अधीन बनाए गए किसी आदेश के निर्वचन के बारे मे विधि के किसी सारवान प्रश्न के प्रति निर्देश है।

5.2.6.12 निर्देश ग्रहण करने की शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद 317, में किसी संघलोक सेवा आयोग के सदस्य को हटाने या निलम्बित करने की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को दी गई है। आयकर अधिनियम 1961 की धारा 257, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम 1969 की धारा 7 (अब प्रतियोगिता अधिनियम 2000) सीमा शुल्क अधिनियम 1962 की धारा 130 क और केन्द्रीय उत्पादक शुल्क और नमक अधिनियम 1944 की धारा 35 ज में उच्चतम न्यायालय को निर्देश करने के बारे में प्रावधान किए गए है।

5.2.6.13 पुरावेदन (अपील) की अतिरिक्त शक्तियाँ

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950 एवं 1951 प्रतियोगिता अधिनियम 2002, अधिवक्ता अधिनियम1961, न्यायालय अवमान अधिनियम 1971, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम 1944, आतंकवादी क्षेत्र (विशेष न्यायालय) अधिनियम 1984, आतंकवादी निवारण अधिनियम 2002 आदि में उच्चतम न्यायालय को अपील दायर किए जाने के बारे में सीधे उपबंध किए गए हैं। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम 1952 के अधीन निर्वाचन अर्जियां सीधे उच्चतम न्यायालय में दायर की जाती है।

5.2.6.14 उपचारात्मक याचिका (Curative writ)

अधिकारिता सर्वोच्च न्यायालय ने रूपा अशोक् हुर्रा बनाम अशोक हुर्रा सन्2002 में दिए गए अपने ऐतिहासिक फैसलें में सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेद 32 एवं 137 के बाद भी उपचारात्मक याचिका को अंतिम फैसले के बाद ग्रहण करने की शक्ति दी गई है। इस फैसले से पहले तक अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय अंतिम निर्णय देता था और अनुच्छेद 137 के अधीन उसकी समीक्षा या पुनर्विचार याचिका खारिज कर देने के बाद सर्वोच्च न्यायालय के अंतिम फैसले पर पुनर्विचार नहीं किया जा सकता था। परन्तु इस ऐतिहासिक फैसले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने यह नवीन व्यवस्था दी है कि न्यायालय अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत अपने अंतिम निर्णय को जिस की रिट याचिका द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है। अब गंभीर अन्याय के निवारण हेतु पुनर्विलोकन के बाद उपचारात्मक याचिका (क्यूरेटिव रिट पिटीशन) तीन वरिष्ठतम न्यायाधीश की पीठ के समक्ष वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रमाणित करने पर दायर कर सकते है। अत: उच्चतम न्यायालय के किसी अंतिम निर्णय को ही उपचारात्मक लेख याचिका (क्यूरेटिव रिट पिटीशन) के माध्यम से अब चुनौती दे सकते हैं। याचिका की अधिकारिता शक्ति का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया ऐसा निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन करता हो या उसमें न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग किया गया हो। इससे सर्वोच्च न्यायालय की अधिकारिता शक्ति में बढ़ोतरी हुई है। यदि याचिका योग्यता पर आधारित नहीं है तो यायिकाकर्ता के विरूद्ध उदाहरणात्मक जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

5.2.7 उच्चतम न्यायालय के गठन की स्थिति:-

हमारे संविधान के अनुच्छेद 124 से 130 तक में सर्वोच्च न्यायालय के गठन, स्थापना, न्यायाधीशों की नियुक्ति, परामर्श, वेतन, कार्यकारी, मुख्य न्यायाधीशों, तदर्थ न्यायाधीशों, सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया, न्यायाधीश बनने की योग्यताएँ, कार्यकाल, महाभियोग, उनके वेतन, भले और अन्य सुविधाएँ, उन्मुक्तियॉ विशेषाधिकार, स्वतंत्रताऐ न्यायालय का मुख्य स्थान तथा न्यायाधीशों पर लगाए गए प्रतिबंधों की विवेचना की गई है। सर्वोच्च न्यायालय न्यायाधीशों की संख्या अधिनियम 2008 के द्वारा मुख्य न्यायाधीश और 30 अन्य न्यायाधीश निश्चित किए गए है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति करते हैं। तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति भी मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से की जाती है। न्यायाधीश बनने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति को ही न्यायाधीश बनाया जाता है। न्यायाधीश के बैठने की संरचना, एकलपीठ, खण्डपीठ, वृहद्पीठ, संवैधानिक पीठ तथा सम्पूर्ण पीठों क्रमश: एक,दो, तीन, पांच या पांच से अधिक तथा समरस उपस्थित न्यायाधीश बैठकर किसी मामले की सुनवाई करते

हैं। जब सर्वोच्च न्यायालय भारत में स्थापित किया गया था। तब एक मुख्य न्यायाधीश और सात अन्य न्यायाधीश नियुक्त किए गये थे।

तदर्थ न्यायाधीश :- अनुच्छेद 127 के अन्तर्गत तदर्थ न्यायाधीश के बारे में स्पष्ट किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए प्रावधान किए गये है। तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से की जा सकती है। तदर्थ न्यायाधीश वही योग्यता रखते है जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्ति की योग्यता रखते है।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश:- संविधान के अनुच्छेद 126 में सर्वोच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश के नहीं होने की स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश बनाने की व्यवस्था की गई है।

संवैधानिक पीठ की व्यवस्था :- संवैधानिक न्यायपीठ का तात्पर्य उच्चतम न्यायालय की ऐसी पीठ से है, जिसके द्वारा संवैधानिक विवादों की सुनवाई की जाए। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रक्रिया संबंधी नियम बनाकर यह व्यवस्था की है कि संवैधानिक पीठ में कम से कम 5 न्यायाधीश होंगे। इस पीठ में पांच से अधिक न्यायाधीश भी बनाए जा सकते है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्रक्रिया :- संविधान के अनुच्छेद 124 में यह व्यवस्था की गई है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त इस न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेना अनिवार्य किया गया है। अर्थात् राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्तियां अब सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से प्राप्त परामर्श के आधार पर की जायेगी। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्यन्यायाधीश इस प्रसंग में राष्ट्रपति को परामर्श देने से पूर्व चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह से परामर्श प्राप्त करेंगें तथा कोलिजियम के न्यायाधीशों से प्राप्त परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति को परामर्श देंगे। वरिष्ठतम न्यायाधीशों को अपने एकमत से सिफारिश करनी चाहिए। न्यायाधीश बनने की योग्यताएँ - संविधान के अनुच्छेद 124(3) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने के लिए में निम्नलिखित योग्याताओ का होना आवश्यक है :-

1. वह भारत का नागरिक हो
2. वह किसी उच्च न्यायालय अथवा दो या दो से अधिक उच्च न्यायालयों में लगातार कम से कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो या किसी उच्च न्यायालय या न्यायालयों में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो या
3. राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवेत्ता हो

कार्यकाल एवं महाभियोग :- अनुच्छेद 124 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को कार्यकाल उनकी नियुक्ति से 65 वर्ष पूर्ण करने तक निश्चित किया गया है। अनुच्छेद 124(4) के अनुसार न्यायाधीश को पद से हटाने के लिए संसद में दो-तिहाई बहुमत से राष्ट्रपति के पास प्रस्ताव सांसदों द्वारा भेजा जाता है इसे ही हम न्यायाधीश पर महाभियोग लगाना कहते है।

सेवानिवृत्त न्यायाधीशों का बैठना :- अनुच्छेद 128 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को भी न्यायिक कामकाज सौंप कर उन्हें उपस्थित कराने की व्यवस्था की गई है।

न्यायाधीशों को प्रदत्त वेतन भत्ते और अन्य सुविधाएं :- संविधान के अनुच्छेद 125 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिए जाएगा जो कि संसद विधि द्वारा निर्धारित करें। ये वेतन और भत्ते' भारत की संचित निधि' में से दिए जाते है और न्यायाधीश के वेतन भत्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। मुख्य न्यायाधीश सन 2009 से 1 लाख रूपये तथा अन्य न्यायाधीशों की 90 हजार रूपये प्रतिमाह वेतन निश्चित किया गया है। न्यायाधीशों के लिए

पेंशन व सेवानिवृत्ति वेतन (ग्रेच्युटी) की व्यवस्था 1976 ई में की गई थी और 1998 में उनकी पेंशन सेवा निवृत्ति वेतन व अन्य सेवा शर्तो में सुधार किए गए थे। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों को निवास स्थान, मासिक भत्ता, यात्रा भत्ता, मनोरंजन भत्ता, धुलाई भत्ता, स्टाफ कार, सीमित मात्रा में पेट्रोल, तथा दूरभाष बिजली पानी बिल केबल, नौकर पुस्तकालय की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती है।

न्यायालय का मुख्य स्थान:- अनुच्छेद 130 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान कार्यालय दिल्ली में है। मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेकर दिल्ली के अलावा अन्य किसी स्थान पर सर्वोच्च न्यायालय की बैठकें बुला सकता है। अब तक हैदराबाद और श्रीनगर में इस प्रकार का बैठकें सम्पन्न कराई गई है।

न्यायाधीशों पर प्रतिबंध :- संविधान में यह निश्चित किया गया है कि जो व्यक्ति भारत के सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुके है वे अपने पद से निवृत्त होने के बाद भारत में किसी भी न्यायालय या किसी भी अधिकारी के सामने वकालत नहीं कर सकते है।

सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति :- सर्वोच्च न्यायालय भारत का सबसे बड़ा अंतिम न्यायालय है। सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते है -

1. सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक या रक्षक होता है।
2. सर्वोच्च न्यायालय हमारी संघात्मक व्यवस्था का रक्षक होता है।
3. सर्वोच्च न्यायालय हमारे मौलिक अधिकारों का रक्षक होता है।
4. सर्वोच्च न्यायालय को हम संविधान का प्रहरी भी कहते है।
5. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन और न्यायिक सक्रियता को पर्याप्त महत्व दिया गया है।
6. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, आदेश, निर्देश सभी उच्च न्यायालयों एवं अधीनस्थ न्यायालयों पर बाध्यकारी होते है।

अब संविधान में संलग्न की गई अनुसूचियों में वर्णित पदों पर भी न्यायालय द्वारा पुनर्विलोकन करने की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को अपने न्यायिक निर्णय के माध्यम से दी गई है। भारत में न्यायिक सक्रियतावाद का आशय यह है कि संविधान, कानून और अपने दायित्वों के प्रसंग में कानूनी व्यवस्था से आगे बढकर सामाजिक, आर्थिक न्याय की जरूरत को दृष्टिगत में रखते हुए संविधान और कानून की रचनात्मक प्रयत्नशीलता बने रहना ही न्यायिक सक्रियतावाद कहलाता है। जब विधानपालिका, कार्यपालिका, खबरपालिका किसी आमजन के हितों का संरक्षण नहीं करके जनकार्यो में उदासीनता बरतने लगते हैं, तब न्यायपालिका द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 तथा अनुच्छेद 226 में लोकहित याचिका का स्वप्रेरणा या याची द्वारा दायर करने पर रिट जारी की जा सकती है। परम्परागत रूप में यह सोचा जा रहा है कि न्यायपालिका को राजव्यवस्था में मात्र निषेधात्मक भूमिका ही प्राप्त है, न्यायिक सक्रियतावाद के आधार पर न्याय पालिका को निषेधात्मक भूमिका के साथ-साथ एक सकारात्मक एवं रचनात्मक भूमिका प्राप्त हो जाती है। इसके लिए हम न्यायपालिका की रचनात्मक भूमिका, न्यायिक लोकप्रियता, तथा न्यायिक आतंकवाद आदि शब्दों का प्रयोग करते है। न्यायिक सक्रियतावाद में ऐसा आभासित होता है कि जैसे सरकार के शासन एवं प्रशासन को न्यायपालिका ही चला रही है। विगत कुछ वर्षो से सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने यह एहसास कर लिया है कि न्याय का स्वरूप केवल कानूनी न होकर सामाजिक एवं आर्थिक विकास भी है, यह भी स्वीकार कर लिया है कि न्याय व्यवस्था को आमजनता की जीवन दशा को सुधारने तथा उसे मूलभूत मानवीय अधिकार दिलाने के लिए सक्रिय रूप से भागीदार बनना चाहिए। न्यायिक सक्रियतावाद में सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च

न्यायालय कार्यपालिका अधिकारियों को अपना कर्त्तव्य निभाने का अहसास करवाते हुए आमजन का व्यापक विकास करवाती है।

न्यायिक सक्रियतावाद के विविध स्वरूप और मान्यताएं :- इसके प्रमुख पक्ष और मान्यताएं निम्नलिखित है-

1. जनहितकारी अभियोगों को मान्यता।
2. कानूनी न्याय के साथ-साथ आर्थिक-सामाजिक न्याय पर बल।
3. शासन की स्वैच्छाचारिता पर नियंत्रण।
4. शासन को आवश्यक निर्देश देना।

पिछले कुछ वर्षो में सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालय अधिक सक्रियता से मामले निपटा रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परम्परा से हटकर अनेक फैसले किये गए हैं। हवाला काण्ड लकखूभाई पाठक, सेंटकिट्स मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक सक्रियता का प्रयोग किया है। यह निर्विवाद है कि यदि न्यायपालिका ने न्यायिक सक्रियता की प्रवृति न अपनाई होती तो बंधुआ मजदूरों को मुक्ति नहीं हो पाती, बाल श्रमिकों का उद्धार नहीं होता, पर्यावरण शुद्धिकरण के प्रयत्न नहीं होते, बोफार्स काण्ड, हवाला काण्ड, चारा घोटाला काण्डों का खुलासा नहीं होता। भारत के संविधान ने न्यायिक सक्रियता के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन का हक न्यायपालिका को दिया है।

5.2.8. न्यायिक पुनर्विलोकन एवं न्यायिक सक्रियतावाद

न्यायिक पुनर्विलोकन का तात्पर्य सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान तथा उसकी सर्वोच्चता की रक्षा करने की व्यवस्था करने से है। यदि संघीय संसद या राज्य विधान मण्डलों द्वारा संविधान का अतिक्रमण किया जाता है, अपनी निश्चित सीमाओं के बाहर कानूनों का निर्माण किया जाता है या मौलिक अधिकारों के विरूद्ध कानूनों का निर्माण किया जाता है, तो सर्वोच्च न्यायालय संघीय संसद या राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित ऐसी प्रत्येक विधि अथवा संघीय या राज्य प्रशासन द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य को सर्वोच्च न्यायालय अवैधानिक घोषित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय की इस प्रकार की शक्ति को ही न्यायिक पुनर्विलोकर की शक्ति कहा जाता है। राज्यों में इस शक्ति का प्रयोग सम्बन्धित उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। हमारे संविधान में संसदीय सर्वोच्चता की बनिस्पद संविधान की सर्वोच्चता को प्रमुख स्थान दिया गया है। न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का तात्पर्य सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के द्वारा कानूनों की वैधानिकता के परीक्षण की शक्ति दी गई है। अनुच्छेद 131 और 132 में सर्वोच्च न्यायालय को संघीय तथा राज्य सरकार द्वारा निर्मित विधियों के पुनर्विलोकन का अधिकार दिया गया है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 13, 32 तथा 226 मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में सर्वाच्च न्यायालय को इसी प्रकार की शक्ति दी गई है। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 246, का भी उल्लेख किया जा सकता है (जिसके द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच विधिनिर्माण की शक्तियों के विभाजन स्वरूप निश्चित किया गया है। इस प्रकार न्यायिक पुनर्विलोकन के संघात्मक व्यवस्था तथा मौलिक अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया है। यह विधान, संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धान्त पर आधारित है। यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान की गई है। फिर भी भारत में अमेरिका की तरह ज्यादा व्यापक शक्ति नहीं दी गई है। अमेरिकी संविधान में कानून की उचित प्रक्रिया तथा भारत में कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को अपनाया गया है। इस विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को जापानी संविधान से लिया गया है।

सर्वोच्च न्यायालय की इस शक्ति को तीसरा सदन अर्थात् उच्च विधानमण्डल कहा गया है। न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना निम्न आधारों पर कर सकते हैं :-

1. अनुदारवादी शक्ति के रूप में कार्य।
2. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने पूर्वनिर्णयो में परिवर्तन।
3. संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण।
4. सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में अस्थिरता।
5. संसद और न्यायपालिका के बीच, संघर्ष की स्थिति का जन्म हुआ है।

अत: न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान का एक मूलभूत लक्षण है। संसद संवैधानिक संशोधन द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को सीमित नहीं कर सकती है। अब संविधान की अनुसूचियों में वर्णित पदों का भी न्यायिक पुनर्विलोकन करने की अधिकारिता उच्चतम न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में दे दी है।

5.2.9 उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को प्रदत्त किए गए विशेषाधिकार एवं स्वतंत्रताऐं

किसी देश के शासन संचालन एवं नागरिकों के अधिकारों को संरक्षित करने हेतु एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायापालिका की जरूरत होती है। यह प्रावधान हमारे संवैधानिक अनुच्छेद 50 में रखा गया है। न्यायपालिका का निष्पक्ष एवं निर्भर होकर निर्णय कर सके, इसके लिए इसे समस्त राजनैतिक दबावों से दूर रखना अत्यन्त आवश्यक है। कार्यपालिका, संसद और राज्यों की विधानमण्डल न्यायाधीशों के कार्यो में अनुचित हस्तक्षेप न कर सकें तथा नागरिकों को निष्पक्ष न्याय प्रदान किया जा सके। इसके लिए संविधान में न्यायपालिका के न्यायाधीशों की स्वतंत्रता प्रदान हेतु निम्न उपबंध किए गए है :

1. **न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा**:- सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति अनुच्छेद 124 तथा अनुच्छेद 217 अनुसार की जाती है। यह नियुक्ति केन्द्र राज्य सरकार, संसद या विधानमण्डलों द्वारा नहीं की जाती है बल्कि यह नियुक्ति न्यायिक योग्यता वाले व्यक्तियों की सहमति के आधार पर की जाती है। इसके लिए राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श लेना अनिवार्य किया गया है।
2. **सेवा सुरक्षा**- उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सेवा सुरक्षा सम्बन्धित उचित उपबंध किए गये है। न्यायाधीशों को कार्यपालिका द्वारा नहीं बल्कि संसद द्वारा कदाचार तथा अक्षमता के आरोपों के आधार पर विशेष बहुमत से उन्ही पदमुक्त करने हेतु राष्ट्रपति से सम्बन्धित महाभियोग की तरह किया जाता है।
3. **पर्याप्त वेतन, भत्ते व सुविधाएं**:- सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए पर्याप्त वेतन, भत्तों एवं सुविधाओं की व्यवस्था की गई है। इसकी व्यवस्था संचित निधि में से की जाती है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, अन्य न्यायाधीशों तथा राज्यों के मुख्य न्यायाधीशों का वेतन प्रतिमाह क्रमश: एक लाख, नबे हजार एवं अस्सी हजार निश्चित किया गया है। संसद या राज्य विधानमण्डल उसमें कोई कटौती नहीं कर सकते हैं। न्यायाधीशों का नया वेतन, संविधान संशोधन अधिनियम 2009 के द्वारा संविधान की दूसरी अनुसूची के अनुच्छेद 9 एवं 10 में निर्धारित किया गया हैं।
4. **आलोचना से मुक्ति**:- सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा पारित किए निर्णयों की संसद, राज्य विधानमण्डल या अन्य किसी पक्ष द्वारा आलोचना नहीं की जा सकती है। न्यायालय में विचाराधीन मामलों पर अथवा उसके निर्णयों पर भी संसद या राज्यमंडल के सदनों में वाद-विवाद, नहीं किया जा सकता है।

5. **न्यायाधीशों की सेवा निवृत्ति के बाद वकालत करने पर प्रतिबंध**:- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश सेवा निवृत्त होने के बाद भारत के किसी भी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकते है। इसी प्रकार उच्च न्यायालयों के सेवामुक्त किए गए न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय तथा उन उच्च न्यायालयों, जिनमें वह न्यायाधीश नहीं रह चुका है, को छोडकर अन्य किसी न्यायालय या पदाधिकारी के समक्ष वकालत नही कर सकते है।
6. **अवमानना में दण्डाधिकार**:- संविधान के अनुच्छेद 129 एवं 215 में उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का अवमान करने के सम्बन्ध में सम्बन्धित व्यक्ति को दण्ड देने सम्बन्धी उपबंध प्रस्तुत किए गए है, परंतु न्यायिक निर्णयों की सत्य आलोचना अथवा समीक्षा वर्जित नहीं की गई है।
7. **उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के अवस्थापन और अधीनस्थ न्यायालयों पर नियत्रण**:-अनुच्छेद 146 तथा अनुच्छेद 229 में क्रमश: उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के अवस्थापन कार्यप्रणाली, समस्त प्रशासनिक व्यय, अधिकारियों एवं कर्मचारियों पर नियंत्रण रहता है। उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति, अवकाश, पदोन्नति, पदावनति के लिए नियम ये न्यायालय ही बनाते है तथा अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के लिए उच्च न्यायालय अपने नियम बनाते और कार्यप्रणाली का निर्धारण करते हैं। इससे न्यायपालिका, कार्यपालिका, के नियंत्रण से पूर्णतया मुक्त रहती है। तथा अनुच्छेद 235 में उच्च न्यायालय अपने अधिनस्थ कार्यालयों पर नियंत्रण रखते हैं।
8. **संविधान संरक्षक के रूप में** :- सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को भी यह अधिकार एवं दायित्व दिया गया है कि वह संविधान की उचित रक्षा तथा सही तरह से व्याख्या करे। अत: संविधान के विरूद्ध होने पर वह संसद या राज्य विधानमण्डलों के किसी भी बनाये गये कानूनों को अवैध घोषित कर सकते है।
9. **प्रकरणों एवं न्यायाधीशों का स्थानान्तरण**:- सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 139क 228 तथा अनुच्छेद 222 में क्रमश: मामलों तथा न्यायाधीशों को स्थानान्तरित करने की शक्ति दी गई है।
10. **न्यायाधीशों की कार्यावधि**:- उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की कार्यविधि 65 वर्ष तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की कार्यवधि 62 वर्ष की आयु तक निर्धारित की गई है तथा अब बिल पास होने पर सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की आयु बढ़ाकर क्रमश: 68 वर्ष तथा 65 वर्ष हो जायेगी। भारतीय न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है, जबकि अमेरिका एंव स्वीटजरलैण्ड में न्यायाधीशों का निर्वाचन होता है।
11. **न्यायाधीशों को शपथ** :- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को स्वयं राष्ट्रपति तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को सम्बन्धित राज्य के स्वयं राज्यपाल द्वारा शपथ दिलवाई जाती है। उन्हें बिना भय, पक्षपात तथा विद्वेष के न्यायनिर्णयन का कार्य करने तथा संविधान तथा देश की विधिक व्यवस्था में अन्तर्निहित मान्यताओं को बनाए रखने का प्रतिज्ञान करना अपेक्षित किया गया है।
12. **असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग** :- हमारी संसद उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की शक्ति और क्षेत्राधिकार को बढा तो सकती है परन्तु उसमें किसी प्रकार की कमी करने का अधिकार संसद एवं विधानमंडलों को नहीं दिया गया है। असाधारण क्षेत्राधिकार की शक्ति का प्रयोग उच्चतम न्यायालय एवं सभी उच्च न्यायालय को क्रमश: अनुच्छेद 32 एवं 226 में

लेख याचिकाएं जारी करने की शक्ति दी गई है। न्यायाधीश लेखों/समावेदन याचिकाओं के अतिरिक्त अन्य कोई आदेश अथवा निर्देश हमारे नागरिकों को सामाजिक-आर्थिक न्याय प्रदान करने हेतु जारी कर सकते है।

5.3 उच्च न्यायालयों की शक्तियाँ, क्षेत्राधिकार और कार्य

भारतीय संघ के प्रत्येक उच्च न्यायालय को दो प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त है। 1. न्यायिक शक्तियाँ और 2. प्रशासनिक शक्तियाँ। इसके अतिरिक्त सभी उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय के रूप में भी कार्य करते हैं। उच्च न्यायालयों के न्याय सम्बन्धी क्षेत्र को और आगे दो भागों में वर्गीकृत किया गया है- 1. प्रारंभिक क्षेत्राधिकार तथा 2. अपीलीय क्षेत्राधिकार

राज्य की न्यायपालिका में उच्च न्यायालय तथा अन्य अधीनस्थ न्यायालयों को सम्मिलित किया गया है। हमारे संविधान में प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय के गठन की व्यवस्था की गई है। भारत में उच्च न्यायालयों के स्थापना भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम 1861 के उपबंधों के तहत सर्वप्रथम 1862 में कलकत्ता, बम्बई एवं मद्रास (अब कोलकता, मुम्बई तथा चैन्नई) में की गई थी। वर्तमान में प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था की गई है परन्तु अनुच्छेद 231 में संसद को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह दो या दो अधिक राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के लिए एक ही उच्च न्यायालय स्थापित कर सकेगी।

उदाहरणार्थ, पंजाब और हरियाणा राज्यों के लिए एक ही पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय की स्थापना की गई है। इसी भांति असम, नागालैण्ड, मेघालय, मणिपुर एवं त्रिपुरा राज्यों के लिए एक ही गोहाटी उच्च न्यायालय स्थापित किया गया है। जिसका मुख्यालय गोहाटी में स्थित है। हमारे देश में वर्तमान में कुल 21 उच्च न्यायालय सुस्थापित हैं। हमारे संविधान के अनुच्छेद 214 से 237 तक उच्च न्यायालयों तथा अधीनस्थ न्यायालयों के गठन, न्यायाधीशों की योग्यताएँ, कार्यकाल, स्थानान्तरण, अतिरिक्त, कार्यकारी तथा सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति एवं उपस्थिति, न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते, सुविधाओं, शक्तियों, क्षेत्राधिकार तथा जिला एवं सैशन न्यायाधीशों, न्यायिक मजिस्ट्रेट्स के बारे में स्पष्ट विवेचना की गई है। अब हम यहां उच्च न्यायालय को प्रदत्त विभिन्न क्षेत्राधिकार शक्तियों एवं कृत्यों के बारे में स्पष्ट करेंगे।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत प्रत्येक उच्च न्यायालय को असाधारण क्षेत्राधिकार प्रदत्त किया गया है। कोई भी नागरिक जिसके मौलिक, विधिक तथा सांवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन किसी राज्य सरकार एवं व्यक्ति द्वारा किया गया है तो वह उच्च न्यायालय सीधे समावेदन याचिका दायर कर सकता है। अब हम यहां विभिन्न जारी की जाने वाली लेख याचिकाओं के बारे में आपको बताना चाहेंगे।

5.3.1.1 बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख

इस लेख में याचिका के द्वारा किसी व्यक्ति को अवैध निरोध में रखने या अवैध गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति या प्राधिकारी को यह आदेश दिया जाता है कि वहाँ वे बंदी को न्यायालय के सम्मुख सशरीर उपस्थित करे एवं बंदीकरण के आधार पर न्यायालय के आदेश का निवर्हन करे। यदि बंदीकरण करने का कोई युक्तियुक्त एवं वैध आधार उपलब्ध नहीं होता है तो उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ उस बंदी को तुरन्त प्रभाव से विमुक्ति करने का आदेश जारी कर सकता हैं। परन्तु यदि बंदीकरण बनाने का कारण/आधार युक्तियुक्त है तो न्यायालय द्वारा उक्त लेख याचिका को निरस्त भी कर दिया जायेगा।

5.3.1.2 परमादेश लेख

इसके द्वारा न्यायालय किसी व्यक्ति या लोकाधिकारी सरकार अथवा सार्वजनिक निकायों को उनके विहित लोक दायित्वों के अनुरूप कार्य करने का आदेश देता है।

5.3.1.3 प्रतिषेध लेख

यह आदेश अधीनस्थ न्यायालय के प्रति अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने से अथवा प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के विरूद्ध कार्य करने से प्रतिबंधित रहने के लिए पारित किया जाता है। इसके द्वारा क्षेत्राधिकारविहीन न्यायालय की कार्यवाही का समापन करने से रोका जा सकता है। यह लेख याचिका निजी व्यक्ति, विधायनी या प्रशासकीय अधिकारी के विरूद्ध जारी नहीं की जा सकती है तथा जो न्यायालय अस्तित्व में नहीं हो उसके विरूद्ध भी जारी नहीं की जाती है।

5.3.1.4 अधिकार-पृच्छा लेख

इस आदेश के द्वारा किसी पदस्थ अधिकारी से उसके पद पर रहने के अधिकार के आधार के बारे में न्यायालय पूछ सकता है। यह लेख याचिका तभी ग्रहण की जाती है जब पद धारण करने वाला व्यक्ति अयोग्य हो। यदि पृच्छित व्यक्ति युक्तियुक्त आधार बताने में असफल रहता है तो न्यायालय उस पद को अवैध प्रयोग करने से रोक सकता है या उस पद को रिक्ति घोषित कर सकता है।

5.3.1.5 उत्प्रेषण लेख

जब कोई न्यायालय किसी वाद का अवधारण एवं विनिश्चय बिना क्षेत्राधिकार के अथवा क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण कर देता है तो उच्चन्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय के इस लेख याचिका में आदेश द्वारा ऐसे निर्णय को निरस्त करवाया जा सकता है। इन लेख याचिकाओं के बारे में विस्तार से चर्चा 5.2.2.1 में की जा चुकी है। यह लेख किसी अधिनियम अथवा अध्यादेश को असंवैधानिक अथवा शून्य घोषित करने के लिए जारी नहीं किया जा सकता है।

5.3.2 अपीलीय अधिकारिता

भारतीय उच्च न्यायालयों की अपीलीय अधिकारिता को हम सुविधा के आधार पर निम्न भागों में विभक्त कर सकते है। राज्यों में स्थित अधीनस्थ न्यायालयों के आदेशों/निर्णयों के विरूद्ध सम्बन्धित राज्य के उच्चन्यायालय के समक्ष पुनरावेदन (अपील) उपस्थापित करने की व्यवस्था सम्बन्धित विधियों में की गई है।

5.3.2.1 दीवानी अधिकारिता

सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 96 तथा आदेश 41-43 में जिला या अपर जिला न्यायाधीश के निर्णय आदेश के विरूद्ध सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय के समक्ष अपील करने की अधिकारिता दी गई है।

5.3.2.2 फौजदारी अधिकारिता

सैशन न्यायाधीश या अपर सैशन न्यायाधीश के निर्णय या आदेश के विरूद्ध उस राज्य के उच्च न्यायालय के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 372 से 394 तक में आपराधिक अपील प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की गई है।

5.3.2.3 राजस्व अधिकारिता

उच्च न्यायालय को राजस्थान राजस्व मंडल के फैसले के विरूद्ध अपील/लेख अधिकारिता प्रदान की गई है। यह अधिकारिता राजस्थान भूमि विधियों के तहत सशक्त की गई है।

5.3.2.4 अन्य अधिकारिता

मोटर दावा दुर्घटना न्यायाधिकारण, सहकारिता न्यायाधिकरण श्रम न्यायालय, औद्योगिक न्यायाधिकरण तथा मुआवजा प्राधिकरण निर्णय के विरूद्ध सम्बन्धित क्षेत्राधिकार रखने वाले उच्च न्यायालय के समक्ष विविध अपील दायर करने की व्यवस्था की गई है।

5.3.3 अभिलेखिय अधिकारिता

हमारे संविधान के अनुच्छेद 215 के अनुसार प्रत्येक राज्य का उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होता है और उच्च न्यायालय को अपने अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति दी गई है। यह अभिलेख न्यायालय, अपने अवमाननाकर्ता को दंडित कर सकता है।

5.3.4 आरम्भिक या सामान्य अधिकारिता

संविधान का अनुच्छेद 225 उपबंधित करता है कि इस संविधान के उपबंधों के अधीन होते हुए और इस संविधान द्वारा समुचित विधानमडल को प्रदत्त शक्तियों के आधार पर उस विधानमंडल द्वारा बनायी गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी विधमान उच्च न्यायालय की अधिकारिता और उसमें प्रशासित विधि तथा उस न्यायालय में न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में उसके न्यायाधीशों के अपनी-शक्तियाँ जिनके अन्तर्गत न्यायालय के नियम बनाने की शक्ति तथा उस न्यायालय और उसके सदस्यों की बैठकों या चाहे वे अकेले बैठे हो या खण्डपीठों में बैठे हों, को विनिश्चय करने की शक्ति हैं, वही होगी जो संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले थी। आरम्भिक कार्यकारिताओं में निम्न मामले उच्च न्यायालयों के समक्ष आते है -

1. अवमानना मामले,
2. वसीयत मामले,
3. वैवाहिक मामले,
4. तलाक के मामले,
5. कम्पनी मामले,
6. मदिरा उत्पाद के मामले

5.3.5 न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

उच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति दी गई है। इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय अनुच्छेद 13 तथा 226 के अन्तर्गत कर सकता है। जनहित याचिकाओं ने उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन का स्थान ग्रहण कर लिया है। न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का आशय है संवैधानिक कानून अर्थात संविधान में संशोधन केन्द्रीय कानून या राज्य के कानून की संविधान के आधार पर जाँच और संविधान के विरूद्ध पाये जाने पर उन्हें अवैध घोषित करना। संविधान के द्वारा उच्च न्यायालयों को न्यायिक पुनर्विलोकन की यह शक्ति प्रदान की गई है और भारत के उच्च न्यायालयों को अधिकार है कि वह किसी भी ऐसे संवैधानिक संशोधन केन्द्रीय कानून

या राज्य के कानून को असंवैधानिक या अवैधानिक घोषित कर दे जो संविधान या विधानों के प्रावधानों के विपरीत हो, न्यायिक पुनर्बिलोकन उच्च न्यायालयों का महत्वपूर्ण कार्य और शक्ति है।

5.3.6 प्रशासनिक अधिकारिता की शक्तियाँ

उच्च न्यायालय अपनी न्यायिक शक्तियों के अतिरिक्त अपने राज्य की समस्त न्यायिक व्यवस्था पर निम्न प्रकार से प्रशासनिक नियंत्रण रखता है:-

1. राज्यों के उच्च न्यायालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति करने की शक्ति उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पास होती है।
2. उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर निगरानी रखते है अपने निरीक्षण के अधिकार के अन्तर्गत वे अपने अधीन न्यायालयों से किसी भी मुकदमें से सम्बन्धित दस्तावेजात मंगवाकर अवलोकन कर सकते हैं।
3. यदि अधीनस्थ न्यायालय में ऐसा अभियोग चल रहा है जिसमें भारतीय संविधान की व्याख्या का प्रश्न निहित है तो उच्च न्यायालय ऐसे मुकदमें को अपने पास निर्देश के लिए मंगा सकता है।
4. उच्च न्यायालय प्रकरण को एक अधीनस्थ न्यायालय से दूसरे अधीनस्थ न्यायालय में स्थानान्तरण कर सकता है।
5. अपने अधीनस्थ न्यायालयों की कार्यपद्धति, अभिलेख और पंजिका तथा हिसाब इत्यादि को रखने के सम्बन्ध में भी उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों के लिए नियम बना सकते है।
6. उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों के शेरीफ मुसरिम कनिष्ठ लिपिक, अन्य कर्मचारी तथा वकील आदि के वेतन, सेवाशर्ते और फीस निश्चित कर सकता है।
7. उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ सभी जिला न्यायालयों तथा इसे निम्न न्यायालयों के अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, पदावनति और अवकाश इत्यादि के सम्बन्ध में नियम बना सकते हैं।

5.3.7 अधीनस्थ न्यायालयों पर अधीक्षणीय अधिकारिता

भारत में उच्च न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 227 में अधीक्षण क्षेत्राधिकार दिया गया है। उच्च न्यायालय राज्य के सभी न्यायालयों और अधिकरणों का अधीक्षण करता है। इसके अन्तर्गत वह ऐसे न्यायालयों से विवरणी मंगा सकता है, न्यायालयों की पद्धति और कार्यवाही के नियमन के लिए साधारण नियम और प्रारूप बना कर निकाल सकता है और विहित कर सकता है। न्यायालयों के अधिकारियों द्वारा रखी जाने वाली पुस्तकों, प्रविष्टियों और लेखाओं के प्रारूप विहित कर सकता है। उच्च न्यायालय राज्यपाल का पूर्व अनुमोदन प्राप्त कर न्यायालयों के लिपिकों, अधिकारियों एवं विधि व्यवसाय करने वाले एटार्नियों, अधिवक्ताओं और लीडरों को अनुरोध शुल्को की सारिणी भी निश्चित कर सकता है।

5.3.8 पुनरीक्षण अधिकारिता

उच्च न्यायालय को सिविल, फौजदारी, राजस्व, मामलों में निगरानी रखने का क्षेत्राधिकार भी दिया गया है। दण्ड प्रक्रिया संहिता धारा 1973 की 397 से 401 में निगरानी सम्बन्धी प्रावधान, उच्च न्यायालय के समक्ष धारा 115 सिविल सक्रिया संशोधन नियम रखे गए है। इसी तरह सिविल

मामलों में निगरानी सम्बन्धी प्रावधान को 2002 के संशोधन में हटा दिया गया है। इस अधिकारिता का प्रयोग लेख याचिकाओं के माध्यम से किऐ जाने का प्रचलन व्यवहार में बढने लग गया है।

5.3.9 पुनर्विलोकन एवं निर्देश अधिकारिता

राज्य के उच्च न्यायालयों को यह पुनःर्विलोकन एवं निर्देश सम्बन्धी क्षेत्राधिकारिता प्रदत्त की गई है। किसी भी मामले में यदि विधि के सारवान प्रश्न का समाधान पूर्व में निर्णीत मामले में नहीं किया गया है तो अधिनस्थ न्यायालयों द्वारा निर्देश उच्च न्यायालय को भिजवाया जा सकता है। निर्देश/सन्दर्भ किसी भी मामले में दिया जा सकता है।

5.3.10 अंतरण की शक्ति

यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उसके अधिनस्थ न्यायालय में लम्बित मामलों में संविधान के निर्वचन के बारे में विधि का कोई सारवान प्रश्न अन्तविलित रहा है (जिसका अवधारण मामले के निपटारे के लिए जरूरी हो तो उच्च न्यायालय उस मामले को अपने पास मंगवा कर स्वयं निपटा सकता है या विधि के प्रश्न का अवधारण निश्चित कर सकता है और उस मामले को ऐसे प्रश्न पर निर्णय की प्रतिलिपी सहित उस न्यायालय के ऐसे निर्णय के अनुसार ही मामले में अग्रिम कार्यवाही करेगा। तथा उस प्रकरण को आतरित कर सकता है। (अनुच्छेद 228)

5.3.11 उच्च न्यायालयों के गठन की स्थिति

उच्च न्यायालय प्रत्येक राज्य में न्यायप्रणाली का शीर्ष न्यायालय होता है। राज्य के अन्य सभी प्राधिकारी अधिकरण, व न्यायालय उसके अधीनस्थ एवं नियंत्रण में होते हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 214 के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। इसी तरह अनुच्छेद 231(1) में दो या दो से अधिक राज्यों के लिए भी एक ही उच्च न्यायालय स्थापित करने की अनुमति दी गई है।

गठन :-

न्यायाधीश की नियुक्ति व प्रत्येक उच्च न्यायालय का गठन राष्ट्रपति द्वारा एक मुख्य न्यायाधिपति एवं अन्य न्यायाधीशों द्वारा होती है। (अनुच्छेद 216) उच्च न्यायालय मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति राष्ट्रपति, मुख्य न्यायमूर्ति एवं सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल की सम्मति है से करता है तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति सम्मति लेता है। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की असमर्थता, अथवा उसके पद की रिक्त पदत्याग या पदामुक्ति के समय राष्ट्रपति उस उच्च न्यायालय के लिए कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति अनुच्छेद 223 में करते हैं। अनुच्छेद 224 के अनुसार 2 वर्ष की अवधि तक के लिए राष्ट्रपति उच्च न्यायालय में अतिरिक्त न्यायाधिपति को नियुक्त करते है।

न्यायाधीशों की योग्यताएँ :-

किसी राज्य के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने के लिए यह आवश्यक है कि :-

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. भारत राज्यक्षेत्र में कम से कम 10 वर्ष तक न्यायिक पद धारण कर चुका हो या किसी उच्च न्यायालय का या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का लगातार कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो (अनुच्छेद 224)

अतिरिक्त एवं सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति

अनुच्छेद 224 एवं 224 क के अनुसार यदि किसी उच्च न्यायालय में कुछ समय के लिए कार्य बढ जाये तो राष्ट्रपति, पद की योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को आवश्यकता अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त कर सकता है। उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को अपने पद से लम्बी अनुपस्थिति की स्थिति में भी राष्ट्रपति उसके स्थान पर किसी पात्रता रखने वाले व्यक्ति को अस्थायी तौर सेवानिवृत्त न्यायाधीश को न्यायाधीश के रूप में बैठने के लिए नियुक्त कर सकता है।

कार्यकारी न्यायाधीश

अनुच्छेद 224 के अनुसार भारत के मुख्य न्यायाधीश को यह अधिकार दिया गया है कि आवश्यकता पडने पर वह राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति लेकर किसी उच्च योग्यता एवं अनुभवी अधिवक्ता को कार्यकारी न्यायाधीश के रूप में कार्य करने लिए नियुक्त कर सकता है।

न्यायाधीशों का वेतन, भत्ते और सुविधाएं

संविधान के अनुच्छेद 221 के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसा वेतन दिये जायेंगे जो कि संसद विधि द्वारा निश्चित किए गए है। ये वेतन और भत्ते राज्य की संचित निधि में से दिए जाते है और न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद उनके वेतन तथा भत्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जायेगा। संविधान की दूसरी अनुसूची में राज्यों के उच्च न्यायालयों के, मुख्य न्यायाधीशों एवं अन्य न्यायाधीशों के क्रमश: बने एवं अस्सी हजार रूपये प्रतिमाह निश्चित किए गए हैं। पेंशन एवं उपदान की व्यवस्था सन् 1976 में की गई थी तथा पेंशन सेवानिवृत्त, वेतन व अन्य सेवा शर्तो में आवश्यक सुधार सन् 1988 में किए गये थे।

न्यायाधीशों का स्थानान्तरण

अनुच्छेद 222 के अनुसार राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त है कि वह उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश का किसी अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरण कर सकता है।

न्यायाधीशों का कार्यकाल

अनुच्छेद के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल 62 वर्ष की आयु तक निश्चित किया गया है, परन्तु इससे पूर्व वह स्वयं पदत्याग कर सकते है। किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए संसद के दोनों सदनों के 23 सदस्यों का बहु मत महाभियोग की तरह होना आवश्यक होता है। आरोपी न्यायाधीश पर दुराचार और अयोग्यता (अक्षमता) के साबित होने के बाद राष्ट्रपति महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जाँच के बाद दोषी पाये जाने पर न्यायाधीश पद से हटा सकता है।

न्यायाधीशों पर प्रतिबंध

संविधान के अनुच्छेद 220 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय का कोई स्थायी न्यायाधीश पदनिवृति के बाद उसी उच्च न्यायालय में या उस उच्च न्यायालय के किसी अधिनस्थ न्यायालयों के समक्ष वकालत नहीं कर सकता है। वह अन्य उच्च न्यायालयों या उच्चतम न्यायालय में वकालत का अध्यव्यवसाय कर सकता है।

5.4 उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के लेख क्षेत्राधिकार में विभेद

उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की लेख अधिकारिता के अन्तर को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। प्रो. प्रकाश चन्द जैन ने अपनी पुस्तक"विधिक उपचार" में निम्नलिखित विभेद बताये हैं।

अनुच्छेद- 32 तथा अनुच्छेद 226 में अन्तर भेद

क्रं सं.	अनुच्छेद- 32	अनुच्छेद 226

1.	उच्चतम न्यायालय की लेख अधिकारिता अनुच्छेद 32 में वर्णित है।	जबकि उच्च न्यायालयों की लेख अधिकारिता अनुच्छेद 226 में वर्णित है।
2.	उच्चतम न्यायालय केवल मूल के प्रवर्तन के लिए लेख याचिका जारी कर सकता है।	जबकि उच्च न्यायालय मूल अधिकारों के प्रवर्तन के साथ अन्य प्रयोजनों हेतु भी लेख याचिका जारी कर सकता है।
3.	इस अनुच्छेद के अधीन मूल अधिकारियों के हनन होने पर उनको प्रवृत कराने के लिए सीधे ही उच्चतम न्यायालय में आवेदन करने का अधिकार प्रत्याभूत किया गया है।	जबकि इस अनुच्छेद के अंतर्गत प्रदत्त अधिकारों के बारे में ऐसी प्रत्यूभूति नहीं दी गई है। अन्य अधिकारों के उल्लघन होने पर उच्च न्यायालय के समक्ष लेख याचिका पेश करनी पड़ती है।
4.	यह अनुच्छेद स्वयं एक मूल अधिकार है अत: उच्चतम न्यायालय की इस शक्ति को सिवाय संविधान संशोधन के किसी विधान द्वारा कम या समाप्त नहीं किया जा सकता है।	जबकि इस अनुच्छेद में प्रदत अधिकार को संशोधन द्वारा प्रदत्त शक्ति को कम या समाप्त किया जा सकता है। यह अनुच्छेद स्वयं मूलाधिकार नहीं है।
5.	इस अनुच्छेद को अनुच्छेद 359 के उपबंधों के अधीन आपात् की उदघोषणा के दौरान के अलावा निलंबित नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 352 में आपात् की उदघोषणा के दौरान अनुच्छेद 20 एवं 21 को राष्ट्रपति निलम्बित नहीं कर सकते है।	जबकि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध म इस प्रकार का कोई अधिकार राष्ट्रपति को नहीं दिया गया है।
6.	यह अनुच्छेद स्वयं मूलाधिकार होने के कारण यह मूलभूत ढांचे का एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंग है।	जबकि इस अनुच्छेद के अधीन प्रदत्त उच्च न्यायालय की अधिकारिता संविधान के मूल ढ़ाचे का अभिन्न अंग नहीं है।
7.	. इस अनुच्छेद के अधीन करने पर उच्चतम न्यायालय समुचित लेख निर्देश या आदेश देने से इन्कार नहीं कर सकता है। याची अधिकार के रूप में मांग कर सकता है।	इस अनुच्छेद में याची अधिकार बतौर उपचार की मांग नहीं कर सकता है। यह उच्च न्यायालयों को प्रदत्त किया गया विवेकीय उपचार है।
8.	इस अनुच्छेद में केवल मौलिक अधिकारों के अतिलंघन होने पर ही लेख याचिका सीधे उच्चतम न्यायालय में दायर की जा सकती है। उच्च न्यायालय की बजाए उच्चतम न्यायालय की शक्ति सीमित होती है।	इस अनुच्छेद में मौलिक, विधिक, एवं संवैधानिक अधिकारों के अतिक्रमण होने पर लेख याचिका उच्च न्यायालय में दायर की जाती है। इसमे उच्चतम न्यायालय की अपेक्षा उच्च न्यायालय को शक्ति व्यापक होती है।
9.	. इसमे लेख याचिकाएं अनुच्छेद 32(2) मे शामिल की गई है। तथा संविधान बनाये जाने के समय से ही समाहित की गई है।	इसमें लेख याचिकाएँ अनुच्छेद 226(1) में 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 में प्रतिस्थापित की गई है। इससे पहले शामिल नही की गई थी।
10.	इस अनुच्छेद के अधीन लेख जारी करने का उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा भारत के बाहर उन कार्यालयों तक है जहां केन्द्रीय सरकार के अन्य देशों के साथ	जबकि इस अनुच्छेद के अंतर्गत उच्च न्यायालयों की लेख अधिकारिता उस राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में ही है जिसके सम्बन्ध में वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है।

	सम्बन्ध स्थापित हैं।	

5.5 उत्प्रेषण एवं प्रतिषेध लेख में भेद

(हरिविष्णु कामथ बनाम अहमद इसहाक ए.आई.आर. 1955 एस.सी.241) के मामले में उच्चतमम न्यायालय ने उत्प्रेषण लेख और प्रतिषेध लेख के बीच निम्न अंतर बताये हैं: -

उत्प्रेषण लेख	**प्रतिषेध लेख**
यह लेख एक सुधारात्मक उपचार में शामिल है।	जबकि यह लेख एक निवारात्मक उपचार में शामिल है।
यह लेख याचिका अधीनस्थ न्यायालय न्यायाधिकरण या न्यायिक प्राधिकारियों द्वारा अंतिम विनिश्चय सुना देने के बाद अथवा अंतिम कार्यवाही के दौरान जारी किया जाता है।	जबकि यह लेख याचिका अधीनस्थ न्यायालय, न्यायाधिकरण या न्यायिक प्राधिकारियों के समक्ष लम्बित चल रही प्रारम्भिक कार्यवाही के दौरान जारी किया जाता है।
यदि अधिन्स्थ न्यायालय ने अपन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इंकार करने पर उसके विरुद यह लेख जारी किया जाता है।	जबकि इसमें अधीनस्थ न्यायालय कार्यवाही वैदानिक क्षेत्राधिकार में नहीं होते हुए भी अगर कार्यवाही कर दी गई है तभी यह लेख जारी किया जाता है।
यह लेख याचिका कथित अधीनस्थ या न्यायाधिकरण के अस्तित्व में नहीं होने पर भी उनके विरुद जारी किया जा सकता है।	जबकि यह लेख याचिका कथित अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण के अस्तित्व में नहीं होने पर उनके विरूद्ध जारी नहीं किया जा सकता है।
इस लेख में अधीनस्थ न्यायालयों से अभिलेख मंगवाकर उनका अवलोकन किया जाता है। और उस अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिये गये विनिश्चय को निरस्त किया जाता है।	जबकि इस लेख में अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष चल रही कार्यवाही को रोका जाता है।
इस लेख का मुख्य उद्देश्य न्यायिक त्रुटियों में सुधार करना है।	इस लेख याचिका का मुख्य उद्देश्य न्यायिक त्रुटियों का रोकना है।
यह लेख याचिका वैकल्पिक उपचार होते हुए भी जारी की जा सकती है।	यह लेख वैकल्पिक उपचार होने पर जारी नहीं किया जा सकता है।

5.6 उच्च न्यायालयों की अधीनस्थ न्याय व्यवस्था

न्यायिक प्रशासन की जिला स्तरीय न्याय व्यवस्था को हम अधीनस्थ न्यायालयों या निम्न न्यायालयों के नाम से पहचाने हैं। अधीनस्थ न्यायालयों के बारे में प्रावधान हमारे संविधान के अनुच्छेद 233 से 237 तक किये गये हैं। सन् 1912 में इजलिगटन आयोग ने न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने पर बल दिया था। वर्तमान संविधान में भी संघ और राज्यों के अधीन सेवाओं के लिए भाग 14 में अनुच्छेद 309 में उपबंध किए गये है परन्तु अधीनस्थ न्यायालयों के लिए भाग 6 के अध्याय 6 में प्रावाधान किए गए है। संविधान के भाग- 14 के अनुच्छेद 309 में संसद, राज्यविधान

मंडलों, राष्ट्रपति और राज्यपालों की शक्तियाँ संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन है। इसलिए न्यायिक सेवा में नियुक्तियों के बारे में अनुच्छेद 309 के अधीन अधिनियम या विनियम नहीं बनाए जा सकते है। अनुच्छेद-236 में"जिला न्यायाधीश" पदावली के अन्तर्गत नगर सिविल न्यायालय का न्यायाधीश, अपर जिला न्यायाधीश, संयुक्त जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट, सैशन न्यायाधीश, अपर सैशन न्यायाधीश और सहायक सैशन न्यायाधीश भी शामिल है।

"न्यायिक सेवा' पदावली में ऐसी सेवा अभिप्रेत है जो केवल ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनी है जिनके द्वारा जिला न्यायाधीश के पद तथा जिला न्यायाधीश के पद से निचले अन्य सिविल न्यायिक पदों का भरा जाना आशायित है। औद्योगिक या श्रम न्यायालयों के पीठासीन अधिकारी न्यायिक सेवा के अन्तर्गत आते हैं।

जिला न्यायाधीशों की नियुक्तियां,

अनुच्छेद 233 में यह उपबंध किया गया है कि किसी राज्य में जिला न्यायाधीश नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति, पदस्थापना और पदोन्नति ऐसे राज्य के सम्बन्ध में अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करके राज्य का राज्यपाल करेगा। राज्यपाल बिना उच्च न्यायालय के परामर्श किए जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति नहीं कर सकता है। इसमें परामर्श केवल उच्च न्यायालय से ही लेने की व्यवस्था हमारे संविधान में की गई है। किसी अन्य अधिकारी से परामर्श करके नियुक्ति करना अनुच्छेद 233 के प्रतिकूल माना गया है। राज्यपाल केवल उच्च न्यायालय से परामर्श करके ही जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकता है। किसी ऐसे व्यक्ति को न्यायाधीश नहीं बनाया जा सकता है जिनकी सिफारिश राज्यपाल ने नहीं की हो। जिला न्यायाधीशों या न्यायिक मजिस्ट्रेट्स का स्थानान्तरण सरकार द्वारा नहीं किया जाकर केवल उच्च न्यायालय के परामर्श लेने के बाद ही किया जा सकता है। अत: न्यायिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों के स्थानान्तरण का प्राधिकार केवल उच्च न्यायालय को ही है।

न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति एवं नियंत्रण :

भारत के संविधान के अनुच्छेद 234 के अनुसार जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की न्यायिक सेवा में नियुक्ति, राज्यपाल द्वारा लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय से परामर्श करके बनाए गए नियमों के अनुसार होगी। अनुच्छेद 235 में जिला न्यायाधीश के पद से निचले किसी पद को धारण करने वाले राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों की पदस्थापना, पदोन्नति और उनको अवकाश देने सहित जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित होता है। जिला न्यायाधीश के विरूद्ध अनुशासन की कार्यवाही केवल उच्च न्यायालय ही कर सकता है, सरकार का शासन व प्रशासन नहीं कर सकता हैं। उच्च न्यायालय प्रतिनियुक्ति पर भेजे गये न्यायिक सेवा के अधिकारियों को कभी भी किसी समय वापिस बुला सकता है। उच्च न्यायालय से नियुक्ति और पदोन्नति के समय परामर्श करना आवश्यक माना गया है। अनुच्छेद 235 के उपबंधों के कारण उच्च न्यायालय पीठासीन अधिकारी की किसी विशेष प्रकार के आदेश पारित करने का निर्देश नहीं दे सकता है। क्योंकि यह अधीनस्थ न्यायालय की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप समझा जाएगा। अनुच्छेद 235 के अधीन शक्ति का अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायिक कार्यो से कोई सम्बन्ध नही हैं। अधीनस्थ न्यायालय के सदस्य को अनिवार्यत: सेवानिवृत्ति करने के लिए उच्च न्यायालय को आवश्यक जाँच करके अपनी सिफारिश औपचारिक आदेश पारित करने के लिए राज्यपाल को भेज देना चाहिए। न्यायाधीशों को विवादग्रस्त मामले को तय करना चाहिए, अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी के आचरण पर कोई टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। सतर्कता न्यायाधीश की जाँच रिपोर्ट में पर्याप्त आधार/सबूत होने

पर न्यायिक अधिकारी के विरूद्ध कार्यवाही करनी चाहिए। अंत में अनुच्छेद 237 कुछ वर्ग के दण्डनायकों के नियंत्रण के लिए बनाया गया है।

उच्च न्यायालय के अधीन कुछ न्यायाधिकरण प्राधिकारीगण :

हमारे संविधान के अनुच्छेद 323 क एवं ख संविधान में 42वे संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा प्रतिस्थापित किए गये थे। इसके लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 संसद द्वारा अधिनियमित किया गया था। एस.पी. सम्पत कुमार बनाम भारत संघ ए.आई.आर 1987 एस.सी.. 386 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने प्रशासनिक एवं अन्य न्यायाधिकरणों की स्थापना को संवैधानिक एवं वैध घोषित किया था। सर्वप्रथम इन न्यायाधिकरणों को सेवा सम्बन्धी मामलों के निपटारे का क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया था। कुछ न्यायाधिकरण को उच्च न्यायालय के बराबर अधिकारिता दी गई थी और कुछ न्यायाधिकरण एवं प्राधिकारिगण को उच्च न्यायालय के अधीनस्थ रखा गया था। इनमें जिला न्यायाधीश स्तरीय न्यायाधिकरण भी स्थापित किए गए थे। इनमें निम्नलिखित न्यायाधिकरणों स्थापित कर दी गई हैं:

1. सिविल सेवा अपीलीय न्यायाधिकरण,
2. जयपुर विकास प्राधिकरण न्यायाधिकरण
3. गैर सरकारी श्रिक्षण संस्था न्यायाधिकरण
4. औद्योगिक न्यायाधिकरण
5. राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण
6. मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण
7. वाणिज्य कर न्यायाधिकरण
8. सहकारी संस्था न्यायाधिकरण
9. किराया न्यायाधिकरण
10. अपीलीय किराया न्यायाधिकरण
11. आयकर न्यायाधिकरण
12. आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण
13. राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण।

आदि न्यायाधिकरण प्रत्येक राज्य में स्थापित किए गए हैं। इस प्रकार न्यायालयों के अन्तर्गत वे सभी न्यायालय, न्यायाधिकरण एवं प्राधिकरण सम्मिलित हैं जिन्हें शपथ के आधार पर न्यायिक कार्यवाही करने के लिए उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया है। न्यायालय भवनों एवं संरचनात्मक ढांचों की स्थापना केन्द्र एवं राज्य सरकार के सहयोग से कि जाती है तथा न्यायाधीशों एवं दण्डनायकों (मजिस्ट्रेट) की नियुक्ति उच्च न्यायालय द्वारा ही की जाती है। राज्य में स्थित अन्य न्यायाधिकरणों की नियुक्ति सम्बन्धित राज्यों के उच्च न्यायालयों द्वारा की जाती है और केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष की नियुक्ति केन्द्र सरकार, सर्वोच्च न्यायालय की सिफारिश पर करती है। अनुच्छेद 323 क के अनुसार सन् 1976 में प्रशासनिक न्यायाधिकरण स्थापित किए गये हैं तथा अन्य न्यायाधिकरणों की स्थापना अनुच्छेद 323 ख के अन्तर्गत की गई है। केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, सैन्य न्यायाधिकरण के अध्यक्ष उच्चतम या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ही बनाए जाते है। इन न्यायाधिकरणों के गठन में प्रशासनिक, न्यायिक एवं तकनीकी सेवा के अधिकारियों को सदस्य, उपाध्यक्ष या अध्यक्ष बनाया जाता है। इन न्यायाधिकरणों

एवं प्राधिकारियों का न्याय प्रशासन में महत्वपूर्ण योगदान साबित हो रहा है। इस प्रकार न्यायपालिका भी सरकार का महत्वपूर्ण एक अंग होता है।

उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार एवं शक्तियों से सम्बन्धित न्यायिक निर्णय

हमें न्यायपालिका की न्यायिक प्रवृतियों पर प्रकाश डालना जरूरी हो गया है। सिद्देश्वर बनाम पश्चिम बंगाल ए.आई.आर. 1958 एस.सी.. 143 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया है कि फौजदारी प्रकरणों में अपील का प्रमाण-पत्र देने का अधिकार उच्च न्यायालय का एक विवेकाधिकार है। किन्तु इस विवेकाधिकार का मनमाने तरीके से प्रयोग नहीं किया जायेगा।

वारयम सिंह बनाम अमरनाथ ए.आई.आर. 1954 एस.सी.215 के मामले में यह निर्धारित किया गया कि न्यायालयों के निरीक्षण करने की शक्ति केवल प्रशासनिक निरीक्षण तक सीमित को नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत सभी अधीनस्थ न्यायालयों पर निरीक्षण करने की शक्ति अनुच्छेद 227 में शामिल की गई है।

रोहतास इन्डीस्ट्रीज लि. बनाम रोहतास इन्ड़स्ट्रीज स्टाफ यूनियन ए.आई.आर. 1976 एस.सी.. 425 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया है कि अनुच्छेद 226 के द्वारा किसी निजी व्यक्ति के विरूद्ध आदेश पर लेख जारी किया जा सकता है। अनुच्छेद 322 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय इस अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता है।

डीडीए. बनाम स्पीकर निर्माण कम्पनी लि.ए.आई.आर 1995 एस.सी.. 2348 के मामले में यह धारित किया गया कि सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 129 के अन्तर्गत स्वप्रेरणा से प्रसंज्ञान लेकर अपनी अवमानना शक्ति का प्रयोग स्वत: कर सकता है।

एस.पी. गुप्ता बनाम भारत के राष्ट्रपति व अन्य ए.आई.आर. 1982 एस.सी.. 149 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के संविधान का मूलभूत ढांचा माना है। भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बरकरार रखने के लिए निम्नलिखित उपबंधों का समावोश किया गया

1. कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण (अनुच्छेद-50)।
2. न्यायाधीशों की पदावधि की संरक्षा।
3. न्यायाधीशों के वेतन भत्ते आदि विधायिका के मतदान से परे है।
4. संसद उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को बढा सकती है लेकिन कम नहीं कर सकती है।
5. किसी न्यायाधीश के अपने कर्त्तव्य पालन में किए गये आचरण पर संसद में चर्चा का प्रतिषेध है।
6. अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति संविधान के अनुच्छेद 129 उच्चतम न्यायालय को और अनुच्छेद 215 उच्चन्यायालय को अपने अवमान के लिए किसी भी व्यक्ति को दण्ड देने की शक्ति प्रदान करता है। यह शक्तियाँ न्यायालय की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को सुरक्षित रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

राष्ट्रीय विधिक एवं न्यायिक परिषद की स्थापना :-

केन्द्रीय मंत्रीमंडल ने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरूद्ध की गई शिकायतों की जाँच के लिए राष्ट्रीय विधिक एवं न्यायिक परिषद की स्थापना के लिए दिनांक 10 नवम्बर 2006 को विधेयक बनाने के लिए प्रस्ताव पारित कर दिया था। राष्ट्रीय विधिक एवं न्यायिक परिषद न्यायाधीशों के विरूद्ध कदाचार की जाँच करेगा राष्ट्रीय विधिक एवं न्यायिक परिषद में भारत के मुख्य न्यायाधीश, दो-वरिष्ठ न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय, जिन्हे भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामजद किया जायेगा। न्यायिक इतिहास में योग्यता और वरिष्ठता की उपेक्षा करके कनिष्ठ न्यायाधीश को मुख्य न्यायमूर्ति बनाने को न्यायपालिका की स्वतंत्रता का हनन माना

है। वरिष्ठता क्रम को नजर अंदाज करके केन्द्रीय सरकार ने उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पद पर अजितनाथ राय को बना दिया। राय से एस.एम. सीकरी के बाद जे.एम. शैलट, के.एस. हेगड़े तथा एस. एन ग्रोवर वरिष्ठतम थे। उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता संघ ने सरकार के इस कदम की तीव्र आलोचना करते हुए कहा कि योग्यता एवं वरिष्ठता से नहीं बल्कि नियुक्ति विशुद्ध राजनैतिक आधार पर की गई थी। सरकार न्यायपालिका की स्वतंत्रता नष्ट करना चाहती थी। विधि आयोग की 1956 में रिपोर्ट में कहा गया था कि मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति केवल वरिष्ठता के आधार नहीं वरन् गुण और उपयुक्तता के आधार पर की जानी चाहिए यदि कनिष्ठतम न्यायाधीश में वे गुण मौजूद है तो उन्हें मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन सन् 1978 में न्यायाधिपति बेग के सेवानिवृत्त होने के बाद सरकार ने पुन: वरिष्ठता की कसौटी के आधार पर न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ को भारत के मुख्य न्यायाधिपति के पद पर नियुक्त कर इस विचार को समाप्त कर दिया।

एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ (न्यायाधीश स्थानान्तरण का मामला) ए.आई.आर 1982 एस.सी.. 149 में न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने कहा कि आस्ट्रेलिया की भांति न्यायमूर्तियों की नियुक्ति के लिए एक न्यायिक समिति की नियुक्ति की सलाह दी थी। न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानान्तरण के मामले में सरकार को पूर्ण शक्ति प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय एडवोकेट्स ऑफ रिकार्ड एसोसियेशन बनाम भारत संघ, के मामले में (1993) 4 एस.सी.. सी. 44 के मामले में एस.पी.गुप्ता बनाम भारत के निर्णय को उलटते हुए कहा कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का ही निर्णय अंतिम होगा। 7-2 के बहुमत से संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि भारत के मुख्य न्यायाधीश के पद पर वरिष्ठतम न्यायाधीश की ही नियुक्ति की जायेगी। इनरी प्रेसीडेन्सियल रेफरेन्स ए.आई.आर. 1999 एस.सी.. 1 न्यायमूर्ति एस. पी. भरूचा ने परामर्श प्रक्रिया को अधिक विस्तृत कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के मामले में मुख्य न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायमूर्तियों के समूह से (collegiums of four senior most judges) परामर्श करके ही राष्ट्रपति को अपनी सिफारिश भेजना चाहिए।

सन् 1993 के निर्णय में केवल दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श करने की बाध्यता थी। इन न्यायाधीशों के समूह में भारत के भावी मुख्य न्यायाधीश भी शामिल होना चाहिए। अनुच्छेद 124(2) में प्रयुक्त परामर्श' शब्द का तात्पर्य अनेक न्यायाधीशों के परामर्श से है। न्यायाधीशों के समूह को अपना परामर्श आम राय से देना चाहिए। मुख्य न्यायाधीश की व्यक्तिगत सलाह अनुच्छेद 124(1) के अधीन परामर्श नहीं है। इससे परामर्श प्रक्रिया अधिक लोकतांत्रिक बनी है। 21 दिसम्बर 1998 दिल्ली में न्यायिक सुधारो के सम्मेलन में राष्ट्रीय न्यायिक आयोग गठित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। सन् 1987 में विधि आयोग ने भी राष्ट्रीय न्यायिक समिति की स्थापना का सुझाव दिया था। इस समिति के अध्यक्ष भारत के मुख्य न्यायमूर्ति होनी चाहिए तथा 3 उच्चतम न्यायालय के तथा 3 उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, भारत के महान्यायवादी, एक प्रतिष्ठित अधिवक्ता तथा एक विधि एवं न्याय मंत्रालय का प्रतिनिधि सदस्यगण होना चाहिए। 1990 में नेशनल फ्रंट सरकार के विधि एवं न्याय मंत्री दिनेश गोस्वामी ने संसद में न्यायिक समिति की स्थापना के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया था किन्तु लोकसभा भंग होने के कारण वह विधेयक प्रस्तुत नहीं किया था किन्तु लोकसभा भंग होने के कारण वह विधेयक व्यपगत हो गया।

भारत संघ बनाम गोपाल चन्द्र मिश्र ए.आई.आर.1978 एस.सी.694 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया है कि भविष्यलक्षी त्यागपत्र को प्रभावी होने से पूर्व अर्थात् स्वीकृत किए जाने से पूर्व वापस लिया जा सकता है।

के. वीरास्वापी बनाम भारत संघ (1991) 3 एस.सी.सी.655 के महत्वपूर्ण निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के

न्यायाधीशों पर भष्ट्राचार निवारण अधिनियम 1947 (अब 1988) के अधीन अपराधों के लिए अभियोजन चलाया जा सकता है। अनुच्छेद 124(4) में प्रयुक्त सिद्ध कदाचार शब्दावली का क्षेत्र व्यापक होने से इसमें भर्स्तोचार निवारण अधिनियम 1947 की धारा 5(1) में वर्णित आपराधिक दुराचरण भी सम्मिलित है। धारा 6 में प्रयुक्त लोक सेवक में उच्च एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश भी आते हैं।

न्यायाधिपति बी. रामास्वामी का मामला:- रामास्वामी 1971 में मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त किए गए, 1987 में उन्हें पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में स्थानान्तरित किया गया, 6 अक्टूबर 1989 को उन्हें उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया। उन पर यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने मुख्य न्यायाधीश पद का दुरूपयोग करते हुए फर्नीचर खरीददारी में भारी वित्तीय अनियमितताएं दी। 108 सांसदों के हस्ताक्षरों वाला महाभियोग नोटिस लोकसभाध्यक्ष रविराय को दिया गया। संकल्प को स्वीकार करते हुए न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम 1988 के अधीन 3 न्यायाधीशों की जाँच समिति का गठन कर दिया। दुर्भाग्य से जनता सरकार दलबदल के कारण गिर जाने से 9 वीं' लोकसभा भंग कर दी गई। रामास्वामी ने कहा कि संकल्प निरसित हो जाने से दसवीं लोकसभा में कार्यवाही नहीं की जा सकती है।

न्यायिक हिसाबदेयता पर उप-समिति बनाम भारत संघ (1991)4 एस.सी.सी 699 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने 4:1 के बहुमत से धारित किया कि नवीं लोकसभा में पारित संकल्प लोकसभा भंग हो जाने से महाभियोग निरसित नहीं हो जाता है। फलत: दसवीं लोकसभा कार्यवाही कर सकती है। सावंत समिति ने अनुच्छेद 124 (4) के अधीन कदाचार का दोषी माना था। लेकिन लोकसभा में मतदान हुआ तो 176 मत महाभियोग के पक्ष में पड़े लेकिन कांग्रेस पार्टी द्वारा मतदान में भाग नहीं लेने से महाभियोग कार्यवाही असफल ही रही।

सीरवीनन्दन एय्यर बनाम न्यायाधीश ए.एम. भट्टाचार्य (1995) 5 एस.सी.सी 457 के मामले में अधिवक्ता संघों ने मुख्य न्यायाधीश पर त्यागपत्र देने का दबाव डाला। न्यायाधीश भट्टाचार्य उस समय बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पद पर थे। इस अधिवक्ता ने अनुच्छेद 32 में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष जनहित साचिका दायर कर कहा था कि न्यायाधिपति भट्टाचार्य को अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए दबाव डालने से रोक दे। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि न्यायाधिपति भट्टाचार्य को अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए दबाव डालने से रोक दे। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि न्यायाधीश को त्यागपत्र देने के लिए बाध्य करने को न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर आघात बताया। विधिशासन न्यायिक पुन:रावलोकन और न्यायपालिका के आधारभूत ढांचे के अभिन्न अंग है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता केवल कार्यपालिका के दबाव से मुक्ति तक सीमित नहीं है। यह एक वृहद धारणा है और इसमें अन्य दबाव और पूर्वाग्रह भी शामिल है।

दिल्ली न्यायिक सेवा संघ बनाम गुजरात राज्य ए.आई.आर. 1991 एस.सी.. 2177 इस मामले में गुजरात राज्य के नाडियाद तहसील के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट पटेल को स्थानीय पुलिस अधिकारियों द्वारा 25 सितम्बर 1989 को गिरफ्तार करके मार पीट और बलपूर्वक शराब पिलाई और हथकड़ी लगाकर जाँच कराने के लिए अस्पताल ले जाने की फोटो सभी समाचारपत्रों में प्रकाशित हुई। इस दुर्घटना से न्यायपालिका की गरिमा को आघात लगा। अनेक अधिवक्ता संघों ने अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की गई। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सहाय को जाँच समिति में रखा। उन्होंने जाँच के बाद पुलिस अधिकारियों को दोषी पाते हुए दण्डित करने की सिफारिश की। इन अधिकारियों के विरूद्ध न्यायालय अवमानना के लिए कार्यवाही प्रारम्भ की गई। सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 129 के अन्तर्गत 6 पुलिस अधिकारियों को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय की आपराधिक अवमानना के लिए कारावास का दण्ड दिया। प्रश्न यह था कि क्या सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 129 के अन्तर्गत अपने अवमानना के अलावा अधिनस्थ न्यायालय की अवमानना के लिए

दण्ड दे सकता है? सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में यह नवीन व्यवस्था दी है कि एक उच्च न्यायालय में अपने अधिनस्थ तथा निम्न न्यायालयों की अवमानना के लिए किसी व्यक्ति को दण्डित करने की ऐसी शक्ति अन्तर्निहित है।

मणिपुर विद्यानसभा के अध्यक्ष बोरो बाबूसिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बाबूसिंह को न्यायालय अवमानना का दोषी ठहराया। बोरों ने दलबदल अधिनियम के अधीन विधानसभा सदस्यों को अयोग्य घोषित कर हटा दिया। उच्चतम न्यायालय ने अध्यक्ष के आदेश को निरस्त कर वेतन का भुगतान करने का आदेश दिया। विधानसभा के सचिव मनीलाल सिंह द्वारा वेतन का भुगतान करने से क्रोधित होकर अध्यक्ष ने सचिव को भी हटा दिया उच्चतम न्यायालय ने सचिव को पुन: बहाल कर उसे वेतन देने का आदेश दिया। लेकिन अध्यक्ष ने न्यायालय के आदेश की अवहेलना करने के कारण उच्चतम न्यायालय ने अवमानना की कार्यवाही प्रारंभ कर दी थी।

अयोध्या मामले में जुलाई 1992 में उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को उच्चतम न्यायालय ने अवमानना का दोषी माना। मुख्यमंत्री की हैसियत से कल्याण सिंह ने न्यायालय को वचन दिया था कि वे विवादित स्थल पर कोई निर्माण नहीं होने देंगे। इसके बावजूद भी कार सेवकों द्वारा वहाँ एक पक्का चबूतरा बना दिया गया था और उल्टा यह कहा गया कि उस चबूतरे का निर्माण तो साधुओं ने किया था। न्यायालय ने कहा कि सरकार ने उक्त निर्माण को रोकने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की और उन्तत कल्याण सिंह को न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन करने पर अवमानना का दोषी माना गया था।

सुप्रीम कोर्ट बार एसोसियेशन बनाम भारत सघ ए.आई.आर. 1998 एस.सी.. 1895 के मामले में इन री. विनय चन्द्र मिश्र (1995) 2एस.सी.सी. 564 के मामले में दिये गये विनिश्चय को उलट दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 129 की शक्ति इतनी विशद नही है कि अधिवक्ता अधिनियम 1961 में निहित प्रक्रिया को तिलांजलि देकर यह निर्धारित कर सके कि कोई अधिवक्ता वृतिक अवचार का दोषी है। अत: अनुच्छेद 142 के अन्तर्गत अधिवक्ता का वकालत करने का लाइसेन्स संक्षिप्त रीति से निलम्बित नहीं किया जा सकता है।

भारत संघ बनाम राजस्थान राज्य (1984) 4 एस.सी.सी.238 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि रेल्वे अधिनियम की धारा 80 के अधीन राज्य का केन्द्र के विरूद्ध नुकसानी का दावा अनुच्छेद 131 (1) के अन्तर्गत राज्य और केन्द्र के बीच विवाद का नहीं बनता है। अत: सर्वोच्च न्यायालय की अधिकारिता से बाहर है। राज्य द्वारा केन्द्र सरकार के विरूद्ध संस्थित वाद उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता से बाहर है। संविधान आग होने से पूर्व की गई कोई संधि, करार, प्रसंविदा, वचन, बंध सनद अथवा अनुच्छेद 272,280 तथा 290 के विषयों से सम्बन्धित विवाद सर्वोच्च न्यायालय की प्रारम्भिक अधिकारिता से बाहर होते है।

भारत संघ बनाम शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक समिति (1988) 4 एस.सी.सी 600 के मामले में आपरेशन ब्लू स्टार के कारण स्वर्ण मंदिर अमृतसर को पहुँची क्षति के लिए पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय में केन्द्रीय सरकार के विरूद्ध नुकसानी की याचिका दायर की गई। केन्द्र सरकार ने उक्त मामले को उच्चतम न्यायालय में अंतरण करने के लिए आवेदन दिया। यह अभिकथन किया कि पंजाब की विशिष्ट परिस्थिति के कारण वहाँ याचिका का समुचित विचारण नहीं हो सकना संभव नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने उठाए गए आधार को मानते हुए उसे दिल्ली उच्च न्यायालय में अंतरण कर दिया। किन्तु ए.आर.अन्तुले बनाम आर.एस.नायक (1988)2 एस. सीसी. 602 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 139-क के अधीन उच्चतम न्यायालय को विशेष न्यायाधीश (दाण्डिक) के न्यायालय से उच्च न्यायालय में मामले को अंतरण करने की शक्ति नहीं है। अनुच्छेद 139 क के अधीन केवल मामलों का अंतरण एक राज्य से दूसरे राज्य के उच्च न्यायालय

या उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में किया जा सकता है। एक राज्य के किसी अधीनस्थ न्यायालय से दूसरे न्यायालय अथवा अधीनस्थ न्यायालय से उच्च न्यायालय में मामलों के अंतरण की शक्ति सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय को ही है।

एल.चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1997 एस.सी.. 1125 के ऐतिहासिक महत्व के फैसले मैं यह अभिनिर्धारित किया है कि विधानमंडल द्वारा पारित विधानों या अनुच्छेद 226 में निहित उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति संविधान का आधारभूत ढांचा है। इसे संविधान में संशोधन करके समाप्त नहीं किया जा सकता है। 42वे संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के द्वारा हमारे संविधान में एक नया अध्याय भाग- 14 क जोड़ा गया है। जिसमें दो अनुच्छेदों के अधीन संसद को सरकारी कर्मचारियों के विवादों के निपटाने के लिए प्रशासकीय अभिकरणों/न्यायाधिकरणों की स्थापना करने की शक्ति प्रदान की गई है। सन् 1985 में जब संसद ने उक्त अनुच्छेदों के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की स्थापना की गई तो अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों की अधिकारिता समाप्त कर दी गई परन्तु उच्चतम न्यायालय की अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता बनी हुई थी। किन्तु उनके निर्णयों से प्रथम अपील उच्च न्यायालय में ही की जा सकेगी।

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम एक छात्र के अभिभावक ए.आई.आर. 1985 एस.सी.. 910 के मामले में यह निर्धारित किया गया है कि लोकहित वाद के अधीन उच्च न्यायालय को यह अधिकारिता नहीं दी गई है कि वह राज्य सरकार को अपने निर्णय को लागू करने के लिए कोई विशेष विधि बनाने के लिए निर्देश दे। न्यायालय विधानमंडल के कार्य स्वयं धारण नहीं कर सकता है। इस मामले में यह निर्देश देने के लिए कहा गया था कि रेगिंग को रोकने के लिए विधि बनाने का निर्देश देने पर यह न्यायालय के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का उल्लंघन है।

मोहन पाण्डेय बनाम उषा रानी राजगरिया (1992) 4 एस.सी.सी 61 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह धारित किया था कि अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के विशिष्ट/असाधारण अधिकारिता का प्रयोग निजी पक्षकारों की सम्पत्ति सम्बन्धी विवादों में नहीं किया जा सकता है। इसके लिए नियमित वाद संस्थित करना इसका ही समुचित उपचार है।

द्वारका प्रसाद अग्रवाल बनाम वीडी. अग्रवाल ए.आई.आर. 2003 एस.सी.. 2686 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि अनुच्छेद 226 के अधीन प्रदत्त उपचार एक सार्वजनिक उपचार है और इसका प्रयोग निजी विवादों के निपटारे के लिए नहीं किया जा सकता है।

केरल राज्य बनाम लक्ष्मी कुट्टी (1988) 4 एस.सी.सी. 632 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल को उच्च न्यायालय का परामर्श लेना आज्ञायक माना गया है।

आई.आर.सेलो बनाम तमिलनाडु ए.आई.आर. 2007 एस.सी.86 के एतिहासिक मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संविधान की नवीं अनुसूची-न्यायिक पुनःर्विलोकन से बाहर नहीं है। नवीं अनुसूची संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 के द्वारा अनुच्छेद 31 ख के रूप में समाविष्ट करके भूमि सुधार अधिनियमों को न्यायालय में चुनौती देने से रोकना था। जहाँ एक तरफ फैसला संविधान की अनुसूची में वर्णित मदों को न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे में ला सकेगा वहीं दूसरी ओर यह सभी राजनीतिक दलों द्वारा अपने वोट बैंक को बढ़ाने के प्रयास को रोक सकेगा, जो संविधान के आधारभूत ढांचे को ध्वस्त करने में लगे हैं।

5.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई संख्या-5 में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों एवं अधीनस्थ न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों/अभिकरणों के क्षेत्राधिकार, शक्तियाँ कृत्यों और इनके न्यायाधीशों को प्रदत्त किए गए विभिन्न विशेषाधिकारों, उज़ीकायों तथा स्वतंत्रताओं के बारे में स्पष्ट उल्लेख किया है। उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त किए गए विभिन्न क्षेत्राधिकारों के अन्तर्गत इस अध्याय में असाधारण, आरंभिक, अभिलेखीय, अपीलीय, संघीय, विशेष अनुमति, परामर्शीय पुनर्विलोकन, उपचारात्मक एवं विविध अधिकारिताओ के बारे में विशुद्ध विवेचना की गई है। इसमे उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के गठन की स्थिति, न्यायाधीशों की नियुक्ति, वेतन व भत्ते, कार्यकाल, महायोग, तदर्थ, अतिरिक्त, सेवानिवृत्त, न्यायाधीशों सम्बन्धी प्रावधानों को समाहित किया गया है। उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को प्रदत विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों तथा स्वतंत्रताओं और सुविधाओं के बारे में वर्णन किया गया है। न्यायिक पुनर्विलोकन एवं न्यायिक सक्रियता के बारे में स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इसके बाद उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा जारी की जाने वाली समावेदन लेख याचिकाओं के असाधारण/विशिष्ट क्षेत्राधिकार तथा बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा तथा उत्प्रेषण समावेदन याचिकाओं को भली प्रकार से स्पष्ट किया गया है।

इसके बाद इस इकाई के अन्तर्गत हमने उच्च न्यायालयों को प्रदत्त विभिन्न क्षेत्राधिकारों जैसे अभिलेखीय अपीलीय, लेख आरम्मिक, निगरानी, पुन:रीक्षण, पुनर्विलोकन निर्देश व स्वविवेकीय सम्बन्धी विभिन्न क्षेत्राधिकारिताओ के बारे में वर्णन किया गया है। उच्च न्यायालयों की पुनर्विलोकन, प्रशासनिक, तथा अधीक्षण शक्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है। उच्च न्यायालय के गठन की स्थिति उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों द्वारा जारी की जाने वाली (अनुच्छेद 32(2) एवं 226(1) के अन्तर्गत) लेख क्षेत्राधिकार में अंतर को बताया गया है। इसके पश्चात् हमने उत्प्रेशण लेख एवं प्रतिषेध लेख में भेद को बताया है। उच्च न्यायालय के अधीनस्थ आने वाले जिला एवं सत्र न्यायालयों न्यायाधिकरणों अभिकरणों न्यायिक अधिकारियों एवं प्राधिकारियों के बारे में वर्णन किया गया है। उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार, शक्तियों और कार्यो से सम्बन्धित पुराने और नवीन न्यायिक प्रवृतियों को उजागर किया है। इसके उपरान्त प्रयुक्त शब्दावली, अभ्यासात्मक प्रश्नों और उपयोगी पुस्तकों के बारे में उल्लेख मिलेगा। सर्वोच्च न्यायालय के बारे में अनुच्छेद 214 से 147 में तथा उच्चतम न्यायालयों के बारे में अनुच्छेद 214 से 232 में और अधीनस्थ न्यायालयों से सम्बन्धित अनुच्छेद 233 से 237 के प्रावधानों का वर्णन किया गया है और 42वे संविधान संशोधन अधिनियम 1976 में न्यायाधिकरणों के बारे में जोडे गए अनुच्छेदों (323 क तथा 323 ख) का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार कुल 38 अनुच्छेदों का जिक्र किया गया है। अंत में आप भारतीय न्यायिक प्रशासनिक प्रणाली को निम्न रेखांकित सारिणी से पूरा समझ सकेंगे।

भारतीय न्याय व्यवस्था की क्षेत्राधिकारिता एक दृष्टि में

1. उच्चतम न्यायालय की न्यायिक/प्रशासनिक अधिकारिता (अनुच्छेद 124-147)

2. राज्य में स्थित उच्च न्यायालयों की न्यायिक एवं प्रशासनिक क्षेत्राधिकारिता (अनुच्छेद 214-231)

3. अधीनस्थ न्यायालयों औन्यायाधिकरणों प्राधिकारियों की न्यायिक क्षेत्राधिकारिता (अनुच्छेद 233-237 व अनुच्छेद 323 क व ख)

दीवानी न्यायालय	फौजदारी न्यायालय	राजस्व या माल न्यायालय
1. उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय	उच्च न्यायालय
2. विशेष न्यायाधीश न्यायालय	विशेष सैशन न्यायालय	राजस्व मण्डल
3. जिला जज न्यायालय	सैशन न्यायाधीश न्यायालय	कमिश्नर न्यायालय
4. अपर/सहायक जिला न्यायालय	अपर सैशन न्यायाधीश न्यायालय	राजस्व अपील प्राधिकारी
5. सिविल जज न्यायालय	मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी	जिलाधीश न्यायालय
6. अपर सिविल जज न्यायालय	विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट	अपर जिलाधीश न्यायालय
7. खफीफा न्यायालय	विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट	उपखण्ड अधिकारी न्यायालय
8. ग्राम न्यायालय	न्यायिक दण्डनायक द्वितीय श्रेणी	तहसीलदार न्यायालय
9. न्याय पंचायत	अवैतनिक मजिस्ट्रेट	नायब तहसीलदार न्यायालय
	ग्राम न्यायालय	भूराजस्व
	निरीक्षक/कानूनगो	
	न्यायपंचायत	

शब्दावली

1. क्षेत्राधिकार (jurisdiction): न्यायालयों द्वारा कौनसे मामले, विषयक्षेत्र, आर्थिक मामलों की सुनवाई तथा निर्णय का क्षेत्राधिकारिता से है। प्रत्येक न्यायालय का स्थानीय श्रवणाधिकार क्षेत्राधिकार होता है।
2. समावेदन/लेख: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32(2) तथा 226(1) में वर्णित की गई बंदीप्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा तथा उत्येषण लेखों से तात्पर्य है।
3. न्यायिक प्रक्रिया न्यायिक प्रक्रिया से तात्पर्य न्यायालयों द्वारा शपथ पर ली गई कार्यवाही को ही न्यायिक कार्यवाही कहते है।
4. विधानपालिका या व्यवस्थापित कानूनों के निर्माण करने वाली संस्था से है।
5. कार्यपालिका: कार्यपालिका से तात्पर्य है जो सरकार का प्रशासन चलाती है तथा बनाये गए कानूनों को लागू करना होता है।
6. न्यायपालिका देश के नागरिकों को न्याय प्रदान करना और कानूनों की व्याख्या करना इसका प्रमुख कार्य है। हमारे देश में उच्चतम न्यायालय, उच्चन्यायालय, अधीनस्थ न्यायालय, न्यायाधिकरण एवं प्राधिकरीगण न्यायालय में आते है।
7. उपचारात्मक याचिका: उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 में अंतिम निर्णय के बाद भी यह याचिका दायर की जा सकती है। यह अनुच्छेद 137 में प्रदत पुन: विचार याचिका के अलावा उपचार दिया गया है।
8. अपील: इसे हम पुनरावेदन भी कहते है अपील संवैधानिक, दीवानी, फौजदारी एवं विविध दायर की जाती है।
9. जनहित याचिका ऐसी याचिका जिसमें व्यक्ति विशेष का हित नहीं होकर आमजन, वर्ग, समुदाय की समस्याओं, हितो के लिए होती है। यह अनुच्छेद 32 एवं 226 में दायर की जाती है।
10. दीवानी वाद: इसे व्यवहार वाद-पत्र भी कहते है। ऐसे मामलों पर व्यवहार प्रक्रिया संहिता 1908 प्रभावी होती है।
11. फौजदारी प्रकरण: अभियुक्त/मुलजिमान के विरूद्ध आरोपित किए गए मामलों के विचारण की कार्यवाही दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के अनुसार होती है।
12. निर्वाचन न्यायापालिका द्वारा संविधान/वैधानिक सारभूत महत्वपूर्ण प्रश्न की व्याख्या की जाती है। इसमें संविधियो की व्याख्या की जाती है।
13. कार्यकारी न्यायाधीश यह न्यायाधीश स्थायी नहीं हो कर केवल न्यायिक कामकाज संभालता है।
14. जिला न्यायाधीश एक जिले के सिविल मामलों का क्षेत्राधिकार रखने वाले न्यायाधीश से तात्पर्यित है।
15. सैशन न्यायाधीश से एक खण्ड के अर्थात जिले के आपराधिक क्षेत्राधिकार रखने वाले न्यायाधीश से तात्पर्यित है।
16. न्यायिक प्रवृत्तियां: न्यायपालिका द्वारा निर्णय किए जाने वाले मामलों के रूझानों से तात्पर्य है।

5.8 अभ्यास प्रश्न

1. उच्च न्यायालयों को प्रदत्त विभिन्न क्षेत्राधिकारों एवं शक्तियों के बारे में प्रकाश डालिए।

2. उच्चतम न्यायालयों की क्षेत्राधिकारिता एवं शक्तियों की विवेचना कीजिए।
3. उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों द्वारा जारी की जाने वाली विभिन्न समावेदन लेख याचिकाओं के बारे में बताइए।
4. सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के आरंभिक तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार के बारे में बताइए।
5. सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त विविध क्षेत्राधिकारिता या शक्तियों से सम्बन्धित प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
6. उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों सुविधाओं और स्वतंत्रताओं के बारे में निबन्ध लिखिए।
7. उच्च न्यायालयों के अधीन अधिनस्थ न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों/अभिकरणों के बारे में उजागर करें।
8. उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार एवं शक्तियों से सम्बन्धित न्यायिक प्रवृतियों का स्पष्ट उल्लेख करें।
9. न्यायिक पुनरावलोकन एवं न्यायिक सक्रियता के बारे में विवेचना कीजिए।
10. न्यायपालिका की न्यायिक क्षेत्राधिकारिता सम्बन्धित रेखांकित एवं सारणीबद्ध कीजिए।
11. 11 उच्चतम न्यायालय के गठन एवं स्थिति के बारे में प्रकाश डालिए।
12. उच्च न्यायालयों के गठन एवं न्यायाधीशों की स्थिति को उजागर कीजिए।
13. लेख याचिकाओं को जारी करने सम्बन्धित सीमाओं या इंकार करने के आधारों कारणों को बताइये।
14. उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों की लेख याचिकाओं के मध्य प्रभेद को स्पष्ट कीजिए।

5.9 संदर्भ ग्रंथ

1. भारत का संविधान: महावीर सिंह, प्रथम संस्करण, 1987, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, (उ.प्र.)
2. भारत का संविधान: प्रोजीएसपाण्डेय आठवां संस्करण, 2009, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर (राज)
3. भारत का संविधान: प्रो. वी.एन. शुक्ला, पुन: मुद्रित, 2006, स्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, (उ.प्र.)
4. भारत का संविधान: दुर्गादास बसु 7वां संस्करण, 1997, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया प्रालि नई दिल्ली
5. भारत का संविधान: डॉ. जी.एस शर्मा, प्रथम संस्करण, 2006, जयपुर (राज.)
6. भारत का संविधान: डॉ. जयनारायण पाण्डेय, 42वा संस्करण, 2009, इलाहाबाद (उ.प्र.)
7. भारत का संविधान: बेयर एक्ट पी.एम. बक्शी, 10वा संस्करण, 2010, यूनिवर्सल ली पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली
8. विधिक उपचार: प्रो. प्रकाश चन्द जैन, चतुर्थ संस्करण, 1995, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (राज)
9. भारत का संविधान: प्रो. एमएम. चतुर्वेदी, 10वा संस्करण, 2010, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी इलाहाबाद (उ.प्र.)
10. भारतीय राज व्यवस्था एवं भारत का संविधान: डॉ. बी. एल. फडिया, प्रथम संस्करण, 2007, प्रतियोगिता साहित्य भवन, आगरा

इकाई - 6

पुलिस से सम्बन्धित उच्चतम न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णय

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 फर्स्ट इन्फोर्मेशन रिपोर्ट

6.3 अनुसंधान

6.4 अरेस्ट (गिरफ्तारी)

6.5 कस्टडी (हिरासत)

6.6 मानवाधिकार

6.7 सारांश

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप.

- फर्स्ट इन्फॉर्मेशन रिपोर्ट के विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त कर पाऐंगे।
- अनुसंधान, अरेस्ट और कस्टडी के विभिन्न विधियों पर प्रकाश डाल पाऐंगे।
- मानवाधिकार विषय पर जानकारी प्राप्त कर पाऐंगे।
- फर्स्ट इन्फॉर्मेशन रिपोर्ट दर्ज करने के मानदंड समझ पाऐंगे।
- फर्स्ट इन्होर्मेशन रिपोर्ट से सम्बन्धित उच्चतम न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाऐंगे।

6.1 प्रस्तावना

जब किसी अपराध की सूचना पुलिस अधिकारी को दी जाती है, तो उसे'एफआईआर. (फर्स्ट इन्होर्मेशन रिपोर्ट) कहते हैं। इसके अन्तर्गत अपराध की सूचना को कलमबद्ध करने का कार्य पुलिस करती है। भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अनुच्छेद 154 के तहत एफआइआर की प्रक्रिया पूरी की जाती है यह वह महत्वपूर्ण सूचनात्मक दस्तावेज होता है जिसके आधार पर पुलिस कानूनी कार्यवा ही को आगे बढाती है।

एफ.आई.आर. संज्ञेय अपराध होने पर दर्ज की जा जाती है। संज्ञेय अपराध के बारे में प्रथम सूचना रिपोर्ट कोई भी व्यक्ति दर्ज करवा सकता है, इसके तहत पुलिस को अधिकार होता है कि वह आरोपी व्यक्ति को गिरफ्तार करे और जाँच-पड़ताल करे। यदि अपराध संज्ञेय नहीं है, तो बिना कोर्ट के इजाजत के कार्यवाही संभव नहीं हो पाती, हालांकि पुलिस की नजर में दी गई जानकारी में अगर जाँच-पड़ताल के लिए पर्याप्त आधार नहीं बनता है, तो वह कार्यवाही के लिए बाध्य नहीं है। इस स्थिति में उसे कार्यवाही न करने की वजह को लॉग बुक में दर्ज करना होता है। इस इकाई में हम इन्फॉर्मेशन रिपोर्ट, जाँच पड़ताल, गिरफ्तारी व हिरासत के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेगें।

6.2 फर्स्ट इन्फॉर्मेशन रिपोर्ट

6.2.1 फर्स्ट इन्फॉर्मेशन रिपोर्ट (एफआईआर.) दर्ज करने के मानदंड

पुलिस के सामने संज्ञेय अपराध की सूचना होने पर केस दर्ज करने के अलावा पुलिस के पास अन्य कोई विकल्प नहीं बचता है और तब कोड के प्रावधानों के तहत मामले की जाँच प्रक्रिया शुरू करनी होती है। कोड के सेक्शन (धारा) 157(1) द्वारा अपेक्षित शब्दावलियों के अनुरूप पुलिस जाँच नहीं करने का निर्णय भी ले सकती है। संज्ञेय अपराध के कार्य की सूचना होने पर पुलिस के पास मामला दर्ज करने से इनकार करने का अधिकार नहीं है, बल्कि पूछताछ के साथ वे आगे बढ़ सकते हैं और कथित तौर पर की गई पूछताछ को दर्ज करने से इनकार कर सकते हैं। यदि यह पुलिस के निर्णय के लिए छोड़ दिया जाता है कि किस मामले के खुलासा या संज्ञेय अपराध के कार्य की प्रारंभिक पूछताछ वे पहले करेगी और फिर मामला दर्ज करने या नहीं करने का निर्णय लेगी, तो इससे अपराध के दर्ज होने में देर होगी और इस बीच मुख्य सबूत उपलब्ध नहीं हो सकेंगे।

उपर्युक्त सूचना का औचित्य या विश्वसनीयता किसी मामले को दर्ज करने के लिए पहले से रखी गई शर्त नहीं है। पुलिस ऑफिसर को संज्ञेय अपराध से संबंधित सूचना को संगहीत करने से इन्कार नहीं करना चाहिए और न ही उस आधार पर केस दर्ज करने के लिए मना करना चाहिए कि सूचना के औचित्य या विश्वसनीयता से वह संतुष्ट नहीं है।

(स्टेट ऑफ हरियाणा बनाम भजनलाल, ए.आई.आर 1992 सैक्शन 60 = 1992 एस.सी.सी (सीआर) 426=1990(2) स्केल 1066 = 1992 एसयूपीपी (1) एस.सी.सी 335 = 1992 सीआर एल जे 527 जे)

6.2.2 एफआईआर. प्रेषित करने में देरी का प्रभाव:

मजिस्ट्रेट के पास एफआईआर. डिसपैच करने में देरी ही मात्र ऐसी परिस्थिति नहीं होती है, जो अभियोग के मामले को पूरी तरह से बाहर कर दे। मजिस्ट्रेट के पास तत्काल एफआईआर. भेजने में देरी यह संदेह भी पैदा करता है कि बताए गए तारीख की अपेक्षा काफी समय बाद रिपोर्ट को रिकॉर्ड किया गया था। देरी के लिए संतोषजनक तरीके से स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है।

(ईश्वर सिंह बनाम स्टेट ऑफ यूपी, ए.आई.आर 1978 एस.सी. 2423 = 1976(3) ए एस.सी. 356 = 1976 सीआरएल जे 1883 = 1976 एसीसी (सीआर) 629)

6.2.3 एफआईआर. का गवाह की तरह का महत्व

रामसिंह बवेजी जडेजा बनाम स्टेट ऑफ गुजरात

संज्ञेय अपराध के कार्य के बारे में टेलीफोन द्वारा प्रत्येक सूचना को इसकी प्रति और विवरण के बिना अपेक्षा के एफआईआर. की तरह नहीं माना जा सकता है।

एफआईआर. सबूत का कोई अहम हिस्सा नहीं है, यह अभियोग के मामले की सच्चाई को जाँचने के लिए संदर्भित मात्र है और इसका महत्व प्रत्येक केस के तथ्यों पर निर्भर करता है। एफआईआर. में मात्र अनिवार्य या स्पष्ट वर्णन की ही जरूरत होती है और उसमें सभी सूक्ष्म विवरण शामिल करने की जरूरत नहीं होती है। यह अनियोजित केस का शब्दशः सारांश नहीं होता है, इसमें घटना के पूर्ण विवरण की जरूरत नहीं होती है, जैसा कि घटना के विश्वकोष में होता है।

कुछ तथ्यों या दूसरों के अस्पष्ट संदर्भ को नहीं दर्शाना घातक नहीं होता है।

(बालदेव सिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब, ए.आई.आर 1996 एस.सी. 372 = 1995 एस.सी.सी (सीआर) 1132 = 1995 (6) एस.सी.सी 593 = 1995 (5) स्केल 703 = 1995(4) क्राइम्स 244)

6.2.4 पुलिस स्टेशन के स्थानीय क्षेत्राधिकार से बाहर किए गए अपराध के लिए एफआईआर.

पुलिस स्टेशन में पुलिस अधिकारी ने उसके सामने प्रस्तुत शिकायत को रिकॉर्ड करने से इस आधार पर इनकार किया कि कथित पुलिस स्टेशन का अपराध स्थल पर क्षेत्रीय अधिकार नहीं था। यह पुलिस अधिकारी के लिए निश्चित तौर पर कर्त्तव्य के प्रति गैर-जिम्मेदारी थी, क्योंकि संज्ञेय अपराध के बारे में सूचना रिकॉर्ड करने और अपराध स्थल पर जिस पुलिस स्टेशन का क्षेत्रीय अधिकार था, उस तक इसे अग्रसित करने से कोई भी कानून उसे नहीं रोकता है।

(स्टेट ऑफ एपी बनाम पुनता रामुलु एवं अन्य, ए.आई.आर 1993 एस.सी. 2644 = 1994 एसयूपीपी (1) एस.सी.सी 590 = 1993 सीआर एलजे 3684 = 1994 एसीसी (सीआर) 734)

6.2.5 एफ.आई आर. - यह एक पब्लिक डॉक्यूमेंट है

जयंतीभाई लालूभाई पटेल बनाम द स्टेट ऑफ गुजरात

जब कभी आरोपित के विरुद्ध एफआईआर. दर्ज किया जाता है, इसकी एक प्रति कोर्ट के प्रावधान के अंतर्गत कोर्ट को अग्रसित की जाती है। इस तरह यह पब्लिक डॉक्यूमेंट बन जाता है। जैसे ही आरोपित द्वारा शिकायत की सत्यापित प्रतिलिपि के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जाता है, तो जिस कोर्ट को अग्रसित किया गया है, उसे शिकायत की सत्यापित प्रतिलिपि दे देनी चाहिए।

6.2.6 मजिस्ट्रेट द्वारा हस्तक्षेप

6.2.6.1 स्टेट ऑफ हरियाणा एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य

अपराध का अन्वेषण सिर्फ उस पुलिस ऑफिसर के लिए ही सुरक्षित क्षेत्र है, जिसका इस क्षेत्र में स्वतंत्र अधिकार है, जब तक कि संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने के अधिकार को कोड के तहत आने वाले प्रावधानों के अनुरूप एकदम सही वैधानिक तरीके से काम में लिया जाता है और कोर्ट के लिए अन्वेषण के मार्ग को विरूपित करना न्यायोचित नहीं है, खास तौर पर जब अन्वेषण एजेंसी अपने कानूनी सीमा में हो। कोड के अंतर्गत स्कीम की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि पुलिस अन्वेषण के सभी स्तर पर एक मजिस्ट्रेट को परिदृश्य में रखा जाता है, लेकिन वह वास्तविक अनुसंधान में हस्तक्षेप करने या पुलिस को निर्देशित करने कि उस अनुसंधान का संचालन कैसे करना है, के लिए अधिकृत नहीं होता है। लेकिन यदि कोई पुलिस अफिसर परीसिमित सीमा का उल्लंघन करता है। और अनुचित और अवैध तरीके से अपने अनुसंधनात्मक अधिकार का प्रयोग कानून द्वारा स्थापित प्रावधानों का उल्लंघन करके व्यक्तिगत स्वतंत्रता और नागरिक के संपत्ति के प्रति भी गंभीर रूप से पूर्वाग्रह पैदा करता है, तब अपनी शिकायत दूर करने के लिए पीड़ित व्यक्ति के कोर्ट से संपर्क करने पर उल्लंघन की प्रकृति और प्रभाव पर कोर्ट को विचार करना होता है और नागरिकों को पुलिस इसेलंस की दया पर छोड़े बिना आवश्यकतानुसार आदेश पारित करना पड़ता है, क्योंकि हमारे संविधान में मानव की मर्यादा को अहम माना गया है।

6.2.6.2 जब पुलिस ऑफिसर अन्वेषण नहीं करने का निर्णय लेते हैं. तब मजिस्ट्रेट हस्तक्षेप कर सकता है।

किसी संज्ञेय अपराध के अनुसंधान का वह क्षेत्र सिर्फ अनुसंधान कर्त्ता एजेंसी के अधिकार क्षेत्र में होता है, जिस पर कोर्ट न तो कोई नियंत्रण रख सकता है और जब तक अन्वेषण से संबंधित प्रावधानों के अनुरूप अनुसंधान की कार्यवाही चलती है, तब तक उसे अन्वेषण की कार्यवाही पर दबाव डालने या अतिक्रमण करने का कोई अधिकार नहीं होता है। जब पुलिस ऑफिसर अपराध का अनुसंधान नहीं करने का निर्णय लेता है, सिर्फ उन्हीं हालातों में ही संबंधित मजिस्ट्रेट हस्तक्षेप कर सकता है या अनुसंधान को निर्देशित कर सकता है और यदि वो उचित समझता है, तो वह स्वयं भी तुरंत कार्यवाही कर सकता है या उससे प्रारंभिक पूछताछ की कार्यवाही के लिए अपने अधीनस्थ को प्रतिनियुक्त कर सकता है अन्यथा कोड के प्रावधानों के अनुरूप केस को निपटा भी सकता है।

6.3 अनुसंधान

6.3.1 असंज्ञेय अपराध के अनुसंधान का मापदंड

सीआरपीसी की धारा 155 (2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुपालन के अतिरिक्त असंज्ञेय अपराध का अनुसंधान करने के लिए पुलिस अधिकृत नहीं है।

जहाँ किसी केस में एक से अधिक अपराध होते हैं और जिसमें से एक संज्ञेय अपराध हो, पुलिस ऐसे असंज्ञेय और संज्ञेय दोनों ही मामले में मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना गिरफ्तार करने और अन्वेषण के लिए अधिकृत होती है।

(केशव लाल ठाकुर बनाम स्टेट ऑफ बिहार, 1996(4) क्राइम्स 129 (एस.सी.) = 1996 (11) एस.सी.सी 557 = 1996(7) स्केल 598=1997 (1) सुप्रीम 150) (प्रवीण चंद्र बनाम स्टेट ऑफ बिहार, ए.आई.आर 1965 एस.सी. व 165 = 1995(1) एस.सी.आर 299 = 1995(2) सीआर एलजे 250)

6.3.2 केस दर्ज करने और उसका अनुसंधान करने के लिए पुलिस को निर्देशित करने का मजिस्ट्रेट का अधिकार सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह माना गया है कि सीआरपीसी की धारा 158 (3) के अंतर्गत पुलिस स्टेशन में केस दर्ज करने और तब अपराध का अनुसंधान करने के लिए पुलिस को निर्देशित करने के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट अधिकृत होता है।

(मधुबाला बनाम सुरेश कुमार, 1997(3) क्राइम्स, 162 (एस.सी.) जेटी 1997(7) एस.सी. 85)

6.3.3 हाई कोर्ट द्वारा अन्वेषण को एक पुलिस स्टेशन से दूसरे पुलिस स्टेशन को स्थानांतरित करने का सिद्धांत

यदि यह पाया जाता है कि अन्वेषण एक ऐसे अन्वेषणकर्ता अधिकारी द्वारा किया गया है, जिसका इस मामले में कोई भी क्षेत्रीय अधिकार नहीं था, तब उसे इसको आवश्यक क्षेत्राधिकार वाले पुलिस स्टेशन को स्थानांतरित करना चाहिए।

(नरेश कावरचंद खत्री बनाम स्टेट ऑफ गुजरात (2008) 3 एसीसी (सीआरआई) 614 ए.आई.आर 2008 एस.सी. 2180 = 2008 (7) एस.सी.आर 1102 = 2008 (8) एसीसी 300 = 2008 (4) सुप्रीम 410)

6.3.4 (अ.) पुलिस अनुसंधान कानून के अंतर्गत हस्तक्षेप की अनुमति नहीं

अनुसंधान केवल पुलिस के अधिकार क्षेत्र में होता है और उसके इस काम में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। जब कोड के धारा 169 के अंतर्गत अंतिम रिपोर्ट को प्रेषित किया जा चुका हो, तो कोड के अंतर्गत स्पष्ट या अंतर्निहित रूप से पुलिस को चार्जशीट प्रस्तुत करने के लिए कहने का मजिस्ट्रेट को कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। आरोपित व्यक्ति जिसकी अग्रिम जमानत निरस्त हो गई हो, उसकी गिरफ्तारी के लिए निर्देश देना भी न्यायोचित नहीं है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह अवलोकन किया गया है कि एक व्यक्ति जिसकी अग्रिम जमानत स्वीकृति के लिए आवेदन निरस्त कर दी गई थी, अन्वेषणकर्ता द्वारा गिरफ्तार करने या नहीं करने करने जैसे विशिष्ट मामलों के तथ्यों, अपराध की प्रकृति, आरोपित की पृष्ठभूमि अन्वेषण के दौरान तथ्यों के खुलासे एवं अन्य प्रासंगिक बातों पर निर्भर करता है।

सुप्रीम कोर्ट ने यह भी अवलोकित किया है कि अन्वेषणकर्ता एजेंसी पूरी तरह से हुए अन्वेषण के बाद एक आरोप पत्र या अंतिम रिपोर्ट न्यायालय में जमा कर सकती है और यह मजिस्ट्रेट पर निर्भर करता है कि वह रिपोर्ट को मंजूर करता है या रिपोर्ट असहमति जताता है और अपराध का संज्ञान लेने या आगे और पूछताछ करने के लिए कहता है। यद्यपि तत्काल अनुसंधान के लिए निर्देश देना हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में है, लेकिन हाई कोर्ट अनुसंधान कर्त्ता एजेंसी को आरोप पत्र प्रस्तुत करने के लिए निर्देश नहीं दे सकता है, क्योंकि केस के अनुसंधान कर्त्ता एजेंसी के साथ उसके द्वारा वैधानिक अधिकार का इस्तेमाल कर बाधित करने का यह अनावश्यक हस्तक्षेप माना जाएगा।

(अभिनंदन झा एवं अन्य बनाम दिनेश मिश्रा, ए.आई.आर 1968 एस.सी.. 117 = 1967 (3) एस.सी.आर 668 = 1968 सीआरएलजे 97 एमसी अब्राहम बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र 2003 एस.सी.सी (सीआरआई) 628 = 2003 (2) एस.सी.सी 6490 = 2003 एस.सी.सी (सीआरआई) 628 = 2003(1) क्राइम्स 302 एस.सी..)

6.3.4 (ब) अन्वेष्ण में हस्तक्षेप करने का कोर्ट का सीमित अधिकार

सुप्रीम कोर्ट ने निम्न सिद्धांत प्रतिपादित किया है-

अनुसंधान कर्त्ता द्वारा किसी व्यक्ति को आरोपित के रूप में शामिल करने या किसी व्यक्ति विशेष को गिरफ्तार करने या किसी व्यक्ति विशेष के विरूद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित करने का कोर्ट के पास ना शक्ति है और ना अधिकार है।

(अभिनंदन झाड एवं अन्य बनाम दिनेश मिश्रा, ए.आई.आर 1968 एस.सी.. 117 = 11967 (3) एस.सी.आर 668 = 1968 सीआरएलजे 97 एमसी अब्राहम बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र 2003 एस.सी.सी (सीआरआई) 628 = 2003(2) एस.सी.सी 649 = 2003 एस.सी.सी (सीआरआई) 628 = 2003(1) क्राइम्स 302 एस.सी.)(डायरेक्टर सीबीआई बनाम नियमावेदी 1995 एस.सी.सी (सीआर) 558 = 1995(3) एस.सी.सी 601 = 1995 (5) जेटी 401 = 1995(2) स्केल 608 = 1995 (2) यूके 184 = 1995(2) क्राइम्स 252 = 1995 सीआरएलजे 2917)

6.3.4 (स) अपराधिक मामले के अन्वेषण की निगरानी- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत

सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि ए. के बाजोरिया को गिरफ्तार करने और पूछताछ के लिए तारीख, समय और स्थान निश्चित करने से एंफोर्समेंट निदेशालय को रोककर हाई कोर्ट ने स्पष्ट रूप से गलत किया है। इस प्रकार के जाँच के निरीक्षण या अधिनियमन के अंतर्गत अनुसंधान अनुचित

है। सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस प्रकार के हस्तक्षेप जाँच के मार्ग या आर्थिक अपराधों से संबंधित गंभीर आरोपों के अनुसंधान के मार्ग में बाधा खड़ी करेगी।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा प्रतिपादित कानून है कि एक छुपा आदेश किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी से पूरी तरह से सुरक्षित करके, उससे पूछताछ को मात्र एक रिवाज बनाएगा। अनुसंधान की कार्यवाही पर निगरानी रखना कोर्ट का काम नहीं है, जब तक कि अनुसंधान कानून के किसी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करता है। यह सब अनुसंधान कर्त्ता एजेंसियों पर छोड़ देना चाहिए कि वह स्थान, समय, प्रश्न और ऐसे प्रश्नों को ऐसे अपराध में शामिल व्यक्ति के सामने प्रस्तुत करने के तरीकों का निर्धारण करे।

(डी वेणुपाणि, असिस्टेंट डायरेक्टर, एनफोर्समेट डायरेक्टरेट (एफईआरए) बनाम एके बाजोरिया, जेटी 1997(9) एस.सी. 379)

6.3.5 (अ) मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान लेने के बाद पुलिस द्वारा आगे का अनुसंधान के सिद्धांत

सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित किया गया है कि अनुसंधान की कार्यवाही को आगे बढाने के लिए मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति के लिए कानून निर्देशित नहीं करता है। यह पुलिस का वैधानिक अधिकार है कि आरोप पत्र दाखिल करने के बाद भी अनुसंधान को आगे बढाए। जब नई सूचना प्रकाश में आती है, तब पुलिस इस अधिकार का उपयोग आवश्यकतानुसार बार-बार कर सकती है। अपराध का संज्ञान लेने के बाद भी अनुसंधान को आगे बढ़ाने के लिए निर्देशित करने का मजिस्ट्रेट को विशेषाधिकार प्राप्त है। सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अनुसंधान आगे बढ़ाने के लिए मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति की जरूरत नहीं है, लेकिन मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति के बिना दोबारा अनुसंधान मना है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह भी निर्धारित किया गया है कि उस अन्वेषण को लेना हाई कोर्ट के लिए न्यायोचित नहीं है, जो भिन्न एजेंसी द्वारा लिया गया है और जब सीआईडी राज्य के अनुसंधान एजेंसी का एक हिस्सा हो।

(स्टेट ऑफ अन्द्रा प्रदेश बनाम एएस पीटर (2008) 1 एस.सी.सी (सीआरआई) 427 = ए.आई.आर 2008 एस.सी. 1052 = 2007 (13) एस.सी.आर 517 = 2008 (2) एस.सी.सी 383 = 2008(1) एस.सी.सी (सीआरआई) 427)

6.3.5 (ब) मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान लेने के बाद सीआरपीसी की धारा 173 (8) के अंतर्गत आगे का अनुसंधान- कानून के अंतर्गत आज्ञा पाने योग्य

सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्थापित कानून है कि सीआरपीसी के धारा 173(8) के अंतर्गत अनुसंधान पूरा होने पर पुलिस रिपोर्ट की प्रस्तुति के आधार पर कोर्ट द्वारा अपराध का सज्ञान लेने के बाद भी पुनअनुसंधान किया जा सकता है।

(जाहिरा हबीबुल्लाह शेख बनाम स्टेट ऑफ गुजरात 2004 एस.सी.सी (सीआरआई) 99902004 (5) स्केल 697 = 2004 (4) सुप्रीम 226)

6.3.5 (स) पुलिस रिपोर्ट की प्रस्तुति के बाद आगे के अनुसंधान के लिए मानदंड-

एक काल्पनिक केस को दृष्टिगोचर करना आसान है, जहाँ नई चीज प्रकाश में आ सकती है, जिसमें जो व्यक्ति पहले आरोपित नहीं था वह फंसेगा या पहले आरोपित व्यक्ति मुक्त होगा। जब अनुसंधान एजेंसी के सामने यह बात आती है कि कोई व्यक्ति पहले से ही अपराध का आरोपित है के पास अपराध के समय अपराध स्थल पर नहीं होने का अच्छा बहाना होता है, क्या उस एजेंसी का

कर्त्तव्य नहीं है कि बहाने के तर्क की वास्तविकता को परखे और मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करे? आखिरकार अनुसंधान कर्त्ता एजेंसी के पास एक प्राइवेट व्यक्ति की तुलना में कहीं ज्यादा संसाधन होते हैं। इसी प्रकार अनुसंधान कर्त्ता एजेंसी के पास जब किसी व्यक्ति, जो पहले से आरोपित नहीं है, के शामिल होने की सूचना मिलती है, तो अनुसंधान कर्त्ता एजेंसी चुप नहीं रह सकती है और नई सूजना के बारे में अनुसंधान करने से इनकार नहीं कर सकती है। यह उसका कर्त्तव्य होता है कि अन्य व्यक्ति के शामिल होने के बारे में अनुसंधान करे और मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट प्रस्तुत करे। सामान्यत: यह वांछनीय होगा कि जब कोई नई सच्चाई प्रकाश में आती है, तो पुलिस कोर्ट को सूचित करे और आगे अनुसंधान करने हेतु वैधानिक अनुमति प्राप्त करे। सुप्रीम कोर्ट का मत है कि सीआरपीसी की धारा 173(2) और (8) से स्पष्ट है कि अनुसंधान पूरा कर पुलिस रिपोर्ट की प्रस्तुति के बाद भी पुलिस को आगे अनुसंधान करने का अधिकार है, लेकिन कोई नया या दोबारा अनुसंधान नहीं होगा।

आगे का अनुसंधान पूर्व के अनुसंधान को आगे बढ़ाना है न कि पूर्व के अनुसंधान को पूरी तरह से मिटा कर शुरु से एक नया अनुसंधान करना है। कानून इस प्रकार के पुलिस अनुसंधान के लिए मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति लेने के लिए आज्ञा नहीं देता है। सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट तौर पर प्रतिपादित किया है कि आरोप पत्र दाखिल करने के बाद भी पुलिस द्वारा अनुसंधान को आगे जारी रखना अनुसंधान कर्त्ता एजेंसी का वैधानिक अधिकार है और मात्र इसलिए इसकी कांट-छांट नहीं की जा सकती है कि इसे ट्राली पर देर की स्थिति में फाइल किया गया है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा प्रतिपादित कानून के आगे का प्रस्तावना कहता है कि अभियोजन गवाह के रूप में किसी व्यक्ति को हाजिर करने के लिए अधिकृत है। यद्यपि ऐसे व्यक्ति का नाम. पूर्व के आरोप पत्र में नहीं हो।

(राम लाल नारंग बनाम स्टेट ऑफ (दिल्ली एडमिन.) ए.आई.आर 1979 एस.सी. 1791 = 1979 एस.सी.सी (सीआर) 479 = 1979 (2) एस.सी.आर 923 = 1979 सीआरएलजे 1346, समा चोधरी बनाम स्टेट ऑफ बिहार (20092 एस.सी.सी (सीआरआई) 1059)

6.3.5 (द) पुलिस रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद मजिस्ट्रेट द्वारा पूछताछ के संचालन का स्वविवेकाधिकार

कार्यवाही का मानदंड यदि कोई शिकायतकर्ता अपनी शिकायत में प्रासंगिक वास्तविकता का वर्णन करता है या आरोप लगाता है कि आरोपित आईपीसी की धारा 307 के अंतर्गत दोषी है, तब मजिस्ट्रेट शिकायतकर्ता के निष्कर्ष से बंधता नहीं है। वह समझ सकता है कि आईपीसी की धारा 324 के अंतर्गत वास्तविक तौर पर किसी अपराध का खुलासा करती है और वह आईपीसी की धारा 307 की बजाय आईपीसी के धारा 324के अंतर्गत अपराध का सज्ञान ले सकता है।

(एच.एस बेस बनाम स्टेट ऑफ अनइयन टेरिटरी ऑफ चंडीगढ़, ए.आई.आर 1980 एस.सी. 1883 = 1980 सीआरएलजे 1308 = 1980 (यं) एस.सी.सी 631 = 1981 (1) एस.सी.आर 935 = 1981 एस.सी.सी (सीआर 93)

6.3.6 (अ) पुलिस रिपोर्ट स्वीकार करने में मजिस्ट्रेट का स्वविकेधिकार -कार्यवाही का मानदंड

सीआरपीसी की धारा 173(2) के अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त करने पर-सीआरपीसी की धारा 109(1) (दी) के अंतर्गत किसी अपराध का संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट अधिकृत है, यहां तक कि पुलिस रिपोर्ट में आरोपित के विरुद्ध कोई केस नहीं बनना बताया गया हो, तब भी। अनुसंधान के दौरान जाँच किए गए गवाहों के बयानों पर मजिस्ट्रेट विचार करता है और शिकायत किए गए अपराध का सज्ञान लेता है तथा आरोपित के विरुद्ध कार्यवाही के लिए आदेश जारी करता है।

6.3.6 (ब) सूचना का अधिकार और पीड़ित के अंतिम रिपोर्ट को चुनौती

मजिस्ट्रेट का कर्त्तव्य धारा 173 की उपधारा (2) (द्ब) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट अग्रसित करने पर जब अपराध का संज्ञान नहीं लेने का निर्णय करता है और कार्यवाही रोकता है या विचार करता है कि एफआईआर. में दर्शाए गए कुछ व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही के लिए आवश्यक आधार नहीं है, तो मजिस्ट्रेट को सूचित करने वाले को अवश्य ही नोटिस देना चाहिए और रिपोर्ट पर विचार करते समय उसकी बात सुनने का अवसर प्रदान करना चाहिए।

(भगवंत सिंह बनाम कमिशनर ऑफ पुलिस, ए.आई.आर 1985 एस.सी. 1285 = 1985 एस.सी.सी (सीआर) 267 = 1985 सीआरएलजे 1179 = 1985(2) एस.सी.सी 5370 = 1985(3) एस.सी.आर 942 = 1985 (1) क्राइम 994=1985 (1) स्केल 1194) (इंडिया कैरेट प्रालि बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक, ए.आई.आर 1989 एस.सी. 885 = 1989 एसीसी (सीआर) 306,1989 सीआरएलजे 963 = 1989(2) एस.सी.सी 13 = 1989 (2) क्राइम्स 483 = 1989(1) एस.सी.आर 718 = 1989(1) स्केल 370)

6.3.7 गवाह के बयान दर्ज करने में देरी से अभियोजन मामले पर संदेह के लिए मानदंड

अनुसंधान के दौरान गवाहों के बयान को दर्ज करने में अपने आप हुई देर उनके सबूतों को संदेहात्मक और विश्वसनीय नहीं बनाता है। यहां तक कि यदि आई.ओ की ओर भी कुछ खामियां रहती हैं, तो भी यह उनके सबूतों को प्रभावित नहीं कर सकता है, यदि कोर्ट संतुष्ट है कि वे विश्वसनीय गवाह हैं।

(परेश कल्याणदास भावसर बनाम सादिक याकुभाई जमुदार ए.आई.आर 1993 एस.सी. 1544 = 1993 (3) एस.सी.सी 95 = 1993(2) जेटी 435 = 1993 (2) स्केल 200=1993 सीआरएलजे. 1857 = 1994 (1) क्राइम्स 20)

6.3.8 राज्य सरकार द्वारा सीबीआई को हस्तांतरित अन्वेषण राज्य सरकार द्वारा वापस नहीं लिया जाना

यदि आगे का अनुसंधान करना हो तो भी सुप्रीम कोर्ट का मत है कि राज्य सरकार की अनुमति से सीबीआई द्वारा शुरू किए गए अनुसंधान को वापस लेकर बीच में ही नहीं रोका जा सकता है।

(के चंद्रशेखर बनाम स्टेट ऑफ केरल, जेटी 1998(3) एस.सी. 61)

6.3.9 आरोपित के मुक्त होने पर अनुसंधान में संशोधन -उचित नहीं

आपराधिक मामलों में जब अपराधी को ट्राइल कोर्ट दोषमुक्त कर देता है, तब अनुसंधान में संशोधन एक नियमित कार्यवाही प्रतीत होती है। क्रिमीनल कोर्ट को अनुसंधान की खामियों को चुनने और अन्वेषण अधिकारी के विरुद्ध कटु आलोचना करने में समय बर्बाद नहीं करना चाहिए। कोर्ट द्वारा यह प्रयास होना चाहिए कि अनुसंधान की खामियों के बावजूद आपराधिक न्याय की रक्षा हो। कोर्ट को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वर्तमान व्यवस्था में पुलिस ऑफिसर पर दबाव, अधूरा साजोसामान वाली कार्यप्रणाली, जिसके साथ उन्हें काम करना पड़ता है और आपराधिक मामलों में प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा सबूत देने में पारंपरिक उदासीनता, जो वास्तविकताएं हैं, जिनका सामना प्रत्येक मामले में अनुसंधान के दौरान पुलिस बल को प्राय: करना पड़ता है। (स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल बनाम मीर मोहम्मद ओमर 2000 एस.सी.सी (सीआर) 1516 = ए.आई.आर 2000 एस.सी. 2988 = 2000 (8) एस.सी.सी

382 = 2000) सीआर एलजे 4047 = 2000 (4) क्राइम्स 1 (एस.सी.) = 2000(9) जेटी 467 = 2000 (6) स्केल 148 = 2000 (6) सुप्रीम 172)

6.4 अरेस्ट (गिरफ्तारी)

6.4.1 गिरफ्तारी के बाद पुलिस अधिकारी के कर्त्तव्य -अपेक्स कोर्ट के दिशा निर्देश श्री डी के बासु बनाम स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल

सुप्रीम कोर्ट ने निम्न निर्देश दिए हैं-

(i) गिरफ्तार करने की कार्यवाही और बंदी से पूछताछ करने वाले पुलिस कर्मी के पास सही तरीके से दिखाई देने वाला और स्पष्ट पहचान के लिए पद के साथ नाम का टैग होना चाहिए। ऐसे सभी पुलिसकर्मियों, जो बंदी से पूछताछ का कार्य करते हैं, का पूरा ब्यौरा एक रजिस्टर में दर्ज होना चाहिए।

(ii) बंदी को गिरफ्तार करने की कार्यवाही करने वाले पुलिस ऑफिसर गिरफ्तारी के समय एक मिमो तैयार करेंगे और वह मिमो कम से कम एक गवाह द्वारा सत्यापित किया जाएगा, जो बंदी के परिवार का सदस्य भी हो सकता है या जहाँ उसे गिरफ्तार किया जाता है, वहाँ का कोई स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति भी हो सकता है। बंदी के द्वारा भी इसे काउंटर साइन किया जाएगा और इसमें गिरफ्तारी का समय और तारीख भी होगी।

(iii) व्यक्ति जिसे गिरफ्तार किया गया है या रोका रखा गया है, या पुलिस स्टेशन में कस्टडी में रखा गया है या पूछताछ केंद्र या दूसरे लॉकअप में रखा गया है, वह अपने पास एक मित्र या रिश्तेदार या. अपने जानकार किसी अन्य व्यक्ति को अपने पास रखने के लिए अधिकृत होगा या उसके हितकारी को जितना शीघ्र व्यावहारिक हो सूचित करना होगा कि उसे गिरफ्तार किया गया है और विशिष्ट स्थान पर रोक कर रखा गया है, जब तक कि ऐसा व्यक्ति अरेस्ट के मिमो को सत्यापित करने वाला गवाह बंदी का स्वयं एक मित्र या रिश्तेदार न हो।

(iv) बंदी के गिरफ्तारी के समय, स्थान और कस्टडी के स्थान को, बंदी के मित्र या रिश्तेदार को बताना होगा. और यदि वे जिला से बाहर या शहर में रहते हैं, तो जिले में लीगल एड ऑर्गेनाइजेशन द्वारा बताना होगा और उस क्षेत्र के संबंधित पुलिस स्टेशन को गिरफ्तारी के बाद 8 से 12 घंटे के अंदर तार द्वारा सूचित करना होगा।

(v) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इसकी जानकारी देनी होगी कि जैसे ही उसे गिरफ्तार किया जाता है या रोककर रखा जाता है, तो इसके बारे में किसी को सूचित करना उसका अधिकार है।

(vi) रोके रखने के स्थान पर व्यक्ति की गिरफ्तारी के बारे में डायरी में अवश्य दर्ज करना होगा, जिसमें व्यक्ति के मित्र का नाम, जिसे गिरफ्तारी के बारे में सूचित किया गया है और उस पुलिस ऑफिशियल का नाम, जिसकी कस्टडी में वह बंदी है का खुलासा होना चाहिए।

(vii) बंदी यदि ऐसा निवेदन करता है, तो उसकी गिरफ्तारी के समय जाँच होनी चाहिए और कोई बड़ा या छोटा चोट का निशान यदि कोई उसके शरीर पर नजर आता है, तो उस समय उसे दर्ज भी करना होगा। बंदी और गिरफ्तार करने वाले पुलिस ऑफिसर दोनों द्वारा हस्ताक्षरित होगा और इसकी एक प्रति बंदी को प्रदान की जाएगी।

(viii) संबंधित राज्य या केंद्र शासित के हेल्थ सर्विसेज के निर्देशक द्वारा नियुक्त किए गए डॉक्टर्स की मान्य सूची में से किसी एक प्रशिक्षित डॉक्टर द्वारा कस्टडी में रोक कर रखने के दौरान बंदी का हर 48 घंटे पर स्वास्थ्य परीक्षण किया जाना चाहिए।

(ix) अरेस्ट मिमो के साथ सभी उपर्युक्त संदर्भित दस्तावेजों की प्रतियां इलाका मजिस्ट्रेट को उसके रिकॉर्ड के लिए भेजना चाहिए।

(x) पूछताछ के दौरान बंदी को अपने वकील से मिलने की अनुमति दी जा सकती है, लेकिन पूछताछ के दौरान पूरे समय के लिए नहीं।

(xi) सभी जिला और राज्य के मुख्य कार्यालय में एक पुलिस कंट्रोल रूम का प्रावधान होना चाहिए, जहाँ गिरफ्तारी और बंदी के कस्टडी के स्थान के बारे में अरेस्ट करने के 12 घंटे के भीतर अरेस्ट करने वाले ऑफिसर द्वारा जानकारी प्रेषित करनी होगी और पुलिस कंट्रोल रूम में आसानी से दिखाई पड़ने वाले नोटिस बोर्ड पर इसे प्रदर्शित करना चाहिए।

(xii) उपर्युक्त जरूरतों को पूरा करने में सफल नहीं होने पर संबंधित अफसर को विभागीय कार्यवाही के लिए उत्तरदायी ठहराने के अलावा कोर्ट की अवमानना की सजा के लिए भी जिम्मेदार ठहराया जाएगा और कोर्ट की अवमानना की कार्यवाही देश के किसी भी हाईकोर्ट में चलाई जा सकती है, इस मामले पर क्षेत्रीय अधिकार होगा।

ये जरूरतें संवैधानिक और वैधानिक बचाव के अतिरिक्त है और सभी लॉ इंफोर्समेंट एजेंसी के लिए लागू होती हैं।

(श्री डी.के बासु बनाम स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल, जेटी 1997 (ढ्ढ) एस.सी. 1 एआई आर 1997 (एस.सी.) 610 = 1917 (1) एस.सी.सी 416 = 1996(9) स्केल 298 = 1996(8) सुप्रीम 581 = 1996(4) क्राइम्स 233 (एस.सी.) = 1997 सीआरएल. जे 743)

6.4.2 गिरफ्तार और आरोपित के अधिकार

जोगिंदर कुमार बनाम स्टेट ऑफ यूपी. एवं अन्य

राष्ट्र की सभ्यता की गुणवत्ता को क्रिमीनल लॉ लागू करने के लिए व्यवहार में लिए जाने वाले तरीकों से अधिकांशत: मापा जा सकता है। मानवाधिकार का व्यापक विस्तार हो रहा है। एक ओर कानून, व्यक्तिगत अधिकारों, स्वतंत्रता और सुविधाएँ हैं, तो दूसरी ओर व्यक्तिगत कर्त्तव्यों, नैतिकता और जिम्मेदारियों को संतुलित करना है।

कोई गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि पुलिस अफसर के लिए ऐसा करना कानून सम्मत है। अरेस्ट करने के अधिकार का अस्तित्व एक चीज है। अरेस्ट करने का औचित्य बिलकुल दूसरा है। पुलिस ऑफिसर को गिरफ्तार करने के अपने अधिकार के अतिरिक्त इसे न्यायोचित ठहराने में सक्षम होना चाहिए। व्यक्तिगत कारणों से किसी व्यक्ति को अरेस्ट करना और पुलिस लॉकप में रोके रखना उसके प्रतिष्ठा और स्वाभिमान को अत्यधिक नुकसान पहुँचाता है। किसी व्यक्ति पर अपराध करने के मात्र आरोप लगाने पर ही नियमित तौर पर की जाने वाली गिरफ्तारी की तरह उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। एक पुलिस ऑफिसर के लिए यह विवेक पूर्ण होगा कि नागरिक के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा के हित में और शायद स्वयं के हित में भी, शिकायत की वास्तविकता और प्रमाणिकता और एक युक्तिसंगत विश्वास व्यक्ति के सहापराधिता और उसे गिरफ्तार करने की जरूरत दोनों का अनुसंधान करने के बाद उचित संतुष्टि प्राप्त किए बिना अरेस्ट नहीं किया जाए। किसी अपराध में सहापराधिता के संदेह मात्र पर ही कोई व्यक्ति अरेस्ट के लिए जिम्मेदार नहीं होता है। अरेस्ट करने वाले अफसर के विचार में अवश्य कुछ युक्तिसंगत औचित्य होना चाहिए कि इस प्रकार की गिरफ्तारी

आवश्यक और उचित है। गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के निवेदन पर किसी को सूचित करने और निजी रूप से वकील से विचार विमर्श करने का अधिकार संविधान के आर्टिकल्स 21 और 22(1) में अतर्निहीत है और इसे जानने और ईमानदारी से इनकी रक्षा करने की जरूरत है।

इन मौलिक अधिकारों को प्रभावी प्रचलन के लिए निम्न जरूरतों को जारी किया जाता है-

(अ) एक अरेस्ट किए गए व्यक्ति के कस्टडी में रहने पर उसे यह अधिकार प्राप्त है कि यदि वह निवेदन करता है कि एक मित्र, रिश्तेदार या अन्य व्यक्ति, जो उसका परिचित है या उसके हित का ध्यान रखने वाला है, जहाँ तक संभव हो उसके गिरफ्तार किए जाने और जिस स्थान पर उसे रखा गया है, उसके बारे में बताना होगा।

(ब) जब उसे पुलिस स्टेशन पर लाया जाता है, तो पुलिस अफसर उसे उसके इस अधिकार से अवगत कराएगा।

(स) डायरी में इसे दर्ज करने की जरूरत होगी कि गिरफ्तारी के बारे में किसको सूचित किया गया है। सत्ता से इन सुरक्षाओं को आर्टिकल 21 और 22(1) से प्रवाहित होते हुए देखना होगा और सख्ती से लागू करना होगा।

मजिस्ट्रेट, जिसके समक्ष गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उपस्थित किया जाता है, का यह कर्त्तव्य होगा कि वह खुद को संतुष्ट करे कि इसके साथ उन जरूरतों की पूर्ति हो गई है।

6.4.3 आरोपित महिला को गिरफ्तार करना

क्रिश्चियन कम्यूनिटी वेलफेयर काउंसिल ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र सरकार एवं अन्य

हाई कोर्ट ने राज्य सरकार को निर्देश दिया कि सभी पुलिस अफसर को निर्देश जारी करे कि सूर्यास्त के बाद या सूर्योदय से पहले बिना महिला कॉन्सटेबल की उपस्थिति के किसी महिला को गिरफ्तार या रोककर नहीं रखा जाएगा। पुलिस कस्टडी में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की गिरफ्तारी के तुरंत बाद मेडिकल जाँच अवश्य की जाए और हवालात में हर तीसरे दिन पर मेडिकल रिपोर्ट का ब्यौरा जनरल डायरी में अवश्य दर्ज करके संबंधित मजिस्ट्रेट को उसे अग्रसर करना होगा। सुप्रीम कोर्ट यह मानता है कि आरोपित महिला को महिला कॉन्सटेबल की उपस्थिति में गिरफ्तार करने के सभी प्रयास होने चाहिए, लेकिन गिरफ्तारी के पहले या गिरफ्तारी के तुरंत बाद संबंधित कारण को दर्ज करना होगा। गिरफ्तार करने वाले अफसर को आरोपित महिला को दिन या रात के किसी समय यहां तक कि महिला कॉन्सटेबल के उपस्थिति के बिना भी अरेस्ट करने की अनुमति दी जा सकती है, यदि अरेस्ट करने वाला अफसर युक्ति संगत रूप से संतुष्ट होता है कि महिला कॉन्स्टेबल की उपस्थिति संभव नहीं है या महिला कॉन्स्टेबल को उपस्थित करने में देरी के कारण अरेस्ट करने में देरी से अनुसंधान मार्ग में बाधा डालेगी।

6.5 कस्टडी (हिरासत)

6.5.1 पुलिस हवालात के लिए आरोपित की शारीरिक उपस्थिति

(अ.) सीआरपीसी की धारा 167 के अंतर्गत कोई मजिस्ट्रेट किसी हिरासत में नजरबंदी के लिए अधिकृत नहीं करेगा, जब तक कि आरोपित को उसके समक्ष उपस्थित नहीं किया जाता है। यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या आरोपित व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित किया गया, तो आरोपित व्यक्ति की उपस्थिति को अधिकृत करने वाले आदेश पर उसके हस्ताक्षर द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने कुछ निश्चित परिस्थितियों में इस नियम को लचीला बना दिया है और प्रतिपादित किया है कि ऐसे मामलों में जहाँ आरोपित को बीमारी या एक ही दिन दो भिन्न

जिलों के दो भिन्न कोर्ट के मामलों में उपस्थित होने की वजह से आरोपित को उसकी अनुपस्थिति में हिरासत की स्वीकृति दी जा सकती है। सीआरपीसी की धारा 167 (2)(बी) के तहत प्रावधान किए गए जनरल रूल का यह एक अपवाद है।

(ब) धारा 167(2 ए) निर्धारित करता है कि यदि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट के समक्ष हिरासत के लिए उपस्थित किया जाता है, तो वही मजिस्ट्रेट आरोपित को हिरासत में सात दिनों से अधिक के लिए नजरबंदी को अधिकृत नहीं कर सकता है। जुडिशियल मजिस्ट्रेट जो सक्षम है, नजरबंदी के लिए आगे आदेश दे सकता है।

(राज नारायण बनाम जेल का अधीक्षक, ए.आई.आर 1971 एस.सी. 178 = 1970 (2) एस.सी.सी 750 = 1971 सीआरएलजे 244 = 1970 एस.सी.सी (सीआर) 543) (सेंट्रल ब्यूरो ऑफ इंवेस्टिगेशन, स्पेशल इंवेस्टिगेशन सेल, नई दिल्ली बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी, ए.आई.आर 1992 एस.सी. 1768 = 1992(3) एस.सी.आर 158 = 1992(3) जेटी 366 = 1992 (3) एस.सी.सी 141 = 1992 एसीसी (सीआर) 554 = 1992 सीआरएलजे 2768 = 199(1) स्केल 1024 = 1992 (2) काइम्स 310)

6.5.2 रिवीजनल ज्यूरिडिक्शन के तहत हाई कोर्ट द्वारा पुलिस हिरासत के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा

सुप्रीम कोर्ट द्वारा इसे सही माना गया है कि पुलिस हिरासत का आदेश ट्रायल की कार्यवाही को स्वयं प्रभावित नहीं करता है, न ही केस के अंतिम निर्णय को प्रभावित कर सकता है। यदि हिरासत का आदेश अवैध पाया जाता है, तो भी आरोपित को मुक्त नहीं किया जा सकता है या कार्यवाही समाप्त नहीं हो सकती है। इसके अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट इसे सही मानता है कि हिरासत का आदेश एक शुद्ध और सरल संबंधात्मक आदेश है और इसलिए सीआरपीसी की धारा 397(2) उक्त आदेश के संशोधन को रोकता है।

सुप्रीम कोर्ट इसे सही मानता है कि एविडेंस एक्ट या क्रिमीनल प्रोसीजर कोड अलग यह नहीं करता है कि अनुसंधान के दौरान एकत्रित किए गए प्रासंगिक सबूत को, इस आधार पर कि सबूत को अवैध तरीके से खोजा और अपने कब्जे में लेने की प्रक्रिया के तहत प्राप्त किया गया है और इसलिए हाई कोर्ट का आरोपित मिस जाँय के अवैध हिरासत के दौरान एकत्रित सबूत को रिकॉर्ड से हटाने का निर्देश स्पष्टत अवैध और अनुचित है। हाई कोर्ट का निर्देश कि आरोपित महिला और गवाहों को पुलिस स्टेशन पर नहीं बुलाना चाहिए और महिला पुलिस द्वारा निवास स्थान पर ही पूछताछ करने की जरूरत है, सीआरपीसी के धारा 160 में लिखित, वैधानिक प्रावधानों के विरूद्ध है, जो सिर्फ महिला गवाहों के लिए लागू होता है और इसलिए हाईकोर्ट के निर्देश को निरस्त कर दिया गया। (स्टेट बनाम एन.एम.टी जाँय इमेक्यूलेट 2004 एस.सी.सी (सीआरआई) 1722 = 2004 (5) स्केल 330)

6.5.3 पुलिस हिरासत के दौरान आरोपित के प्रति पुलिस का कर्त्तव्य

किसी पुलिस ऑफिसर के लिए कुछ विश्वसनीय आधार पर किसी संदिग्ध से पूछताछ करना या अरेस्ट करना न्यायसंगत हो सकता है, लेकिन ऐसी गिरफ्तारी निश्चित तौर पर कानून के मुताबिक होना चाहिए और पूछताछ का मतलब चोट पहुँचाना नहीं होना चाहिए। किसी व्यक्ति को उत्पीड़ित करना और थर्ड डिग्री तरीके को काम में लेना मध्य युगीन प्रकृति का माना जाता है और यह सब असभ्य और कानून के विरुद्ध हैं। यदि पुलिस अफसर, जो नागरिकों को सुरक्षा और रक्षा प्रदान करते हैं, इस तरह के तरीकों में लिप्त होते हैं, तो वे नागरिकों के मन में असुरक्षा का भाव पैदा करते हैं। यह रक्षक

के शिकारी होने से अधिक घृणित व जघन्य है। पुलिस के दृढ़ विश्वास को सुप्रीम कोर्ट ने स्पीकर कर लिया है।

(भगवान सिंह बनाम स्टेट ऑफ पंजाब, ए. आई. आर 1992 एस. सी. 1689 = 1992 (3) ए एस. सी. आर 180 = 1992 (3) जेटी 216 = 1992 (3) एस. सी. सी 249 = 1992(2) ओ 41 = 1992 सी आर एल जे 3144 = 1992 (1) स्केल 1274 = 1992 एस. सी. सी (सी आर) 629 = 1992 (2) क्राइम्स 329)

6.6 मानवाधिकार

6.6.1 हथकड़ी के प्रयोग हेतु सुप्रीम कोर्ट का दिशा निर्देश

(1) एक पुलिस अफसर किसी व्यक्ति को हथकड़ी पहनाकर उसे नियंत्रित करने के लिए अधिकृत होता है, साथ ही पुलिस अफसर को अपने अधिकार के प्रयोग को कानून नियंत्रित करता है। नियमित तौर पर हथकड़ी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(2) कैदी का अनेकों अपराधिक मामलों में शामिल होना हथकड़ी पहनाने का आधार नहीं होता है। न ही किसी व्यक्ति को सिर्फ इसलिए हथकड़ी पहनाया जा सकता है कि उस पर गंभीर अपराध करने का आरोप लगाया गया है। एस्कोर्ट पार्टी की सुविधा मात्र के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है। अनेक राज्यों के नियमों, अधिनियमों और नियमावलियों द्वारा प्रदत्त पुलिस द्वारा हथकड़ी का सामान्य रूप से प्रयोग के अधिकार को भारत के संविधान के आर्टिकल 14 के उल्लंघन के रूप में समाप्त कर दिया गया है।

(3) एक नियम के नाम पर दंडित या अभियोग चलाने के समय या उन्हें ले जाते समय या एक जेल से दूसरे जेल की यात्रा के समय, जेल से कोर्ट और कोर्ट से वापस जेल ले जाते समय, देश के किसी भी जेल में बंद कैदी को हथकड़ी या अन्य बंधनकबेडिघें के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा।

(4) जहाँ पुलिस या जेल अधिकारियों के पास ठोस आधार हो किसी कैदी के जेल फांदने या हिरासत तोड़कर भागने की आशंका है, तब उक्त कैदी को संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित करना होगा और उक्त मजिस्ट्रेट के समक्ष कैदी को हथकड़ी पहनाने के लिए अनुमति के लिए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करना होगा।

(5) यदि कैदी खतरनाक और निराश है या कैदी के यदि हिरासत से भागने या लापता होने के लिए कोई चाल चलने की आशंका हो, तो एस्कोर्ट पार्टी हथकड़ी का प्रयोग कर सकती है।

6.6.2 हिरासत में मृत्यु (सुप्रीम कोर्ट का मत)

सुप्रीम कोर्ट इसे सही मानता है कि पुलिस हिरासत में उत्पीड़न भारतीय संविधान द्वारा प्रतिपादित नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लंघन है और एक सुव्यवस्थित सभ्य सोसायटी के लिए गंभीर खतरा पैदा करता हिय।

सुप्रीम कोर्ट ने भारत सरकार को कानून (इंडियन एविडेंस एक्ट) में बदलाव कर ऐसा प्रावधान करने के लिए निर्देश दिया है, ताकि किसी व्यक्ति के साथ पुलिस हिरासत में हिंसा करने वाले पुलिस अफसर के अभियोग में यदि ऐसा सबूत है कि पुलिस हिरासत में व्यक्ति को चोट पहुंचाई गई है, तो कोर्ट यह मान सकता है कि उस व्यक्ति को हिरासत में रखने वाले अफसर ने ही यह चोट पहुंचाई थी, जब तक कि पुलिस अफसर अन्यथा प्रमाणित नहीं करता है।

(सुनील बत्रा बनाम दिल्ली एडमिनिस्ट्रेशन, ए.आई.आर 1978 एस.सी. 1675 = 1979 (1) एस.सी.आर 392 = 1978 (4) एस.सी.सी 494 = 1978 सीआरएलजे 1741 = 1979 एस.सी.सी (सीआर) 155) (प्रेम शंकर शुक्ला बनाम दिल्ली एडमिनिस्ट्रेशन, ए.आई.आर 1980 एस.सी.. 1535 = 1980(3) एस.सी.आर 855 = 1980 (3) एस.सी.सी 526 = 1980 सीआरएलजे 930 = 1980 एस.सी.सी(सीआर) 815) (सुनील गुप्ता बनाम स्टेट ऑफ एमपी 1990 एस.सी.सी (सीआर) 440 = 1990 (2) जेटी 372 = 1990(2) क्राइम्स 504 = 1990 (3) एस.सी.सी 119 = 1990(2) एस.सी.आर 871) (सिटिजन्स फॉर डेमोक्रेसी था इट्स प्रेसिडेंट बनाम स्टेट ऑफ असम, ए.आई.आर 1996 एस.सी. 2193 = 1995 एस.सी.सी (सीआर) 600 = 1995(3) एस.सी.सी 743 = 1995(4) जेटी 475 = 1995(3) स्केल 98 = 1995(2) यूजे 431) (स्टेट ऑफ एम. पी बनाम श्याम सुंदर त्रिवेदी एवं अन्य, 1995 एस.सी.सी (सीआर) 715 = 1995 (4) एस.सी.सी 262 = 1995 (4) जेटी 445 = 1995 (3) स्केल 343 = 1995 (2) एस.सी.जे 451)

6.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में फर्स्ट इन्फॉर्मेशन रिपोर्ट, अनुसंधान, गिरफ्तारी, हिरासत व मानवाधिकार से सम्बन्धित उच्चतम न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णयों के बारे में बताने का प्रयास किया गया है।

प्रथम सूचना रिपोर्ट जो एक पब्लिक डॉक्यूमेन्ट है, के सन्दर्भ में दर्ज करने के मापदंड, देरी के प्रभाव तथा गवाहों की भूमिका के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा विभिन्न उच्चतम न्यायालयों के निर्णयों के आधार पर की गई है। इसी क्रम में संज्ञेय एवं असंज्ञेय अपराधों के मापदंडों को समझाते हुए, पुलिस अनुसंधान में हस्तक्षेप के सम्बन्ध में विभिन्न धाराओं का वर्णन किया गया है। विभिन्न न्यायालयी मुकदमों पर प्रकाश डालते हुए गिरफ्तारी के बाद पुलिस के कर्त्तव्य, गिरफ्तारी, व्यक्ति के अधिकार, पुलिस हिरासत के दौरान आरोपित के प्रति पुलिस के कर्त्तव्यों को समझाने का प्रयास किया गया है।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. 1.फर्स्ट इन्कोर्मेशन रिपोर्ट दर्ज करने के मापदंड बताइए।
2. फर्स्ट इन्कोर्मेशन रिपोर्ट प्रेषित करने में देरी के प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
3. फर्स्ट इन्कोर्मेशन रिपोर्ट में गवाह के महत्व को समझाइए।
4. निम्नलिखित पर लेख लिखिए -
   (अ) गिरफ्तारी (ब) हिरासत
5. "अनुसंधान" के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए।
6. "मानवाधिकार" विषय पर लेख लिखिए।

इकाई - 7

दण्ड न्यायालयों का वर्गीकरण, शक्तियाँ एवं अभियोजन (धारा 6-35, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 दण्ड न्यायालयों के विभिन्न वर्ग

7.3 मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट

7.4 विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट

7.5 महानगर मजिस्ट्रेटों के न्यायालय

7.6 विशेष महानगर मजिस्ट्रेट

7.7 कार्यपालक मजिस्ट्रेट

7.8 लोक अभियोजक, सहायक लोक अभियोजक एवं अभियोजन निर्देशालय

7.9 न्यायालयों की शक्तियाँ

7.10 शक्तियाँ प्रदान करने का ढंग

7.11 सारांश

7.12 अभ्यास प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- अपराधों के विचारण के लिए दण्ड न्यायालयों के विभिन्न वर्गों, शक्तियाँ, न्यायालय जिनके द्वारा अपराध विचारणीय है, किशोर अपराधियों के मामले में अधिकारिता, दण्डादेश जो विभिन्न न्यायालय दे सकते हैं, के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- न्यायालयों को शक्तियाँ प्रदान करने का ढंग, नियुक्त अधिकारियों की शक्तियाँ तथा शक्तियों को वापस लेने की प्रक्रिया तथा न्यायाधीशों एवं मजिस्ट्रेटों द्वारा शक्तियों के प्रयोग एवं अनिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के कृत्यों एवं अधिकारों के सम्बन्ध में तथा अभियोजन निर्देशालय, लोक अभियोजकों, अपर लोक अभियोजकों एवं सहायक लोक अभियोजकों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- दण्ड न्यायालयों के विभिन्न वर्गों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट की विभिन्न शक्तियों और अभियोजनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

राज्य की सुरक्षा एवं कानून तथा न्याय व्यवस्था बनाये रखना शासन का प्रथम कर्त्तव्य है। शासन यह कार्य विभिन्न पुलिस अधिकारियों, विभिन्न दण्ड न्यायालयों की सहायता से सम्पन्न करता है, जिसके लिए दण्ड प्रकिया संहिता की विधि बनाई गई है जो कि मौलिक विधि के प्रावधानों को प्रवृत्त करने के लिए प्रकिया का निर्धारण करती है। दण्ड'प्रकिया संहिता मूल रूप से एक प्रक्रिया विधि है जिसका

उद्देश्य दण्ड विधि अर्थात् दण्ड संहिता के अधीन किये गये अपराधों के अपराधियों को पण्डित करने के लिए एक तंत्र प्रदान करना है। विभिन्न अपराधों के लिए दण्ड देने के लिए दण्ड न्यायालयों के गठन तथा अपराध की प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकार के दण्ड देने की शक्ति प्रदान करना है। प्रक्रिया सम्बन्धी प्रावधान प्राय: आज्ञापक होते हैं जिनका उद्देश्य कार्यवाहियों को संक्षिप्त एवं सरल बनाना है। दण्ड प्रक्रिया संहिता सभी प्रकार के आपराधिक मामलों के विचारण के लिए प्रक्रिया विहित करती है, सिवाय उस विशेष प्रक्रिया के जो तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि द्वारा विहित की गई है।

पहले सम्पूर्ण भारत के लिए दण्ड प्रक्रिया की एक जैसी व्यवस्था नहीं थी। अलग-अलग क्षेत्रों के लिए अलग-अलग नियम थे। वर्तमान में दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973(1974 क) अधिनियम 2 पारित किया गया है। जिसे 1 अप्रेल 1974 से लागू किया गया है। इस दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 का मूल उद्देश्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों एवं कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के बीच कृत्यों का आवंटन करना है तथा न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक्करण करना है। इस दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रवृत होने के उपरान्त मजिस्ट्रेटों के दो प्रवर्ग हो गये हैं। प्रथम प्रवर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का जो उच्च न्यायालय के नियन्त्रण के अधीन है तथा दूसरा प्रवर्ग कार्यपालक मजिस्ट्रेट का जो राज्य सरकार के नियन्त्रण के अधीन है।

7.2 दण्ड

न्यायालयों के विभिन्न वर्ग प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय और इस संहिता से भिन्न किसी विधि के अधीन गठित न्यायालयों के अतिरिक्त

1. सेशन न्यायालय,
2. प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट और किसी महानगर क्षेत्र में महानगर मजिस्ट्रेट,
3. द्वितीय वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट, और
4. कार्यपालक मजिस्ट्रेट के न्यायालय गठित किये गये है।

7.2.1 प्रादेशिक खण्ड

प्रत्येक राज्य का एक सेशन खण्ड होगा या उसमें एक से अधिक सेशन खण्ड होंगे और इस संहिता के प्रयोजनों के लिए प्रत्येक सेशन खण्ड एक जिला होगा तथा प्रत्येक महानगर क्षेत्र में उक्त प्रयोजनों के लिए, एक पृथक सेशन खण्ड और जिला होगा। राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात्, ऐसे खण्डों और जिलों की सीमाओं या संख्याओं में परिवर्तन कर सकती है। राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात् किसी जिले को उपखण्डों में विभाजित कर सकती है और ऐसे उपखण्डों की सीमाओं या संख्या में परिवर्तन कर सकती हिय।

7.2.2 महानगर क्षेत्र

राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उस तारीख से, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएं, राज्य का कोई क्षेत्र जिसमें ऐसा नगर या नगरी समाविष्ट है जिसकी जनसंख्या दस लाख से अधिक है, इस संहिता के प्रयोजनों के लिए महानगर क्षेत्र होगा। मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास प्रेसीडेन्सी नगरों में से प्रत्येक और अहमदाबाद नगर, महानगर क्षेत्र हैं। राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा महानगर क्षेत्र की सीमाओं को बढा सकती है, कम कर सकती है या परिवर्तित कर सकती है, किन्तु ऐसी कमी या परिवर्तन इस प्रकार नहीं किया जाएगा कि उस क्षेत्र की जनसंख्या दस लाख से कम रह जाए। जहाँ किसी क्षेत्र के महानगर क्षेत्र घोषित किये जाने या घोषित समझे जाने के पश्चात् ऐसे क्षेत्र की जनसंख्या दस लाख से कम हो जाती है वही ऐसा क्षेत्र, ऐसी तारीख को और उससे जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट करें, महानगर क्षेत्र नहीं रहेगा किन्तु महानगर

क्षेत्र न रहने पर भी ऐसी जाँच, विचारण या अपील जो ऐसे न रहने के ठीक पहले ऐसे क्षेत्र में किसी न्यायालय या मजिस्ट्रेट के समक्ष लम्बित थी इस संहिता के अधीन इस प्रकार निपटाई जायेगी मानो वह महानगर क्षेत्र हो। जहाँ राज्य सरकार किसी महानगर क्षेत्र की सीमाओं को कम करती है या परिवर्तित करती है वहाँ ऐसी जाँच, विचार या अपील पर जो ऐसे करने या परिवर्तन के ठीक पहले किसी न्यायालय या मजिस्ट्रेट के समक्ष लम्बित थी पर ऐसे कम करने या परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं होगा और ऐसी प्रत्येक जाँच, विचारण या अपील इस संहिता के अधीन उसी प्रकार निपटाई जाएगी मानो ऐसी कमी या परिवर्तन न हुआ हो।

7.2.3 सेशन न्यायालय

प्रत्येक सेशन खण्ड के लिए सेशन न्यायालय को स्थापित करने की शक्ति सरकार में निहित है परन्तु सेशन न्यायाधीश, अपर सेशन न्यायाधीश और सहायक सेशन न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति, एक सेशन खण्ड के सेशन न्यायाधीश को दूसरे सेशन खण्ड का अपर सेशन न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति, जब सेशन न्यायाधीश का पद रिक्त है तो सेशन न्यायालय के समक्ष लम्बित अत्यावश्यक आवेदनों को निपटाए जाने के लिए व्यवस्था करने की शक्ति, वह स्थान अधिसूचित करने की शक्ति जहाँ सेशन न्यायालय सामान्यत: अपनी बैठक करेगा, उच्च न्यायालय में निहित है। सेशन न्यायाधीश में अपर सेशन न्यायाधीश भी सम्मिलित है। सेशन न्यायालय की बैठक उच्च न्यायालयों द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर होती है लेकिन यदि किसी मामले में सेशन न्यायालय पक्षकारों एवं साक्षियों के लिए किसी अन्य स्थान पर बैठक करना उचित समझे तो ऐसे स्थान पर बैठक की जा सकेगी। प्रत्येक सेशन न्यायालय का एक सेशन न्यायाधीश होगा जिसे उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जायेगा। उच्च न्यायालय अपर सेशन न्यायाधीशों और सहायक सेशन न्यायाधीशों को भी सेशन न्यायालय में अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए नियुक्त कर सकता है।

उच्च न्यायालय द्वारा एक सेशन खण्ड के सेशन न्यायाधीश को दूसरे खण्ड का अपर सेशन न्यायाधीश भी नियुक्त किया जा सकता है और ऐसी अवस्था में वह मामलों को निपटाने के लिए दूसरे खण्ड के ऐसे स्थान या स्थानों में बैठ सकता है जिनका उच्च न्यायालय निर्देश दे। जहाँ किसी सेशन न्यायाधीश का पद रिक्त होता है, वहाँ उच्च न्यायालय किसी ऐसे अर्जेन्ट आवेदन के, जो उस सेशन न्यायालय के समक्ष किया जाता है या लंबित है, अपर या सहायक सेशन न्यायाधीश द्वारा अथवा यदि अपर या सहायक सेशन न्यायाधीश नहीं है तो सेशन खण्ड के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा निपटाये जाने के लिए व्यवस्था कर सकता है और ऐसे प्रत्येक न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट को ऐसे आवेदन पर कार्यवाही करने की अधिकारिता होगी। सेशन न्यायालय सामान्यत: अपनी बैठक ऐसे स्थान या स्थानों पर करेगा जो उच्च न्यायालय अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करें: किन्तु यदि किसी विशेष मामले में, सेशन न्यायालय की यह राय है कि सेशन खण्ड में किसी अन्य स्थान में बैठक करने से पक्षकारों और साक्षियों को सुविधा होगी तो वह, अभियोजन और अभियुक्त की सहमति से उस मामले को निपटाने के लिए या उसमें साक्षी या साक्षियों की परीक्षा करने के लिए उस स्थान पर बैठक कर सकता है। सब सहायक सेशन न्यायाधीश उस सेशन न्यायाधीश के अधीनस्थ होंगे, जिसके न्यायालय में वे अधिकारिता का प्रयोग करते है। सेशन न्यायाधीश ऐसे सहायक सेशन न्यायाधीशों में कार्य के वितरण के बारे में इस संहिता से संगत नियम, समय-समय पर बना सकता हिय।

सेशन न्यायाधीश, अपनी अनुपस्थिति में या कार्य करने में असमर्थता की स्थिति में, किसी अर्जेन्ट आवेदन के, अपर या सहायक सेशन न्यायाधीश द्वारा, या यदि कोई अपर या सहायक सेशन न्यायाधीश न हो तो, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा निपटाये जाने के लिए भी व्यवस्था कर सकता

है, और यह समझा जायेगा कि ऐसे प्रत्येक न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट को ऐसे आवेदन पर कार्यवाही करने की अधिकारिता है।

7.2.4 न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालय

प्रत्येक जिले में (जो महानगर क्षेत्र नहीं है) प्रथम वर्ग और द्वितीय वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेटों के इतने न्यायालय, ऐसे स्थानों में स्थापित किये जायेंगे जितने और जो राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात्, अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करें, परन्तु राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात किसी स्थानीय क्षेत्र के लिए, प्रथम वर्ग या द्वितीय वर्ग के न्यायिक मजिस्ट्रेट के एक या अधिक विशेष न्यायालय, किसी विशेष मामले या विशेष वर्ग के मामले का विचारण करने के लिए स्थापित कर सकेगी और जहाँ कोई ऐसा विशेष न्यायालय स्थापित किया जाता है, उस स्थानीय क्षेत्र में मजिस्ट्रेट के किसी अन्य न्यायालय को किसी ऐसे मामले या ऐसे वर्ग के मामले को विचारण करने की अधिकारिता नहीं होगी, जिनके विचारण के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट का ऐसा विशेष न्यायालय स्थापित किया गया है। ऐसे न्यायालयों के पीठासीन अधिकारी उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। उच्च न्यायालय, जब कभी उसे यह समीचीन या आवश्यक प्रतीत हो, किसी सिविल न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में कार्यरत राज्य की न्यायिक सेवा के किसी सदस्य को प्रथम वर्ग या द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ प्रदान कर सकता है।

7.3 मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट

उच्च न्यायालय, प्रत्येक जिले में (जो महानगर क्षेत्र नहीं है) एक प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट नियुक्त करेगा। उच्च न्यायालय किसी प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकता है और ऐसे मजिस्ट्रेट को इस संहिता के अधीन या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की सब या कोई शक्तियाँ, जिनका उच्च न्यायालय निर्देश दे, होंगी। उच्च न्यायालय आवश्यकतानुसार किसी उपखण्ड में किसी प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को उपखण्ड न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में पदाभिहित कर सकता है और उसे इस धारा में विनिर्दिष्ट उत्तरदायित्वों से मुक्त कर सकता है। प्रत्येक उपखण्ड न्यायिक मजिस्ट्रेट को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के साधारण नियन्त्रण के अधीन रहते हुए उपखण्ड में(अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों से भिन्न) न्यायिक मजिस्ट्रेटों के काम पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण की ऐसी शक्तियाँ भी होगी, जैसी उच्च न्यायालय साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट करें, और वह उनका प्रयोग करेगा।

7.4 विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट

यदि केन्द्रीय या राज्य सरकार उच्च न्यायालय से ऐसा करने के लिए अनुरोध करती है तो उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति को जो सरकार के अधीन कोई पद धारण करता है या जिसने कोई पद धारण किया है (किसी स्थानीय क्षेत्र में जो महानगर क्षेत्र नहीं है) विशेष मामलों या विशेष वर्ग के मामलों के सम्बन्ध में द्वितीय वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को इस संहिता द्वारा या उसके अधीन प्रदत्त या प्रदत्त की जा सकने वाली सभी या कोई शक्तियाँ प्रदत्त कर सकता है, परन्तु ऐसी कोई शक्ति किसी व्यक्ति को प्रदान नहीं की जाएगी जब तक उसके पास विधिक मामलों के संबंध में ऐसी आर्हता या अनुभव नहीं है जो उच्च न्यायालय, नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट करें। ऐसे मजिस्ट्रेट विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट कहलाएंगे और एक समय में एक वर्ष से अनधिक की इतनी अवधि के लिए नियुक्त किए जाएंगे जितनी उच्च न्यायालय, साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्दिष्ट करें। उच्च न्यायालय किसी विशेष न्यायिक

मजिस्ट्रेट को अपनी स्थानीय अधिकारिता के बाहर के किसी महानगर क्षेत्र के सम्बन्ध में महानगर मजिस्ट्रेट की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त कर सकता है।

न्यायिक मजिस्ट्रेटों की स्थानीय अधिकारिता

उच्च न्यायालय के नियन्त्रण के अधीन रहते हुए, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, समय-समय पर उन क्षेत्रों की स्थानीय सीमायें परिनिश्चित कर सकता है, जिनके अन्दर नियुक्त मजिस्ट्रेट उन सब शक्तियों का या उनमें से किन्हीं का प्रयोग कर सकेंगे, जो इस संहिता के अधीन उसमें निहित की जायें। (परन्तु विशेष मजिस्ट्रेट का न्यायालय उस स्थानीय क्षेत्र के भीतर, जिसके लिए वह स्थापित किया गया है, किसी स्थान में अपनी- बैठक कर सकता है) ऐसे परिनिश्चय द्वारा जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय प्रत्येक ऐसे मजिस्ट्रेट की अधिकारिता और शक्तियों का विस्तार जिले में सर्वत्र होगा।

न्यायिक मजिस्ट्रेटों का अधीनस्थ होना

प्रत्येक मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश के अधीनस्थ होगा, और प्रत्येक अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश के साधारण नियन्त्रण के अधीन रहते हुए, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ होगा। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अपने अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों में कार्य के वितरण के बारे में, समय-समय पर, इस संहिता के संगत नियम बना सकता है या विशेष आदेश दे सकता है।

7.5 महानगर मजिस्ट्रेटों के न्यायालय

प्रत्येक महानगर क्षेत्र में महानगर मजिस्ट्रेटों के इतने न्यायालय, ऐसे स्थानों में स्थापित किये जाऐंगे जितने और जो राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात्, अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करें। ऐसे न्यायालयों के पीठासीन अधिकारी उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। प्रत्येक महानगर मजिस्ट्रेट की अधिकारिता और शक्तियों का विस्तार महानगर क्षेत्र में सर्वत्र होगा।

मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट और अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट

उच्च न्यायालय अपनी स्थानीय अधिकारिता के भीतर प्रत्येक महानगर क्षेत्र के सम्बन्ध में एक महानगर मजिस्ट्रेट को ऐसे महानगर क्षेत्र का मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट नियुक्त करेगा। उच्च न्यायालय किसी महानगर मजिस्ट्रेट को अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकता है, और ऐसे मजिस्ट्रेट को, इस संहिता के अधीन या तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि के अधीन मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट की सब या कोई शक्तियाँ, जिनका उच्च न्यायालय निर्देश दे, होंगी।

7.6 विशेष महानगर मजिस्ट्रेट

यदि केन्द्रीय या राज्य सरकार उच्च न्यायालय से ऐसा करने के लिए अनुरोध करती है तो उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति को, जो सरकार के अधीन कोई पद धारण करता है या जिसने कोई पद धारण किया है, अपनी स्थानीय अधिकारिता के भीतर किसी महानगर क्षेत्र में विशेष मामलों के या विशेष वर्ग के मामलों के संबंध में महानगर मजिस्ट्रेट को इस संहिता द्वारा या उसके अधीन प्रदत्त या प्रदत्त की जा सकने वाली सभी या कोई शक्तियाँ प्रदत्त कर सकता है, परन्तु ऐसी कोई शक्ति किसी व्यक्ति को प्रदान नहीं की जाएगी यदि उसके पास विधिक मामलों के सम्बन्ध में ऐसी अर्हता या अनुभव नहीं है जो उच्च न्यायालय, नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट करे। ऐसे मजिस्ट्रेट विशेष महानगर मजिस्ट्रेट कहलाएंगे और एक समय में एक वर्ष से अनाधिक की इतनी अवधि के लिए नियुक्ति किए जायंगे जितनी उच्च न्यायालय, साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्दिष्ट करें। यथास्थिति, उच्च

न्यायालय या राज्य सरकार किसी महानगर मजिस्ट्रेट को, महानगर क्षेत्र से बाहर किसी स्थानीय क्षेत्र में प्रथम वर्ग के न्यायिक मजिस्ट्रेट की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त कर सकती है।

महानगर मजिस्ट्रेटों का अधीनस्थ होना

मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट और प्रत्येक अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट सेशन न्यायाधीश के अधीनस्थ होगा और प्रत्येक अन्य महानगर मजिस्ट्रेट सेशन न्यायाधीश के साधारण नियन्त्रण के अधीन रहते हुए मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ होगा। उच्च न्यायालय, इस संहिता के प्रयोजनों के लिए परिनिश्चित कर सकेगा कि अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट किस विस्तार तक यदि कोई हो, मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ होगा। मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट महानगर मजिस्ट्रेटों में कार्य के वितरण के बारे में और अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट को कार्य के आवंटन के बारे में, समय-समय पर, इस संहिता से संगत नियम बना सकेगा या विशेष आदेश दे सकेगा।

7.7 कार्यपालक मजिस्ट्रेट

राज्य सरकार प्रत्येक जिले और प्रत्येक महानगर क्षेत्र में उतने व्यक्तियों को, जितने वह उचित समझे, कार्यपालक मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकती है और उनमें से एक को जिला मजिस्ट्रेट नियुक्त करेगी। राज्य सरकार किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट को अपर जिला मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकेगी, और ऐसी मजिस्ट्रेट का इस संहिता के अधीन या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन जिला मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ होंगी। जब कभी किसी जिला मजिस्ट्रेट के पद की रिक्ती के परिणामस्वरूप कोई अधिकारी उस जिले के कार्यपालक प्रशासन के लिए अस्थायी रूप से उत्तरवर्ती होता है तो ऐसा अधिकारी, राज्य सरकार द्वारा आदेश दिये जाने तक, क्रमश: उन सभी शक्तियों का प्रयोग और कर्त्तव्यों का पालन करेगा, जो उस संहिता द्वारा जिला मजिस्ट्रेट को प्रदत्त या उस पर अधिरोपित हो। राज्य सरकार आवश्यकतानुसार किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट को उपखण्ड का भारसाधक बना सकती है और उसको भारसाधन से मुक्त कर सकती है और इस प्रकार किसी उपखण्ड का भारसाधक बनाया गया मजिस्ट्रेट उपखण्ड मजिस्ट्रेट कहलाएगा। राज्य सरकार, साधारण या विशेष आदेश द्वारा और ऐसे नियंत्रणों और निर्देशों के अधीन रहते हुए जो वह अधिरोपित करना ठीक समझे, अपनी शक्तियाँ जिला मजिस्ट्रेट को प्रत्यायोजित कर सकती है। इस धारा की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन, महानगर क्षेत्र के सम्बन्ध में कार्यपालक मजिस्ट्रेट की सब शक्तियाँ या उनमें से कोई शक्ति राज्य सरकार पुलिस आयुक्त को प्रदत्त कर सकती है।

विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट

राज्य सरकार विशिष्ट क्षेत्रों के लिए या विशिष्ट कृत्यों का पालन करने के लिए विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को जितनी अवधि के लिए वह उचित समझे, नियुक्त कर सकती है और इस संहिता के अधीन कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को प्रदत्त की जा सकने वाली शक्तियों में से ऐसी शक्तियाँ, जिन्हें वह उचित समझे, इन विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को प्रदत्त कर सकती है।

कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की स्थानीय अधिकारिता

राज्य सरकार के नियन्त्रण के अधीन रहते हुये जिला मजिस्ट्रेट, समय-समय पर, उन क्षेत्रों की स्थानीय सीमाएं परिनिश्चित कर सकता है जिनके अन्दर कार्यपालक मजिस्ट्रेट उन सब शक्तियों का या उनमें से किन्हीं का प्रयोग कर सकेंगे, जो इस संहिता के अधीन उनमें निहित की जाऐ। ऐसे परिनिश्चय द्वारा जैसा उपबन्धित है उनके सिवाय, प्रत्येक ऐसे मजिस्ट्रेट की अधिकारिता और शक्तियों का विस्तार जिले में सर्वत्र होगा।

कार्यपालक मजिस्ट्रेटों का अधीनस्थ होना

अपर जिला मजिस्ट्रेटों से भिन्न सब कार्यपालक मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ होंगे और (उपखण्ड मजिस्ट्रेट से भिन्न) प्रत्येक कार्यपालक मजिस्ट्रेट, जो उपखण्ड में शक्ति का प्रयोग कर रहा है, जिला मजिस्ट्रेट के साधारण नियन्त्रण के अधीन रहते हुए, उपखण्ड मजिस्ट्रेट के भी अधीनस्थ होगा। जिला मजिस्ट्रेट अपने अधीनस्थ कार्यपालक मजिस्ट्रेटों में कार्य के वितरण के बारे में और अपर जिला मजिस्ट्रेट को कार्य के आवंटन के बारे में समय-समय पर इस संहिता से संगत नियम बना सकता है या विशेष आदेश दे सकता है।

7.8 लोक अभियोजक, सहायक लोक अभियोजक एवं अभियोजन निर्देशालय

आपराधिक प्रकरणों में अपराधियों के अभियोजन का दायित्व केन्द्रीय या राज्य सरकार पर है। अपराधियों के विरूद्ध अभियोजन की कार्यवाहियां विभिन्न न्यायालयों में की जाती है। सुचारू रूप से अपराधियों के विरूद्ध की जाने वाली दाण्डिक कार्यवाहियों में समुचित रूप से अभियुक्त का अभियोजन किया जाने के लिए, राज्य सरकार अथवा केन्द्र सरकार की ओर से लोक अभियोजकों एवं सहायक लोक अभियोजकों की नियुक्ति की जाती है।

7.8.1 लोक अभियोजक

प्रत्येक उच्च न्यायालय के लिए, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, उस उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात् यथास्थिति, केन्द्रीय या राज्य सरकार की ओर से उस उच्च न्यायालय में किसी अभियोजन, अपील या अन्य कार्यवाही के संचालन के लिए एक लोक अभियोजक नियुक्ति करेगी और एक या अधिक अपर लोक अभियोजक नियुक्ति कर सकती है। केन्द्रीय सरकार किसी जिले या स्थानीय क्षेत्र में किसी मामले या किसी मामले के वर्ग के संचालन के प्रयोजनों के लिए एक या अधिक लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है। प्रत्येक जिले के लिए, राज्य सरकार एक लोक अभियोजक नियुक्त करेगी और जिले के लिए एक या अधिक अपर लोक अभियोजक भी नियुक्त कर सकती है। एक जिले के लिए नियुक्त लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक किसी अन्य जिले के लिए भी, यथास्थिति लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किया जा सकता है। जिला मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश के परामर्श से, ऐसे व्यक्तियों के नामों का एक पैनल तैयार करेगा जो, उसकी राय में, उस जिले के लिए लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किये जाने के योग्य है। कोई व्यक्ति राज्य सरकार द्वारा उस जिले के लिए लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त नहीं किया जायेगा जब तक की उसका नाम जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किये गये नामों के पैनल में न हो।

जहाँ किसी राज्य में अभियोजन अधिकारियों का नियमित काडर है वहाँ राज्य सरकार ऐसा काडर, गठित करने वाले व्यक्तियों में से ही लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त करेगी, परन्तु जहाँ राज्य सरकार की राय में, ऐसे काडर में से कोई उपयुक्त व्यक्ति नियुक्ति के लिए उपलब्ध नहीं है वहाँ राज्य सरकार जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किये गये नामों के पैनल में से, यथास्थिति, लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक के रूप में किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकती है।''अभियोजन अधिकारियों का नियमित काडर' से अभियोजन अधिकारियों का वह काडर अभिप्रेत है जिसमें लोक अभियोजक का, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, पद सम्मिलित है और जिसमें उस पद पर सहायक लोक अभियोजक की, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, पदोन्नति के लिए उपबंध किया गया है।''अभियोजन अधिकारी' से लोक अभियोजक, अपर लोक अभियोजक, या सहायक लोक अभियोजक के कृत्यों का निर्वहन करने के लिए इस संहिता के अधीन नियुक्त किया गया व्यक्ति अभिप्रेत

है, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो। कोई व्यक्ति लोक अभियोजक या अपर लोक अभियोजक नियुक्त किये जाने का पात्र तभी होगा जब वह कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि-व्यवसाय करता रहा हो। केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार किसी मामले या किसी वर्ग के मामलों के प्रयोजनों के लिए किसी अधिवक्ता, को जो कम से कम दस वर्ष तक विधि व्यवसाय करता रहा हो, विशेष लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है।

7.8.2 सहायक लोक अभियोजक

राज्य सरकार प्रत्येक जिले में मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों में अभियोजन का संचालन करने के लिए एक या अधिक सहायक लोक अभियोजक नियुक्त करेगी। केन्द्रीय सरकार मजिस्ट्रेट के न्यायालयों में किसी मामले या किसी वर्ग के मामलों के संचालन करने के प्रयोजन के लिए एक या अधिक सहायक लोक अभियोजक नियुक्त कर सकती है। जहाँ कोई लोक अभियोजक किसी विशिष्ट मामले के प्रयोजनों के लिए उपलब्ध नहीं है वहाँ जिला मजिस्ट्रेट किसी अन्य व्यक्ति को उस मामले का भार साधक सहायक लोक अभियोजक नियुक्त कर सकता है। परन्तु कोई पुलिस अधिकारी इस प्रकार नियुक्त नहीं किया जायेगा - यदि उसने उस अपराध के अन्वेषण में कोई भाग लिया है, जिसके बारे में अभियुक्त अभियोजित किया जा रहा है, या यदि वह निरीक्षक की पंक्ति से नीचे का हिय।

7.8.3 अभियोजन निदेशालय

धारा 25 क दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के प्रावधान जो कि दिनांक 23.06.2006 से लागू हुए हैं, के अनुसार राज्य सरकार एक अभियोजन निर्देशालय स्थापित कर सकती है जिसमें एक अभियोजन निर्देशक और उतने अभियोजन उप-निर्देशक होंगे, जितने वह ठीक समझे। कोई व्यक्ति अभियोजन निर्देशक या उप-अभियोजन निर्देशक के रूप में नियुक्त के लिए केवल तभी पात्र होगा यदि वह अधिवक्ता के रूप में कम से कम दस वर्ष तक व्यवसाय में रहा है और ऐसी नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से की जाएगी। अभियोजन निदेशालय का प्रधान अभियोजन निर्देशक होगा जो राज्य में गृह विभाग के प्रधान के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कृत्य करेगा। प्रत्येक अभियोजन उप-निर्देशक अभियोजन निर्देशक के अधीनस्थ होगा। प्रत्येक लोक अभियोजक, अपर लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक, जो राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालयों में मामलों का संचालन करने के लिए नियुक्त किए जाऐंगे, अभियाजन निर्देशक के अधीनस्थ होंगे। प्रत्येक लोक अभियोजक, अपर लोक अभियोजक और विशेष लोक अभियोजक, जो राज्य सरकार द्वारा जिला न्यायालयों में मामलों का संचालन करने के लिए नियुक्त किये जायेंगे और प्रत्येक सहायक लोक अभियोजक, अभियोजन उप-निर्देशक के अधीनस्थ होगा। अभियोजन निर्देशक और अभियोजन उप-निर्देशकों की शक्तियाँ तथा कृत्य तथा वे क्षेत्र जिनके लिए प्रत्येक अभियोजन निर्देशक नियुक्त किया जाएगा, ऐसे होंगे जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करें। लोक अभियोजक के कृत्यों का पालन करने सम्बन्धि प्रावधान राज्य के महाधिवक्ता को लागू नहीं होंगे।

7.9 न्यायालयों की शक्तियाँ

दण्ड प्रक्रिया संहिता में विभिन्न दाण्डिक न्यायालयों जिनको की अपराध विचारण तथा दोष सिद्धी होने पर दण्डादेश पारित करने की शक्तियों से सम्बन्धित प्रावधान वर्णित किये गये हैं।

न्यायालय, जिनके द्वारा अपराध विचारणीय है

इस संहिता के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारतीय दण्ड संहिता (1860 का अधिनियम 45) के अधीन किसी अपराध का विचारण-

1. उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है
2. सेशन न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, या
3. किसी अन्य ऐसे न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, जिसके द्वारा उसका विचारणीय होना प्रथम अनुसूची में दर्शित किया गया।

किसी अन्य किसी विधि के अधीन किसी अपराध का विचारण, जब उस विधि में इस निमित्त कोई न्यायालय उल्लिखित है, तब उस न्यायालय द्वारा किया जाएगा और जब कोई न्यायालय इस प्रकार उल्लिखित नहीं है, तब-

1. उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, या
2. किसी अन्य ऐसे न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, जिसके द्वारा उसका विचारणीय होना दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की प्रथम अनुसूची में दर्शित किया गया है।

किशोरों के मामलों में अधिकारिता

किसी ऐसे अपराध का विचारण, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय नहीं है और जो ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया है, जिसकी आयु उस तारीख को, जब वह न्यायालय के समक्ष हाजिर हो या लाया जाये, सोलह वर्ष से कम है अथवा वह किशोर है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय द्वारा या किसी ऐसे न्यायालय द्वारा किया जा सकता है जिसे बालक अधिनियम, 1960(1960 का 60) या किशोर अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण और पुनर्वास के लिए उपबन्ध करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन विशेष रूप से सशक्त किया गया है। इसके अन्तर्गत किशोरों के मामलों में किशोर न्याय (बच्चों की सुरक्षा एवं देखभाल) अधिनियम 2000 के अन्तर्गत बाल न्याय समिति व किशोर न्याय बोर्ड की अधिकारिता दी गई है।

दण्डादेश जो उच्च न्यायालय और सेशन न्यायाधीश दे सकेंगे

उच्च न्यायालय विधि द्वारा प्राधिकृत कोई दण्डादेश दे सकता है। सेशन न्यायाधीश या अपर सेशन न्यायाधीश विधि द्वारा प्राधिकृत कोई भी दण्डादेश दे सकता है, किन्तु उसके द्वारा दिये गये मृत्यु दण्डादेश के उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किये जाने की आवश्यकता होगी। सहायक सेशन न्यायाधीश मृत्यु या आजीवन कारावास या दस वर्ष से अधिक की अवधि के लिए कारावास के दण्डादेश के सिवाय कोई ऐसा दण्डादेश दे सकता है जो विधि द्वारा प्राधिकृत है।

7.9.1 दण्डादेश जो मजिस्ट्रेट दे सकेंगे

मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय मृत्यु या आजीवन कारावास या सात वर्ष से अधिक की अवधि के लिए कारावास के दण्डादेश के सिवाय कोई ऐसा दण्डादेश दे सकता हे, जो विधि द्वारा प्राधिकृत है। प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट का न्यायालय तीन वर्ष से अधिक अवधि के लिए कारावस का या (दस हजार रूपये) से अनधिक जुर्माने का, या दोनों का, दण्डादेश दे सकता है। द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट का न्यायालय एक वर्ष से अनधिक अवधि के लिए कारावास का या (पाँच हजार रूपये) से अनधिक जुर्माने का, या दोनों का, दण्डादेश दे सकता है। मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के न्यायालय को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय की शक्तियों और महानगर मजिस्ट्रेट के न्यायालय को प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ होगी।

जुर्माना देने में व्यक्ति क्रम होने पर कारावास के दण्डादेश के सम्बन्ध में प्रावधान करती है जिसके अनुसार किसी मजिस्ट्रेट का न्यायालय जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने पर इतनी अवधि का कारावास अधिनिर्णीत कर सकता है जो विधि द्वारा प्राधिकृत है, परन्तु

क. वह अवधि मजिस्ट्रेट की शक्ति से अधिक नहीं होगी।

ख. जहाँ कारावास मुख्य दण्डादेश के भाग के रूप में अधिनिर्णीत किया गया है, वहाँ वह उस कारावास की अवधि के चौथाई से अधिक न होगी जिसको मजिस्ट्रेट उस अपराध के लिए, न कि जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने पर दण्ड के तौर पर देने के लिए सक्षम है।

यह अधिनिर्णीत कारावास उस मजिस्ट्रेट को अधिनिर्णीत की जा सकने वाली अधिकतम अवधि के कारावास के मुख्य दण्डादेश के अतिरिक्त हो सकता है।

एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोष सिद्ध होने के मामलों में दण्डादेश

जब एक विचारण में कोई व्यक्ति दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है तब न्यायालय उसे उन अपराधों के लिए विहित विभिन्न दण्डों में से उन दण्डों के लिए, जिन्हें देने के लिए ऐसा न्यायालय सक्षम है, दण्डादेश दे सकता है, जब ऐसे दण्ड कारावास के रूप में हो तब, यदि न्यायालय ने यहं निर्देश न दिया हो कि ऐसे दण्ड साथ-साथ भोगे जायेंगे, तो वे ऐसे क्रम से एक के बाद एक प्रारम्भ होंगे जिसका न्यायालय निर्देश दे। दण्डादेशों के क्रमवर्ती होने की दशा में केवल इस कारण से कि कई अपराधों के लिए संकलित दण्ड उस दण्ड से अधिक है जो वह न्यायालय एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर देने के लिए सक्षम है, न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि अपराधी को उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए भेजे:, परन्तु-

क. किसी भी दशा में ऐसा व्यक्ति चौदह वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास के लिए दण्डादिष्ट नहीं किया जायेगा।

ख. संकलित दण्ड उस दण्ड की मात्रा के दुगने से अधिक न होगा जिसे एक अपराध के लिए देने के लिए वह न्यायालय सक्षम है।

किसी सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा अपील के प्रयोजन के लिए उन क्रमवर्ती दण्डादेशों का योग, जो इस धारा के अधीन उसके विरूद्ध दिये गये हैं, एक दण्डादेश समझा जायेगा।

7.10 शक्तियाँ प्रदान करने का ढंग

सेशन न्यायाधीशों एवं न्यायिक मजिस्ट्रेटों एवं महानगर न्यायिक मजिस्ट्रेटों की शक्तियाँ उच्च न्यायालय द्वारा तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की शक्तियाँ राज्य सरकार द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों को विशेषतया नाम से या उसके पद के आधार पर अथवा पदाधारियो के वर्गो को साधारणतया: उनके पदीय अभिधानों से, आदेश द्वारा सशक्त कर सकती है। ऐसा प्रत्येक आदेश उस तारीख से प्रभावी होगा जिस तारीख को वह ऐसे सशक्त किये गये व्यक्ति को संसूचित किया जाता है।

सरकार की सेवा में पद धारण करने वाला ऐसा व्यक्ति, जिसमें उच्च न्यायालय या राज्य सरकार द्वारा, इस संहिता के अधीन कोई शक्तियाँ किसी समग्र स्थानीय क्षेत्र के लिए निहित की गई है, जब कभी उसी प्रकार के सामान या उच्चतर पद पर उसी राज्य सरकार के अधीन वैसे ही स्थानीय क्षेत्र के अन्दर नियुक्त किया जाता है, तब वह, जब तक, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या राज्य सरकार अन्यथा निर्देश न दे या न दे चुकी हो, उस स्थानीय क्षेत्र में, जिसमें वह ऐसे नियुक्त किया गया है, उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करेगा।

शक्तियों को वापस लेना

सेशन न्यायाधीशों एवं न्यायिक मजिस्ट्रेटों एवं महानगर न्यायिक मजिस्ट्रेटों की शक्तियाँ उच्च न्यायालय द्वारा तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की शक्तियाँ राज्य सरकार द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों से उन सब शक्तियों को या उनमें से किसी को वापस ले सकती है, जो उसने या उसके अधीनस्थ किसी अधिकारी ने किसी व्यक्ति को इस संहिता के अधीन प्रदान की है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या जिला

मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदत्त किन्हीं शक्तियों को उस मजिस्ट्रेट द्वारा वापस लिया जा सकता है जिसके द्वारा वे शक्तियाँ प्रदान की गई थी।

किसी न्यायालय या मजिस्ट्रेट की शक्तियों और कर्त्तव्यों का प्रयोग या पालन उसके पद-उत्तरवर्ती द्वारा किया जा सकता है। जब इस बारे में कोई शंका है, कि किसी अपर या सहायक सेशन न्यायाधीश का पद-उत्तरवर्ती कौन है, तब सेशन न्यायाधीश लिखित आदेश द्वारा यह अवधारित करेगा कि कौन सा न्यायाधीश इस संहिता के, या इसके अधीन किन्हीं कार्यवाहियों या आदेशों के प्रयोजनों के लिए ऐसे अपर या सहायक सेशन न्यायाधीश का पद-उत्तरवर्ती समझा जायेगा। जब इस बारे में कोई शंका है कि किसी मजिस्ट्रेट का पद-उत्तरवर्ती कौन है तब, यथास्थिति, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट लिखित आदेश द्वारा यह अवधारित करेगा कि कौन सा मजिस्ट्रेट इस संहिता के, या इसके अधीन किन्हीं कार्यवाहियों या आदेशों के प्रयोजनों के लिए ऐसे मजिस्ट्रेट का पद-उत्तरवर्ती समझा जायेगा।

7.11 सारांश

वर्तमान दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अधीन प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय एवं इस संहिता से भिन्न किसी विधि के अधीन गठित न्यायालयों के अतिरिक्त एवं सेशन न्यायाधीशों एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट के द्वितीय वर्ग के विभिन्न न्यायालयों का गठन किये जाने के सम्बन्ध में प्रावधान किये गये हैं। ये दाण्डिक न्यायालय उच्च न्यायालय के नियन्त्रण के अधीन होत है। सेशन न्यायाधीश या अपर सेशन न्यायाधीश विधि द्वारा प्राधिकृत कोई भी दण्डादेश दे सकेगा परन्तु उसके द्वारा दिये गये मृत्यु दण्डादेश को उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किया जाना आवश्यक होगा। सहायक सेशन न्यायाधीश 10 वर्ष से अधिक की कारावास के दण्डादेश के सिवाय कोई भी दण्डादेश दे सकता है जो विधि द्वारा प्राधिकृत है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट 7 वर्ष से अधिक के कारावास के दण्डादेश के सिवाय कोई भी दण्डादेश दे सकता है जो विधि द्वारा प्राधिकृत है। प्रथम वर्ग का न्यायालय 3 वर्ष तक की अवधि के लिए कारावास का तथा 10000/- रूपये तक के जुर्माने का या दोनों का दण्डादेश दे सकता है। द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट का न्यायालय एक वर्ष तक की अवधि के लिए कारावास का या 5000 - रूपये तक जुर्माने का या दोनों का दण्डादेश दे सकता है। राज्य सरकार प्रत्येक जिले और महानगर क्षेत्रों में कार्यपालक मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकती है। ये कार्यपालक मजिस्ट्रेट राज्य सरकार के नियन्त्रण के अधीन होते हैं। आपराधिक प्रकरणों में अभियोजन का दायित्व निर्वहन किये जाने हेतु राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा लोक अभियोजकों एवं सहायक लोक अभियोजकों की नियुक्ति की जा सकती है।

7.12 अभ्यास प्रश्न

1. प्रादेशिक खण्ड से आप क्या समझते हैं?
2. महानगर क्षेत्र से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
3. विभिन्न दाण्डिक न्यायालय के वर्ग कौन-कौन से है?
4. सेशन न्यायाधीश से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
5. न्यायिक मजिस्ट्रेटों के विभिन्न वर्गो एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए।
6. कार्यपालक मजिस्ट्रेटों के कृत्यों का वर्णन कीजिए।
7. दाण्डिक न्यायालयों एवं कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को शक्तियाँ प्रदत्त किये जाने एवं वापस लिए जाने से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
8. अभियोजन निदेशालय से आप क्या समझते है?

9. लोक अभियोजकों, अपर लोक अभियोजकों तथा सहायक लोक अभियोजकों के कृत्यों एवं नियुक्ति सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

7.13 संदर्भ ग्रंथ

1. दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा रतन लाल तथा धीरज लाल
2. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा बसन्ती लाल बाबेल
3. दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा शैलेन्द्र कुमार अवस्थी
4. दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा अयूब खां
5. code of criminal procedure by SK Dutt
6. Batuk Lal commentary on criminal procedure court revised by A.N Saha
7. Princep's commentary on the code of criminal procedure

इकाई - 8

गिरफ्तारी, प्रतिप्रेषण (रिमांड), तलाशी तथा जमानत के प्रावधान

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 गिरफ्तारी (अरेस्ट) एवं प्रतिप्रेषण (रिमांड)

8.3 तलाशी व जस्ती

8.4 जमानत प्रावधान

8.5 सारांश

8.6 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप -

- गिरफ्तारी, रिमांड, तलाशी, जब्ती एवं जमानत की अवधारणाओं को समझ सकेंगे।
- इन अवधारणाओं से सम्बन्धित पक्षों की समीक्षा कर सकेंगे।
- उपर्युक्त संदर्भो में पुलिस के अधिकारों, शक्तियों एवं दायित्वों की विवेचना कर सकेंगे।
- इन अवधारणाओं से सम्बन्धित अन्य प्रावधानों का वर्णन करने में समर्थ हो सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

अपराध एवं अपराधिकता को एक सामाजिक एवं सामूहिक जीवन के अभिन्न यथार्थ के रूप में स्वीकार किया जाता है, क्योंकि कि कोई भी समाज पूर्णतया अपराध मुक्त नहीं हो सकता है। अपराधों पर नियंत्रण लगाया जाकर उन्हें कम जरूर किया जा सकता है। अपराध एवं अपराधिकता अपनी सार्वभौमिक प्रकृति के कारण नागरिकों को गहरे तक प्रभावित करते हैं। आम नागरिक अपराध, अन्वेषण, गिरफ्तारी, तलाशी, जस्ती, जमानत, रिमाण्ड जैसे शब्दों के बारे में सुनते तो है परन्तु इनके बारे में पूरी जानकारी नहीं रखते है। इसी क्रम में विद्यार्थियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपराधिकता से जुड़ी इन अवधारणाओं के सभी पक्षों एवं पहलुओं को समझे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यहां पर इन स्थितियों की समीक्षा किया जाना प्रस्तावित है।

8.2 गिरफ्तारी (अरेस्ट) एवं प्रतिप्रेषण (रिमांड)

यद्यपि गिरफ्तारी शब्द को विधिक रूप से परिभाषित नहीं किया गया है तथापि न्यायालयों द्वारा अपने निर्णयों में गिरफ्तारी शब्द को परिभाषित किया गया है। इन निर्णयोनुसार"किसी व्यक्ति द्वारा किसी विधि के पालन में चूक या उल्लंघन के लिए विधि के प्राधिकार के अधीन उसका दैहिक अवरोध गिरफ्तारी है।" यह गिरफ्तारी पुलिस अधिकारी द्वारा व्यक्ति को वस्तुतः छूकर या परिरूद्ध करके की जाती है यदि अभियुक्त शब्दों या कार्यो द्वारा पुलिस अभिरक्षा को स्वीकार नहीं करता है।

8.2.1 अर्थ एवं अवधारणाएँ

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार"किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़ कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया

जायेगा।"अनुच्छेद 22 में ऐसी प्रक्रियात्मक शर्तें निर्धारित की गई है, जिनके अधीन ही विधान मण्डल द्वारा किसी व्यक्ति की दैहिक स्वतन्त्रता को प्रभावित करने वाली विधि बनायी जा सकती है।

8.2.2 वैधानिक प्रावधान

दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन पुलिस पदाधिकारी, मजिस्ट्रेट (धारा 44 द.प्र.सं) और कुछ परिस्थितियों मे धारा 43 द.प्र.सं. के अन्तर्गत प्राइवेट व्यक्ति अधिपत्र के बिना गिरफ्तारी करने के लिए प्राधिकृत किया गया है।

8.2.3 गिरफ्तारी के पुलिस प्रावधान

बिना अधिपत्र के पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तारी:- दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 41, 42, 55, 151, 432(3) द्वारा पुलिस अधिकारी को बिना अधिपत्र के गिरफ्तारी का अधिकार प्रदान किया गया है। पुलिस अधिकारी द्वारा किसी व्यक्ति को बिना अधिपत्र के निम्नलिखित परिस्थितियों में गिरफ्तारी किया जा सकता है:-

(क) **संज्ञेय अपराध से सम्बन्धित व्यक्ति** :- व्यक्ति जो किसी संज्ञेय अपराध से सम्बद्ध रह चुका है या उसके ऐसे अपराध में सम्बद्ध रहने के बारे में, युक्तियुक्त परिवाद किया जा चुका है, या विश्वसनीय इत्तिला प्राप्त हो चुकी है या युक्तियुक्त संदेह विद्यमान है, को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जा सकता है।

(ख) **गृहभेदन के उपकरण का कब्जा** :- ऐसा व्यक्ति जिसके कब्जे में कोई गृहभेदन का उपकरण है।

(ग) **उद्घोषित अपराधी** :- ऐसा व्यक्ति जो इस संहिता के अधीन या राज्य सरकार के आदेश द्वारा अपराधी घोषित किया जा चुका है।

(घ) **चोरी की सम्पत्ति का कब्जा** :- जिसके कब्जे में ऐसी कोई चीज पाई जाती है जिसके चोरी की सम्पत्ति होने का युक्तियुक्त संदेह किया जा सकता है।

(ङ) **पुलिस पदाधिकारी को अवरूद्ध करना** :- ऐसा व्यक्ति जो पुलिस अधिकारी को तब अवरूद्ध करता है जबकि वह अपने कर्त्तव्य का निष्पादन कर रहा है या जहाँ विधिपूर्ण अभिरक्षा से भाग आया है या भागने की चेष्टा करता है।

(च) **अभित्यागी** :- ऐसा व्यक्ति जिसके बारे में भारतीय थल सेना, नौ-सेना या वायुसेना से अभित्यागी होने का युकियुक्त सन्देह है।

(छ) **प्रत्यर्पण अपराधियों की गिरफ्तारी** :- ऐसा व्यक्ति जो भारत के बाहर के किसी स्थान में किसी ऐसे कार्य के किये जाने से जो, यदि भारत में किया गया हो तो अपराध के रूप में दण्डनीय होता है और जिसके लिए वह प्रत्यर्पण सम्बन्धी किसी विधि के अधीन या अन्यथा भारत में पकडे जाने के लिए या अभिरक्षा में निरुद्ध किये जाने के लिए भागी है।

(ज) **सम्मोचित दोषी** :- ऐसा व्यक्ति जो सम्मोचित दोषी होते हुए धारा 356 की उपधारा (5) के अधीन बनाये गये नियम को भंग करता है।

(झ) **अन्य पुलिस अधिकारी से प्राप्त अभियाचना** :- ऐसा व्यक्ति जिसकी गिरफ्तारी के लिए अन्य पुलिस अधिकारी से अभियाचना प्राप्त हो चुकी है।

(ञ) **नाम एवं निवास बताने से इन्कार करना** :- ऐसा व्यक्ति जो धारा 109 या 110 में वर्णित श्रेणियों में से किसी एक या अधिक से सम्बन्धित हो।

(ट) **ऐसा व्यक्ति, जिसने पुलिस पदाधिकारी की उपस्थिति में असंज्ञेय अपराध किया है** या जिस पर पुलिस पदाधिकारी की उपस्थिति में अरनंड़ाएय अपराध करने का अभियोजन लगाया गया है, ऐसे पदाधिकारी की माँग पर अपना नाम और निवास बताने से इन्कार करता है या ऐसा नाम या निवास बताया है जिसके बारे में ऐसे पदाधिकारी को विश्वास करने का कारण है कि वह मिथ्या है तब ऐसे पदाधिकारी द्वारा वह इसलिए गिरफ्तार किया जा सकेगा कि उसका नाम और निवास विनिश्चित किया जा सके।

(ठ) **पुलिस पदाधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारी को गिरफ्तारी के लिए प्रतिनियुक्त करना**:- जबकि पुलिस थाने का भारसाधक कोई पदाधिकारी या कोई पुलिस पदाधिकारी अपने अधीनस्थ किसी पदाधिकारी से किसी ऐसे व्यक्ति को अधिपत्र के बिना गिरफ्तार करने की अपेक्षा करता है जो उसके द्वारा अधिपत्र के बिना विधिपूर्ण तथा गिरफ्तार किया जा सकता है वह ऐसे पदाधिकारी को जिससे गिरफ्तार किये जाने की अपेक्षा की गई है, लिखित में आदेश परिदत्त करेगा, जिसके गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति का और जिस अपराध या अन्य कारण के लिए गिरफ्तारी की जानी है, का उल्लेख होगा और ऐसे अपेक्षित अधिकारी गिरफ्तारी से पूर्व गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति को आदेश का सार सूचित करेगा और ऐसे व्यक्ति द्वारा अपेक्षा किये जाने पर आदेश दिखायेगा।

(ड) **संज्ञेय अपराध को रोकने के लिए गिरफ्तार**:- यदि किसी पुलिस अधिकारी को, जिसे किसी संज्ञेय अपराध के किये जाने की परिकल्पना की जानकारी है, यह प्रतीत होता है कि अपराध के किये जाने का निवारण अन्यथा नहीं किया जा सकता तो वह मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना और अधिपत्र के बिना ऐसे परिकल्पना करने वाले व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकेगा।

(ढ) **यदि कोई शर्त, जिस पर कि दण्डादेश का निलम्बन या परिहार किया गया है,** वह पूरी नहीं हुई है तो समुचित सरकार निलम्बन या परिहार का प्रतिसंहरण कर सकेगी और व्यक्ति विशेष जिसके पक्ष में दण्डादेश का निलम्बन या परिहार किया गया है, उसे किसी पुलिस पदाधिकारी द्वारा अधिपत्र के बिना गिरफ्तार किया जा सकेगा।

8.2.4 मजिस्ट्रे ट द्वारा गिरफ्तारी

धारा 44(1) के अनुसार:-''जब कार्यपालक या न्यायिक मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में उसके क्षेत्राधिकार के अन्दर कोई अपराध किया गया है तब वह अपराधी को स्वयं गिरफ्तार कर सकेगा या गिरफ्तार करने के लिए किसी व्यक्ति को आदेश दे सकेगा और तदुपरान्त जमानत के बारे में एतद् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अधीन रहते हुए अपराधी को अभिरक्षा में रखे जाने के लिए सुपुर्द कर सकेगा।'

धारा 44(2) के अनुसार,'' कोई कार्यपालक या न्यायिक मजिस्ट्रेट किसी समय भी अपने क्षेत्राधिकार के अन्दर ऐसे किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी कर सकेगा या अपनी उपस्थिति में गिरफ्तारी की जाने का निर्देश दे सकेगा, जिसकी गिरफ्तारी के लिए वह उस समय और उन परिस्थितियों में अधिपत्र निकालने के लिए सक्षम है।

8.2.5 सामान्य जन द्वारा गिरफ्तारी

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 43 के अनुसार-''कोई अलोक व्यक्ति ऐसे किसी व्यक्ति को, जो उसके अवलोकन में अजमानतीय और संज्ञेय अपराध करता है या किसी उद्घोषित अपराधी को, गिरफ्तार कर सकेगा या गिरफ्तार करवा सकेगा और ऐसे गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को वह पुलिस

पदाधिकारी को आवश्यक विलम्ब के बिना संभला देगा या पुलिस पदाधिकारी की अनुपस्थिति में ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा में निकटतम पुलिस थाने ले जायेगा या भिजवायेगा।

8.2.6 अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान

8.2.6.1 गिरफ्तारी का तरीका:-

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 46 के अनुसार

1. गिरफ्तारी करने में पुलिस पदाधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो गिरफ्तारी कर रहा है, गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति के, जब तक कि उसने शब्दत: या कर्मत: अपने को अभिरक्षा के वशीभूत न कर दिया हो, शरीर को वास्तव में छूएगा या परिरूद्ध करेगा।
2. यदि ऐसा व्यक्ति अपने पकडे जाने के प्रयास का बलात् प्रतिरोध करता है या गिरफ्तारी से बचने की चेष्टा करता है तो ऐसा पुलिस पदाधिकारी या अन्य व्यक्ति गिरफ्तारी करने के लिए सब आवश्यक साधनों को उपयोग में ला सकेगा।
3. इस धारा की कोई बात ऐसे व्यक्ति की, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय अपराध का अभियुक्त नहीं है, मृत्यु करने का अधिकार नहीं देती।

धारा 50 के अनुसार गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को उससे अधिक अवरोध के वशीभूत न किया जायेगा, जितना की उसके भाग जाने से रोकने के लिए आवश्यक है।

जब किसी व्यक्ति को उसके शरीर को वस्तुत: छूकर या परिरूद्ध करके गिरफ्तार किया जाता है या जब अभियुक्त शब्दों या कार्य द्वारा उस अभिरक्षा को स्वीकार करता है तब पुलिस अभिरक्षा प्रारम्भ होती है। अभियुक्त को किन परिस्थितियों में हथकड़ी तथा बेडियां पहनाई जानी चाहिए इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय द्वारा भारत सरकार को निर्देश दिये गये हैं।

8.2.6.2 गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति के अधिकार

गिरफ्तार करने वाले पुलिस पदाधिकारी को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा या, 48, 52 एवं 60 द्वारा निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं, जिससे गिरफ्तारी को सुविधाजनक बनाया जा सके।

(क) **उस स्थान की तलाशी जिसमें ऐसा व्यक्ति घुसा है. जिसको गिरफ्तार किया जाना है**:- धारा 47(1)

(ख) **जहाँ घुसना अभिप्राप्य न हो वहाँ प्रक्रिया**:- यदि ऐसे स्थान में घुसना अभिप्राप्य न हो सके और गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति को भाग जाने का अवसर हो सकता तो पुलिस पदाधिकारी के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वह ऐसे स्थान में घुसे और वही तलाशी ले और ऐसे स्थान में घुस पाने के लिए किसी घर या स्थान के, चाहे वह गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति का उस घर की किसी बाहरी या भीतरी द्वार या खिडकी को अधिसूचना के पश्चात और सम्यक् रूपेण माँग करने के पश्चात एवं अन्यथा प्रवेश अभिप्राप्य नहीं होने पर तोड़कर खोल ले।

(ग) **जनानखाने में घुसना**:-यदि ऐसा कोई स्थान, ऐसी स्त्री के वास्तविक दखल में है जो रूढि के अनुसार लोक समक्ष नहीं आती हो तो ऐसा व्यक्ति या पुलिस पदाधिकारी ऐसे आवास कोष्ठ मे घुसने से पूर्व ऐसी स्त्री को सूचना देगा कि वह वहाँ से हट जाने के लिए स्वतन्त्र है और हट जाने के लिए प्रत्येक युक्तियुक्त सुविधा देगा और तब आवास कोष्ठ तोडकर खोल सकेगा और उसमें घुस सकेगा।

(घ) परिमोचन के प्रयोजनों के लिए द्वार और खिडकी को तोड़कर खोलने की शक्ति:- पुलिस पदाधिकारी या गिरफ्तार करने के लिए प्राधिकृत अन्य व्यक्ति यदि किसी ऐसे घर या स्थान में से अपने या किसी अन्य व्यक्ति के परिमोचन के लिए जो गिरफ्तारी करने के प्रयोजन के लिए विधिपूर्णतया प्रवेश करने के पश्चात वहाँ निरूद्ध है तो उसका कोई बाहरी या भीतरी द्वार या खिडकी तोडकर खोल सकेगा।

(ङ) अन्य क्षेत्राधिकार में अपराधियों का पीछा करना:- धारा 48 के अनुसार-" कोई पुलिस पदाधिकारी ऐसे किसी व्यक्ति को, जिसे गिरफ्तार करने के लिए वह प्राधिकृत है गिरक्तारी के प्रयोजन के लिए ऐसा व्यक्ति का पीछा भारत के किसी भी स्थान तक कर सकेगा।'

(च) भाग जाने पर पीछा करने और फिर पकड़ने की शक्ति:- धारा 60 के अनुसार" यदि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति विधिपूर्ण अभिरक्षा में से भाग जाता है या छुडा लिया जाता है तो वह व्यक्ति जिसकी अभिरक्षा से वह भाग जाता है उसका पीछा कर सकेगा और भारत के किसी भी स्थान में उसे गिरफ्तार कर सकेगा।"

8.2.6.3 गिरफ्तारी के बाद'प्रक्रिया

इस प्रक्रिया को तीन भागों में बांटा जा सकता है:-

1. अलोक व्यक्ति द्वारा गिरफ्तारी:- यदि गिरफ्तारी किसी अलोक व्यक्ति द्वारा की जाती है तो धारा 43 के अनुसार ऐसे गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को वह पुलिस पदाधिकारी को अनावश्यक विलम्ब के बिना सम्भला देगा या पुलिस पदाधिकारी की अनुपस्थिति में ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा में निकटतम पुलिस थाने ले जायेगा या भिजवायेगा।
2. पुलिस पदाधिकारी द्वारा अधिपत्र के अधीन गिरफ्तारी:-

(क) अधिपत्र के सार की सूचना- धारा 75 के अनुसार, पुलिस पदाधिकारी या अन्य व्यक्ति जो गिरफ्तार के अधिपत्र का निष्पादन कर रहा है, द्वारा गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति को अधिसूचित की जायेगी।

(ख) गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष अविलम्ब ले जाया जायेगा (धारा 76)

3. पुलिस अधिकारी द्वारा बिना अधिपत्र गिरफ्तारी पर प्रक्रिया:- बिना अधिपत्र गिरफ्तारी के बाद की प्रक्रिया धारा 51, 56,57 एवं 58 में उपबन्धित की गई है-

(क) धारा 51 :-"जब कभी पुलिस पदाधिकारी द्वारा या ऐसे अधिपत्र के अधीन, जो जमानत लेने का उपबन्ध नहीं करता या ऐसे अधिपत्र के अधीन जो जमानत लेने का उपबन्ध करता है, किन्तु गिरफ्तार किया गया व्यक्ति जमानत नहीं जुटा सकता, कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है।

जब कभी अधिपत्र के बिना या अलोक व्यक्ति द्वारा अधिपत्र के अधीन कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है और वैध रूप से जमानत पर छोडा नहीं जा सकता या जमानत जुटाने में अयोग्य है, तब गिरफ्तारी करने वाला पदाधिकारी या जब गिरफ्तारी अलोक व्यक्ति द्वारा की गई तब जिस पुलिस पदाधिकारी को वह गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को सम्भलवाता है, वह पुलिस पदाधिकारी ऐसे व्यक्ति की तलाशी ले सकेगा और आवश्यक परिधान वस्त्रों से भिन्न उस पर पाई गई सब वस्तुओं को अभिरक्षा में रखेगा और जब गिरफ्तार किये गये व्यक्ति से कोई वस्तु अभिगहीत की जाती है तब पुलिस पदाधिकारी द्वारा ऐसे व्यक्ति को कब्जे में ली गई वस्तुओं की रसीद दी जावेगी।"

(ख) आकामक आयुधों का अभिग्रहण करने की शक्ति :- धारा 52 के अनुसार -'' वह पदाधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो इस संहिता के अधीन गिरफ्तारी कर रहा है, गिरफ्तार किये गये व्यक्ति से कोई आकामक आयुध जो उसके शरीर पर है, ले सकेगा और ऐसे लिए गये सब आयुधों को ऐसे न्यायालय या पदाधिकारी को, जिसके समक्ष वह पदाधिकारी या गिरफ्तारी करने वाला व्यक्ति गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को पेश करने के लिए इस संहिता द्वारा अपेक्षित है, परिदान करेगा।'

(ग) धारा 58 के अनुसार :-'पुलिस थानों के भारसाधक पदाधिकारी जिला मजिस्ट्रेट को या उसके ऐसे निर्देश देने पर, उपखण्ड मजिस्ट्रेट को क्रमश: उनके थाने की सीमाओं के अन्दर अधिपत्र के बिना गिरफ्तार किये गये सब व्यक्तियों के मामलों का प्रतिवेदन करेंगे। भले ही ऐसे व्यक्तियों की जमानत ले ली गई हो या नहीं।

(घ) गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना :- धारा 56 के उपबन्धों के अनुसार अधिपत्र के बिना गिरफ्तार करने वाला पुलिस पदाधिकारी अनावश्यक विलम्ब के बिना और जमानत के सम्बन्ध में एतद् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अधीन रहते हुए गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को उस मामले में क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष या पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समझ ले जाया जावेगा या भेजेगा।

(ड़) गिरफ्तार किया गया व्यक्ति 24 घण्टे से अधिक पुलिस अभिरक्षा निरुद्ध नही किया जायेगा

(च) लोक सेवक की गिरफ्तारी सूचना उसके वरिष्ठ अधिकारी को गिरफ्तारी से पहले ली जानी चाहिए और यदि यह संभव न हो तो गिरफ्तारी के तुरन्त बाद दी जानी चाहिए।

8.2.6.4 गिरफ्तार किये गये व्यक्ति के अधिकार

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 में गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों को प्राप्त अधिकार वर्णित किये गये हैं। ये अधिकार मौलिक अधिकार है। अनुच्छेद 22 के अनुसार गिरफ्तारियाँ दो प्रकार की हो सकती है-

(क) सामान्य दण्ड विधि के अधीन

(ख) निवारक निद्रोध विधि के अधीन

(क) सामान्य दण्ड विधि के अधीन गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों को निम्नलिखित अधिकार प्रदान किये गये

1. गिरफ्तारी के कारणों को शीघ्रतिशीघ्र बताये जाने का अधिकार
2. अपनी रूचि के वकील से परामर्श करने और बचाव करने का अधिकार
3. गिरफ्तारी के बाद 24 घंटों के अन्दर किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किये जाने का अधिकार
4. 24 घंटे से अधिक मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना निरोध से स्वतंत्रता यदि कोई निरूद्ध व्यक्ति यदि किन्हीं कारणों से वकील नियुक्त करने में असमर्थ हो तो न्यायालय द्वारा विधिक सहायता तभी दी जाती है जब प्रत्यक्षी इसके लिए आवेदन करे। लेकिन श्रीमति मेनका गांधी बनाम भारत संघ के मामले में दिये गये विनिश्चय तथा उसके अनुसरण में दिये गये अन्य विनिश्चयों के परिणामस्वरूप अब यह स्थिति हो गई है कि गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों को न्यायालय द्वारा विधिक सहायता प्रदान करना एक बाध्यता हो गई है।

(ख) निवारक निरोध विधि के अधीन:- निवारक निरोध विधि के अन्तर्गत निरूद्ध किये गये व्यक्ति को निम्नलिखित संरक्षण दिये गये हैं-

1. सलाहकार बोर्ड द्वारा पुनर्वलोकन
2. गिरफ्तारी के कारण जानने एवं अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अधिकार

इन सब मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 54 में गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपना चिकित्सीय परीक्षण करा सकता है। धारा 54 के अनुसार-''जबकि कोई व्यक्ति जो किसी आरोप मे या अन्यथा गिरफ्तार किया गया है, मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किये जाने के समय या अभिरक्षा मे निरोध की अवधि के दौरान किसी समय, यह अभिकथित करता है कि उसके शरीर का परीक्षण ऐसी साक्ष्य देगा जो उसके द्वारा अपराध किये जाने को नासाबित कर देगा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसके शरीर पर अपराध कारित करना स्थापित करेगा ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, जब तक कि मजिस्ट्रेट के विचार में ऐसी प्रार्थना का उद्देश्य तंग करना, विलम्ब करना या न्याय के उद्देश्यों को विफल करना न हो, ऐसे व्यक्ति का शारीरिक परीक्षण रजिस्टर्ड चिकित्सक द्वारा किये जाने का निर्देश देगा।

8.2.7 गिरफ्तार व्यक्ति का प्रतिप्रेषण (Remand):-

दण्ड संहिता प्रक्रिया के उपक्यों में''प्रतिप्रेषण'' शब्द प्रयुक्त नहीं किया गया है। शब्द प्रतिपेषण का तात्पर्य मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को अभिरक्षा में रखने के लिए दिये जाने वाले प्राधिकार से है। यह प्राधिकार पुलिस अभिरक्षा अथवा न्यायिक अभिरक्षा के लिए दिया जा सकता है।

(क) **प्रतिप्रेषण आदेश कब दिया जावेगा**:- धारा 167(1) के अनुसार जब व्यक्ति गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरोध्द है और यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण धारा 57 द्वारा नियत 24 घंटे की कालावधि के अन्दर समाप्त नहीं किया जा सकता और यह विश्वास करने के लिए यह आधार है कि अभियोग या इत्तिला साधार (wel founded) है तब पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी या अन्वेषण करने वाला पुलिस पदाधिकारी यदि वह उप-निरीक्षक की पंक्ति से निम्नतर नहीं है, निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट को एत्पश्चात विहित रीति में मामले से संबंध डायरी की प्रविष्टियों को प्रति-प्रेषित करेगा और साथ ही उसमें अभियुक्त व्यक्ति को भी ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा। उपधारा (3) के अनुसार मजिस्ट्रेट इस धारा के अधीन पुलिस अभिरक्षा में निरोध प्राधिकृत करता है, ऐसा करने के लिए अपने कारणों को अभिलिखित करेगा।

इस धारा के अधीन प्रतिप्रेषण आदेश के लिए अभियुक्त को गिरफ्तार करने के समय से 24 घंटों की अवधि में निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना आवश्यक है। यदि 24 घंटों की अवधि में अभियुक्त को पेश नहीं किया जाता है तो गिरफ्तार करने वाला व्यक्ति सदोष परिरोध के लिए दोषी होगा।

प्रतिप्रेषण आदेश के लिए अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से पेश किया जाना चाहिए। लेकिन यदि परिस्थितियां ऐसी हो जिनमें अभियुक्त को पेश किया जाना सन्यव न हो, जैसे अभियुक्त के बहुत अधिक बीमार होने के कारण तो अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से पेश किए बिना भी प्रतिप्रेषण आदेश दिया जा सकता है। अभियुक्त की अनुपस्थिति में दिया गया रिमाण्ड अपने आप में अवैध नहीं है। यदि अभियुक्त को पेश नही किये जाने की परिस्थितियां पुलिस या अभियोजन के नियंत्रण से बाहर है तो अभियुक्त की अनुपस्थिति में प्रतिप्रेषण आदेश दिया जा सकता है। ऐसे अभियुक्त की दशा में जो अभिरक्षा में निरूद्ध है तथा जिसकी बाबत पुलिस द्वारा अन्देषण की अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी गई हो, किन्तु मजिस्ट्रेट द्वारा सज्ञान नहीं लिया गया तो मजिस्ट्रेट उसे अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने का आदेश नहीं दे सकता।

(ख) **प्रतिप्रेषण आदेश कौन देगा**:- प्रतिप्रेषण आदेश मजिस्ट्रेट द्वारा ही दिया जा सकता है। मजिस्ट्रेट के अन्तर्गत न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं मैट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट आते है। प्रतिप्रेषण आदेश किसी भी न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दिया जा सकता हैं। लेकिन सम्बन्धित क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट द्वारा ही प्रतिप्रेषण आदेश प्राप्त किया जाना वांछनीय है।

(ग) **प्रतिप्रेषण के कारण**:- प्रतिप्रेषण आदेश एक न्यायिक आदेश है। इसलिए मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को अभिरक्षा में प्रतिप्रेषण किये जाने के कारण लिखे जाने चाहिए। प्रतिप्रेषण आदेश देने से पूर्व सर्वप्रथम मजिस्ट्रेट को यह देखना चाहिए कि अभियुक्त के विरूद्ध लगाये गये आरोप के उचित आधार है। इसके लिए केस डायरी, साक्षियों द्वारा धारा 161 के अधीन दिए गये कथन और अभिलेख को अच्छी तरह से देखा जाना चाहिए। मजिस्ट्रेट को अपने प्रतिप्रेषण आदेश में ऐसा करने के कारण आवश्यक रूप से लिखने चाहिए। अभियुक्त सस्वीकृति कर सकता है या अभियुक्त की पहचान साक्षियों से कराई जानी है, ये कारण पुलिस अभिरक्षा प्राधिकृत करने के पर्याप्त आधार नहीं है।

(घ) **प्रतिप्रेषण की अवधि**:- किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के पश्चात पुलिस द्वारा अभिरक्षा में चौबीस घंटे से अधिक मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना नहीं रोका जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये विनिश्चय के अनुसार रिमाण्ड की अवधि अभियुक्त के प्रथम बार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किये जाने से गिनी जायेगी न कि अभियुक्त की गिरफ्तारी से।

धारा 167(2) में उल्लेखित 15 दिन की प्रथम अवधि के दौरान अभिरक्षा की प्रकृति को न्यायिक अभिरक्षा से पुलिस अभिरक्षा में और पुलिस अभिरक्षा से न्यायिक अभिरक्षा में बदला जा सकता है।

8.3 तलाशी व जब्ती

8.3.1 अर्थ, अवधारणाएँ एवं प्रसंग

अपराध अन्वेषण एवं तफतीश के दौरान पुलिस को तलाशी और बरामदगी के अधिकार प्रदान किये गये है। पुलिस की यह शक्ति व्यक्ति को सम्पत्ति रखने के मौलिक अधिकार को प्रतिकूलता से प्रभावित करती है। तलाशी का उद्देश्य अपराध से सम्बन्धित वस्तुओं का अधिग्रहण करना है। तलाशी व्यक्ति एवं स्थान दोनों की ली जा सकती है। तलाशी केवल पुलिस अधिकारी द्वारा ही ली जा सकती है।

8.3.2 तलाशियों के प्रकार एवं स्वरूप

8.3.2.1 व्यक्तियों की तलाशी दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 51 के अधीन पुलिस अधिकारी को व्यक्ति की तलाशी का अधिकार दिया गया है। व्यक्ति की तलाशी केवल तभी ली जा सकती है जब वांरट के अधीन या बिना वारंट के गिरफ्तार किया गया है। तलाशी की पूर्ववर्ती शर्त उस व्यक्ति की गिरफ्तारी है। किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किये बिना सामान्यतया तलाशी नहीं ली जानी चाहिए।

8.3.2. 2 स्त्रियों की तलाशी धारा 51(2) के अनुसार जब किसी स्त्री की तलाशी लिवायी जानी आवश्यक हो तो वह शिष्टता का पूरा ध्यान रखते हुए अन्य स्त्री द्वारा ली जावेगी।

8.3.2.3 स्थान की तलाशी किसी स्थान की तलाशी व्यक्तियों के लिए अथवा वस्तुओं के लिए की जा सकती है। व्यक्तियों के लिए तलाशी धारा 47, 97 एवं 98 के उपबन्धों के अधीन की जा सकती है तथा वस्तुओं के लिए तलाशी धारा या, 93, 9495 एवं 165 के उपबन्धो के अधीन की जा सकती है। स्थान की तलाशी में निम्नांकित बातों का ध्यान विशेष रूप से रखा जाना चाहिए।

8.4 जमानत प्रावधान

8.4.1 अर्थ, अवधारणाएँ एवं संदर्भ

जमानत का तात्पर्य किसी गिरफ्तार किये गये या बन्दी व्यक्ति को निर्धारित समय एवं दिवस को उपस्थित रहने के लिए उस व्यक्ति द्वारा स्वयं का मुचलका एवं किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी जमानत देने पर उस व्यक्ति को स्वतंत्र करना है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार,''जमानत का अर्थ'' जेल से विमुक्त करना है। जमानत द्वारा अभियुक्त व्यक्ति को प्रति भू को सुपुर्द कर दिया जाता है। निर्धारित दिवस को अनुपस्थित रहने प२ जमानत की राशि प्रति भू से वसूल की जाती है।

गिरफ्तारी की प्रक्रिया द्वारा अन्वेषण की समाप्ति पर अभियुक्त को विचारण के लिए उपलब्ध कराया जाता है। जबकि जमानत की प्रक्रिया द्वारा अभियुक्त को इस शर्त पर स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वह न्यायालय में विचारण के लिए उपस्थित होने हेतु अन्वेषण अधिकारी का समाधान करे।

8.4.2 जमानतीय एवं अजमानतीय अपराध

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 2 (क) द्वारा जमानतीय एवं अजमानतीय अपराध परिभाषित किये गये है। जमानतीय अपराध वे अपराध है जो प्रथम अनुसूची में जमानतीय दर्शित किये गये है या तत्समय प्रभावी किसी अन्य विधि द्वारा जमानतीय बनाये गये है। जमानतीय अपराधों से भिन्न अन्य सभी अपराध अजमानतीय है। जमानतीय एवं अजमानतीय अपराधों के वर्गीकरण में किसी विशेष प्रकार के सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया गया है। इस वर्गीकरण का आधार यह बताया जाता है कि अजमानतीय अपराधों की तुलना में जमानतीय अपराध कम गंभीर प्रकृति के है। जमानतीय अपराधों के जमानत सम्बन्धी प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 436 में तथा अजमानतीय अपराधों में जमानत सम्बन्धी उपबन्ध धरा 437, 438,439 में वर्णित किये गये हैं।

8.4.3 जमानत सम्बन्धी विधिक प्रावधान

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 436 एवं 437 के अधीन जमानत पर स्वतंत्र करने की शक्ति न्यायालय एवं पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी में निहित की गई है।

धारा 438 के अनुसार:

1. जबकि अजमानतीय अपराध से भिन्न कोई व्यक्ति पुलिस थाने के भारसाधक पदाधिकारी द्वारा अधिपत्र के बिना गिरफ्तार या निरूद्ध किया जाता है अथवा न्यायालय के समक्ष उपसंजात होता है या लाया जाता है और उस समय के दौरान में जिसमें वह ऐसे पदाधिकारी की अभिरक्षा में है, किसी समय अथवा ऐसे न्यायालय के समझ कार्यवाहियों के किसी प्रकम में जमानत देने के लिए तैयार है तब ऐसा व्यक्ति जमानत पर सम्मोचित किया जायेगा, परन्तु यदि ऐसा पदाधिकारी या न्यायालय यह ठीक समझे तो वह ऐसे व्यक्ति से जमानत लेने के बदले उसे अपने उपसंजात (Appear) होने के लिए प्रतिभूतों के बिना बन्धनामा एतत्पश्चात उपबन्धित रीति से निष्पादित करने पर उन्मोचित कर सकेगा, परन्तु यह और भी कि इस धारा की कोई भी बात धारा 116 की अपधारा (3) के उपबन्धों को प्रभावित करने वाली न समझी जायेगी।

2. उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी जब कोई व्यक्ति उपस्थित होने के समय और स्थान की किसी शर्त की पालना करने में असफल रहता है तो उसी मामले के किसी पश्चातवर्ती अवसर पर न्यायालय में उपस्थित होने या अभिरक्षा में लाये जाने पर न्यायालय

ऐसे व्यक्ति को जमानत पर छोड़े जाने से इंकार कर सकता है और ऐसा इंकार बन्धपत्र से आबद्ध किसी व्यक्ति को बुलाने और धारा 446 के अधीन शास्ति का संदाय करने की न्यायालय की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।

धारा 437 के अनुसार :-

1. जबकि अजमानतीय अपराध के लिए अभियुक्त या उसके करने का संदिग्ध कोई व्यक्ति पुलिस थाने के भारसाधक पदाधिकारी द्वारा अधिपत्र के बिना गिरफ्तार या निरूद्ध किया जाता है अथवा न्यायालय के समक्ष उपसंजात (एपीयर) होता है या उच्च न्यायालय अथवा सैशन न्यायालय से भिन्न न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, तब वह जमानत पर सम्मोचित किया जा सकेगा, किन्तु-

i. (यदि विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार प्रतीत हो कि वह मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय अपराध के लिए दोषी हो चुका है तो वह ऐसे सम्मोचित न किया जायेगा,

ii. यदि अपराध संज्ञेय है और वह व्यक्ति पूर्व में मृत्यु, आजीवन कारावास अथवा सात वर्ष या अधिक अवधि के कारावास से दण्डनीय अपराध के लिए पूर्व में सिद्धदोष हो चुका है तो वह ऐसे सम्मोचित न किया जायेगा।

परन्तु, न्यायालय यह निर्देश दे सकेगा कि खण्ड (1) या (2) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति, यदि वह व छ वर्ष से कम आयु का है अथवा स्त्री अथवा कोई रोगी या दुर्बल व्यक्ति है, जमानत पर सम्मोचित किया जाए,

परन्तु यह और भी कि यदि खण्ड में निर्दिष्ट व्यक्ति के बारे में न्यायालय संतुष्ट हो कि किन्हीं विशेष कारणों से ऐसा करना न्याय-संगत और उचित है तो भी न्यायालय निर्देश दे सकेगा कि ऐसा व्यक्ति जमानत पर सम्मोचित किया जाये।

परन्तु यह भी कि केवल ऐसा तथ्य कि अन्वेषण के दौरान अभियुक्त व्यक्ति की साक्षियों द्वारा शनाख्त करने के लिए आवश्यकता होगी, जमानत अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त कारण नहीं होगा। यदि वह अन्यथा जमानत पर उन्मोचित किए जाने के लिए अधिकारी हो और यह वचन दे कि वह न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देशों की पालना करेगा।

2. यदि ऐसे पदाधिकारी या न्यायालय को यथास्थिति अन्वेषण, जाँच या परीक्षण के किसी प्रक्रम में यह प्रतीत हो कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार नहीं है कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया है। किन्तु उसकी दोषिता के बारे में और आगे जाँच करने के लिए पर्याप्त आधार है तो अभियुक्त ऐसी जाँच लम्बित रहने तक जमानत पर अथवा अपने अपसजात होने के लिए प्रतिभुओं के बिना बन्धनामा एतत्पश्चात या उपबंधित रूप में निष्पादित करने पर ऐसे पदाधिकारी या न्यायालय के स्वविवेक में सम्मोचित किया जाएगा।

3. जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का अपराधी या करने के लिए संदिग्ध व्यक्ति है तो सात वर्ष या उससे अधिक कारावास से दण्डनीय है या भा.दसं. के अध्याय 6 या अध्याय 16 या अध्याय गअपप के अधीन अपराध या ऐसे किसी अपराध के दुष्प्रेरण, षड्यंत्र अथवा अपराध करने के प्रयास से संबंद्ध है, उपधारा (1) के अधीन जमानत पर छोडा जाता है तो न्यायालय जो आवश्यक समझे ऐसी कोई भी शर्त-

(अ) यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस अध्याय के अधीन निष्पादित बन्धपत्र को शर्तो के अनुसार वह व्यक्ति उपस्थित होगा

(ब) यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसा व्यक्ति जिस अपराध का अपराधी है या करने के लिए संदिग्ध है वैसा अपराध कारित नहीं करेगा या

(स) न्यायहित में जो आवश्यक हो लगा सकता है।

4. उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन जमानत पर किसी व्यक्ति को सम्मोचित करने वाला पदाधिकारी या न्यायालय ऐसा करने के लिए अपने कारणों या विशेष कारणों को लेखनबद्ध रूप में अभिलिखित करेगा।

5. कोई न्यायालय जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन जमानत पर छोडा गया है। यदि आवश्यक समझे तो ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकेगा और उसे अभिरक्षा में रखे जाने के लिए सुपुर्द कर सकेगा।

6. यदि मजिस्ट्रेट के द्वारा विचारणीय किसी मामले में, किसी अजमानतीय अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति का परीक्षण, उस मामले में साक्ष्य लेने के लिए नियत किये गये प्रथम दिनांक से 60 दिनों के अन्दर समाप्त नहीं होता तो ऐसा व्यक्ति, यदि उक्त पूर्णकालपर्यन्त अभिरक्षा में हो, माजिस्ट्रेट के समाधानप्रद जमानत पर सम्मोचित कर दिया जायेगा जब तक कि मजिस्ट्रेट लेखनबद्ध रूप में अभिलिखित किये जाने वाले कारणों के लिए अन्यथा निर्देश न दे।

7. यदि अजमानतीय अपराध के लिए अभियुक्त व्यक्ति के परीक्षण के खत्म हो जाने के पश्चात और निर्णय सुनाये जाने के पूर्व किसी समय न्यायालय इस राय का हो कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार है कि अभियुक्त किसी ऐसे अपराध का दोषी नहीं है तो वह अभियुक्त को, यदि वह अभिरक्षा में, निर्णय सुनने के लिए अपनी उपस्थिति के लिए प्रतिभुओं बिना अपना बन्धनामा स्वयं निष्पादित करने पर सम्मोहित कर देगा।

धारा 439 में सैशन न्यायालय एवं उच्च न्यायालय को जमानत सम्बन्धी विशेष शक्तियाँ प्रदान की गई है तथा धारा 438 में अग्रिम जमानत सम्बन्धी शक्तियाँ वर्णित की गई है।

8.4.4 जमानत के विविध प्रावधान

8.4.4.1

i. **सामान्य** :- धारा 436 एवं 437 के अधीन पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को न्यायालय के समान ही अभियुक्त को जमानत पर स्वतंत्र करने की शक्ति हैं। अन्वेषण किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा किया जा सकता है जबकि जमानत की शक्ति केवल थाने के भारसाधक अधिकारी या उसके वरिष्ठ अधिकारियों को ही प्राप्त है।

ii. **पुलिस किन मामलों पर स्वतंत्र करेगी** :- निम्नलिखित मामलों में पुलिस द्वारा अभियुक्त व्यक्ति को आवश्यक रूप से जमानत पर स्वतंत्र किया जाना चाहिए-

(क) जमानतीय अपराधों में

(ख) जमानतीय वारंट के अधीन गिरफ्तारी के मामलों में

(ग) अजमानतीय अपराधों के मामलों में यदि अन्वेषण से यह ज्ञात हो कि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति केवल जमानतीय अपराध से सम्बद्ध है।

(घ) अन्वेषण की समाप्ति पर यदि वह पाया जावे कि अभियुक्त को विचारण के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष भेजे जाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं है।

(ङ) जब अभियुक्त को नाम और पता नहीं बताने अथवा गलत नाम और पता बताने के कारण गिरफ्तार किया जाता है तो जब उसका सही नाम और पता ज्ञान हो जावे।

iii. **जमानती अपराधों में जमानत**:- धारा 436 के प्रावधानों के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को जमानती मामले के अपराध में गिरफ्तार किया जाता है और वह जमानत देने को तैयार है तो उस व्यक्ति को जमानत पर छोड़ना पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी का कर्त्तव्य होगा। जमानतीय अपराधों में जमानत पर स्वतंत्र रहने का अभियुक्त व्यक्ति का अधिकार होता हैं। जमानतीय अपराधों में न्यायालय अथवा पुलिस अधिकारी को केवल यह विवेकाधिकार होता है कि वह अभियुक्त को स्वयं के बन्धपत्र पर छोड सकता है या प्रतिभुओं सहित बन्धपत्र पर छोड सकता है। इस धारा के अधीन जमानत पर छोड़े जाने वाले व्यक्तियों पर उनकी उपस्थिति के लिए शर्त से भिन्न कोई शर्त नहीं लगाई जा सकती है। एक बार जमानत प्रदान करने के पश्चात पुलिस द्वारा जमानत निरस्त करने का अधिकार नहीं है। जमानत इसी आधार पर निरस्त नहीं की जा सकती कि अजमानतीय अपराध जोड दिया गया है।

iv. **अजमानतीय अपराधों में जमानत**:- जब कोई व्यक्ति अजमानतीय अपराध में गिरफ्तार किया जाता है तो पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी उसे जमानत पर स्वतंत्र कर सकता है, यदि वह अपराध आजीवन कारावास अथवा मृत्युदण्ड से दण्डनीय नहीं हैं। आजीवन कारावास अथवा मृत्युदण्ड से दण्डनीय अपराधों से भिन्न अपराधों में पुलिस अधिकारी को विवेकाधिकार दिया गया है लेकिन वह यह विवेकाधिकार न्यायिक होना चाहिए। इस विवेकाधिकार के प्रयोग में सामान्यतया निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

(क) अपराध की प्रकृति और गंभीरता

(ख) दोषसिद्धि पर दण्ड की मात्रा

(ग) अभियुक्त के विरूद्ध साक्ष्य की प्रकृति

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा अलीयार बनाम राज्य के मामले में जमानत के लिए विचारणीय बिन्दुओं को वर्णित किया गया है। इसके अनुसार अपराध कि प्रकृति और गंभीरता, दण्ड की मात्रा, चरित्र, व्यवहार, अभियुक्त का स्वास्थ्य, लिंग, परिवार में स्थिति, पुन: अपराध करने की प्रवृति आदि महत्वपूर्ण है। इस तथ्य को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अभियुक्त विचारण में उपस्थित रहेगा या फरार हो जावेगा। यदि आभियुक्त द्वारा साक्षियों को बिगाड़ने की संभावना हो तब भी उसे जमानत पर स्वतंत्र नहीं किया जाना चाहिए।

अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किये गये व्यक्ति के मामले में यदि अन्वेषण से ज्ञात हो कि वह केवल जमानतीय अपराध से संबंध है तो उसे स्वतंत्र कर दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार अन्वेषण की समाप्ति पर यह पाया जावे कि अभियुक्त को विचारण के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष भेजे जाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं है तब भी अभियुक्त को जमानत पर स्वतंत्र कर दिया जाना चाहिए।

आजीवन कारावास या मृत्युदण्ड से दण्डनीय अपराधों में अभियुक्त को जमानत पर स्वतंत्र करने की पुलिस अधिकारी को कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। ऐसे अपराधों में सोलह वर्ष से कम आयु के व्यक्ति, रोगी या दुर्बल व्यक्ति अथवा किसी स्त्री को जमानत पर स्वतंत्र करने की शक्ति केवल न्यायालय को है, पुलिस अधिकारी को नहीं। धारा 306 की उपधारा 4 (ब) के अनुसार इकबाली साक्षी यदि पहले से जमानत पर स्वतंत्र नहीं है तो उसे जमानत पर स्वतंत्र नहीं किया जाना चाहिए। इकबाली साक्षी के संबंध में धारा 437 अथवा 439 लागू नहीं होती है।

8.4.4.2 जमानत, बन्धपत्र का प्रारूप

जमानत, बन्धपत्र का प्रारूप दण्ड संहिता 1973 को अनुसूची 2 के प्रारूप नम्बर 45 में दिया गया है। वैध जमानत एवं बन्धपत्र के लिए यह आवश्यक है कि वह पूर्णरूपेण प्रारूप के अनुरूप हो।

जमानत की शर्तें :- जमानतीय अपराधों में दिये जाने वाले जमानत के आदेश में अभियुक्त की उपस्थिति की शर्त से भिन्न कोई शर्त नहीं लगाई जा सकती है। अजमानतीय अपराधों में न्यायालय द्वारा अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने का आदेश सशर्त दिया जा सकता है। न्यायालय द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(3) के अनुसार शर्त लगाई जा सकती है। लेकिन शर्त अधिरोपित करने का अधिकार केवल न्यायालय को दिया गया है। इसलिए पुलिस द्वारा अभियुक्त की न्यायालय में उपस्थिति से भिन्न कोई शर्त अधिरोपित नहीं की जा सकती है।

जमानत एवं बंधपत्र की शर्तें अनुसूची 11 के प्रारूप नं. 45 में दी गई शर्तो के अनुरूप ही होनी चाहिए।

8.4.4.3 बन्धपत्र की राशि :-बन्धपत्र की राशि का निर्धारण मामले की परिस्थितियों के अनुसार किया जाना चाहिए। यह राशि बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए। अभियुक्त से बन्धपत्र एक या अधिक प्रतिभुओं सहित लिया जा सकता है। सभी प्रतिभुओं की राशि का योग अभियुक्त के स्वयं के बन्धपत्र की राशि से अधिक नहीं होना चाहिए। बन्धपत्र बिना प्रतिभुओं के भी लिया जा सकता हैं। लेकिन बिना बन्धपत्र के किसी भी प्रति-भू से जमानत नहीं ली जा सकती है। केवल अवयस्क के मामले में बिना बन्धपत्र के प्रति-भूसे जमानत ली जाती है। धारा 445 के अनुसार न्यायालय या पदाधिकारी बन्धपत्र के निष्पादन के बजाय धन की ऐसी राशि या इतनी रकम के सरकारी वचनपत्रों के निक्षेप की अनुज्ञा दे सकता हैं इस धारा के उपबंध मजिस्ट्रेट या पूलिस अधिकारी द्वारा ऐसी धनराशि की माँग के लिए प्राधिकृत नही करते है।

8.4.4.4 सत्यापन :- पुलिस अधिकारी द्वारा यह सत्यापित किया जाता है कि प्रतिभू जमानतनामे की राशि की सीमा तक शोधक्षम (solvent) है। शोधक्षमता साबित करने के लिए पुलिस प्रतिभुओं से दस्तावेज अथवा शपथपत्र माँग सकती है। प्रतिभुओं के निवास के आस-पास रहने वाले व्यक्तियों की शोधक्षमता की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सत्यापन केवल प्रतिभू की शोधक्षमता का सत्यापन किये जाने की आवश्यकता नहीं होती है।

8.4.4.5 जमानत निरस्त करना

दण्ड प्रक्रिया संहिता पुलिस अधिकारी को जमानत निरस्त करने का अधिकार प्रदान नहीं करती है। जमानत निरस्त करने का आदेश उच्च न्यायालय, सैशन्स न्यायालय अथवा उस न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है, जिसने अभियुक्त को जमानत प्रदान की है। न्यायालय द्वारा अभियुक्त की जमानत निरस्त करके उसे पुन: गिरफ्तार करने का आदेश दिया जा सकता है। लेकिन पुलिस अधिकारी द्वारा एक बार जमानत प्रदान कर दिये जाने के पश्चात वह अभियुक्त को पुन: गिरफ्तार नहीं कर सकता। यदि पुलिस किसी व्यक्ति को जिसे एक बार जमानत पर छोड दिया गया है, पुन: गिरफ्तार करना चाहती है तो जमानत निरस्त करने और वारंट गिरफ्तारी जारी करने के लिए सक्षम न्यायालय में आवेदन किया जाना चाहिए। जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में वर्णित अभिकथनों में कोई नई धारा जोड़ दी गई हो और व्यक्तियों को पहले ही जमानत पर छोड दिया गया हो तथा वे अभिकथन भी गैर जमानती अपराध के हो तो ऐसी स्थिति में उन्हें गैर जमानती अपराध की नई धारा जोडकर पुन: गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि अभियुक्त को एक बार जमानतीय अपराध में जमानत पर छोड दिया गया हो फिर उसमें अजमानतीय अपराध की नई धारा जोड़ दी गई हो तब भी पुलिस द्वारा इस आधार पर जमानत निरस्त नहीं की जा सकती है।

8.5 सारांश

अपराध एवं अपराधिकता को एक सामाजिक एवं सामूहिक जीवन के अभिन्न यथार्थ के रूप में स्वीकार किया जाता है, यद्यपि कोई पूर्णतया अपराध मुक्त समाज की कल्पना सार्थक नहीं है परन्तु अपराधों को कम जरूर किया जा सकता है।

इस इकाई में अपराध के क्रम में गिरफ्तार, रिमांड, तलाशी व जमानत के सम्बन्ध में प्रमुख पहलुओं को विभिन्न धाराओं के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है।

धारा 47, 48, 52 व 60 में उल्लेखित गिरफ्तार करने वाले पुलिस पदाधिकारी के अधिकारों व गिरफ्तारी के बाद की प्रक्रिया व गिरफ्तार व्यक्ति के प्रतिप्रेषण के सम्बन्ध में विभिन्न धाराओं का वर्णन करते हुए तलाशीयों के स्वरूप व प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई में अन्तिम खण्ड में दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की विभिन्न धाराओं के तहत जमानतीय एवं अजमानतीय अपराधों के विभिन्न प्रावधानों के बारे में समीक्षा की गई है।

8.6 अभ्यास प्रश्न

1. पुलिस द्वारा गिरफ्तार करने की शक्तियों का वर्णन कीजिए।
2. मजिस्ट्रेट व आम नागरिक किसी को कब गिरफ्तार कर सकते है?
3. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के अधिकारों का वर्णन कीजिए।
4. तलाशी के अर्थ व प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
5. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने के प्रावधानों की समीक्षा कीजिए।
6. गिरफ्तार व्यक्ति को रिमाण्ड पर देने के क्या-क्या प्रावधान है?

इकाई - 9

जब्ती व सम्पत्तियों के निपटान सम्बन्धित प्रावधान

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 राज्य में शांति और न्याय व्यवस्था बनाए रखने संबंधी कानून

9.3 शांति और सद्भावना पूर्ण माहौल बनाने के लिए सुरक्षा

9.4 न्याय व्यवस्था बनाए रखना

9.5 सारांश

9.6 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- पुलिस अधिकारियों के लिए व्यक्ति की गिरफ्तारी करने व हिरासत में रखने सम्बन्धित मानकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- राज्य शांति व न्याय व्यवस्था बनाए रखने सम्बन्धी कानून की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- न्याय व्यवस्था बनाए रखना तथा शांति और सद्भावना पूर्ण माहौल बनाने के लिए सुरक्षा आदि विषयों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- पुलिस के प्रमुख कार्यो से अवगत हो सकेंगे।
- सी.आर.वी.सी की धारा 110 के तहत पुलिस प्रक्रिया पर प्रकाश डाल सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

अपराधी दण्ड संहिता, 1973 देश में समस्त आपराधिक गतिविधियों पर लागू है (जम्मु और कश्मीर, नागालैण्ड और असम के जनजातीय इलाकों को छोड़कर) केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा इस कानून में समय-समय पर बदलाव होते रहे हैं; इन संशोधनों के अलावा 1898 के कानून में कोई बदलाव नहीं हुआ और 1955 में सेंट्रल ली कमीशन की स्थापना से पहले तक ना ही कभी इसमें संशोधन की कोई कोशिश की गई।

इस कानून में संशोधन के लिए 1969 में लॉ कमीशन ने फोर्टी फर्स्ट नाम से एक रिपोर्ट पेश की थी(इस रिपोर्ट में ली कमीशन की ओर से कई सुझाव दिए गए) उनमें से एक मुख्य सुझाव यह था कि देश में पृथक न्याय तंत्र की स्थापना की जाए; लॉ कमीशन की सिफारिशों के आधार पर अपराधी दण्ड संहिता, 1973 देश में लागू हुई (जम्मु और कश्मीर छोडकर); यह व्यवस्था देश में 1 अप्रेल, 1974 से प्रभावी हुई।

वर्तमान व्यवस्था के तहत दण्डाधिकारीय अधिकारों को दण्डाधिकारियो (मजिस्ट्रेट) की दो श्रेणियों में बांटा गया है- हाई कोर्ट के नियंत्रण में ज्यूडिशियल और राज्य सरकार के नियंत्रण में एग्जीक्यूटिव।

9.2 राज्य में शांति और न्याय व्यवस्था बनाए रखने संबंधी कानून

भारत जैसे विभिन्न संप्रदायों और धर्मो को मानने वाले, अलग-अलग भाषाएं बोलने वाले देश में सभी लोग शांति और सौहार्द की भावना के साथ रह सके, इसके लिए शांति और कानून व्यवस्था का बना रहना बहुत जरूरी है। विविधता में एकता की विशेषता वाले हमारे देश में लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली का गठन किया गया है; इसमें पुलिस की एक अहम भूमिका है;

9.2.1 पुलिस के प्रमुख कार्य

1. अपराध की रोकथाम और अनुसंधान
2. शांति व्यवस्था बनाए रखना
3. अति-महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा
4. अपराधों और सुरक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियां जुटाना
5. यातायात नियंत्रण

उपर्युक्त सूची में पहले क्रमांक में पुलिस का जो कार्य बताया गया है, उसके दो पहलू हैं; एक रोकथाम संबंधी और दूसरा आपराधिक अनुसंधान संबंधित (अपराध दण्ड प्रक्रिया के 20वे अनुच्छेद के अंतर्गत प्रत्येक जिले में सरकार की ओर से एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट की नियुक्ति की जाती है, जबकि सीआरपीसी की धारा 21 के तहत सरकार को अगर उचित लगता है) तो वह स्पेशल एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट की नियुक्ति कर सकती है।

9.2.2 धारा 149 सीआरपीसी. संज्ञेय अपराधों को रोकने में पुलिस की भूमिका

प्रत्येक पुलिस अधिकारी किसी भी संज्ञेय अपराध को रोकने के लिए अपनी पूरी क्षमताओं के साथ काम करेगा।

9.2.3 धारा 150 सीआरपीसी. संज्ञेय अपराधियों से जुड़ी सूचना

किसी भी संज्ञेय अपराध से जुड़ी कोई सूचना किसी पुलिस अधिकारी को मिलती है, तो उसे उस सूचना को अपने उच्च अधिकारी तक या उस पुलिस अधिकारी तक पहुँचाना होगा; जिसकी जिम्मेदारी उस अपराध को रोकने की है।

9.2.4 धारा 151 सीआरपीसी. संज्ञेय अपराधों की रोकथाम के लिए हिरासत में लेना

1. अगर किसी पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति के अपराधी होने या अपराध करने की योजना बनाने का शक हो, और पुलिस अधिकारी को लगता है कि अपराध को रोकने के लिए उस व्यक्ति को हिरासत में लेने के अलावा और कोई चारा नहीं है, तो पुलिस अधिकारी के लिए उसे हिरासत में लेने के लिए मजिस्ट्रेट की अनुमति या वारंट की बाध्यता नहीं है।
2. किसी भी व्यक्ति को 24 घंटे से ज्यादा पुलिस हिरासत में नहीं रखा जा सकता, अगर पूछताछ के लिए पुलिस हिरासत में रखना जरूरी है, तो इसके लिए कानूनी रूप से इजाजत लेनी होगी।

कई बार पुलिस अधिकारी के सामने ऐसी परिस्थितियां आ जाती है कि उसे किसी व्यक्ति को तुरंत हिरासत में लेना पड़ता है और उसके पास मजिस्ट्रेट से वारंट हासिल करने का वक्त नहीं होता है। उदाहरण के लिए, किसी खतरनाक अपराधी की ओर से वारदात को अंजाम देने के बाद उसके फरार होने की आशंका रहती है। ऐसे में उसे तुरंत हिरासत में लेना ही होगा। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट

से वारंट जारी होने तक इंतजार करना समझदारी नहीं होगी; कई बार अपराध रोकने के लिए भी व्यक्ति को हिरासत में लेना जरूरी हो जाता है। ऐसी स्थिति में भी पुलिस अधिकारी को वारंट का इंतजार नहीं करना चाहिए। ऐसी स्थितियों में भारतीय दण्ड प्रक्रिया की धारा 41, 151 में पुलिस को बिना वारंट किसी व्यक्ति को हिरासत में लेने का अधिकार दिया गया है।

जैसा कि किसी भी व्यक्ति को पुलिस हिरासत में रखना उसके संविधान प्रदत्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन है, इसलिए शांति और कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए जहां तक हो सके पुलिस समझाइश, सलाह और चेतावनी का इस्तेमाल करती है (जब बल का इस्तेमाल करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रहे) तभी बलपूर्वक कार्यवाही करने की आवश्यकता है (भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 और दण्ड संहिता की धारा 49) अपराध मुक्त वातावरण बनाना और कानून व्यवस्था बनाए रखना पुलिस का प्रमुख दायित्व है। आमजन में विश्वास और अपराधियों में भय बनाकर रखने में ही पुलिस की सार्थकता है और यही इसका ध्येय है।

9.3 शान्ति और सद्भावनापूर्ण माहौल बनाने के लिए सुरक्षा

इस अध्याय में शांति व्यवस्था के लिए खतरा बनने वाले अवयवों की रोकथाम और अपराधों को शामिल किया गया है।

9.3.1 मुख्य बिन्दु

(i) इस अध्याय में बताई गई कार्यवाही एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट करता है। पुलिस के साथ एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट भी शांति, कानून व्यवस्था और सामाजिक सुरक्षा का माहौल बनाने के लिए जिम्मेदार है। न्यायिक मजिस्ट्रेट को सिर्फ सेक्शन 106 के अन्तर्गत अधिकार मिले हैं।

(ii) इस तरह गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को जमानत नहीं मिल सकती, क्योंकि इन्हें किसी अपराध को अंजाम देने के आरोप में गिरफ्तार नहीं किया गया है। प्रिवेंटिव ऐक्शन हैं, इसलिए इसके तहत हिरासत में लिए गए व्यक्ति ने गिरफ्तार किए जाने तक कोई अपराध नहीं किया है और उस पर कोई आरोप नहीं है।

(iii) अगर पुलिस किसी को शांति भंग करने के आरोप में हिरासत में लेती है, तो इस कार्यवाही में मजिस्ट्रेट कोई दखल नहीं दे सकता।

(iv) यदि किसी व्यक्ति पर कोई दूसरी धाराएँ लगी हैं, तो उसे शांति भंग करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है। इस कार्यवाही को संविधान के अनुच्छेद 20(2) का अतिक्रमण नहीं माना जाएगा, क्योंकि उसकी गिरफ्तारी सजा के रूप में नहीं, बल्कि शांति व्यवस्था बनाए रखने के मकसद से की गई है।

(v) इस अध्याय में दो तरह के बाण्ड्स शामिल है-

1. शांति बनाए रखने के लिए (सेव्यान 106 और 107) और
2. सही व्यवहार करने के लिए (सेक्शन 108, 109 और 110)

(vi) यदि सुनवाई के समय अपराधी कोर्ट में उपस्थित नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट को उसके नाम सम्मन जारी कर अदालत के सामने पेश होने का निर्देश देने का अधिकार है और यदि अपराधी पुलिस हिरासत में है, तो उसे अदालत के सामने पेश किया जाना चाहिए (सेक्शन 113)

(vii) सेक्शन 106 से 110 के तहत की जाने वाली कार्यवाहियाँ एक अनुसंधान है, न कि मुकदमा सीआरपीसी के सेक्शन 116(2) के अनुसार मजिस्ट्रेट द्वारा अपराधी के खिलाफ सम्मन जारी करना भी अनुसंधान प्रक्रिया का हिस्सा है।

9.3.2 धारा 106 सीआरपीसी. आरोप साबित होने पर शांति व्यवस्था बनाए रखना

(i) इस अधिकार सेशन जज और ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट (प्रथम श्रेणी) को प्राप्त है, लेकिन ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट(द्वितीय श्रेणी) को नहीं (हालांकि ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट द्वितीय श्रेणी) सीआरपीसी के अनुच्छेद 325 में दी गई कार्यवाही कर सकता। जब मजिस्ट्रेट फैसला सुनाने की स्थिति में नहीं हो, तो वह इसे सीजेएम को हस्तांतरित कर सकता है या मामले पर अपनी टिप्पणी कर उसे ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के पास सुनवाई के लिए भेज सकता है।

(ii) उच्च अदालतों के द्वारा इस अधिकार का इस्तेमाल किसी अपील पर सुनवाई करते समय या पुनरर्क्षिण याचिका पर सुनवाई के दौरान भी किया जाता है। भले ही इस मामले में ज्ग्रडइशियल मजिस्ट्रेट (द्वितीय श्रेणी) अपना फैसला सुना चुका हो. (सेक्शन 106(4)।

(iii) इस अधिकार का इस्तेमाल तभी किया जाता है, जब किसी अपराधी को सजा सुनाई जा चुकी हो। सजा से तात्पर्य आर्थिक जुर्माना या कैद या दोनों से है। सजा में मुचलके पर रिहा होना शामिल नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि किसी अपराधी के दोषी सिद्ध होने के बाद भी उसके अच्छे बर्ताव को देखते हुए उसकी सजा कम कर दी जाए या उसे रिहा कर दिया जाए। हालांकि दोनों ही स्थितियों में अपेक्षा की जाती है कि आरोप सिद्ध होने के बाद सजा पाने का आदेश सेक्शन 106 के अन्तर्गत जारी किया जा सकता है।

(iv) निम्नलिखित कृत्यों के लिए सजा होनी चाहिए.

(अ) शांति भंग करना (आईपीसी के आठवें अध्याय की धारा 141 से 160, धारा 153ए, 153बी और 154 इसमें शामिल नहीं हैं)

(ब) हमला, आपराधिक गतिविधियां, दंगा, जान से मारने की धमकी देना, बदमाशी, गैर-कानूनी रूप से एकत्रित होना आदि

(v) इस अधिकार का इस्तेमाल सजा सुनाते समय ही किया जा सकता है या यूं कहें कि सेक्शन 106 अपने आप में ही फैसले का हिस्सा होना चाहिए और यह गवाहों और सबूतों पर आधारित होना चाहिए। इस तरह एक बार फैसला सुनाए जाने के बाद सेक्शन 106 के अन्तर्गत कोई आदेश जारी नहीं किया जा सकता है। आम तौर पर उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय को सीआरपीसी के सेक्शन 106 के तहत कोई अधिकार नहीं प्राप्त हैं, क्योंकि इनमें इन मामलों की सुनवाई नहीं होती है।

(vi) मुचलके की समयावधि तीन साल तक बढाई जा सकती है

9.3.3 धारा 107 सीआरपीसी. अन्य मामलों में शांति व्यवस्था बनाए रखना

(i) इस अधिकार का इस्तेमाल सिर्फ एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट कर सकता है

(ii) एक मजिस्ट्रेट संज्ञान ले सकता है, जब (1) उसे लगे कि कोई व्यक्ति उसके न्यायिक क्षेत्र में शाति भंग कर सकता है (2) जिस क्षेत्र में शांति भंग हुई है, वो उसके न्यायिक क्षेत्र के अन्तर्गत आता हो;

(iii) जिन दो महत्वपूर्ण परिस्थितियों में धारा 107 के तहत कार्यवाही की जा सकती हैं, वे हैं- कार्यवाही के लिए मजबूत आधार और पुख्ता सबूत होना, सिर्फ पुलिस रिपोर्ट के आधार पर कार्यवाही करना उचित नहीं होगा

(iv) (अ) जॉच की प्रक्रिया तब शुरू होती है, जब मजिस्ट्रेट कानूनी रूप से किसी व्यक्ति पर लगाए गए आरोपों को तथ्यों और सबूतों की कसौटी पर परखकर इस नतीजे पर पहुंचने की कोशिश

करता है कि लगाए गए आरोप सही हैं या नहीं। (सोना खान बनाम उडीसा सरकार- 198 व सी.आर.एल.जे 39 (एफबी) (ब) जिस व्यक्ति पर आरोप लगाया गया है, उसके उन आरोपों को अस्वीकार करने या बदले में मुकदमा दर्ज करवाने के साथ ही मुकदमे की सुनवाई की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। या मजिस्ट्रेट की नजरों में मुकदमे को आगे बढाने की कोई खास वजह हो (परेश बनाम अहितोश- 1978 सीआर एल. जे 1171 (सीएएल)

(v) धारा 107 मजिस्ट्रेट को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह आरोपी व्यक्ति को पाबंद करे कि वह कम से कम एक साल तक किसी असामाजिक गतिविधि या शांति भंग करने की कोशिश नहीं करेगा; इस एक साल की अवधि की गणना उस तारीख से की जाएगी, जिस तारीख को मजिस्ट्रेट संज्ञान लेता है औ सीआरपीसी की धारा 107 के तहत कार्यवाही शुरू करता है; इस एक साल की गणना वारंट या नोटिस जारी करने की तारीख से नहीं की जा सकती है और ना ही इसकी गणना आरोपी के पहली बार मजिस्ट्रेट के समक्ष होने की दिनांक से होना चाहिए, मिट्ठा बनाम राजस्थान सरकार- 1987 सीआरएल.जे 1042,

9.3.4 धारा 108 सीआरपीसी, शांति बनाए रखने के लिए राजद्रोह से संबंधित मामलों की रोकथाम

(i) इस अधिकार का इस्तेमाल सिर्फ एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट कर सकता है।

(ii) अच्छे बर्ताव से यहां तात्पर्य है कि व्यक्ति न तो कोई गैर-कानूनी काम करे और ना ही किसी राष्ट्र विरोधी गतिविधि में शामिल हो।

(iii) अधिकतम एक साल के लिए पाबंद किया जा सकता है।

(iv) यदि प्रेस कानून और पुस्तक पंजीकरण एक्ट, 1867 के तहत प्रकाशित समाचार पत्रों और पुस्तकों के संपादकों, मालिकों और प्रकाशकों के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं कर सकते, जब तक कि राज्य सरकार ऐसा करने के लिए नहीं कहे।

9.3.5 धारा 109 सीआरपीसी, संदिग्ध व्यक्तियों पर नजर रखना

(i) अगर आरोपी व्यक्ति एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट के न्यायिक क्षेत्र में आता है, तो वह इस अधिकार का इस्तेमाल कर सकता है

(ii) यदि कोई व्यक्ति निम्नलिखित गतिविधियों में लिप्त पाया जाता है, तो इस धारा के अन्तर्गत उसके खिलाफ कार्यवाही की जा सकती है-

(अ) अपनी पहचान छुपाने की कोशिश कर रहा हो और

(ब) इस बात का पुख्ता आधार और विश्वास करने लायक वजह हो कि वह ऐसा संज्ञेय अपराध करने के लिए कर रहा है

(iii) जमानत और जमानत के बिना अधिकतम एक साल के लिए बॉन्ड भरवाया जा सकता है; अगर बॉन्ड तोडा जाता है, तो एक साल तक साधारण कैद या सश्रम कारावास की सजा सुनाई जा सकती है (सेक्शन 122(8)

(iv) मजिस्ट्रेट उसी स्थिति में कार्यवाही कर सकता है, जब वह व्यक्ति उसके न्यायिक क्षेत्र में रहता हो, अन्यथा नहीं;

(v) इस धारा के तहत उसी व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही की जा सकती है, जो गलत नाम से रह रहा हो या अपनी पहचान छुपाने की कोशिश कर रहा हो

(vi) पहचान छुपाने की कोशिश सफल भी हो सकती है और नहीं भी

9.3.6 धारा 110 सीआरपीसी, आदतन अपराधियों पर अंकुश

(i) इस अधिकार का इस्तेमाल एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट कर सकता है

(ii) इस धारा का मकसद समाज की आपराधिक और असामाजिक तत्वों से सुरक्षा करना है

(iii) ऐसे व्यक्ति को आदतन अपराधी घोषित किया जाता है, जो आदतन लूट, सेंधमारी, चोरी, जालसाजी, चोरी का माल खरीदने, चोरी का माल बेचने, अपहरण, नकबजनी, धोखाधडी और शांति भंग के अलावा आईपीसीस के अनुच्छेद 12 में उल्लेखित दण्डनीय अपराधों और इस अनुच्छेद में उल्लेखित दूसरी धाराओं का उल्लंघन करता है

(iv) जमानत के साथ बॉन्ड पर छोडने की अधिकतम अवधि तीन साल हो सकती है; मजिस्ट्रेट को जमानत के मामले में कोई विकल्प प्राप्त नहीं है; बॉन्ड का उल्लंघन करने पर तीन साल या बॉन्ड की अवधि पूरी होने (दोनों में से जो भी पहले समाप्त हो) की जेल हो सकती है (सेक्शन 122(8) द.स.प.)

(v) किसी अपराधी को आदतन अपराधी घोषित करने के लिए उसकी पूर्व की आपराधिक गतिविधियों को साबित करना जरूरी नहीं है; इलाके में उसकी आपराधिक छवि ही उसे आदतन अपराधी घोषित करने की पर्याप्त वजह बन सकती है, लेकिन इसमें कोई शक नहीं होना चाहिए कि वह व्यक्ति आपराधिक प्रवृति का है और अपराध करना उसकी आदत बन चुकी है(सीआरपीसी की धारा 110 लगाने के लिए उस व्यक्ति के खिलाफ पर्याप्त मुकदमे दर्ज होने चाहिए या उसके आपराधिक आचरण को साबित करने के लिए जरूरी गवाह और सुबूत उपलब्ध होने चाहिए; (सुबायन बनाम केरल सरकार- 1981 सीआर एल. जे 1359)

(vi) उसके आपराधिक चरित्र को उसकी इलाके में बुरी छवि के आधार पर भी साबित किया जा सकता है; कोर्ट समाज में उस व्यक्ति के आचरण को मद्देनजर रखेगा; (जयसिंह बनाम सम्राट - 1930 ए.आई.आर 357)

(vii) हालांकि मजिस्ट्रेट तीन साल के लिए बीम्स की डिमांड कर सकता है, लेकिन एक साल से ज्यादा के लिए न्यायिक अभिरक्षा में रखने के लिए सेशन जज की अनुमति लेना आवश्यक है; (सेक्शन 122(2) और(3)

9.3.7 धारा 111-124 सीआरपीसी

(i) सीआरपीसी की धारा 111 से 124, 107 रो 110 में उल्लेखित परिस्थितियों शांति बनाए रखने या अच्छे व्यवहार के लिए आवश्यक कार्यवाही की प्रकिया प्रदान करती हैं;

(ii) यदि मजिस्ट्रेट धारा 116 के तहत जाँच करता है और आरोपी दोषी पाया जाता है, तो वह धारा 117 के तहत दण्ड का पात्र होगा और यदि आरोपी जाँच में निर्दोष साबित होता है, तो उसे अनुच्छेद 118 के तहत रिहा किया जा सकता है

(iii) जैसे ही सम्मन की कार्यवाही आगे बढती है जाँच में गवाहों के बयान दर्ज होने चाहिए (धारा 122(2)

(iv) मधु लिमये के केस में मधु लिमये को शांति भंग करने के आरोप में बिना वारंट जारी किए धारा 51 के तहत वाराणसी एयरपोर्ट से हिरासत में ले लिया गया था; धारा 107 के तहत उसे तुरंत मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया; मजिस्ट्रेट ने जाँच शुरू करने से पहले उसे एक अंतरिम बाण्ड भरने का आदेश दिया, जो वह नहीं कर सका; मजिस्ट्रेट ने उसे न्यायिक हिरासत में रखा और सुनवाई को स्थगित रखा; इस पर सुप्रीम कोर्ट ने मधु लिमये की न्यायिक अभिरक्षा

पर सवाल उठाते हुए मजिस्ट्रेट से जाँच शुरू किए बिना धारा 116 के तहत आरोपी से अंतरिम बाण्ड भरवाने के आदेश को गैर-कानूनी करार दिया; कोर्ट ने इस मामलें में अपना पक्ष रखते हुए कहा कि धारा 107 के तहत आरोपी से अंतरिम बाण्ड भरवाने से पहले मजिस्ट्रेट को न सिर्फ जाँच शुरू करनी चाहिए, बल्कि मजिस्ट्रेट को आरोपों की सत्यता की जाँच करनी चाहिए थी और उन्हें अपने विवेक का इस्तेमाल करते हुए यह फैसला करना चाहिए था कि उक्त कार्यवाही के लिए आवश्यक प्रथम दृष्टया साक्ष्य पर्याप्त हैं या नहीं; (मधु लिमये बनाम वेद मूर्ति-ए.आई.आर 1971 एस.सी.2481)

(v) छह महीने पूरे होने के बाद स्वत: ही कार्यवाही खत्म हो जाती है और इस स्थिति में मजिस्ट्रेट को इसे दोबारा शुरू करने का अधिकार नहीं है; हालांकि वह जाँच की अवधि समाप्त होने से पहले विशेष कारणों के आधार पर लिखित में बयान दर्ज कर सकता है; (नासिरा बनाम हरियाणा सरकार - 1978 सीआर एलजे603)

जांच की अवधि को एक बार में छह महीने से ज्यादा के लिए नहीं बढाया जा सकता है; नए सिरे से जाँच के आदेश जारी किए बिना छह महीने से ज्यादा समय के लिए जाँच की कार्यवाही जारी रखना गैरकानूनी है। (रामदेव यादव बनाम बिहार सरकार - 1985 सीआर एलजे436)

(vi) अगर कोई आरोपी बाण्ड का उल्लंघन करता है, तो इस स्थिति में मजिस्ट्रेट धारा 122 सीआरपीसी की धारा के अन्तर्गत उसे बाण्ड की अवधि समाप्त होने तक हिरासत में रखने का आदेश दे सकता है;

(vii) सीआरपीसी की धारा 123 में उच्च न्यायालय, सत्र न्यायालय, जिला मजिस्ट्रेट और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को ऐसे हिरासत में रखे गए व्यक्तियों को रिहा करने या उनकी सिक्योरिटी कम करने के विशेष अधिकार मिले है; इस रिहाई में शर्त भी रखी जा सकती है और यदि उस शर्त का उल्लंघन किया जाता है, तो उस व्यक्ति को पुलिस बिना वारंट के उसकी कैद की बाकी अवधि के लिए हिरासत में ले सकती है।

(viii) मजिस्ट्रेट को बाण्ड निरस्त करने के लिए प्रार्थना पत्र भी पेश किया जा सकता है; इस प्रार्थना पत्र पर मजिस्ट्रेट अपराधी का गिरफ्तार करने का आदेश दे सकता है और उसे नए सिरे से जमानत देने का आदेश दे सकता है और तब तक वह व्यक्ति हिरासत में रहेगा; (धारा 123(10) सीआरपीसी)

(ix) सीआरपीसी की धारा 117 के तहत हिरासत में लिए गए व्यक्तियों के मामलों की समीक्षा करने का अधिकार उच्च न्यायालय को प्राप्त है (देखें अनु. 123) न्यायिक मजिस्ट्रेट के द्वारा आदेश देने की स्थिति में जिला मजिस्ट्रेट, एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेशों को बदल सकता है; यदि उच्च न्यायालय को लगता है कि उस व्यक्ति को रिहा किया जाना चाहिए, तो उसे बिना किसी व्यवधान के रिहा किया जा सकता है (धारा 123(1)

(x) चाहे आदेश जारी किया गया है या नहीं उच्च न्यायालय, सत्र न्यायालयों और जिला मजिरट्रेट, एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के द्वारा आदेश जारी करने की स्थिति में निचली अदालतों द्वारा सुनाई गई सजा को कम कर सकता है; वे कैद या जमानत की राशि को घटा सकते हैं; (सीआरपीसी धारा 123(2)

(xi) सीआरपीसी की धारा 117 के तहत जारी किए गए मजिस्ट्रेट के आदेश या धारा 121 (अनुच्छेद 373) के तहत जमानत रद्द करने या नामंजूर करने के खिलाफ सत्र न्यायालय में अपील करने का अधिकार है

(xii) कैद में भी अपराधी को सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान है; (सीआरपीसी धारा 122(6) न्याय व्यवस्था बनाए रखना 129 सीआरपीसी गैर-कानूनी रूप से लोगों का जमा होना: सिविल फोर्स का इस्तेमाल

9.4 न्याया व्यवस्था बनाए रखना

9.4.1 धारा 129 सी. आर. पी. सी. गैर कानूनी रूप से लोगों का जमा होना सिविल फोर्स का इस्तेमाल करते हुए भीड़ को नियंत्रित करना या हटाना

1. एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट या किसी भी पुलिस थाना का प्रभारी या उसकी अनुपस्थिति में प्रभारी अधिकारी, कोई पुलिस अधिकारी (सब-इंस्पेक्टर से नीचे की रेक का नहीं होना चाहिए) गैरकानूनी रूप से जमा भीड़ या पांच से ज्यादा लोगों के एक जगह पर जमा होने से शांति भंग होने की आशंका को देखते हुए उनको हटाने का आदेश दे सकता है और यह जमा लोगों की जिम्मेदारी होगी कि वे शांति व्यवस्था बनाए रखने में पुलिस की मदद करें और जितना जल्दी हो सके उस स्थान से हट जाएं;
2. अगर आदेश देने के बाद भी भीड़ उस स्थान से नहीं हटती है या आदेश नहीं देने की स्थिति में भी वहाँ जमा हुए लोग उस स्थान से नहीं हटने के लिए दृढता का प्रदर्शन करते हैं, तो कोई भी एग्जीक्यूटिव या पुलिस इंस्पेक्टर (सेक्शन 1 में उल्लेखित) बल प्रयोग द्वारा उस भीड़ को हटाने का आदेश दे सकता है और जरूरत पडने पर भीड़ का हिस्सा बने व्यक्तियों को गिरफ्तार भी कर सकता है और उन्हें कानून तोड़ने के जुर्म में कानूनी रूप से दण्डित भी किया जा सकता है;

9.4.2 धारा 129 सीआरपीसी के अंतर्गत कार्यवाही

धारा 129 के अन्तर्गत कार्यवाही करते वक्त निम्नलिखित बिंदुओं को भी ध्यान में रखना चाहिए

1. एकत्रित हुए लोगों का बर्ताव और उनके वहाँ से नहीं हटने के प्रति दृढ़ता।
2. सिर्फ व्यक्तियों के किसी जगह पर इकट्ठा होना गैरकानूनी नहीं ठहराया जा सकता है।
3. गैरकानूनी रूप से जमा लोगों के हटने से इनकार करने पर बल प्रयोग द्वारा उन्हें हटाया जा सकता है।
4. किसी भी भीड़ को हटाने का आदेश उस स्थिति में भी दिया जा सकता है, जब भीड़ भले ही गैरकानूनी रूप से जमा न हुई हो, लेकिन उनकी मौजूदगी से माहौल बिगडने की आशंका हों।

9.4.3 धारा 133 सीआरपीसी, जन उपद्रव

सीआरपीसी की धारा 133 जिला मजिस्ट्रेट सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट या अन्य किसी एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट खास तौर से राज्य सरकार की ओर से नियुक्त मजिस्ट्रेट को जन उपद्रव से निपटने के लिए अधिकार प्रदान करती है। इस अधिकार का इस्तेमाल पुलिस रिपोर्ट प्राप्ति पर या दूसरी जानकारी के आधार पर किया जा सकता है (इस सेयान के अन्तर्गत जन उपद्रव की जिन छह गतिविधियों के खिलाफ कार्यवाही की जा सकती है) वे हैं-

9.4.4 उपद्रव की विभिन्न श्रेणियां

1. किसी भी सार्वजनिक स्थल पर उपद्रव।
2. किसी ऐसे व्यवसाय या गतिविधि को अंजाम देना, जिससे जनता के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचता हो।
3. किसी इमारत का निर्माण या किसी इमारत को तुडवाना, जिससे शांति व्यवस्था बिगडने की आशंका हो।
4. कोई बिल्डिंग, टेंट, ढांचा या पेड, जिसके गिरने से जनता को नुकसान पहुंचने की आशंका हो।
5. किसी सार्वजनिक मार्ग या स्थान पर टेंक या कुआं।
6. जानलेवा जानवर, जिसे जनहित में मारना या नियंत्रित करना जरूरी हो।

9.4.5 धारा 143 सीआरपीसी, जन उपद्रव की आशंका या उपद्रव जारी रहने पर मजिस्ट्रेट रोक लगा सकता है

(डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट या सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अन्य कोई एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट किसी भी व्यक्ति को आईपीसी या स्थानीय कानून में उल्लेखित जन उपद्रव की गतिविधियों को तुरंत बंद करने और भविष्य में नहीं दोहराने का आदेश दे सकता है।

9.4.6 धारा 144 सीआरपीसी उपद्रव और अन्य आपातकालीन स्थितियों में अति-आवश्यक होने पर आदेश जारी करने का अधिकार

अव्यवस्था, व्यवधान और तनावपूर्ण परिस्थितियों में नागरिक सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए धारा 144 सीआरपीसी लगाई जाती है। इस धारा के अन्तर्गत आपातकालीन परिस्थितियों में कुछ निश्चित गतिविधियों पर रोक लग जाती है। यदि एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट को पुलिस की ओर से धारा 144 सीआरपीसी लगाने के लिए पर्याप्त आधार होने की रिपोर्ट पेश की जाए, तो मजिस्ट्रेट धारा 144 सीआरपीसी का इस्तेमाल करने का आदेश दे सकता है। साथ ही यदि मजिस्ट्रेट को लगता है कि जन आग़ोश को शांत करने, भीड को हटाने और जन स्वास्थ्य और जन सुरक्षा की खातिर धारा 144 का इस्तेमाल करना अनिवार्य है, तो वह ऐसा कर सकता है।

जन सुरक्षा और शांति व्यवस्था बनाए रखना सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी है और इसके लिए जरूरी अधिकार एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट को प्रदान किए गए हैं, ताकि आपातकालीन परिस्थितियों में मजिस्ट्रेट अपने अधिकारों का प्रयोग कर क्षेत्र में शांति व्यवस्था बनाए रखें;

इस धारा के तहत मजिस्ट्रेट आपातकालीन परिस्थिति में कोई आदेश जारी कर सकता है; जिन लोगों की मौजूदगी से माहौल बिगडने की आशंका हो या जिनकी मौजूदगी से शांति व्यवस्था बनाए रखने में अडचन आ सकती हो, तो मजिस्ट्रेट उनके खिलाफ नोटिस जारी कर सकता है; इस नोटिस को सार्वजनिक स्थानों पर चिपकाया जा सकता है और सार्वजनिक रूप से इसकी घोषणा भी की जा सकती है;

जितने समय के लिए किसी क्षेत्र में धारा 144 सीआरपीसी लगाई जाती है, उतने समय के लिए यह आदेश प्रभावी रहता है; मजिस्ट्रेट अधिकतम दो महीनों के लिए धारा 144 लगा सकता है और यदि सरकार मजिस्ट्रेट के फैसले से संतुष्ट हो, तो सरकार के निर्देश पर मजिस्ट्रेट अधिकतम छह महीनों तक धारा 144 लगा सकता है;

9.4.7 धारा 145 सीआरपीसी, भूमि एवं जल संबंधी विवाद जिनसे शांति व्यवस्था को नुकसान पहुंचने की आशंका हो

जब दो दलों या दो व्यक्तियों के बीच भूमि, जल स्वामित्व या सीमा को लेकर विवाद हो और इस वजह से शांति भंग होने की आशंका हो और पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या दूसरी जानकारी के आधार पर शांति भंग होने की तसदीक होती हो, तो एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट को धारा 145 के तहत कार्यवाही करनी चाहिए; पुलिस रिपोर्ट या प्राप्त जानकारी में विवाद की प्रकृति और शांति भंग होने की वजह स्पष्ट होनी चाहिए(इस रिपोर्ट से संतुष्ट होने के बाद मजिस्ट्रेट धारा 145(1) के तहत लिखित में आदेश जारी कर इस विवाद से संबंधित व्यक्तियों को निश्चित तिथि और समय पर हाजिर होकर विवाद की असल वजह और अपनी दावेदारी साबित करने के लिए कह सकता है। यह आदेश विवाद में शामिल दोनों पक्षों के लिए सम्मन का कार्य करता है धारा 145(3)। संबंधित पक्षों की मौजूदगी और लिखित दस्तावेजों और दूसरे कागजातों को पेश करने पर मजिस्ट्रेट प्रत्येक पक्ष को सुनता है और उनके बयान दर्ज करता है, जिन्हें आगे चलकर सबूत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है; अगर आवश्यकता हुई या वह जरूरी समझता है या वह यह तय करने की स्थिति में हो कि उसके आदेश जारी करने की तारीख पर कोई भी पार्टी उस स्थान का स्वामित्व नहीं रखता है, तो वह ऐसा कर सकता है; (धारा 145(1)

अगर मजिस्ट्रेट यह तय करता है या उसे लगता है कि किसी एक पार्टी का उस स्थान पर स्वामित्व होना चाहिए, तो वह उसके पक्ष में फैसला दे सकता है और यदि उसे लगता है कि उस स्थान पर किसी पार्टी ने अवैध रूप से कब्जा कर रखा है, तो वह बलपूर्वक उस स्थान से कब्जा हटवाने का आदेश दे सकता है; (धारा 145)

जब भी धारा 145(6) के अन्तर्गत किसी पार्टी का किसी भूमि पर स्वामित्व घोषित हो जाता है, तो भविष्य में उस व्यक्ति को उस भूमि का स्वामी माना जाएगा, जब तक कि उसके स्वामित्व को अदालत में कोई दूसरा पक्ष चुनौती न दे; यदि एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट क्राइम विवाद संबंधी किसी मामले में दिए गए फैसले से संतुष्ट न हो, तो वह उस मामले की नियमानुसार अग्रिम सुनवाई के लिए जिला मजिस्ट्रेट के पास भेज सकता है।

यदि किसी भूमि पर खड़ी फसल या अन्य उत्पादन संबंधी विवाद हो, तो ऐसे मामलों में त्वरित सुनवाई होनी चाहिए; ऐसे मामलों में एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट व्यवस्थित जाँच का आदेश दे सकता है और जाँच पूरी होने के बाद यदि उसे उचित लगता है, तो वह उस फसल या अन्य उत्पादों के निस्तारण या बेचान का आदेश दे सकता है; (धारा 145(8)

धारा 145(1) के तहत आदेश जारी करने के बाद किसी भी समय एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट को लगता है कि यह मामला आपातकालीन है या दोनों में से कोई भी पार्टी धारा 145 में उल्लेखित स्वामित्व की शर्तो को पूरा नहीं करती है या वह यह तय कर पाने में खुद को सक्षम नहीं पाता है कि विवाद के समय उस लुमइ पर किसका स्वामित्व था; तो वह धारा 146(1) के अन्तर्गत विवादित भूमि के बेचान पर रोक लगा सकता है। यदि मजिस्ट्रेट को संतुष्टि हो जाती है कि अब उस भूमि को लेकर भविष्य में किसी तरह के विवाद की कोई आशंका नहीं है, तो वह किसी भी समय इस फैसले को बदलने में सक्षम है।

9.4.8 धारा 147 सीआरपीसी

जल और भूमि उपयोग संबंधी विवाद जब भी कोई एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या अन्य किसी सूचना के आधार पर इस बात को लेकर आश्वस्त हो जाता है कि किसी विवाद की वजह से शांति भंग होने की आशंका है, खास तौर से उसके न्यायिक क्षेत्र में भूमि और जल के उपयोग संबंधी विवाद की वजह से, तो वह लिखित में आदेश जारी कर असंतुष्टि की वजह बता सकता है और संबंधित पक्षों को कोर्ट में किसी निश्चित तारीख और समय पर हाजिर होकर अपना-अपना पक्ष रखने का आदेश दे सकता है।

जाँच और लिखित आदेश जारी करने की तारीख पर एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट संबंधित पक्षों को सुनेगा और समस्त सबूतों पर गौर करेगा और गवाहों को सुनेगा और यदि संभव हुआ, तो वह यह तय करेगा कि विचाराधीन मामले में धारा 145 लागू हो सकती है या नहीं धारा 147(3)।

पर्याप्त कारण और उचित आधार होने पर धारा 147 सीआरपीसी के अन्तर्गत शुरू की गई कार्यवाही को धारा 145 में तब्दील किया जा सकता है और यदि कार्यवाही धारा 145 के तहत शुरू हुई हो, तो उसे धारा 147 में बदला जा सकता है।

यदि स्थानीय जाँच में आवश्यकता महसूस होती है, तो धारा 145,146 या 147 के लिए जिला मजिस्ट्रेट या सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट किसी एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट को जाँच सौंप सकता है और उस जाँच रिपोर्ट को एक गवाह के रूप में पढ़ा जा सकता है; (धारा 148)

9.5 सारांश

शांति व्यवस्था भंग होने पर, खास तौर से सांप्रदायिक तनाव की वजह से बड़े पैमाने पर व्यक्तियों और संपत्ति का नुकसान हो सकता है; कानून व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी नागरिक प्रशासन की होती है और पुलिस इस व्यवस्था का अहम हिस्सा है; हालांकि हिंसा की प्रत्येक घटना के बाद प्रशासन का यह कहना होता हे कि उसके पास इस तरह-की घटनाओं को रोकने के लिए अनिवार्य अधिकारों की कमी है और इस तरह वे कानून व्यवस्था बनाए रखने में अपनी नाकामी को छुपाने की कोशिश करते हैं।

पुलिस कानून, नियमों और निर्देशों का सावधानी से अध्ययन करने पर यह खुलासा होता है कि शांति व्यवस्था बनाए रखने और हिंसा रोकने के लिए स्पष्ट निर्देश दिए गए हैं और नागरिक सुरक्षा के लिए पुलिस कानून और नियमों का कतई अभाव नहीं है; पुलिस और जिला प्रशासन के पास बल प्रयोग सहित दण्डात्मक कार्यवाही करने के लिए अधिकारों की कोई कमी नहीं है।

इस अध्याय में प्रशासन में जिम्मेदार अधिकारियों के कर्त्तव्य और अधिकारों के बारे में चर्चा की है, विशेष रूप से शांति और कानून व्यवस्था बनाए रखने में पुलिस की भूमिका। पुलिस हमारे समाज का एक अहम हिस्सा है और इसके काम करने के तरीके से ही जनता में पुलिस की छवि अच्छी बनती है।

9.6 अभ्यास प्रश्न

1. सीआरपीसी के तहत पुलिस को अपराधों की रोकथाम के लिए मिले अधिकारों की चर्चा कीजिए।
2. पुलिस अधिकारियों के लिए व्यक्ति को गिरफ्तार करने और हिरासत में रखने संबंधी मानक क्या हैं? उल्लेख कीजिए।
3. सीआरपीसी की धारा 110 के तहत पुलिस कार्यवाही की प्रक्रिया क्या है? वर्णन कीजिए।
4. सुरक्षा कार्यवाही के लिए न्यूनतम समयावधि की सीमाएं क्या हैं? उल्लेख कीजिए।

5. शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए तथा सद्भाव बनाए रखने के लिए किसी भी व्यक्ति से अंतरिम बाण्ड भरवाने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

9.7 संदर्भ ग्रंथ

1. मिथ्या वर्सेस स्टेट ऑफ राजस्थान- 1987 सीआरएलजे. 1042
2. मधु लिमाय वर्सेस वेद मूर्ति- ए.आई.आर 1971 एस.सी. 2481
3. परेश वर्सेस अहितोश 1978 सीआरएलजे. 1171
4. सुबयन वर्सेस स्टेट ऑफ केरल- 1981 सीआरएलजे. 1359
5. नसीरा वर्सेस स्टेट ऑफ हरियाणा- 1978 सीआरएलजे. 603

इकाई - 10

समन व वारंट : सामान्य प्रावधान

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 समन प्रावधान
10.3 गिरफ्तारी वारंट प्रावधान
10.4 फरार व्यक्तियों के लिए उद्घोषणा
10.5 हाजिर के लिये बन्धपत्र
10.6 चीजे पेश करने हेतु आदेशिकाएं
10.7 चुराई हुई सम्पत्ति कूटरचित दस्तावेज आदि के लिए संदिग्ध स्थान की तलाशी
10.8 प्रकाशनों के समपहत होने पर तलाशी वारण्ट
10.9 संदोष परिरूद्ध व्यक्तियों के लिए तलाशी
10.10 बन्द स्थान की तलाशी
10.11 सम्पत्ति को अभिगहीत करने की पुलिस की शक्तियाँ
10.12 सारांश
10.13 अभ्यास प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :-

- समन व वारण्ट की अवधारणाओं से अवगत हो सकेंगे।
- समन व वारण्ट के प्रारूप व प्रकार का वर्णन कर सकेंगे।
- समन व वारण्ट को तामील करने के तरीकों को समझा सकेंगे।
- समन व वारण्ट से सम्बन्धित पुलिस अधिकारों की विवेचना कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

समन व वारण्ट न्यायिक प्रक्रिया के अग्रिम अंग माने जाते हैं। न्यायालय के समक्ष प्रकरण प्रस्तुत होने पर उनकी अन्वेक्षणा की जाती है। अन्वेक्षण के लिए एकत्र साक्ष्यों की समीक्षा न्यायालय द्वारा की जाती है। साक्ष्य मौखिक एवं परिस्थितिजन्य हो सकते है। साक्ष्य देने वाले व्यक्तियों एवं वस्तुओं का इस कार्य के लिए कोर्ट के समक्ष लाया जाना आवश्यक माना जाता हैं। इनको कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए जिन व्यवस्थाओं को अपनाया जाता है उन्हें समन व वारण्ट के रूप में पहचाना जाता है।

10.2 समन प्रावधान

10.2.1 समन-प्रारूप

न्यायालय द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन जारी किया गया प्रत्येक समन लिखित रूप में, दो पतियों में, न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होगा और उस पर न्यायालय की मुद्रा लगी होगी।

10.2.2 समन की तामील

प्रत्येक समन की तामील पुलिस अधिकारी द्वारा या किसी अधिकारी द्वारा या अन्य लोक सेवक द्वारा की जाएगी। जहाँ तक सम्भव हो समन किये गये व्यक्ति पर समन की तामील समन की दो प्रतियों में से एक का परिदान या निविदान करके वैयक्तिक रूप से की जाएगी। प्रत्येक व्यक्ति, जिस पर समन की तामील की गई है वह व्यक्ति दूसरी प्रति के पृष्ठ भाग पर रसीद हस्ताक्षरित करेगा।

10.2.2.1 निकायों और सोसाइटियों पर तामील

किसी निगम पर समन की तामील निगम के सचिव, स्थानीय प्रबंधक या अन्य प्रधान अधिकारी पर तामील करके की जा सकती है या भारत में निगम के मुख्य अधिकारी के पते पर रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेजे गये पत्र द्वारा की जा सकती है।

10.2.2.2 सम्बन्धित व्यक्ति ना मिले तो तामील

जहाँ समन किया गया व्यक्ति न मिल सके, वहाँ समन की तामील दो प्रतियों में से एक को उसके कुटुंब के साथ रहने वाले किसी वयस्क पुरूष सदस्य के पास उस व्यक्ति के लिए छोडकर की जा सकती है। जिस व्यक्ति के पास समन ऐसे छोड़ा जाता है वह दूसरी प्रति के पृष्ठ भाग पर रसीद हस्ताक्षरित करेगा। सेवक, इस धारा के अर्थ में कुटुम्ब का सदस्य नहीं हैं।

यदि उपबन्धित रूप से तामील सम्यक् तत्परता बरतने पर भी न की जा सके तो तामील करने वाला अधिकारी समन की दो प्रतियों में से एक को उस राह या वासस्थान के, जिसमें समन किया गया व्यक्ति मामूली तौर पर निवास करता है किसी सहज दृश्य भाग में लगाएगा। ऐसी जाँच करने के पश्चात, जैसी वह अधिकारी ठीक समझे, या तो यह घोषित कर सकता है कि समन की सम्यक् तामील हो गई है या वह ऐसी रीति से नई तामील का आदेश प्राप्त कर सकता है।

10.2.2.3 सरकारी सेवक पर तामील

जहाँ समन किया गया व्यक्ति सरकार की सक्रिय सेवा में है वहाँ समन जारी करने वाला न्यायालय ऐसा समन दो प्रतियों में उस कार्यालय के प्रधान को भेजेगा जिसमें वह व्यक्ति सेवक है। सम्बन्धित अधिकारी उपबन्धित प्रकार से समन की तामील करायेगा और अपेक्षित पृष्ठांकन सहित उस पर अपने हस्ताक्षर करके उसे न्यायालय को लौटा देगा।

10.2.2.4 स्थानीय सीमाओं के बाहर समन की तामील

जब न्यायालय यह चाहता कि उसके द्वारा जारी किये गये समन की तामील उसकी स्थानीय अधिकारिता के बाहर किसी स्थान में की जाए तब वह ऐसा समन दो प्रतियों में उस मजिस्ट्रेट को भेजेगा जिसकी स्थानीय अधिकारिता के अन्दर उसकी तामील की जाती है या समन किया गया व्यक्ति निवास करता है।

10.2.2.5 डाक द्वारा समन की तामील

साक्षी के लिए समन जारी करने वाला न्यायालय, यह निर्देश दे सकता है कि उस समन की एक प्रति साक्षी के उस स्थान पर, जहाँ वह निवास करता है या कारोबार करता है, वही रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा की जाए। जब साक्षी द्वारा हस्ताक्षर की गई अभिस्वीकृति या डाक कर्मचारी द्वारा किया गया पृष्ठांकन की साक्षी ने समन लेने से इंकार कर दिया है, प्राप्त हो जाता है तो समन जारी करने वाला न्यायालय यह घोषित कर सकता है कि समन की तामील सम्यक् रूप से कर दी गई है।

10.2.2.6 उपबंधित प्रकार से तामील न की जा सकने की स्थिति में प्रक्रिया

10.2.2.7 तामील करवाने वाले अधिकारी की अनुपस्थिति में तामील का सबूत

जब न्यायालय द्वारा जारी किये गये समन की तामील उसकी स्थानीय अधिकारिता के बाहर की गई है वह अधिकारी जिसने समन की तामील की है, मामले की सुनवाई के समय उपस्थित नहीं है तो मजिस्ट्रेट के समक्ष किया गया यह शपथपत्र कि ऐसे समन की तामील हो गई है और समन की दूसरी प्रति, जिसका उस व्यक्ति द्वारा जिसको समन परिदत्त या निविदत्त किया गया था, पृष्ठांकित है तो यह साक्ष्य में ग्राह्य होगा।

10.3 गिरफ्तारी वारंट प्रावधान

10.3.1 प्रारूप और अवधि

न्यायालय द्वारा इस दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन जारी किया गया गिरफ्तारी का प्रत्येक वारण्ट लिखित रूप में और न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होगा और उस पर न्यायालय की मुद्रा लगी होगी। ऐसा प्रत्येक वारण्ट तब तक प्रवर्तन में रहेगा जब तक वह उसे जारी करने वाले न्यायालय द्वारा रद्द नहीं कर दिया जाता है या जब तक वह निष्पादित नहीं कर दिया जाता है।

10.3.2 प्रतिभूति लिए जाने का निर्देश

(1) किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए वारण्ट जारी करने वाला कोई न्यायालय वारण्ट पर पृष्ठांकन द्वारा स्वविवेकानुसार यह निर्देश दे सकता है कि यदि वह व्यक्ति न्यायालय के समक्ष विनिर्दिष्ट समय पर और तत्पश्चात जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा निर्देश नहीं दिया जाता है तब तक अपनी हाजिरी के लिए पर्याप्त प्रतिभुओं सहित बंधपत्र निष्पादित करता है तो वह अधिकारी जिसे वारण्ट निर्दिष्ट किया गया है, ऐसी प्रतिभूति लेगा और उस व्यक्ति को अभिरक्षा से छोड़ देगा।

(2) पृष्ठांकन में प्रतिभूओं की संख्या वह रकम, जिसके लिए क्रमश: प्रतिभू सम्बन्धित व्यक्ति, आबद्ध किया जाना है तथा वह समय जब न्यायालय के समक्ष उसे हाजिर होना है। जब कभी इस धारा के अधीन प्रतिभूति ली जाती है तब वह अधिकारी जिसे वारण्ट निर्दिष्ट है, बंधपत्र न्यायालय के पास भेज देगा।

10.3.3 वारण्ट किसको निर्दिष्ट होंगे?

गिरफ्तारी का वारण्ट सामान्तया एक या अधिक पुलिस अधिकारियों को निर्दिष्ट होगा। यदि ऐसे वारण्ट का तुरन्त निष्पादन आवश्यक है और पुलिस अधिकारी तुरन्त न मिल सके, तो वारण्ट जारी करने वाला न्यायालय किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को उसे निर्दिष्ट कर सकता है। जब वारण्ट एक से अधिक अधिकारियों या व्यक्तियों को निर्दिष्ट है तब उसका निष्पादन उन सबके द्वारा या उनमें से किसी एक या अधिक के द्वारा किया जा सकता है।

10.3.4 वारण्ट किसी भी व्यक्ति को निर्दिष्ट हो सकेंगे

मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट किसी निकल भागे सिद्धदोष उद्घोषित अपराधी या किसी ऐसे व्यक्ति की जो किसी अजमानतीय अपराध के लिए अभियुक्त है और गिरफ्तारी से बच रहा है, गिरफ्तारी करने के लिए अपनी स्थानीय अधिकारिता के अन्दर के किसी भी व्यक्ति

को निर्दिष्ट कर सकता है। निर्दिष्ट व्यक्ति वारण्ट की प्राप्ति को लिखित रूप में स्वीकार करेगा। यदि वह व्यक्ति जिसकी गिरफ्तारी के लिए वारण्ट जारी किया गया है उसके भारसाधन के अधीन किसी भूमि या अन्य संपति में है या प्रवेश करता है तो वह उस वारण्ट का निष्पादन करेगा। जब वह व्यक्ति, जिसके विरूद्ध ऐसा वारण्ट जारी किया गया है, गिरफ्तार कर लिया जाता है तब वह वारण्ट सहित निकटतम पुलिस अधिकारी के हवाले कर दिया जायेगा। यदि व्यक्ति से प्रतिभूति नहीं ली गई है तो उसे उस मामले में अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष भिजवाएगा। पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो गिरफ्तारी के वारण्ट का निष्पादन कर रहा है, उस व्यक्ति को जिसे गिरफ्तार करना है उसका सार सूचित करेगा और यदि ऐसी अपेक्षा की जाती है तो वारण्ट उस व्यक्ति को दिखा देगा।

(क) गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष अविलम्ब लाना:- पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो गिरफ्तारी के वारण्ट का निष्पादन करता है गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को अनावश्यक विलम्ब के बिना उस न्यायालय के समक्ष लायेगा जिसके समक्ष उस व्यक्ति को पेश करने के लिए विधि द्वारा अपेक्षित है। परन्तु ऐसा विलम्ब किसी भी दशा मे गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोडकर चोबीश घंटे से अधिक नहीं होगा।

(ख) वारण्ट निष्पादित करने का स्थान:- गिरफ्तारी का वारण्ट भारत के किसी भी स्थान से निष्पादित किया जा सकता है।

(ग) अधिकारिता के बाहर वारण्ट निष्पादन:- जब वारण्ट का निष्पादन उसे जारी करने वाले न्यायालय की स्थानीय अधिकारिता के बाहर किया जाना है, तब वह न्यायालय ऐसा वारण्ट अपनी अधिकारिता के अन्दर किसी पुलिस अधिकारी को निर्दिष्ट करने के बजाय उसे डाक द्वारा या अन्यथा किसी ऐसे कार्यपालक मजिस्ट्रेट या जिला पुलिस अधीक्षक या पुलिस आयुक्त को भेज सकता है जिसकी अधिकारिता का स्थानीय सीमाओं के अन्दर उसका निष्पादन किया जाना है, और वह कार्यपालक मजिस्ट्रेट या जिला अधीक्षक या आयुक्त उस पर अपना नाम पृष्ठांकित करेगा और यदि साध्य है तो उसका निष्पादन इसमें इसके पूर्व उपबंधित रीति से कराएगा।

10.3.5 पुलिस अधिकारी को निर्दिष्ट वारण्ट

जब पुलिस अधिकारी को निर्दिष्ट वारण्ट का निष्पादन उसे जारी करने वाले न्यायालय की स्थानीय अधिकारिता के बाहर किया जाना है तब वह पुलिस अधिकारी उसे पृष्ठांकन के लिए ऐसे कार्यपालक मजिस्ट्रेट के पास या पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के पास जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर उस वारण्ट का निष्पादन किया जाना है, ले जाएगा। सम्बन्धित मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी उस पर अपना नाम पृष्ठांकित करेगा। ऐसा पृष्ठांकन उस पुलिस अधिकारी के लिए होगा जिसको वह वारण्ट निर्दिष्ट किया गया है। स्थानीय पुलिस ऐसे अधिकारी की वारण्ट का निष्पादन करने की सहायता करेगी। यदि मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी का जिसका स्थानीय अधिकारिता के अन्दर वारण्ट निष्पादित किया जाना है उसके पृष्ठांकन प्राप्त करने में होने वाले विलम्ब से ऐसा निष्पादन न हो पाएगा, तब वह पुलिस अधिकारी वारण्ट का निष्पादन वांछित पृष्ठांकन के बिना कर सकता है।

10.3.6 गिरफ्तार होने पर प्रक्रिया

जब गिरफ्तारी के वारण्ट का निष्पादन सम्बन्धित जिले से बाहर किया जाता है और वह न्यायालय जिसने वह वारण्ट जारी किया है गिरफ्तारी के स्थान से 30 किलोमीटर से ज्यादा है और कार्यपालक मजिस्ट्रेट या जिला पुलिस अधीक्षक या पुलिस आयुक्त से जिसकी अधिकारिता की स्थानीय

सीमाओं के अन्दर गिरफ्तारी की गई थी अधिक निकट है तो उसे वारण्ट जारी करने वाली अदालत के बजाय नजदीक ऐसे मजिस्ट्रेट या जिला अधीक्षक या आयुक्त के समक्ष ले जाया जाएगा।

10.3.7 मजिस्ट्रेट द्वारा प्रक्रिया

यदि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति वही व्यक्ति है जो न्यायालय द्वारा आशयित है तो कार्यपालक मजिस्ट्रेट या जिला पुलिस अधीक्षक या पुलिस आयुक्त उस न्यायालय के पास उसे अभिरक्षा में भेजने का निर्देश देगा। परन्तु यदि अपराध जमानतीय है और ऐसा व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है तो मजिस्ट्रेट, जिला अधीक्षक या आयुक्त यदि वारण्ट पर धारा 71 के अधीन प्रतिभूति निर्देश पृष्ठांकित है तो वह मजिस्ट्रेट, जिला अधीक्षक या आयुक्त यथास्थिति ऐसी जमानत या प्रतिमूर्ति लेगा और बंधपत्र उस न्यायालय को भेज देगा जिसने वारण्ट जारी किया था। परन्तु यदि अपराध अजमानतीय है तो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के लिए या उस जिले के जिसमें गिरफ्तारी की गई है सेशन न्यायाधीश निर्दिष्ट जानकारी और दस्तावेजों पर विचार करने के पश्चात् ऐसे व्यक्ति को विधिपूर्ण तरीके से छोड़ देगा।

10.4 फरार व्यक्तियों के लिए उद्घोषणा

यदि किसी न्यायालय को यह विश्वास करने का कारण है कि कोई व्यक्ति जिसके विरूद्ध उसने वारंट जारी किया है, फरार हो गया है या अपने को छिपा रहा है, जिससे ऐसे वारण्ट का निष्पादन नहीं किया जा सकता तो धारा 82 सीआरपीसी के अन्तर्गत ऐसा न्यायालय उससे यह अपेक्षा करने वाली लिखित उद्घोषणा प्रकाशित कर सकता है कि वह व्यक्ति विनिर्दिष्ट स्थान में और विनिर्दिष्ट समय पर, जो उस उद्घोषणा प्रकाशन की तारीख से कम से कम तीस दिन पश्चात हाजिर हो। उद्घोषणा निम्नलिखित रूप से प्रकाशित की जायेगी-

(i) (क) वह उस नगर या ग्राम के, जिसमें ऐसा व्यक्ति आम तौर पर निवास करता है किस सहजदृश्य स्थान में सार्वजनिक रूप से पढी जाएगी

(ख) वह उस गृह या वासस्थान के, जिसमें ऐसा व्यक्ति निवास करता है,

किसी सजहदृश्य भाग पर या ऐसे नगर या ग्राम के किसी सहज दृश्य स्थान पर लगाई जाएगी,

(ग) उसकी एक प्रति उस न्याय सदन के किसी सहज दृश्य भाग पर लगायी जाएगी

(ii) यदि न्यायालय ठीक समझता है तो वह यह निर्देश भी दे सकता है कि उद्घोषणा की एक प्रति उस स्थान में, परिचालित किसी दैनिक समाचारपत्र में प्रकाशित को जाए जहाँ ऐसा व्यक्ति निवास करता है।

10.4.1 `फरार व्यक्ति की सम्पत्ति की कुर्की

धारा 82 सीआरपीसी के अधीन उद्घोषणा जारी करने वाला न्यायालय, उद्घोषणा जारी किये जाने के पश्चात् किसी भी समय, धारा 63 सीआरपीसी के अनुसार उद्घोषित व्यक्ति की जंगम या स्थावर अथवा दोनों प्रकार की किसी भी सम्पत्ति की कुर्की का आदेश दे सकता है। परन्तु यदि न्यायालय का शपथ पत्र द्वारा या अन्यथा यह समाधान हो जाता है कि वह व्यक्ति जिसके सम्बन्ध में उद्घोषणा निकाली जाती है अपनी समस्त संपति या उसके किसी भाग का व्ययन करने वाला है, अथवा अपनी समस्त संपति या उसके किसी भाग को उस न्यायालय की स्थानीय अधिकारिता से हटाने वाला है, तो वह उद्घोषणा जारी करने के साथ ही साथ कुर्की का आदेश दे सकता है। ऐसा आदेश उस जिले में, जिसमें वह दिया गया है, उस व्यक्ति की किसी भी संपति की कुर्की प्राधिकृत करेगा और उस जिले

के बाहर की उस व्यक्ति की किसी संपति की कुर्की तब प्राधिकृत करेगा जब वह उस जिला मजिस्ट्रेट द्वारा, जिसके जिले में ऐसी सम्पत्ति स्थित है पृष्ठांकित कर दिया जावे। यदि वह संपति जिसको कुर्क करने का आदेश दिया गया है, जंगम संपति हो, तो इस धारा के अधीन कुर्की-

(क) अधिग्रहण द्वारा की जाएगी, अथवा

(ख) रिसीवर की नियुक्ति द्वारा की जाएगी, अथवा

(ग) उद्घोषित व्यक्ति को या उसके निमित्त किसी को भी उस सम्पत्ति का परिदान करने का प्रतिषेध करने वाले लिखित आदेश द्वारा की जाएगी,

(घ) इन रीतियों में से सब या किन्हीं दो से की जाएगी, जैसा न्यायालय ठीक समझे।

यदि वह संपत्ति जिसको कुर्क करने का आदेश दिया गया है, स्थावर है तो इस धारा के अधीन कुर्की राज्य सरकार को राजस्व देने वाली भूमि की दशा में उस जिले के कलेक्टर के माध्यम से की जाएगी जिसमें वह भूमि स्थित है, और अन्य सब दशाओं में-

(क) कब्जा लेकर की जाएगी, अथवा

(ख) रिसीवर की नियुक्ति द्वारा की जाएगी, अथवा

(ग) उद्घोषित व्यक्ति को या उसके निमित्त किसी को भी संपत्ति का किराया देने या उस संपति का परिदान करने का प्रतिषेध करने वाले लिखित आदेश द्वारा की जाएगी अथवा,

(घ) इन रीतियों में से सब या किन्हीं दो से की जाएगी, जैसा न्यायालय ठीक समझे।

यदि वह संपति जिसको कुर्क करने का आदेश दिया गया है, जीव धन है या विनश्वर प्रकृति की है तो, यदि न्यायालय समीचीन समझता है तो वह उसके तुरन्त विक्रय का आदेश दे सकता है और ऐसी दशा में विक्रय के आगम न्यायालय के आदेश के अधीन रहेंगे।

10.4.2 कुर्की के बारे में दावे और आपत्तियाँ

यदि धारा 83 के अधीन कुर्क की गई किसी संपति के बारे में उस कुर्की की तारीख से छह मास के भीतर कोई व्यक्ति, जो उद्घोषित व्यक्ति से भिन्न है, इस आधार पर दावा या उसके कुर्क किये जाने पर आपत्ति करता है कि दावेदार या आपत्तिकर्ता का उस संपत्ति से कोई हित है और ऐसा हित धारा 83 के अधीन कुर्क नहीं किया जा सकता तो उस दावे या आपत्ति की जाँच की जाएगी, और उसे पूर्णत: या भागत: मंजूर या नामंजूर किया जा सकता है। इस उपधारा द्वारा अनुज्ञात अवधि के अंदर किए गये किसी दावे या आपत्ति को दावेदार या आपत्तिकर्त्ता की मृत्यु हो जाने की दशा में उसके विधिक प्रतिनिधि द्वारा चालू रखा जा हैं।

10.4.3 कुर्क सम्पत्ति की निर्मुक्ति, विक्रय और वापसी

यदि उद्घोषित व्यक्ति उद्घोषणा में विनिर्दिष्ट समय के अंदर हाजिर हो जाता है तो न्यायालय सम्पत्ति को कुर्की से निर्मुक्त करने का आदेश देगा। यदि उद्घोषित व्यक्ति उद्घोषणा में विनिर्दष्ट समय के अंदर हाजिर नहीं होता है तो कुर्क सम्पत्ति, राज्य सरकार के व्ययनाधीन रहेगी, और उसका विक्रय कुर्की की तारीख से छह मास का अवसान हो जाने पर तथा धारा 64 सीआरपीसी के अधीन किए गये किसी दावे या आपत्ति का उस धारा के अधीन निपटारा हो जाने पर ही किया जा सकता है। किन्तु यदि वह शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील है या न्यायालय के विचार में विक्रय करना स्वामी के फायदे के लिए होगा तो इन दोनों दशाओं में से किसी में भी न्यायालय, जब कभी ठीक समझे, उसका विक्रय करा सकता है।

10.4.4 समन के स्थान पर या अलग से वारण्ट का जारी किया जाना

न्यायालय किसी भी ऐसे मामले में, जिसमें वह किसी व्यक्ति की हाजरी के लिए समन जारी करने के लिए इस संहिता द्वारा सशक्त किया गया है, अपने कारणों को अभिलिखित करने के पश्चात उसकी गिरफ्तारी के लिए वारण्ट जारी कर सकता है-

(क) यदि या तो ऐसा समन जारी किये जाने के पूर्व या पश्चात किन्तु उसकी हाजिरी के लिए नियत समय के पूर्व न्यायालय को यह विश्वास करने का कारण दिखाई पड़ता है कि वह फरार हो गया है या समन का पालन न करेगा, अथवा

(ख) यदि वह ऐसे समय में हाजिर होने में असफल रहता है और यह साबित कर दिया जाता है कि उस पर समन की तामील सम्यक् रूप से ऐसे समय में कर दी गई थी कि उसके तदनुसार हाजिर होने के लिए अवसर था और ऐसी असफलता के लिए कोई उचित प्रतिहेतु नहीं दिया जाता है।

10.5 हाजिर के लिये बन्धपत्र

कोई व्यक्ति, जिसकी हाजिरी या गिरफ्तारी के लिए किसी न्यायालय का पीठासीन अधिकारी समन या वारण्ट जारी करने के लिए सशक्त है, ऐसे न्यायालय में उपस्थित है तब वह अधिकारी उस व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है कि वह उस न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में, जिसका मामला विचारण के लिए अन्तरित किया जाता है, अपनी हाजिरी के लिए बन्धपत्र, प्रतिभुओं सहित या रहित, निष्पादित करें।

बन्धपत्र भंग करने पर स्थिति

जब कोई व्यक्ति, जो इस संहिता के अधीन दिये गये किसी बन्धपत्र द्वारा न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए आबद्ध है, हाजिर नहीं होता है तब उस न्यायालय का पीठासीन अधिकारी यह निर्देश देते हुए वारण्ट जारी कर सकता है कि वह व्यक्ति गिरफ्तार किया जाए और उसके समक्ष पेश किया जाए।

10.6 चीजे पेश करने हेतु आदेशिकाएं

जब कभी कोई न्यायालय या पुलिस थाने का कोई भार साधक अधिकारी यह समझता है कि किसी ऐसे अन्वेषण, जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए, जो इस संहिता के अधीन ऐसे न्यायालय या अधिकारी के द्वारा या समक्ष हो रही है, किसी दस्तावेज या अन्य चीज का पेश किया जाना आवश्यक या वांछनीय है तो जिस व्यक्ति के कब्जे या शक्ति में ऐसे दस्तावेज या चीज के होने का विश्वास है उसके नाम ऐसा न्यायालय एक समन या आदेश में उल्लिखित समय और स्थान पर उसे पेश करे अथवा हाजिर हो और पेश करे। यदि कोई व्यक्ति, जिसने इस धारा के अधीन दस्तावेज या अन्य चीज पेश करने की ही अपेक्षा की गई है उसे पेश करने के लिए स्वयं हाजिर होने के बजाय उस दस्तावेज या चीज को पेश करवा दे तो यह समझा जायेगा कि उसने उस अपेक्षा का अनुपालन कर दिया है।

10.6.1 पत्रों और तारों के सम्बन्ध में प्रक्रिया

यदि किसी जिला मजिस्ट्रेट, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय की राय में किसी डाक या तार प्राधिकारी की अभिरक्षा की कोई दस्तावेज, पार्सल, या चीज इस संहिता के अधीन किसी अन्वेषण, जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही के प्रयोजन के लिए चाहिए तो वह मजिस्ट्रेट

या न्यायालय, यथास्थिति, डाक या तार प्राधिकारी से यह अपेक्षा कर सकता है कि वह ऐसी दस्तावेज, पार्सल या चीज के लिए तलाशी कराए और मजिस्ट्रेट, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या न्यायालय के आदेशों के मिलने तक निरूद्ध रखे।

तलाशी वारण्ट निम्न स्थिति में जारी होगा :-

(क) जहाँ किसी न्यायालय को यह विश्वास करने का कारण है कि वह व्यक्ति अपेक्षित दस्तावेज या चीज पेश नहीं करेगा या हो सकता है कि पेश ना करे।

(ख) जहाँ ऐसी दस्तावेज या चीज के बारे में न्यायालय को यह ज्ञात नहीं है कि वह किसी व्यक्ति के कब्जे में है

(ग) जहाँ न्यायालय यह समझता है कि इसी संहिता के अधीन किसी जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही के प्रयोजनों की पूर्ति साधारण तलाशी या निरीक्षण से होगी नही, उन स्थितियों में तलाशी वारण्ट जारी किया जा सकता है। वह व्यक्ति जिसे ऐसा वारण्ट निर्दिष्ट है उसके अनुसार और उसमे इसके पश्चात अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार तलाशी ले सकता है या निरीक्षण कर सकता है।

यदि न्यायालय ठीक समझता है तो वह वारण्ट में उस विशिष्ट स्थान या उसके भाग को विनिर्दिष्ट कर सकता है तो केवल उसी स्थान या भाग की तलाशी या निरीक्षण होगा। इस धारा के प्रावधान जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट से भिन्न किसी अन्य मजिस्ट्रेट को, डाक या तार प्राधिकारी की अभिरक्षा में किसी दस्तावेज, पार्सल या अन्य चीज की तलाशी के लिए वारण्ट जारी करने के लिए प्राधिकृत नहीं करते है।

10.7 चुराई हुई सम्पत्ति, कूटरचित दस्तावेज आदि के लिए संदिग्ध स्थान की तलाशी

यदि जिला मजिस्ट्रेट, उपखण्ड मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को इत्तिला मिलने पर और ऐसी जाँच के पश्चात यह विश्वास करने का कारण है कि कोई स्थान चुराई हुई सम्पति के निक्षेप या विक्रय के लिए या किसी ऐसी आपत्तिजनक वस्तु के, जिसको यह धारा लागू होती है, निक्षेप, विक्रय या उत्थान के लिए उपयोग में लाया जाता है, या कोई ऐसी आपत्तिजनक वस्तु किसी स्थान मे निक्षिप्त है, तो वह कांस्टेबल की पंक्ति से ऊपर के किसी पुलिस अधिकारी को वारण्ट द्वारा यह प्राधिकार दे सकता है कि वह-

(क) उस स्थान में ऐसी सहायता के साथ, जैसी आवश्यकता हो, प्रवेश करे,

(ख) वारण्ट में विनिर्दिष्ट रीति से उसकी तलाशी ले

(ग) वही पाई गई किसी भी सम्पत्ति या वस्तु को, जिसके चुराई हुई सम्पत्ति या ऐसी आपत्तिजनक वस्तु जिसको यह धारा लागू होती है, होने का उसे उचित संदेह है, कब्जे में ले,

(घ) ऐसी सम्पत्ति या वस्तु को मजिस्ट्रेट के पास ले जाये या अपराधी को मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने तक उसको उसी स्थान पर पहरे में रखे या अन्यथा उसे किसी सुरक्षित स्थान पर रखे,

(ङ) ऐसे स्थान में पाये गये प्रत्येक व्यक्ति को अभिरक्षा में ले और मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाये, जिसके बारे में प्रतीत हो कि किसी ऐसी सम्पत्ति या वस्तु के निक्षेप, विक्रय या उत्पादन में यह जानते हुए या संदेह करने का उचित कारण रखते हुए संसर्गी रहा है कि यथास्थिति, वह चुराई हुई सम्पत्ति है या ऐसी आपत्तिजनक वस्तु है जिसको यह धारा लागू होती है।

वे आपत्तिजनक वस्तुएँ, जिनको यह धारा लागू होती है, निम्नलिखित है :-

(क) कूटकृत सिक्का,

(ख) धातु टोकन अधिनियम, 1889(1889 का 1) के उल्लंघन में बनाये गए अथवा सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 (1962 का 52) की धारा 11 के अधीन तत्समय प्रवृत किसी अधिसूचना के उल्लंघन में भारत में लाए गए धातु-खण्ड,

(ग) कूटकृत करेन्सी नोट, व स्टाम्प

(घ) कूटरचित दस्तावेज,

(ङ) (q) नकली मुद्राएँ,

(च) भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 292 में निर्दिष्ट अश्लील वस्तुएँ

(छ) खण्ड (क) से (च) तक के खण्डों में उल्लेखित वस्तुओं में से किसी के उत्पादन के लिए प्रयुक्त उपकरण या सामग्री।

10.8 प्रकाशनों के समपहत होने पर तलाशी वारण्ट जहाँ राज्य सरकार को प्रतीत होता है कि-

(क) किसी समाचारपत्र या पुस्तक में अथवा

(ख) किसी दस्तावेज में,

चाहे वह कहीं भी मुद्रित हुई हो, कोई ऐसी बात अन्तर्विष्ट है जिसका प्रकाशन भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 124-क या धारा 153-ख या धारा 292 या धारा 293 या धारा 295-क के अधीन दण्डनीय है, वहाँ राज्य सरकार ऐसी बात अन्तर्विष्ट करने वाले समाचार पत्र के अंक की प्रत्येक प्रति का और ऐसी पुस्तक या अन्य दस्तावेज की प्रत्येक प्रति का सरकार के पक्ष में समपहरण कर लिए जाने की घोषणा, अपनी राय के आधारों का कथन करते हुए अधिसूचना द्वारा कर सकती है और तब भारत में, जहाँ भी वह मिले, कोई भी पुलिस अधिकारी उसे अभिगृहीत कर सकता है और कोई मजिस्ट्रेट, उप-निरीक्षक से अनिम्न पंक्ति के किसी पुलिस अधिकारी को, किसी ऐसे परिसर में जहाँ ऐसे किसी अंक की कोई प्रति या ऐसी कोई पुस्तक या अन्य दस्तावेज है या उसके होने का उचित संदेह है, प्रवेश करने और उसके लिए तलाशी लेने के लिए वारण्ट द्वारा प्राधिकृत कर सकता है।

10.9 सदोष परिवर्द्धन व्यक्तियों के लिए तलाशी

यदि किसी जिला मजिस्ट्रेट, उपखण्ड मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने का कारण है कि कोई व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में परिरूद्ध है जो अपराध की कोटि में आता है तो वह तलाशी वारण्ट जारी कर सकता है। वह व्यक्ति, जिसको ऐसा वारण्ट निर्दिष्ट किया जाता है ऐसे परिरूद्ध व्यक्ति के लिए तलाशी ले सकता है। यदि वह व्यक्ति मिल जाए तो उसे तुरन्त मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाया जाएगा।

10.10 बन्द स्थान की तलाशी

यदि तलाशी लिए जाने या निरीक्षण किये जाने वाला कोई स्थान बन्द है तब स्थान में निवास करने वाला या भारसाधक व्यक्ति, उस अधिकारी या अन्य व्यक्ति की जो वारण्ट का निष्पादन कर रहा है की माँग पर और वारण्ट के पेश किये जाने पर उसे उसमें अबाध प्रवेश करने देगा और वही तलाशी लेने के लिए सब उचित सुविधाएं देगा। यदि उस स्थान में इस प्रकार प्रवेश प्राप्त नहीं हो सकता है तो वह अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो वारण्ट का निष्पादन कर रहा है धारा या की उपधारा (2)

द्वारा उपबन्धित रीति से कार्यवाही कर सकेगा। जहाँ किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में जो ऐसे स्थान में या उसके आस-पास है उचित रूप से सन्देह किया जाता है कि वह अपने शरीर पर कोई ऐसी वस्तु छुपाये हुये है जिसके लिए तलाशी ली जानी चाहिए तो उस व्यक्ति की तलाशी ली जा सकती है और यदि वह व्यक्ति स्त्री है तो तलाशी शिष्टता का पूर्ण ध्यान रखते हुए अन्य स्त्री द्वारा ली जावेगी। तलाशी लेने के पूर्व ऐसा अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जब तलाशी लेने ही वाला हो, तलाशी में हाजिर रहने और उसके साक्षी बनने के लिए उस मुहल्ले के, जिसमें तलाशी लिए जाने वाला स्थान है, दो या अधिक स्वतंत्र और प्रतिष्ठित निवासियों को या यदि उक्त मुहल्ले का ऐसा कोई निवासी नही मिलता है या उस तलाशी का साक्षी होने के लिए रजामन्द नहीं है तो किसी अन्य मुहल्ले के ऐसे निवासियों का बुलायेगा और उनकों या उनमें से किसी को ऐसा करने के लिए लिखित आदेश जारी कर सकेगा। तलाशी उनकी उपस्थिति में ली जावेगी और ऐसी तलाशी के उपकम में अभिगहीत सब चीजो की और जिन-जिन रथानों मे वे पाई गई है उनकी सूची ऐसे अधिकारी या अन्य व्यक्ति द्वारा तैयार की जायेगी और ऐसे साक्षियों द्वारा उन पर हस्ताक्षर किये जायेंगे किन्तु इस धारा के अधीन तलाशी के साक्षी बनने वाले किसी व्यक्ति से, तलाशी के साक्षी के रूप में न्यायालय में हाजिर होने की अपेक्षा उस दशा में ही की जायेगी जब वह न्यायालय द्वारा विशेष रूप से समन किया गया हो।

तलाशी लिए जाने वाले स्थान के अधिभोगी को या उसकी ओर से किसी व्यक्ति को तलाशी के दौरान हाजिर रहने की अनुज्ञा प्रत्येक दशा मे दी जायेगी और इस धारा के अधीन तैयार की गई उक्त साक्षियों द्वारा हस्ताक्षरित सूची की एक प्रतिलिपि ऐसे अधिभोगी या ऐसे व्यक्ति को परिदत्त की जायेगी। जब किसी व्यक्ति की तलाशी ली जाती है तब कब्जे में ली गई सब चीजों की सूची तैयार की जाएगी और उसकी एक प्रतिलिपि ऐसे व्यक्ति को परिदत्त की जाएगी। कोई व्यक्ति जो इस धारा के अधीन तलाशी मे हाजिर रहने और साक्षी बनने के लिए ऐसे लिखित आदेश द्वारा, जो उसे परिदत्त या निविदत्त किया गया हो, बुलाए जाने पर, ऐसा करने से उचित कारण के बिना इन्कार या उसमें उपेक्षा करेगा, उसके बारे में यह समझा जायेगा कि उसने भारतीय दण्ड सहिता (1860 का 45) की धारा 187 के अधीन अपराध किया है।

10.11 सम्पत्ति को अभिगृहीत करने की पुलिस की शक्तियाँ

कोई पुलिस अधिकारी किसी ऐसी सम्पत्ति को, अभिगृहीत कर सकता है जिसके बारे में यह अभिकथन या संदेह है कि वह चुराई हुई है अथवा जो ऐसी परिस्थितियों में पाई जाती है, जिनसे किसी अपराध के किये जाने का संदेह हो। यदि ऐसा पुलिस अधिकारी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के अधीनस्थ है तो वह उस अधिग्रहण की रिपोर्ट उस अधिकारी को तत्काल देगा। प्रत्येक पुलिस अधिकारी अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को अभिग्रहण की रिपोर्ट तुरन्त देगा। जहाँ अभिगृहीत सम्पत्ति ऐसी है कि वह सुगमता से न्यायालय में नही लाई जा सकती है या जहाँ ऐसी सम्पत्ति की अभिरक्षा के लिए उचित स्थान प्राप्त करने में कठिनाई है, या जहाँ सम्पत्ति को पुलिस अभिरक्षा में निरंतर रखा जाना अन्वेषण के प्रयोजन के लिए आवश्यक नहीं समझा जाता है तो वहाँ उस सम्पत्ति को किसी ऐसे व्यक्ति की अभिरक्षा में देगा जो यह वचनबद्ध करते हुए बंधपत्र निष्पादित करे कि वह सम्पत्ति को जब कभी अपेक्षा की जाए तब न्यायालय के समक्ष पेश करेगा और उसके व्ययन के बाबत न्यायालय के अतिरिक्त आदेशों का पालन करेगा।

यदि अभिगृहीत की गई सम्पत्ति शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील हो और यदि ऐसी सम्पत्ति के कब्जे का हकदार व्यक्ति अज्ञात है अथवा अनुपस्थित है और ऐसी सम्पत्ति का मूल्य पाँच सौ रूपये से कम है, तो उसको पुलिस अधीक्षक के आदेश से तत्काल नीलाम द्वारा विक्रय किया जा सकेगा।

10.12 सारांश

समन और वारण्ट न्यायिक प्रक्रिया के अग्रिम अंग माने जाते है। न्यायालय के समक्ष प्रकरण प्रस्तुत होने पर उनकी अन्वेक्षणा की जाती है। अनवेक्षण के लिए एकत्र साक्ष्यों की समीक्षा न्यायालय द्वारा की जाती है। साक्ष्य मौखिक एवं परिस्थितिजन्य हो सकते है। साक्ष्य देने वाले व्यक्तियों एवं वस्तुओं का इस कार्य के लिए कोर्ट के समक्ष लाया जाना आवश्यक माना जाता हैं। इनको कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए जिन व्यवस्थाओं को अपनाया जाता है उन्हें समन और वारण्ट के रूप में पहचाना जाता है।

इस इकाई के अन्तर्गत विभिन्न समन प्रारूपों, समन प्रावधानों, गिरफ्तारी वारंट सम्बन्धित प्रावधानों को समझाते हुए, फरार व्यक्तियों के लिए उद्घोषणों सम्बन्धित पहलूओं पर प्रकाश डाला गया है तथा सम्बन्धित सम्पत्तियों को अभिगृहीत करने के पुलिस के तरीकों, अधिकारों, शक्तियों और प्रकारों का अध्ययन किया गया है।

10.13 अभ्यास प्रश्न

1. समन के अर्थ, अवधारणा व स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. समन की तामील कैसे करवाई जाती है? वर्णन कीजिए।
3. समन की तामील के व्यक्तियों, डाक द्वारा व स्थानीय सीमाओं के बाहर तामील के प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
4. वारण्ट के प्रारूप व तामील के प्रावधानों को समझाइये।
5. तलाशी वारण्ट की तामील में क्या-क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए? उल्लेख कीजिए।
6. तलाशी वारण्ट किन-किन परिस्थितियों में जारी किए जा सकते है? उल्लेख कीजिए।

इकाई - 11

भारतीय दण्ड संहिता : एक अवलोकन

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 साधारण स्पष्टीकरण
11.3 दण्ड
11.4 साधारण अपवाद
11.5 दुष्प्रेरण
11.6 आपराधिक षड्यंत्र
11.7 राज्य के विरूद्ध अपराध
11.8 सेना, नौसेना, वायुसेना सम्बन्धी अपराध
11.9 लोक प्रशान्ति सम्बन्धी अपराध
11.10 लोक सेवकों से सम्बन्धी अपराध
11.11 निर्वाचन सम्बन्धी अपराध
11.12 लोक सेवकों के विधि पूर्ण प्राधिकार के अवमान सम्बन्धी अपराध
11.13 मिथ्या साक्ष्य एवं लोक न्याय सम्बन्धी अपराध
11.14 सिक्कों व सरकारी स्टाम्पों सम्बन्धी अपराध
11.15 बाटों और मापों सम्बन्धी अपराध
11.16 लोक स्वास्थ्य, क्षेम, सुविधा, शिष्टता और सदाचार सम्बन्धी अपराध
11.17 शिष्टता और सदाचार सम्बन्धी अपराध
11.18 धर्म सम्बन्धी अपराध
11.19 मानव शरीर सम्बन्धी अपराध
11.20 सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध
11.21 दस्तावेजों और सम्पत्ति चिह्नों सम्बन्धी अपराध
11.22 विवाह सम्बन्धी अपराध
11.23 मानहानि
11.24 आपराधिक अभित्रास
11.25 अपराध का प्रयत्न
11.26 सारांश
11.27 अभ्यास प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- भारतीय दण्ड संहिता के विभिन्न उपबन्धों एवं सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विभिन्न अपराधों के प्रकारों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- मानव शरीर सम्बन्धी अपराधों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय दस्तावेजों और सम्पत्ति चिह्नों सम्बन्धी अपराधों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

- सम्पत्ति विरूद्ध अपराध व विवाह सम्बन्धित अपराधों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

भारतीय दण्ड संहिता 1660, पहली जनवरी 1862 को प्रवर्तन में आई है, जिसमें विभिन्न अपराधों एवं उनके लिए दण्ड के सम्बन्ध में प्रावधान किये गये है। किसी विधि के प्रतिकूल किया गया कार्य या कार्य लोप जो समाज पर प्रतिकूल प्रभाव रखने की प्रवृत्ति रखता है और जिसके लिए राज्य के नाम पर की जाने वाली न्यायिक कार्यवाही के परिणामस्वरूप दण्ड अधिरोपित किया जा सकता है को अपराध कहते है। सामान्यतया, दण्ड विधि लोक विधि का भाग होती है और प्राइवेट व्यक्तियों की इच्छा से इसका कोई भी भाग बदला नहीं जा सकता। दांडिक मामलों में विधि की उपधारणा यह है कि अभियुक्त तब तक निर्दोष होता है जब तक कि अभियुक्त पर आरोप संदेह की सीमा से परे सिद्ध नहीं कर दिया जावें, इसे साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर होता है। सामान्यत: हर अपराध में अपराधी मनःस्थिति का होना आवश्यक है तथा जिसे साबित किये जाने का भार अभियोजन पक्ष पर होता है, परन्तु यह विधानमण्डल की शक्ति होती है कि वह यह अधिनियमित कर दे कि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है चाहे वह आपराधिक मनःस्थिति का दोषी रहा हो या नहीं।

भारतीय दण्ड संहिता का विस्तार जम्मु-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है। यह दण्ड संहिता किसी भी व्यक्ति को दण्ड न्यायालयों की अधिकारिता से छूट नहीं देती किन्तु सम्प्रभु, विदेशी सम्प्रभु, राजदूत, अन्य देशीय शत्रु, विदेशी सेना, युद्ध-के-व्यक्ति इसके अपवाद है। भारत के न्यायालयों को राष्ट्रपति और राज्यपाल के विरूद्ध आदेशिका निर्गत करने से प्रतिषिद्धि किया गया है। इस संहिता के उपबन्ध भारत से बाहर और परे किसी स्थान में भारत के किसी नागरिक द्वारा किये गये अपराध, भारत में रजिस्ट्रीकृत किसी पोत या विमान पर, चाहे वह कही भी हो में किये गये अपराध तथा भारत से दूर किसी स्थान पर किसी व्यक्ति द्वारा भारत में स्थित किसी कम्प्यूटर संसाधन को निशाना बना कर किये गये अपराध पर लागू होते है।

11.2 साधारण स्पष्टीकरण

इस संहिता में सर्वत्र, अपराध की हर परिभाषा, हर दण्ड उपबन्ध और, हर ऐसी परिभाषा या दण्ड उपबन्ध का हर दृष्टान्त,'साधारण अपवादों के अध्यधीन समझा जाता है। हर ऐसा व्यक्ति या व्यक्ति निकाय जो पद रूप से न्यायाधीश अभिहित है तथा जो किसी विधि-कार्यवाही में निर्णय देने के लिए विधि द्वारा सशक्त किया गया है न्यायाधीश कहलाता है। उस न्यायाधीश या व्यक्ति निकाय को जिसे न्यायिकत कार्य करने के लिए विधि द्वारा सशक्त किया गया है न्यायालय कहलाता है। हर भांति की मूर्त सम्पत्ति जो भूमि या भूबद्ध किसी चीज से स्थायी रूप से जकड़ी हुई नहीं है, जंगम सम्पत्ति कहलाती है। विधि विरूद्ध साधनों द्वारा ऐसी सम्पत्ति का अभिलाभ है, जिसका वैध रूप हकदार अभिलाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति नहीं है' सदोष अभिलाभ तथा विधि विरूद्ध साधनों द्वारा ऐसी सम्पत्ति की हानि है, जिसका वैध रूप से हकदार हानि उठाने वाला व्यक्ति है, सदोष हानि कहलाती है। जब कोई व्यक्ति कोई कार्य किसी व्यक्ति को सदोष अभिलाभ या सदोष हानि कारित करने के आशय से करता है, वह उस कार्य को''बेईमानी से'' करता है। जो व्यक्ति एक चीज को दूसरी चीज के सदृश इस आशय या यह सम्भाव्य जानते हुए करता है कि तद्द्वारा प्रवंचना की जाएगी, वह 'कूटकरण' करता है, कूटकरण के लिए यह आवश्यक नहीं है कि नकल ठीक वैसी ही हो। जब कि कोई आपराधिक कार्य कई व्यक्तियों द्वारा अपने सबके सामान्य आशय को अग्रसर करने में किया जाता है, तब हर

व्यक्ति, उस कार्य के लिए उसी प्रकार दायित्व के अधीन है, मानों वह कार्य अकेले उसी ने किया हो। जब कभी कोई कार्य, जो आपराधिक ज्ञान या आशय से किये जाने के कारण ही आपराधिक है, कई व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, तब हर व्यक्ति, जो ऐसे ज्ञान या आशय से उस कार्य में सम्मिलित होता है, उस कार्य के लिए उसी प्रकार दायित्व के अधीन है, मानो वह कार्य उस ज्ञान या आशय से अकेले उसी द्वारा किया गया हो। जहाँ कार्य या लोप द्वारा किसी परिणाम का कारित करने या उस परिणाम को कारित करने का प्रयत्न करना अपराध है, उस परिणाम का अंशत: कार्य या लोप कारित किया जाना भी वही अपराध है। जबकि कोई अपराध कई कार्यो द्वारा किया जाता है, तब जो कोई या तो अकेले या किसी अन्य व्यक्ति के साथ सम्मिलित होकर उन कार्यो में से कोई एक कार्य करके उस अपराध के किए जाने में संशय सहयोग करता है, वह उस अपराध को करता है। जहाँ कि कई व्यक्ति किसी आपराधिक कार्य को करने में लगे हुए या सम्प्रक्त है, वहाँ वे उस कार्य के आधार पर विभिन्न अपराधों के दोषी हो सकेंगे।

कोई व्यक्ति किसी परिणाम को'स्वेच्छया' कारित करता है, यदि वह उसे उन साधनों द्वारा कारित करता है, जिनके द्वारा उसे कारित करना उसका आशय था, या उन साधनों द्वारा कारित करता है जिन साधनों को काम में लाते समय वह यह जानता था, या यह विश्वास करने का कारण रखता था कि उनसे उसका कारित होना सम्भाव्य है। सम्यक् सतर्कता और ध्यान से की गई या विश्वास की गई कोई बात सदभाव पूर्वक कहलाती है।'संश्रय' शब्द के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को आश्रय, भोजन, पेय, धन, वस्त्र, आयुध, गोला-बारूद या प्रवहरण के साधन देना, या किन्हीं साधनों से किसी व्यक्ति की सहायता पकडे जाने से बचने के लिए करना, आता है। सरकारी सेवा में कार्यरत या सरकार से वेतन प्राप्त करने वाला व्यक्ति जो किसी लोक कर्त्तव्य का पालन करता है लोक सेवक कहलाता है।

मूल्यवान प्रतिभूति शब्द का आशय ऐसे अभिलेख से है जिससे कोई कानूनी अधिकार उत्पन्न, विस्तृत, आन्तरित प्रतिबन्धित, समाप्त, मुक्त किया जाय या जिसके द्वारा कोई व्यक्ति यह स्वीकार करें कि वह किसी कानूनी दायित्व के अन्तर्गत आता है या उसका कोई कानूनी अधिकार नहीं है।

11.3 दण्ड

भारतीय दण्ड संहिता के उपबन्धों के अधीन अपराधी मृत्यु दण्ड, आजीवन कारावास, कठिन अर्थात् कठोर श्रम के साथ कारावास, साधारण, सम्पत्ति का समपहरण, जुर्माना आदि दण्डों से दण्डनीय है। जिस मामले में आजीवन कारावास का दण्डादेश दिया गया हो अपराधी की सम्मति के बिना भी समुचित सरकार उस दण्ड को लघुकृत कर सकती है। न्यायालय हर मामले में, जिसमें अपराधी दोनों में से किसी भाँति के कारावास से दण्डनीय है, न्यायालय दण्डादेश में यह निर्दिष्ट कर सकता है कि ऐसा सम्पूर्ण कारावास कठिन या सम्पूर्ण कारावास सादा होगा या ऐसे कारावास का कुछ भाग कठिन होगा और शेष सादा होगा। जहाँ कि जुर्माने की राशि वर्णित नहीं हो वहाँ न्यायालय जितना चाहे जुर्माना कर सकता है, किन्तु यह राशि अत्यधिक नहीं होगी। न्यायालय, सक्षम होगा कि दण्डादेश द्वारा निर्देश दे कि जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने की दशा में, अपराधी अमुक अवधि के लिए कारावास भोगेगा जो कारावास उस अन्य कारावास के अतिरिक्त होगा जिसके लिए वह दण्डादिष्ट हुआ है। यदि अपराध कारावास और जुर्माना दोनों से दण्डनीय हो, जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने की दशा में न्यायालय अपराधी को अपराध के लिए निर्धारित अधिकतम कारावास की अवधि के एक-चौथाई तक की अवधि के कारावास का दण्डादेश दे सकेगा। जो कारावास उस अपराध के लिए दण्डादिष्ट करावास की भांति का हो सकेगा। यदि किसी व्यक्ति को कठिन कारावास के दण्डादेश से दण्डित किया जा सकता है तो न्यायालय अपने

दण्डादेश द्वारा आदेश दे सकेगा कि अपराधी को किसी भाग या भागों के लिए, जो कुल मिलाकर तीन मास से अधिक के नहीं होंगी, एकांत परिरोध में रखा जाए, किसी न्यायालय द्वारा इस संहिता के सिक्कों और सरकारी स्टाम्पों से सम्बन्धित अपराधों के विषय में या सम्पत्ति के विरूद्ध अपराधों के विषय में के अधीन तीन वर्ष या उससे अधिक कि अवधि के लिए दोनों में से किसी भाँति के कारावास से दण्डनीय अपराध के लिए, किसी व्यक्ति को दोषसिद्ध ठहराये जाने के पश्चात् वह यदि उतनी ही अवधि के लिए वैसे ही कारावास से दण्डनीय किसी अपराध का दोषी हो तो वह वर्धित कारावास से दण्डित किया जा सकेगा।

11.4 साधारण अपवाद

कोई कार्य स्वयं में अपराध नहीं होता है चाहे नैतिक दृष्टि से वह कितना ही बुरा क्यों न हो। कोई कृत्य तभी अपराध होता है जब किसी विधि द्वारा उसे दण्डनीय बनाया गया हो। साधारण अपवाद आपराधिक उत्तरदायित्व विमुक्ति की स्थितियाँ है। जिनके सन्दर्भ में किसी व्यक्ति को आपराधिक उत्तरदायित्व से मुक्त किया जा सकता है। विधि द्वारा आबद्ध या तथ्य की भूल के कारण अपने-आपको विधि द्वारा आबद्ध होने का विश्वास करने वाले व्यक्ति द्वारा किया गया कार्य अपराध नहीं है तथ्य की भूल क्षम्य है, विधि की भूल क्षम्य नहीं है। न्यायिक्त: कार्य करते हु ए न्यायाधीश का कार्य, न्यायालय के निर्णय या आदेश के अनुसरण में किया गया कार्य, विधि द्वारा न्यायानुमत या तथ्य की भूल से अपने को विधि द्वारा न्यायानुमत होने का विश्वास करने वाले व्यक्ति किया गया कार्य, विधिपूर्ण कार्य करने में दुर्घटना, आपराधिक आशय के बिना और अन्य अपहानि के निवारण के लिए किया गया कार्य, सात वर्ष से कम आयु के शिशु का कार्य, सात वर्ष से ऊपर किन्तु बारह वर्ष से कम आयु के अपरिपक्व समझ के शिशु का कार्य, विकृत चित व्यक्ति के कार्य जबकि अपराध कारित किये जाने के समय व अपने कार्य की प्रकृति को समझने में असमर्थ था। ऐसे व्यक्ति का कार्य जो अपनी इच्छा के विरूद्ध मलता में होने के कारण निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ है, किसी व्यक्ति द्वारा जो मत्तता में है, किया गया अपराध जिसमें विशेष आशय या ज्ञान का होना अपेक्षित है, सम्मति से किया गया कार्य, किसी व्यक्ति के फायदे के लिए सम्मति से सद्भावनापूर्वक किया गया कार्य, संरक्षक द्वारा उसकी सम्मति से शिशु या उन्मत्त व्यक्ति के फायदे के लिए सदभावपूर्वक किया गया कार्य जबकि किया गया कृत्य स्वत: अपराध नहीं है।

सम्मति के बिना किसी व्यक्ति के फायदे के लिए सद्भावपूर्वक किया गया कार्य, किसी व्यक्ति द्वारा धमकियों से विवश होकर किया गया कार्य, तुच्छ कार्य आदि साधारण अपवाद है जो कि किसी अपराधी की दोष मुक्ति का आधार बन सकते है। प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग में किया गया कोई आपराधिक कृत्य अपराध नहीं है। प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार शरीर एवं सम्पत्ति की प्रतिरक्षा के लिए उपलब्ध है। प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार प्रतिरक्षात्मक है दण्डात्मक और प्रतिकारात्मक नहीं है। लोक पदाधिकारी से संरक्षण प्राप्त करने का युक्तियुक्त समय एवं अवसर उपलब्ध होने पर इस अधिकार का उदभव नहीं होता। प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार मृत्यु कारित करने की सीमा तक भी उपलब्ध है यदि ऐसा हमला जिससे युक्तियुक्त रूप से यह आशंका कारित हो कि ऐसे हमले का परिणाम मृत्यु होगा या घोर उपहति होगी, बलात्संग, प्रकृति विरूद्ध काम-तृष्णा, व्यपहरण या अपहरण करने या किसी व्यक्ति का ऐसी परिस्थितियों में सदोष परिरोध करने जिसकी युक्तियुक्त यह आशंका हो की वह अपने को छुडवाने के लिए लोक प्राधिकारियों की सहायता प्राप्त नहीं कर सकेगा। सम्पत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विस्तार मृत्यु कारित करने तक लूट, रात्रि गृह वेदन, अग्नि द्वारा

निर्माण तम्बू या जलयान में की गई रिष्टि तथा चोरी या गृह अतिचार जिसमें यदि प्राइवेट प्रतिरक्षा के ऐसे अधिकार का प्रयोग नहीं किया गया तो परिणाम मृत्यु या घोर उपाहति होगी तक उपलब्ध है।

10.5 दुष्प्रेरण

दुष्प्रेरण का अपराध किसी व्यक्ति को उकसाकर या प्रेरित करके, षड्यंत्र द्वारा या सहायता द्वारा किया जा सकता है। किसी कार्य का अवैध लोप भी दुष्प्रेरण का अपराध है, दुष्प्रेरण के अपराध के लिए आवश्यक नहीं है दुष्प्रेरित कार्य किया जाये या अपेक्षित प्रभाव कारित हो। यह भी आवश्यक नहीं है कि दुष्प्रेरित व्यक्ति अपराध करने में सक्षम है या दुष्प्रेरक के आशय से ही दुष्प्रेरित व्यक्ति आपराधिक कृत्य करें। दुष्प्रेरण के लिए दुष्प्रेरित व्यक्ति के साथ षड्यंत्र की योजना बनाना आवश्यक नहीं है यह पर्याप्त है कि वह षड्यंत्र में शामिल हो जिसके अनुसरण में वह अपराध किया गया था। किसी अपराध को किये जाने के परिकल्पना का लोक सेवक द्वारा छिपाया जाना या कारावास से दण्डनीय अपराध करने के परिकल्पना को छिपाया जाना भी अपराध है।

11.6 आपराधिक षड़यंत्र

दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा किसी अवैध कार्य को करने अथवा किसी वैध कार्य को अवैध साधनों से करने का करार आपराधिक षड्यंत्र कहलाता है। यदि आपराधिक षड्यंत्र के लिए दण्ड के कोई अभिव्यक्त प्रावधान नहीं है तो वह व्यक्ति उसी प्रकार दण्डित किया जायेगा, मानों उसने अपराध का दुष्प्रेरण किया था।

11.7 राज्य के विरूद्ध अपराध

भारत सरकार के विरूद्ध युद्ध करने का प्रयत्न या युद्ध करने का दुष्प्रेरण या इसके लिए षड्यंत्र करने, भारत के अन्दर या भारत के बाहर, अपराध कारित करने, आपराधिक बल या बल प्रदर्शन द्वारा सरकार को आतंकित करने तथा भारत सरकार के विरूद्ध युद्ध करने के आशय से आयुध आदि संग्रह करने, युद्ध करने की परिकल्पना को सुकर बनाने के आशय से छिपाने, किसी विधिपूर्ण शक्ति का प्रयोग करने के लिए विवश करने या उसका प्रयोग अवरोधित करने के आशय से राष्ट्रपति, राज्यपाल आदि पर हमला करने, राजद्रोह, भारत सरकार से मैत्री सम्बन्ध रखने वाली किसी एशियाई शक्ति के विरूद्ध युद्ध करने, भारत सरकार के साथ शान्ति का सम्बन्ध रखने वाली शक्ति के राज्यक्षेत्र में लूटपाट करने, युद्ध या लूटपाट द्वारा ली गई सम्पत्ति प्राप्त करने, भारत सरकार के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध रखने वाली शक्ति के साथ युद्ध करने, लोक सेवक का स्वेच्छया राजकैदी या युद्धकैदी को निकल भागने देने, उपेक्षा से लोक सेवक का ऐसे कैदी का निकल भागना सहन करने, ऐसे कैदी के निकल भागने में सहायता देने, उसे छुडाना सा संश्रय देने, राजबन्दी या युद्धबन्दी से सम्बन्धित कृत्य राज्य के विरूद्ध अपराध है जिन्हें दण्डनीय बनाया गया है।

11.8 सेना, नौसेना, वायुसेना सम्बन्धी अपराध

सेना सम्बन्धी अपराध केवल सैन्य कर्मचारी ही कारित नहीं करते बल्कि एक साधारण व्यक्ति भी ऐसा अपराध कर सकता है। विद्रोह का दुष्प्रेरण या किसी सैनिक, नौसैनिक या वायुसैनिक को कर्त्तव्य से विचलित करने का प्रयत्न, विद्रोह का दुष्प्रेरण, सैनिक, नौसैनिक या वायुसैनिक द्वारा अपने वरिष्ठ आफिसर पर जबकि वह आफिसर अपने पद-निष्पादन में हो, हमले का दुष्प्रेरण, सैनिक, नौसैनिक या वायुसैनिक द्वारा अभित्यजन का दुष्प्रेरण, अभित्याजक को संश्रय देना, सैनिक, नौसैनिक या वायुसैनिक द्वारा अनधीनता के कार्य का दुष्प्रेरण, अधिनियमों के अध्यधीन व्यक्ति, सैनिक, नौसैनिक या

वायुसैनिक द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली पोशाक पहनना या टोकन धारण करना आदि ऐसे आपराधिक कृत्य है जिन्हें दण्डनीय बनाया गया है।

11.9 लोक प्रशान्ति सम्बन्धी अपराध

पाँच या पाँच से अधिक व्यक्तियों द्वारा आपराधिक बल या बल के प्रदर्शन द्वारा केन्द्रीय या राज्य सरकार, संसद या राज्य के विधान मण्डल, अपनी विधिपूर्ण शक्तियों का प्रयोग कर रहे किसी लोक सेवक, विधि प्रक्रिया के निष्पादन या अन्य अपराध करने, रिष्टि आपराधिक अतिचार करने, आपराधिक बल या प्रदर्शन द्वारा सम्पत्ति पर अधिकार करने, मार्ग के अधिकार, जल के उपयोग के अधिकार या किसी अमूर्त अधिकार से वंचित करने के उद्देश्य से किया गया जमाव विधि विरूद्ध जमाव कहलाता है। विधि विरूद्ध जमाव के किसी सदस्य द्वारा सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में हिंसा या बल का प्रयोग बलवा कहलाता है। विधि विरूद्ध जमाव का हर सदस्य सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में किये गये अपराध का दोषी है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति लोक स्थान में लड़कर लोक शान्ति में विघ्न डालना दंगा कहलाता है, जिन्हें दण्डनीय बनाया गया है।

11.10 लोक सेवकों से सम्बन्धी अपराध

लोक सेवकों द्वारा' भ्रष्टाचार से दूर रखने और उनमें न्याय व कर्त्यव्य निष्ठा की भावना बनाये रखने के लिए उनके द्वारा किये गये आपराधिक कृत्यों को दण्डनीय बनाया गया है। लोक सेवक द्वारा किसी व्यक्ति को क्षति कारित करने के आशय से विधि की अवज्ञा रचना, लोक सेवक द्वारा क्षति कारित करने के आशय से अशुद्ध दस्तावेज रचना, लोक सेवक जो विधि विरूद्ध रूप से व्यापार में लगना, लोक सेवक द्वारा विधि विरुद रूप से सम्पत्ति क्रय करना, कपट पूर्वक आशय से लोक सेवक के उपयोग की पोशाक पहनना या टोकन धरण करना आदि कृत्यों को दण्डनीय बनाया गया है।

11.11 निर्वाचन सम्बन्धी अपराध

प्रजातांत्रिक शासन पद्धति में निर्वाचन का महत्वपूर्ण स्थान है और यह आवश्यक है कि निर्वाचन निष्पक्ष हो। निर्वाचन सम्बन्धित विभिन्न अपराधों में रिश्वत, निर्वाचनों में असम्यक असर डालना, निर्वाचनों में प्रतिरूपण निर्वाचन के सम्बन्ध में मिथ्या कथन या निर्वाचन लेखों को रखने में असफलता आदि ऐसे आपराधिक कृत्य है जिन्हें दण्डनीय बनाया गया है।

11.12 लोक सेवकों के विधि पूर्ण प्राधिकार के अवमान सम्बन्धी अपराध

जब कोई व्यक्ति किसी लोक सेवक के आदेश की अवहेलना करता है इसे विधि पूर्ण प्राधिकार का अवमान कहा जाता है, जिसे दण्डित किया जाना उचित एवं आवश्यक है। सम्मनों की तामील या अन्य कार्यवाही से बचने के लिए फरार हो जाना, समन की तामील का या अन्य कार्यवाही का या उसके प्रकाशन का निवारण करना, लोक सेवक का आदेश न मानकर गैर हाजिर रहना, दस्तावेज या इलैक्ट्रॉनिक अभिलेख पेश करने के लिए वैध रूप से आबद्ध व्यक्ति का लोक सेवक को दस्तावेज या इलैक्ट्रॉनिक अभिलेख पेश करने का लोप, सूचना या इजिला देने के लिए वैद्य रूप से आबद्ध व्यक्ति द्वारा लोक सेवक को सूचना या इत्तिला देने का लोप, मिथ्या इथिला देना शपथ या प्रतिभूति से इन्कार करना, प्रश्न करने के लिए प्राधिकृत लोक सेवक को उत्तर देने से इंकार करना कथन पर हस्ताक्षर करने से इन्कार करना, शपथ दिलाने या प्रतिभूति कराने के लिए प्राधिकृत लोक सेवक के या व्यक्ति के समक्ष शपथ या प्रतिभूति पर मिथ्या कथन, इस आशय से मिथ्या इत्तिला देना की लोक सेवक अपनी विधिपूर्ण शक्ति का उपयोग दूसरे व्यक्ति की क्षति करने के लिए करें, लोक सेवक के विधिपूर्ण

प्राधिकार द्वारा सम्पत्ति के लिए जाने का प्रतिरोध, लोक सेवक के प्राधिकार द्वारा विक्रय के लिए प्रस्थापित की गई सम्पत्ति के विक्रय में बाधा उपस्थित करना, लोक सेवक के प्राधिकार द्वारा विक्रय के लिए प्रस्थापित की गई सम्पत्ति का अवैध क्रय या उसके लिए अवैध बोली लगाना, लोक सेवक के लोक कृत्यों के निर्वहन में बाधा डालना, लोक सेवक की सहायता करने का लोप, जबकि सहायता देने के लिए विधि द्वारा आबद्ध हो, लोक सेवक द्वारा सम्यक् रूप से प्रख्यापित आदेश की अवज्ञत, लोक सेवक को क्षति करने की धमकी, लोक सेवक से संरक्षा के लिए आवेदन करने से विरत रहने के लिए किसी व्यक्ति को उत्पेरित करने के लिए क्षति की धमकी आदि विभिन्न आपराधिक कृत्यों को दण्डनीय बनाया गया है।

11.13 मिथ्या साक्ष्य एवं लोक न्याय सम्बन्धी अपराध

साक्ष्य न्यायिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है एवं साक्ष्य की शुद्धता एवं पवित्रता एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। मिथ्या साक्ष्य देना, मिथ्या साक्ष्य गढ़ना, मिथ्या साक्ष्य के गम्भीर रूप, मिथ्या साक्ष्य का प्रयोग, साक्ष्य का लोप करना, मिथ्या सूचना देना, मिथ्या प्रतिरूपण करना, न्यायालय की कार्यवाही का दुरूपयोग करना अपराध का मिथ्या आरोप, अपराधियों का छिपाना एवं आश्रय देना, विधिपूर्ण ढंग से पकड़े जाने में प्रतिरोध करना, न्यायालय का अवमान एवं लोक सेवकों द्वारा विधि-विरूद्ध कार्य आदि ऐसे आपराधिक कृत्य है, जिन्हें दण्डनीय बनाया गया है।

11.14 सिक्कों व सरकारी स्टाम्पों सम्बन्धी अपराध

सिक्का एक धातु का टुकडा है जो धन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है और जो इस प्रकार प्रयुक्त होने के लिए किसी राज्य या सम्प्रभु शक्ति के प्राधिकार द्वारा मुद्रांकित और प्रचलित किया जाता है। जो सिक्का भारत सरकार द्वारा मुद्रांकित और प्रचलित किया जाता है, भारतीय सिक्का कहलाता है। सिक्के या भारतीय सिक्के का कूटकरण सिक्के या भारतीय सिक्के के कूटकरण के लिए उपकरण बनाना या बेचना, सिक्के या भारतीय सिक्के के भारत से बाहर कूटकरण का भारत में दुष्प्रेरण, कूटकृत सिक्के का आयात या निर्यात, भारतीय सिक्के की कूटकृतियों का आयात या निर्यात, सिक्के या उस भारतीय सिक्के का परिदान जिसका कूटकृत होना, कब्जे में आने के समय इग्नत था, कूटकृत सिक्के पर ऐसे व्यक्ति का कब्जा भारतीय सिक्के पर ऐसे व्यक्ति का कब्जा, टकसाली कर्मचारियों द्वारा सिक्के के वजन के उस वजन या मिश्रण के वजन से भिन्न किया जाना जो विधि द्वारा नियत है, टकसाल से सिक्का बनाने का उपकरण विधि विरूद्ध रूप से लेने एवं सिक्को के परिवर्तन, कपटपूर्वक या बेईमानी से सिक्के तथा भारतीय सिक्के का वजन कम करना या मिश्रण परिवर्तित करना ताकि वह भिन्न प्रकार के सिक्के या भारतीय सिक्के के रूप में चल जाए, किसी व्यक्ति द्वारा सिक्के या भारतीय सिक्के पर कब्जा जो उसका परिवर्तित होना उस समय जानता था जब वह उसके कब्जे में आया, सिक्के या भारतीय सिक्के का असली सिक्के के रूप में परिदान, सरकारी स्टाम्प का कूटकरण सरकारी स्टाम्प के कूटकरण के लिए उपकरण या सामग्री कब्जे में रखना, सरकारी स्टाम्प के कूटकरण के लिए उपकरण बनाना या बेचना, कूटकृत सरकारी स्टाम्प का विक्रय, सरकारी कूटकृत स्टाम्प को कब्जे में रखना, किसी सरकारी स्टाम्प को कूटकृत जानते हुए उसे असली स्टाम्प के रूप में उपयोग में लाना, इस आशय से कि सरकार को हानि कारित हो, उस पदार्थ पर से जिस पर सरकारी स्टाम्प लगा हुआ है, लेख मिटाना या दस्तावेज से वह स्टाम्प हटाना जो उसके लिए उपयोग में लाया गया है, ऐसे सरकारी स्टाम्प का उपयोग जिसके बारे में ज्ञात है कि उसका पहले उपयोग हो चुका है, स्टाम्प

के उपयोग किये जा चुकने के द्योतक चिह्न को छीलकर मिटाना आदि विभिन्न आपराधिक कृत्यों को दण्डनीय बनाया गया है।

11.15 बाटों और मापों सम्बन्धी अपराध

साधारणत: व्यापारी वर्ग अपने ग्राहकों को कम वस्तुयें देने के उद्देश्य से गलत माप व तोल के उपकरणों का सहारा लेते है। तौलने के लिए खोटे उपकरणों के कपटपूर्वक उपयोग, खोटे बाट या माप का कपटपूर्वक उपयोग, खोटे बाट या माप को कब्जे में रखने, खोटे बाट या माप को बनाने या बेचने आदि के कृत्यों को दण्डनीय बनाया गया है।

11.16 लोक स्वास्पय, क्षेम, सुविधा. शिष्टता और सदाचार सम्बन्धी अपराध

लोक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले अपराध लोक अपदूषण अथवा बाधा, ऐसे कार्य जिनमें संक्रमण फैलने की सम्भावना हो, खाद्य अथवा पेय पदार्थो में अपमिश्रण, औषधियों में अपमिश्रण एवं जल तथा वायुमण्डल को दूषित करने, ऐसे आपराधिक कृत्य जो संकट पूर्ण रोग या संक्रमण को फैलाने वाले हो, खाद्य एवं पेय पदार्थो के अपमिश्रण, विक्रय के लिए आशयित खाद्य या पेय का अपमिश्रण एवं अपायकर खाद्य या पेय के विक्रय, औषधियों के मिश्रण, अपमिश्रित औषधियों के विक्रय, औषधि के भिन्न औषधि या निर्मिति के तौर पर विक्रय, लोक जलस्त्रोत या जलाशय के जल को कलुषित करने, वायुमण्डल को स्वास्थ्य के लिए अपायकर बनाने आदि के आपराधिक कृत्यों के सम्बन्ध में भी विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये है। लोक क्षेम का अर्थ है सार्वजनिक सुरक्षा। इस प्रकार के कृत्य लोक मार्ग पर उतावलेपन से वाहन चलाना या हाँकना, जलयान का उतावलेपन से चलाना, भ्रामक प्रकाश चिह्न, अक्षे या अति लदे हुए जलयान में भाडे के लिए जलमार्ग से किसी व्यक्ति का प्रवहण, लोक मार्ग या नौपरिवहन पथ में संकट या बाधा, विषैले पदार्थ के सम्बन्ध में उपेक्षापूर्वक आचरण, अग्नि या ज्वलनशील पदार्थ के सम्बन्ध में उपेक्षापूर्ण आचरण, विस्फोटक पदार्थ के बारे में उपेक्षापूर्ण आचरण, मशीनरी के सम्बन्ध में उपेक्षापूर्ण आचरण, किसी निर्माण को गिराने या उसकी मरम्मत करने के सम्बन्ध में उपेक्षापूर्ण आचरण, जीव जन्तु के सम्बन्ध में उपेक्षापूर्ण आचरण आदि लोक क्षेम के आपराधिक कृत्य है जिन्हें दण्डनीय बनाया गया है।

11.17 शिष्टता और सदाचार सम्बन्धी अपराध

यदि किसी व्यक्ति के ऐसे कार्य से शिष्टता और सदाचार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो उसे अपराध की श्रेणी में रखा जाता है। सामान्य रूप से विधि के अन्तर्गत वे सभी अभिव्यक्तियां, चाहे वे लिखित हों या मौखिक, अथवा चाहे वे संकेत आदि के प्रदर्शन हों जो सामान्य मस्तिष्क वाले व्यक्तियों के नैतिक स्तर को निम्न करती हैं,'अश्लील' मानी जाती है। अश्लील पुस्तकों आदि के विक्रय तरूण व्यक्ति को अश्लील वस्तुओं के विक्रय, लोक स्थान में अश्लील कार्य और गाने आदि के कृत्यों को दण्डनीय बनाया गया है। इसी तरह लॉटरी जो एक प्रकार जुआ है लोकनीति के विरूद्ध होने के कारण इसे भी दण्ड संहिता के अधीन दण्डनीय बनाया गया है।

11.18 धर्म सम्बन्धी अपराध

यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करता है अथवा उसके धार्मिक विश्वास को ठेस पहुँचाता है तो उसे कानून के अन्तर्गत पण्डित किया जा सकता है। किसी

वर्ग के धर्म का अपमान करने के आशय से उपासना के स्थान को क्षति कारित करने या अपवित्र करने, विमर्शित और विद्वेषपूर्ण कार्य जो किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करके उसकी धार्मिक भावनाओं को आहत करने, धार्मिक जमाव में विथ्व करने, कब्रस्तानों आदि में अतिचार करने तथा धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के विमर्शित आशय से शब्द उच्चारित करने आदि के कृत्यों को धार्मिक अपराध माना गया है तथा इन अपराधों के लिए विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये हैं।

11.19 मानव शरीर सम्बन्धी अपराध

मानव शरीर की रक्षा से अभिप्राय उसके उसके शरीर को साधारण चोट से लगाकर हत्या तक से सुरक्षित रखना है। मानव शरीर के विरूद्ध किये जाने वाले अपराधों में मानव वध सबसे गम्भीर अपराध है। मानव वध दो प्रकार का हो सकता है, विधि पूर्ण मानव वध एवं अविधि पूर्ण मानव वध। अविधि पूर्ण मानव वध के अन्तर्गत, आपरकिक मानव वध जो हत्या नहीं है, हत्या, उपेक्षा द्वारा मानव वध, आत्महत्या आदि है। मानव वध से अभिप्राय है मानव कृत्य द्वारा मृत्यु कारित करना है, जो विधि द्वारा दण्डनीय है। हत्या आपराधिक मानव वध का ही एक गम्भीर रूप है। आपराधिक मानव वध - किसी व्यक्ति द्वारा मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिससे मृत्यु कारित हो जाना संभाव्य हो, या यह ज्ञान रखते हुए कि यह सम्भाव्य है कि वह उस कार्य से मृत्यु कारित कर दे, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करना है, आपराधिक मानव वध कहलाता है। आपराधिक मानव वध हत्या है यदि वह कार्य, जिसके द्वारा मृत्यु कारित की गई हो, मृत्यु कारित करने के आशय से किया गया हो, अथवा वह कार्य ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो जिसे अपराधी जानता हो कि उस व्यक्ति की मृत्यु कारित करना सम्भाव्य है जिसको वह अपहानि कारित की गई है, अथवा वह किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो जो प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो, अथवा कार्य करने वाला व्यक्ति यह जानता हो कि वह कार्य इतना आसन्नसंकट है कि यह पूरी अधिस्मभाव्यता है कि वह मृत्यु कारित कर ही देगा या ऐसी शारीरिक क्षति कारित कर ही देगा जिससे मृत्यु कारित होना सम्भाव्य है। आपाराधिक मानव वध हत्या नहीं है यदि हत्या का कृत्य गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन के कारण अथवा निजी सुरक्षा के अधिकार के प्रयोग के कारण अथवा लोक सेवक द्वारा अपनी शक्ति के प्रयोग में अतिरेक प्रयोग में अथवा अचानक लड़ाई में अथवा सहमति द्वारा मृत्यु के कृत्य से किया गया है।

सामान्यत: मृत्यु अथवा हत्यायें आशय पूर्वक एवं जानबूझ कर की जाती है परन्तु कभी-कभी किसी व्यक्ति की मृत्यु अनायास उपेक्षा एवं असावधानी से कारित हो जाती है इसे उपेक्षा द्वारा मानव वध कहा जाता है। वर्तमान में दहेज मृत्यु का अपराध गम्भीर प्रकृति का अपराध है। दहेज मृत्यु के अपराध के लिए मुख्य रूप से दो बातें आवश्यक है पहला दहेज की माँग किया जाना तथा दूसरा ऐसी माँग को लेकर स्त्री की मृत्यु से ठीक पूर्व तक यातना दिया जाना। दहेज मृत्यु के अतिरिक्त शिशु या उन्मत्त व्यक्ति की आत्म हत्या का दुष्प्रेरण, हत्या का प्रयास आपराधिक मानव वध का प्रयास, आत्म हत्या का प्रयास आदि कृत्यों को भी दण्डनीय बनाया गया है।

गर्भपात, जन्म को छिपाना एवं शिशुओं को अरक्षित छोड़ना आदि

विधि पूर्ण विवाह से गर्भ धारण करना एवं बच्चे को जन्म देना हर माता का अधिकार है परन्तु कई बार कई कारणों से मातायें अपने गर्भ को या तो समाप्त कराने का प्रयास करती है या बच्चों को या जन्म को छुपाने या असुरक्षित छोड़ देने का प्रयास करती है। इस प्रकार के अपराध गर्भपात करवाने, अजन्मे बच्चे को क्षति पहुँचाने, बच्चे को अरक्षित छोड़ देने तथा बच्चे के जन्म को छिपाने आदि हैं जिन्हें दण्डनीय बनाया गया है।

उपहति या चोट

मानव शरीर पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न अपराधों में उपहति या चोट भी है, यह उपहति साधारण अथवा गम्भीर हो सकती है। जो कोई किसी व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा, रोग या अंग-शैथिल्य कारित करता है, वह साधारण उपहति करता है। यदि ऐसी उपहति द्वारा पुंस्लहरण, दोनों में से किसी भी नेत्र की दृष्टि का स्थायी विच्छेद, दोनों में से किसी भी कान की श्रवणाशक्ति का स्थायी विच्छेद, किसी भी अंग या जोड़ का विच्छेद, किसी भी अंग या जोड़ की शक्तियों का नाश या स्थायी हास, सिर या चेहरे का स्थायी विद्रूपीकरण, अस्थि या दाँत का भंग या विसंधान कोई उपहति जो जीवन को संकटापन्न करती है या जिसके कारण उपहत व्यक्ति बीस दिन तक तीव्र शारीरिक पीड़ा में रहता है या अपने मामूली कामकाज को करने के लिए असमर्थ रहता है गम्भीर उपहति कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को इस आशय से करता है कि तद्द्वारा वह किसी व्यक्ति को उपहति या गम्भीर कारित करेगा या इस ज्ञान के साथ करता है कि वह सम्भाव्य है कि वह तद्द्वारा किसी व्यक्ति को उपहति कारित करेगा, वह''स्वेच्छया उपहति या गम्मीर कारित करता है।

स्वेच्छया उपहति कारित करने, खतरनाक आयुधों या साधनों द्वारा स्वेच्छया उपहति कारित करने स्वेच्छया गम्भीर उपहति कारित करने, खतरनाक आयुधों या साधनों द्वारा स्वेच्छया गम्भीर उपहति कारित करने, सम्पत्ति उद्पादित करने के लिए या अवैध कार्य कराने को मजबूर करने के लिए स्वेच्छया उपहति कारित करने, अपराध करने के आशय से विष इत्यादि द्वारा उपहति कारित करने, सम्पत्ति उद्दापित करने के लिए या अवैध कार्य कराने को मजबूर करने के लिए स्वेच्छया गम्भीर उपहति कारित करने, संस्वीकृति उद्दापित करने या विवश करके सम्पत्ति का प्रत्यावर्तन करने के लिए स्वेच्छया उपहति कारित करने, संस्वीकृति उददापित करने के लिए या विवश करके सम्पत्ति का प्रत्यावर्तन कराने के लिए स्वेच्छया गम्भीर उपहति कारित करने, लोक सेवक को अपने कर्त्तव्य से भयोपरत करने के लिए स्वेच्छया उपहति तथा गम्भीर उपहति कारित करने, उपहति कारित करने, प्रकोपन पर स्वेच्छया उपहति कारित करने, प्रकोपन पर स्वेच्छाया गम्भीर उपहति कारित करने, ऐसे कार्य जिससे दूसरों का जीवन या वैयक्तिक क्षेम संकटापन्न हो, ऐसे कार्य द्वारा उपहति कारित करना, जिसमें दूसरों का जीवन या वैयक्तिक क्षेम संकटापन्न हो जाये आदि विभिन्न कृत्यों को दण्डनीय बनाया गया है।

सदोष अवरोध एवं सदोष परिरोध

भारत के नागरिकों को स्वतंत्र रूप से भ्रमण करने का अधिकार है परन्तु यदि कोई व्यक्ति उसके इस अधिकार में किसी प्रकार का अवरोध पैदा करता है तो वह भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध करता है। यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को स्वेच्छया ऐसे बाधा डालता है कि उस व्यक्ति को उस दिशा मे, जिसमें उस व्यक्ति को जाने का अधिकार है, जाने से निवारित कर दें, वह उस व्यक्ति का सदोष अवरोध करता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति का इस प्रकार सदोष अवरोध करता है कि उस व्यक्ति को निश्चित परिसीमा से परे जाने से निवारित कर दे, वह उस व्यक्ति का सदोष परिरोध' करता है। सदोष अवरोध एवं सदोष परिरोध एवं तीन या अधिक दिनों के लिए सदोष परिरोध, दस या अधिक दिनों के लिए सदोष परिरोध, ऐसे व्यक्ति का सदोष परिरोध, जिसके छोडने के लिए रिट निकल चुका है, गुप्त स्थान में सदोष परिरोध, सम्पत्ति उददापित करने के लिए या अवैध कार्य करने के लिए मजबूर करने के लिए सदोष परिरोध, संस्वीकृति उददापित करने के लिए या विवश करके सम्पत्ति का प्रत्यावर्त्तन करने के लिए सदोष परिरोध के रनष्कध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये हैं।

आपराधिक बल एवं हमला

मानव शरीर के विरूद्ध किये जाने वाले अपराधों में आपराधिक बल एवं हमले का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी व्यक्ति द्वारा अन्य किसी व्यक्ति पर उस व्यक्ति की सम्मति के बिना किसी अपराध को करने के लिए या उस व्यक्ति को, जिस पर बल का प्रयोग किया जाता है, क्षति, भय या क्षोभ कारित करने के आशय से बल प्रयोग करना आपराधिक बल का प्रयोग करना कहलाता है। किसी व्यक्ति द्वारा कोई अंगविक्षेप या कोई तैयारी इस आशय से की जाती है या यह सम्भाव्य जानते हुए की जाती है कि ऐसे अंगविक्षेप या ऐसी तैयारी करने से किसी उपस्थित व्यक्ति को यह आशंका उत्पन्न कर देता है कि ऐसा अंगविक्षेप या तैयारी द्वारा वह उस व्यक्ति पर आपराधिक बल का प्रयोग करने ही वाला है, वह हमला करता है। गम्भीर प्रकोपन होने से अन्यथा हमला करने या आपराधिक बल का प्रयोग करने के लिए, लोक सेवक को अपने कर्त्तव्य के निर्वहन से भयोपरत करने के लिए हमला या आपराधिक बल का प्रयोग, स्त्री की लज्जा भंग करने के आशय से उस पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग, गम्भीर प्रकोपन होने से अन्यथा किसी व्यक्ति का अनादर करने के आशय से उस पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग, किसी व्यक्ति द्वारा ले जाई जाने वाली सम्पत्ति की चोरी के प्रयत्नों में हमला या आपराधिक बल का प्रयोग, किसी व्यक्ति का सदोष परिरोध करने के प्रयत्नों में हमला या आपराधिक बल का प्रयोग, गम्भीर प्रकोपन मिलने पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग आदि विभिन्न प्रकार के आपराधिक कृत्यों के लिए दण्ड के प्रावधान किये गये है।

व्यपहरण एवं अपहरण व्यपहरण का शाब्दिक अर्थ बाल चोरी होता है। यह व्यपहरण दो प्रकार का हो सकता है -

भारत में से व्यपहरण-जो कोई किसी व्यक्ति का, उस व्यक्ति की, या उस व्यक्ति की ओर से सम्मति देने के लिए वैध रूप से प्राधिकृत किसी व्यक्ति की सम्मति के बिना भारत की सीमाओं से परे प्रवहण कर देता है, वह भारत में से उस व्यक्ति का व्यपहरण करता है।

विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण-

जो कोई किसी अप्राप्तव्य को, यदि वह नर हो, तो सोलह वर्ष से कम आयु वाले को, या यदि वह नारी हो तो, अठारह वर्ष से कम आयु वाली को या किसी विकृतचित्त व्यक्ति को, ऐसे अप्राप्तवय या विकृतचिल व्यक्ति के विधिपूर्ण संरक्षक की संरक्षकता में से ऐसे संरक्षक की सम्मति के बिना ले जाता है या बहका ले जाता है, वह ऐसे अप्राप्तवय या ऐसे व्यक्ति का विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण करता है।

अपहरण -

अपहरण के लिए दो शर्तो का पूरा किया जाना आवश्यक है, किसी व्यक्ति को किसी स्थान से जाने के लिए बाध्य किया जाना या उत्पेरित किया जाना एवं ऐसे बाध्यता एवं उतेरण में बल या छल पूर्वक साधनों का प्रयोग किया जाना है। अपहरण का अपराध एक निरन्तर चलने वाला अपराध है। अपहरण किसी भी आयु के व्यक्ति का किया जा सकता है। अपहरण में बल या छल का प्रयोग आवश्यक है। अपहरण एवं व्यपहरण के गम्भीर रूप भीख माँगने के प्रयोजन के लिए अप्राप्तवय का व्यपहरण या विकलागीकरण हत्या करने के लिए व्यपहरण या अपहरण, मुक्ति धन के लिए व्यपहरण, किसी व्यक्ति का गुप्त रीति से और सदोष परिरोध करने के आशय से व्यपहरण या अपहरण, विवाह आदि के करने को विवश करने के लिए किसी स्त्री को व्यपहृत या अपृहत करने या उत्पेरित करने, अप्राप्तवय लड़की का उपापन विदेश से लड़की का आयात करने, व्यक्ति को गम्भीर उपहति दासत्व आदि का विषय बनाने के उद्देश्य से व्यपहरण या अपहरण, व्यपहृत या अपहृत व्यक्ति को सदोष छिपाने या परिरोध में रखने, दस वर्ष से कम आयु के शिशु पर से चोरी करने के आशय से उसका व्यपहरण

या अपहरण, दास के रूप में किसी व्यक्ति के खरीदने या व्यय करने, दासों का आभ्यासिक व्यवहार करने, वेश्या वृत्ति आदि के प्रयोजन के लिए अप्राप्तवय को बेचने, वेश्या वृत्ति आदि के प्रयोजन के लिए अप्राप्तवय का खरीदने विधि विरूद्ध अनिवार्य श्रम आदि आपराधिक कृत्यों के सम्बन्ध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये है।

बलात्कार :-

मानव शरीर के प्रति किये जाने वाले अपराधों में बलात्कार को एक घृणित अपराध माना गया है। बलात्कार मानव अधिकारों के विरूद्ध अपराध है इससे जीने के अधिकार का अतिलंघन होता है।

बलात्संग -

जो पुरूष किसी स्त्री के साथ निम्नलिखित छः परिस्थितियों में से किसी परिस्थिति में मैथुन करता है वह पुरूष'बलात्संग करता है- 1. उस स्त्री की इच्छा के विरूद्ध 2. उस स्त्री की सम्मति के बिना 3. उस स्त्री की सम्मति से, जबकि उसकी सम्मति, उसे या ऐसे किसी व्यक्ति को, जिससे वह हितबद्ध है, मृत्यु या उपहति के भय में डाल कर अभिप्राप्त की गई है, 4. उस स्त्री की सम्मति से, जबकि वह पुरूष यह जानता है कि वह उस स्त्री का पति नहीं है और उस स्त्री ने सम्मति इसलिए दी है कि वह विश्वास करती है कि वह ऐसा पुरूष है कि जिससे वह विधिपूर्वक विवाहित है या विवाहित होने का विश्वास करती है। 5. उस स्त्री की सम्मति से, जब ऐसे सम्मति देने के समय वह विकृतचित्तता या मलता के या किसी संइग़ शून्यकारी या अस्वास्थ्यकर पदार्थ उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से दिये जाने के कारण, उस बात की, जिसके बारे में वह सम्मति देती है, प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ है। 6. उस स्त्री की सम्मति से या बिना सम्मति के जबकि वह सोलह वर्ष से कम आयु की है। बलात्संग के अपराध के लिए आवश्यक मैथुन गठित करने के लिए प्रवेशन पर्याप्त है। यदि कोई पुरूष अपनी पत्नी के साथ भी जिसकी आयु पन्द्रह वर्ष से कम है मैथुन करता है तो वह बलात्कार का दोषी है। बलात्सग पुलिस अधिकारी द्वारा, लोक सेवक द्वारा या अस्पताल के प्रबन्धक या कर्मचारी होते हुए या गर्भवती महिला के साथ या सामूहिक बलात्संग करने के लिए कठोर कारावास के प्रावधान किये गये है। इसी तरह पृथक् रहने के दौरान किसी पुरूष द्वारा अपनी पत्नी के साथ संभोग, लोक सेवक द्वारा अपनी अभिरक्षा में किसी स्त्री के साथ संभोग, जेल, प्रतिप्रेषण-गृह आदि के अधीक्षक द्वारा संभोग, अस्पताल के प्रबंध या कर्मचारीवृन्द आदि के किसी सदस्य द्वारा उस अस्पताल में किसी स्त्री के साथ संभोग आदि के आपराधिक कृत्यों के सम्बन्ध में कठोर दण्ड के प्रावधान किये गये है। प्रकृति विरूद्ध अपराध - किसी पुरूष, स्त्री या जीवजन्तु के साथ प्रकृत्ति की व्यवस्था के विरूद्ध स्वेच्छया इन्द्रियभोग करना अप्राकृतिक अपराध कहलाता है। यह लैंगिक अपराध इस शृंखला में दूसरा घृणित अपराध है इस प्रकार का अपराध 1. पशु के साथ 2. पुरूष, पुरूष के साथ 3. स्त्री के साथ पुरूष के भांति लैंगिक सम्भोग है।

11.20 सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध

सम्पत्ति के विरूद्ध विभिन्न निम्न अपराध जो भारतीय दण्ड संहिता में वर्णित किये गये है वो इस प्रकार :

चोरी- किसी व्यक्ति के कब्जे में से, उस व्यक्ति की सम्मति के बिना, कोई जंगम सम्पत्ति बेईमानी से ले लेने के आशय से हटाना चोरी कहलाता है। चोरी, निवास गृह आदि में चोरी, लिपिक या सेवक द्वारा स्वामी के कब्जे की सम्पत्ति की चोरी, चोरी करने के लिए मृत्यु, उपहति या अवरोध कारित करने की तैयारी के पश्चात् चोरी आदि के सम्बन्ध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये हैं।

उद्दापन-जब कोई किसी स्वयं उस व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को कोई क्षति करने के भय में सशया डालता है, और एतद्द्वारा इस प्रकार भय में डाले गए व्यक्ति को, कोई सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुद्रांकित कोई चीज, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सके, किसी व्यक्ति को परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्पेरित करता है, वह' उद्दापन' करता है। उद्दापन करने के लिए किसी व्यक्ति को क्षति के भय में डालने, किसी व्यक्ति को मृत्यु या घोर उपहति के भय में डालकर उद्दापन करने के लिए किसी व्यक्ति को मृत्यु या घोर उपहति के भय में डालना, मृत्यु या आजीवन कारावास, आदि से दण्डनीय अपराध का अभियोग लगाने की धमकी देकर उद्दापन, उददापन करने, किसी व्यक्ति को अपराध का अभियोग लगाने के भय में डालने आदि के सम्बन्ध में उद्दापन के लिए विभिन्न दण्डों का प्रावधान किया गया है।

लूट- सब प्रकार की लूट में या तो चोरी या उद्दापन होता है। चोरी' लूट'' है, यदि उस चोरी को करने के लिए, या उस चोरी के करने में या उस चोरी द्वारा अभिप्राप्त सम्पत्ति को ले जाने या ले जाने का प्रयत्न करने में, अपराधी उस उद्देश्य से स्वेच्छया किसी व्यक्ति की मृत्यु, या उपहति या उसको सदोष अवरोध या तत्काल मृत्यु का, या तत्काल उपहति का, या तत्काल सदोष अवरोध का भय कारित करता है या कारित करने का प्रयत्न करता है। उददापन''लूट'' है, यदि अपराधी वह उद्दापन करते समय भय में डाले गये व्यक्ति की उपस्थिति में है, और उस व्यक्ति को स्वयं उसका या किसी अन्य व्यक्ति की तत्काल मृत्यु या तत्काल उपहति का तत्काल सदोष अवरोध के भय में डालकर उद्यापन करता है और इस प्रकार भय में डालकर भय में डाले गये व्यक्ति को उद्दापन की जाने वाली चीज उसी समय और वहाँ ही परिदत्त करने के लिए उत्पेरित करता है। अपराधी का उपस्थित होना कहा जाता है, यदि वह उस अन्य व्यक्ति को तत्काल मृत्यु के, तत्काल उपहति के, या तत्काल सदोष अवरोध के भय में डालने के लिए पर्याप्त रूप से निकट हो।

डकैती-जब पाँच या अधिक व्यक्ति संयुक्त होकर लूट करते है या करने का प्रयत्न करते हैं या जहाँ कि वे व्यक्ति, जो संयुक्त होकर लूट करते हैं, या करने का प्रयत्न करते है और वे व्यक्ति जो उपस्थित हैं और ऐसे लूट के किए जाने या ऐसे प्रयत्न में मदद करते हैं, कुल मिलाकर पाँच या अधिक हैं, तब हर व्यक्ति जो इस प्रकार लूट करता है, या उसका प्रयत्न करता है या उसमें मदद करता है, वह''डकैती'' करता है, लूट करने के प्रयत्न, लूट करने में स्वेच्छया उपहति कारित करने, डकैती, हत्या सहित डकैती, मृत्यु या घोर उपहति कारित करने के प्रयत्न के साथ लूट या डकैती, घातक आयुध से सज्जित होकर लूट या डकैती करने का प्रयत्न, डकैती करने के लिए तैयारी करना, डाकुओं की टोली का होने के लिए, चोरों की टोली का होने के लिए, डकैती करने के प्रयोजन से एकत्रित होना में विभिन्न दण्डों के प्रावधान संहिता में किये गये हैं। सम्पत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोग दण्डनीय अपराध है ऐसी सम्पत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोग जो मृत व्यक्ति की मृत्यु के समय उसके कब्जे में थी, के दण्ड के सम्बन्ध में प्रावधान किये गये है।

आपराधिक न्यासमंग-जो कोई सम्पत्ति या सम्पत्ति पर कोई भी अखतीयक किसी प्रकार अपने को न्यस्त किये जाने पर उस सम्पत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोग कर लेता है, या उसे अपने उपयोग में संपरिवर्तित कर लेता है, या जिस प्रकार ऐसा न्यास निर्वहन किया जाना है, उसको विहित करने वाली विधि के किसी निर्देश का, या ऐसे न्यास के निर्वहन के बारे में उसके द्वारा की गई किसी अभिव्यक्त या विवक्षित वैद्य संविदा का अतिक्रमण करके बेईमानी से उस सम्पत्ति का उपयोग या व्ययन करता है, या जान बूझकर किसी अन्य व्यक्ति का ऐसा करना सहन करता है, वह''आपराधिक न्यासभंग'' करता है। आपराधिक न्यासभंग, वाहक आदि द्वारा, लिपिक या सेवक द्वारा, लोक सेवक

द्वारा या बैंकर, व्यापारी या अभिकर्ता द्वारा किये गये आपराधिक न्यासभंग के सम्बन्ध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये हैं।

चुराई हुई सम्पत्ति-वह सम्पत्ति, जिसका कब्जा चोरी या उददापन या लूट या आपराधिक दुर्विनियोग या आपराधिक न्यासभंग द्वारा किया गया है,''चुराई हुई सम्पत्ति'' कहलाती है, चाहे वह अन्तरण हो या वह दुर्विनियोग या न्यासभंग भारत के भीतर किया गया हो या बाहर। चुराई हुई सम्पत्ति को बेईमानी से प्राप्त करना भी दण्डनीय बनाया गया है। ऐसी सम्पत्ति को बेईमान से प्राप्त करना जो डकैती करने में चुराई गई है, चुराई हुई सम्पत्ति का अभ्यासतः व्यापार करना, चुराई हुई सम्पत्ति छिपाने में सहायता करना आदि के सम्बन्ध विभिन्न दण्डों के प्रावधान संहिता में किये गये हैं।

छल-जो कोई किसी व्यक्ति से प्रवंचना कर उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रवचित किया गया है कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्पेरित करता है कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त कर दे, या यह सम्मन्ति दे कि कोई व्यक्ति किसी सम्पत्ति को रखे या साशय उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रवचित किया गया है उत्पेरित करता है कि वह ऐसा कोई कार्य करे, या करने का लोप करे जिसे वह यदि उसे इस प्रकार प्रवचित न किया गया होता तो, न करता, या करने का लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शारीरिक मानसिक, ख्याति सम्बन्धी या सांपत्तिक नुकसान या अपहानि कारित होती है, या कारित होनी संभाव्य है,''छल'' करता है, छल, प्रतिरूपण द्वारा, छल के लिए, इस ज्ञान के साथ छल करने कि उस व्यक्ति को सदोष हानि हो सकती है जिसका हित संरक्षित रखने के लिए अपराधी आबद्ध है, प्रतिरूपण द्वारा छल के लिए, छल करके और संपत्ति परिदत्त करने के लिए बेईमानी से किसी व्यक्ति को उत्पेरित करके कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त कर दे, या किसी भी मूल्यवान प्रतिभूति को, या किसी चीज को, जो हस्ताक्षरित या मुद्रांकित है, और जो मूल्यवान प्रतिभूति में संपरिवर्तित किए जाने योग्य है, पूर्णतः या अंशतः रच दे, परिवर्तित कर दे, या नष्ट कर दे, के सम्बन्ध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये हैं।

रिष्टि-जो कोई इस आशय से, या यह सम्भाव्य जानते हुए कि, वह लोक को या किसी व्यक्ति को सदोष हानि या नुकसान कारित करे, किसी सम्पत्ति का नाश या किसी सम्पत्ति में या उसकी स्थिति में ऐसी तब्दीली कारित करता है, जिससे उसका मूल्य या उपयोगिता नष्ट या कम हो जाती है या उस पर क्षतिकारक प्रभाव पड़ता है,' रिष्टि' करता है। रिष्टि जिससे पचास रूपए का नुकसान होता है, दस रूपये के मूल्य के जीव जन्तु को वध करने से या उसे विकलांग करके, किसी मूल्य के ढेर, आदि को या पचास रूपय के मूल्य के किसी जीव जन्तु को वध करके या उसे विकलांग करके, सिंचन संकर्म को क्षति करके या जल को दोषपूर्वक मोड़ के, लोक सड़क पुल, नदी या जलसरणी को क्षति पहुँचाकर, लोक जल निकास में नुकसानप्रद जल प्लावन या बाधा कारित करके किसी दीपगृह या समुद्री चिंह को नष्ट करके हटाकर या कम उपयोगी बनाकर, लोक प्राधिकारी द्वारा लगाए एक भूमि चिन्ह के नष्ट करके या हटाकर, सौ रूपए का या (कृषि उपज की दशा में) दस रूपए का नुकसान का रित करके, अग्नि या विस्फोटक पदार्थ गृह आदि को नष्ट करने के आशय से, अग्नि या विस्फोटक पदार्थ द्वारा तल्लायुक्त या बीस टन बोझ वाले जलयान को नष्ट करके या सापद बना के, जलयान को साशय भूमि या किनारे पर चढ़ा देने के लिए, मृत्यु या उपहति कारित करने की तैयारी के पश्चात् की गई रिष्टियो के सम्बन्ध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये हैं।

आपराधिक अतिचार-जो कोई किसी ऐसी सम्पत्ति में या ऐसी सम्पत्ति पर, जो किसी दूसरे के कब्जे में है, इस आशय से प्रवेश करता है कि वह कोई अपराध करे या किसी व्यक्ति को, जिसके

कब्जे में ऐसी सम्पत्ति है, अभित्रस्त, अपमानित या क्षुब्य करें, अथवा ऐसी सम्पत्ति में या ऐसी सम्पत्ति पर, विधिपूर्वक प्रवेश करके वही विधिविरूद्ध रूप में इस आशय में बना रहता है कि तद्द्वारा वह किसी ऐसे व्यक्ति को अभित्रस्त, अपमानित या क्षुब्ध करे या इस आशय से बना रहता है कि वह कोई अपराध करे, वह'अपराधिक अतिचार' करता है।

गृह-अतिचार-जो कोई किसी निर्माण, तम्बू या जलयान में, जो मानव-निवास के रूप में उपयोग में आता है, या किसी निर्माण में, जो उपासना-स्थान के रूप में, या किसी सम्पत्ति की अभिरक्षा के स्थान के रूप में उपयोग में आता है, प्रवेश करके या उसमें बना रह कर, आपराधिक अतिचार करता है, वह'गृह-अतिचार' करता है। आपराधिक अतिचार करने वाले व्यक्ति के शरीर के किसी भाग का प्रवेश गृह-अतिचार गठित करने के लिए पर्याप्त प्रवेश है। प्रच्छत्र गृह-अतिचार-जो कोई यह पूर्व सावधानी बरतने के पश्चात् गृह-अतिचार करता है कि ऐसे गृह-अतिचार को किसी ऐसे व्यक्ति से छिपाया जाए जिसे उस निर्माण, तम्बू या जलयान में से, जो अतिचार का विषय है, अतिचारी को अपवर्जित करने या बाहर कर देने का अधिकार है, वह'प्रच्छत्र गृह-अतिचार' करता है।

रात्रों प्रच्छत्र गृह-अतिचार-जो कोई सूर्यास्त के पश्चात् और सूर्योदय से पूर्व प्रच्छत्र गृह-अतिचार करता है, वह रात्रों प्रच्छत्र गृह-अतिचार' करता है।

गृह भेदन- जो व्यक्ति राह-अतिचार करता है, वह 'गृह-भेदन' करता है, यदि वह उस गृह में या उसके किसी भाग में वर्णित छह तरीकों में से किसी तरीके से प्रवेश करता है अथवा यदि वह उस गृह में या उसके किसी भाग में अपराध करने के प्रयोजन से होते हुए या वहाँ अपराध कर चुकने पर, उस गृह से या उसके किसी भाग से ऐसे छह तरीकों में से किसी तरीके से बाहर निकलता है, अर्थात-पहला-यदि वह ऐसे रास्ते से प्रवेश करता है यहा बाहर निकलता है जो स्वयं उसने या उस गृह-अतिचार से किसी दुष्प्रेरक ने वह गृह-अतिचार करने के लिए बनाया है। दूसरा-यदि वह किसी ऐसे रास्ते से, जो उससे या उस अपराध के दुष्प्रेरक से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा मानव प्रवेश के लिए आशयित नहीं है, या किसी ऐसे रास्ते से, जिस तक कि वह किसी दीवार या निर्माण पर सीढी द्वारा अन्यथा चढ़कर पहुँचा है, प्रवेश करता या बाहर निकलता है। तीसरा-यदि वह किसी ऐसे रास्ते से प्रवेश करता है या बाहर निकलता है जिसका उसने या उस गृह-अतिचार के किसी दुष्प्रेरक ने वह गृह-अतिचार करने के लिए किसी ऐसे साधन द्वारा खोला है, जिसके द्वारा उस रास्ते का खोला जाना उस राह के अधिभोगी द्वारा आशयित नहीं था। चौथा-यदि उस गृह-अतिचार को करने के लिए, या गृह-अतिचार के पश्चात् उस राह से निकल जाने के लिए वह किसी ताले को खोलकर प्रवेश करता या बाहर निकलता है। पाँचवाँ-यदि वह आपराधिक बल के प्रयोग या हमले या किसी व्यक्ति पर हमला करने की धमकी द्वारा अपना प्रवेश करता है या प्रस्थान करता है। छठी-यदि वह किसी ऐसे रास्ते से प्रवेश करता है या बाहर निकलता है जिसके बारे में वह जानता है कि ऐसे प्रवेश या प्रस्थान को रोकने के लिए बन्द किया हुआ है और अपने द्वारा या उस गृह अतिचार के दुष्प्रेरक के द्वारा खोला गया है। कोई उपगृह या निर्माण जो किसी गृह के साथ-साथ अधिभोग में है, और जिसके और ऐसे गृह के बीच आने-जाने का अव्यवहित भीतरी रास्ता है, इस धारा के अर्थ के अन्तर्गत उस राह का भाग है।

रत्रौ गृह भेदन-जो कोई सूर्यास्त के पश्चात् और सूर्योदय से पूर्व गृह भेदन करता है वह रत्रौ गृह-भेदन' करता है। आपराधिक अतिचार, गृह अतिचार, मृत्यु से दण्डनीय अपराध को करने के लिए गृह अतिचार, आजीवन कारावास से दण्डनीय अपराध को करने के लिए गृह अतिचार, कारावास से दण्डनीय अपराध को करने के लिए गृह अतिचार, उपहति हमला या सदोष अवरोध की तैयारी के पश्चात् गृह अतिचार, प्रच्छत्र गृह अतिचार या गृह भेदन के लिए, कारावास से दण्डनीय अपराध करने के लिए

प्रच्छन्न गृह अतिचार या गृह भेदन, उपहति हमले या सदोष अवरोध की तैयारी के पश्चात् प्रच्छन्न गृह अतिचार या गृह भेदन, सत्रों प्रच्छन्न गृह अतिचार या रत्रौ गृह भेदन के लिए, कारावास से दण्डनीय अपराध करने के लिए रात्रौ प्रच्छन्न गृह अतिचार या रात्रौ गृह भेदन, उपहति हमला या सदोष अवरोध की तैयारी के पश्चात् रत्रौ प्रच्छन्न गृह अतिचार, प्रच्छन्न गृह अतिचार या राह भेदन करते समय घोर उपहति कारित हो, रात्रौ प्रच्छन्न गृह अतिचार या रत्रौ गृह भेदन में संयुक्तत: सम्का समस्त व्यक्ति दण्डनीय है, जबकि उनमें से एक द्वारा मृत्यु या घोर उपहति कारित की हो, ऐसे पात्र को, जिसमें सम्पत्ति है, बेईमानी से तोड़कर खोलना आदि के सम्बन्ध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये है।

11.21 दस्तावेजों और सम्पत्ति चिह्नों सम्बन्धी अपराध

कूट रचना-जो कोई मिथ्या दस्तावेज या इलैक्ट्रॉनिक रिकार्ड की रचना करता है या मिथ्या दस्तावेज या इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के किसी भाग का निर्माण इस आशय से करता है कि उससे कोई क्षति या नुकसान कारित हो, या किसी दावे या हक का समर्थन किया जाये, या यह कारित किया जाये कि कोई व्यक्ति संपत्ति अलग करे या कोई अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा करे या इस आशय से रचता है कि कपट करे या कपट किया जा सके, वह कूटरचना करता है।

मिथ्या दस्तावेज रचना-एक व्यक्ति कोई मिथ्या दस्तावेज निर्माण करता है जो प्रथम - बेईमानी या धोखा से क. दस्तावेज या दस्तावेज के किसी भाग को रचित, हस्ताक्षरित, मुद्रांकित या निष्पादित करता है। ख. किसी इलैक्ट्रॉनिक रिकार्ड या उसके किसी भाग का निर्माण या पारेषण करता है। ग. कोई इलेक्ट्रोनिक हस्ताक्षर या इलैक्ट्रॉनिक रिकार्ड जोडता है। घ. दस्तावेज निष्पादन या इलेक्ट्रोनिक हस्ताक्षर की परिशुद्धता के निष्पादन में कोई निशान इस आशय से बनाता है कि इस दस्तावेज को विश्वास करने का कारण हो अथवा दस्तावेज या इलेक्ट्रॉनिक रिकार्ड जिस पर हस्ताक्षर निर्मित हो एवं जो सीलयुक्त निष्पादित पारेषित अथवा किसी व्यक्ति के प्राधिकार द्वारा रचित मुद्रांकित या निष्पादित नहीं हुआ था।

द्वितीय-जो किसी दस्तावेज इलैक्ट्रॉनिक रिकार्ड के किसी तात्विक भाग में परिवर्तन उसके द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, चाहे ऐसा व्यक्ति ऐसे परिवर्तन के समय जीवित यो या नहीं उस दस्तावेज या इलैक्ट्रॉनिक रिकार्ड के रचित या निष्पादित किये जाने के पश्चात् उसे रइ करने द्वारा या अन्यथा विधिपूर्वक प्राधिकार के बिना बेईमानी से या कपट पूर्वक करता है, अथवा तृतीय-जो किसी व्यक्ति द्वारा यह जानते हुए कि ऐसा व्यक्ति किसी दस्तावेज की विषय वस्तु को या इलैक्ट्रॉनिक रिकार्ड को या इलैक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर में परिवर्तन के रूप को चित्त विकृति या मत्तता की हालत में होने के कारण जान नहीं सकता या उस प्रवंचना के कारण जो उससे की गई है, जानता नहीं है, उस दस्तावेज का बेईमानी से या कपटपूर्वक हस्ताक्षरित, मुद्रांकित, निष्पादित या परिवर्तित किया जाना कारित करता है। न्यायालय के अभिलेख की या लोक रजिस्टर आदि की कूटरचना, मूल्यवान प्रतिभूति, विल, इत्यादि की कूटरचना, छल के प्रयोजन से कूटरचना, ख्याति को अपहानि पहुंचाने के आशय से कूटरचना आदि अपराधों के सम्बन्ध में विभिन्न दण्डों का प्रावधान किया गया है।

कूटरचित दस्तावेज - वह मिथ्या दस्तावेज या इलैक्ट्रॉनिक रिकार्ड जो पूर्णत: या भागत: कूटरचना द्वारा रचा गया है,''कूटरचित दस्तावेज या इलैक्टॉनिक रिकार्ड'' कहलाती है, कूटरचित दस्तावेज का असली रूप में उपयोग में लाना, कूटरचना करने के आशय से कूटकृत मुद्रा, आदि का बनाना या कब्जे में रखना, अन्यथा कूटरचना करने के आशय से कूटकृत मुद्रा, आदि का बनाना या कब्जे में रखना, कूटरचित जानते हुए और उसे असली के रूप में उपयोग में लाने का आशय रखते

हुए, कब्जे में रखने दस्तावेजों के अधि प्रमाणीकरण के लिए उपयोग में लाई जाने वाली अभिलक्षण या चिह की कूटकृति बनाने या कूटकृत चिहयुका पदार्थ को कब्जे में रखने दस्तावेजों से भिन्न दस्तावेजों के अधिप्रमाणीकरण के लिए उपयोग में लाई जाने वाली अभिलक्षणा या चिह्न की कूटकृत चिहयुक्त पदार्थ को कब्जे में रखने, बिल, दताकग्रहण, प्राधिकार पत्र या मूल्यवान प्रतिभूति को कपटपूर्वक रद्द, नष्ट आदि करने, लेखा का मिथ्याकरण आदि के सम्बन्ध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये है।

सम्पत्ति चिड्नों और अन्य चिह्नों सम्बन्धी अपराध

सम्पत्ति चिह्न:- वह चिंह जो यह द्योतन करने के लिए उपयोग में लाया जाता है कि जंगम सम्पत्ति किसी विशिष्ट व्यक्ति की है, सम्पत्ति चिह्न कहा जाता है। मिथ्या सम्पत्ति चिंह को उपयोग में लाना, मिथ्या सम्पत्ति चिह्न का उपयोग करने के लिए दण्ड, अन्य व्यक्ति द्वारा उपयोग में लाए गए सम्पत्ति चिंह का कूटकरण लोक सेवक द्वारा उपयोग में लाए गए चिंह का कूटकरण सम्पत्ति चिंह के कूटकरण के लिए कोई उपकरण बनाना या उस पर कब्जा, कूटकृत सम्पत्ति चिह्न से चिन्हित माल का विक्रय, किसी ऐसे पात्र के ऊपर मिथ्या चिंह बनाना जिसमें माल रखा है, किसी ऐसे मिथ्या चिड को उपयोग में लाने के लिए दण्ड, क्षति कारित करने के आशय से सम्पत्ति चिह्न हो बिगाडना आदि विभिन्न आपराधिक कृत्यों के सम्बन्ध में दण्ड के प्रावधान किये गये हैं।

करेंसी, नोटों और बैंक नोटों से सम्बन्धित आपराधिक कृत्यों - अर्थात करेन्सी नोटों या बैंक नोटों का कूटकरण कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों को असली के रूप में उपयोग में लाना, कूटरचित या कूटकृत करेन्सी नोटों या बैंक नोटों को कब्जे में रखना, करेन्सी नोटों या बैंक नोटों की कूटरचना या कूटकरण के लिए उपकरण या सामग्री बनाना या कब्जे में रखना, करेन्सी नोटों या बैंक नोटों से सदृश्य रखने वाली दस्तावेजों की रचना या उपयोग आदि के सम्बन्ध में विभिन्न दाण्डिक प्रावधान बनाये गये हैं। असहाय व्यक्ति की परिचर्या करने की और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की संविदा भंग करने सम्बन्धी कृत्य को अपराध बनाया गया है।

11.22 विवाह सम्बन्धी अपराध

भारतीय दण्ड संहिता में विवाह सम्बन्धी अपराधों के संबंध दण्ड के प्रावधान किये गये हैं -

1. मिथ्या अथवा प्रवंचक विवाह अर्थात विधिपूर्ण विवाह का प्रवंचना से विश्वास उत्पेरित करने वाले पुरूष द्वारा कारित सहवास,
2. द्विविवाह से अभिप्राय है एक पति या पत्नी के जीवित रहते किसी अन्य व्यक्ति से विवाह करना है इस अपराध को गठित होने के लिए दो बातों की पूर्ति अपेक्षित है- 1. द्वितीय विवाह के समय प्रथम पति अथवा पत्नी का अस्तित्व में होना अर्थात जीवित होना, एवं 2. द्वितीय विवाह इस कारण शून्य होना कि वह विधि के अनुसार प्रथम पति या पत्नी के जीवन काल में किया गया है।
3. जारकर्म जो कोई ऐसे व्यक्ति के साथ, जो कि किसी अन्य पुरूष की पत्नी है, और जिसका किसी अन्य पुरूष की पत्नी होना वह जानता है या विश्वास करने का कारण रखता है, उस पुरूष की सम्मति या मौनानुकूलता के बिना ऐसा मैथुन करेगा जो बलात्संग के अपराध की कोटि में नहीं आता, वह जारकर्म के अपराध का दोषी होगा, जारकर्म के अपराध के लिए स्त्री को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।
4. आपराधिक सहपलायन अर्थात विवाहित स्त्री को आपराधिक आशय से फुसलाकर ले जाना या निरूद्ध रखना तथा

5. किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करना दण्डनीय बनाया गया है''क्रूरता'' से अभिप्रेत है- की जान-बुझकर किया गया कोई आचरण जो ऐसी प्रकृति का है, जो स्त्री को आत्महत्या करने के लिए या उसके जीवन, अंग या स्वास्थ्य को जिससे चाहे मानसिक हो या शारीरिक हो के प्रति गम्भीर क्षति या खतरा कारित करने के लिए उसे प्रेरित करने की सम्भावना है, या ख. किसी स्त्री को तंग करना, जहाँ उसे या उससे सम्बन्धित किसी व्यक्ति को किसी सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूइत के लिए किसी विधिविरूद्ध माँग को पूरी करने के लिए प्रपीडित करने की दृष्टि से या उसके अथवा उससे संबंधित किसी व्यक्ति के- ऐसे माँग पूरी करने में असफल रहने के कारण इस प्रकार तंग किया जाना।

11.23 मानहानि

हर व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए उद्यत रहता है। यदि कोई भी व्यक्ति उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाता है तो वह दण्डनीय माना जाता है क्योंकि प्रतिष्ठा के पीछे ही उसका सारा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास निहित रहता है।

मानहानि - जो कोई बोले गये या पढे जाने के लिए आशयित शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा किसी व्यक्ति के बारे में कोई लांछन इस आशय से लगाता या प्रकाशित करता है कि ऐसे लांछन से ऐसे व्यक्ति की ख्याति की अपहानि की जाये या यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए लगाता या प्रकाशित करता है, मानहानि करता है। किसी मृत व्यक्ति को कोई लांछन लगाना मानहानि की कोटि में आ सकेगा यदि वह लांछन उस व्यक्ति की ख्याति की, यदि वह जीवित होता, अपहानि करता, और उसके परिवार या अन्य निकट सम्बन्धियों की भावनाओं को उपहत करने के लिए आशयित हो। किसी कम्पनी या संगम या व्यक्तियों के समूह के सम्बन्ध में उसकी वैसी हैसियत में कोई लांछन लगाना मानहानि की कोटि में आ सकेगा। अनुकल्प के रूप में, या व्यंगोक्ति के रूप में अभिव्यक्ति लांछन मानहानि की कोटि में आ सकेगा। कोई लांछन किसी व्यक्ति की ख्याति की अपहानि करने वाला नहीं कहा जाता जब तक कि वह लांछन दूसरों की दृष्टि में प्रत्यक्षत: या अप्रात्यक्षत: उस व्यक्ति के सदाचारिक या बौद्धिक स्वरूप को हेय न करे या उस व्यक्ति की जाति के या उसकी आजीविका के सम्बन्ध में उसके शील को हैय न करे या उस व्यक्ति की साख को नीचे न गिराये या यह विश्वास न कराये कि उस व्यक्ति का शरीर मृणोत्पादक दशा में है या ऐसी दशा में है जो साधारण रूप से निकृष्ट समझी जाती है। उपर्युक्त प्रावधानों के सम्बन्ध में विभिन्न ऐसे अपवाद हैं जिन परिस्थितियों में उपर्युक्त कृत्य मानहानि नहीं माने जा सकते।

1. सत्य बात का लांछन जिसका लगाया जाना या प्रकाशित किया जाना लोक कल्याण के लिए अपेक्षित है।
2. लोक सेवकों का लोकाचरण।
3. किसी लोक प्रश्न के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति का आचरण।
4. न्यायालयों की कार्यवाहियों की रिपोर्टो का प्रकाशन।
5. न्यायालय में विनिश्चित मामले के गुणागुण या साक्षियों तथा संप्रक्त अन्य व्यक्तियों का आचरण।
6. लोक कृति के गुणागुण
7. किसी अन्य व्यक्ति के ऊपर विधिपूर्ण प्राधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा सद्भावपूर्वक की गई परनिन्दा।
8. प्राधिकृत व्यक्ति के समक्ष सद्भावपूर्वक अभियोग लगाना।

9. अपने या अन्य के हितों की संरक्षा के लिए किसी व्यक्ति द्वारा सद्भावपूर्वक लगाया गया लांछन।
10. सावधानी, जो उस व्यक्ति की भलाई के लिए, जिसे कि वह दी गई है या लोक कल्याण के लिए आशयित है। मानहानि के लिए, मानहानि कारक जानी हुई बात को मुद्रित या उत्कीर्ण करने, मानहानि कारक विषय रखने वाले मुद्रित या उत्कीर्ण पदार्थ को बेचने आदि के संबंध में विभिन्न दण्डों के प्रावधान किये गये हैं।

11.24 आपराधिक अभित्रास

जो कोई किसी अन्य व्यक्ति के शरीर, ख्याति या सम्पत्ति को, या किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर या ख्याति को, जिससे कि वह व्यक्ति हितबद्ध हो को कोई क्षति करने की धमकी उस अन्य व्यक्ति को इस आशय से देता है कि उसे संत्रास कारित किया जाए, या उससे ऐसी धमकी के निष्पादन का परिवर्जन करने के साधन स्वरूप कोई ऐसा कार्य कराया जाये, जिसे करने के लिए वह वैध रूप से आबद्ध न हो, या किसी ऐसे कार्य को करने का लोप कराया जाए, जिसके करने के लिए वह वैध रूप हकदार हो, वह आपराधिक अभित्रास करता है। किसी ऐसे मृत व्यक्ति की ख्याति को क्षति करने की धमकी, जिससे वह व्यक्ति जिसे धमकी दी गई है, हितबद्ध हो, इस धारा के अन्तर्गत आता है, लोकशांति भंग करने को प्रकोपित करने के आशय से साशय अपमान, लोक रिष्टिकारक वक्तव्य, विभिन्न वर्गो में शत्रुता, घृणा या वैमनस्य पैदा या सम्प्रवर्तित करने वाले कथन, पूजा के स्थान आदि में किया गया अपराध, यदि अभित्रास धमकी मृत्यु या घोर उपहति इत्यादि कारित करने का हो, अनाम संसूचना द्वारा आपराधिक अभित्रास, व्यक्ति को यह विश्वास करने के लिए उत्पेरित करके कि वह दैवीय प्रसाद या भोजन होगा कराया गया कार्य, शब्द, अंग विक्षेप या कार्य जो किसी स्त्री की लज्जा का अनादर करने के लिए आशयित है, मत्त व्यक्ति द्वारा लोकस्थान में अवचार आदि के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के दण्डों के प्रावधान किये गये हैं।

11.25 अपराध का प्रयत्न

प्रत्येक अपराध की पूर्णता के लिए तीन प्रक्रमों से होकर गुजरना होता है-योजना अर्थात् आशय, तैयारी एवं प्रयत्न। प्रयत्न अपराध की पूर्णता का चरम बिन्दु है। भारतीय दण्ड संहिता में अपराधों के प्रयत्न करने के लिए दण्ड का प्रावधान किया गया है। सामान्यत: आशय एवं तैयारी दण्डनीय नहीं है परन्तु 1. भारत सरकार के विरूद्ध युद्ध की तैयारी करना 2. भारत के साथ शान्तिपूर्ण व्यवहार रखने वाले राष्ट्र में आतंक मचाने की तैयारी करना 3. जाली सिक्के बनाने की तैयारी करना। 4. डकैती की तैयारी करना। भा.द.सं. के प्रावधानों के अधीन दण्डनीय है। आपराधिक षड्यंत्र के अपराध में केवल आशय भी दण्डनीय माना गया है।

11.26 सारांश

समाज में शान्ति एवं व्यवस्था बनायें रखना राज्य का कर्त्तव्य है और अपने इस कर्त्तव्य के निर्वहन एवं अपराधों के नियन्त्रण के लिए भारतीय दण्ड संहिता में उपर्युक्त वर्णित विभिन्न अपराधों एवं उनके लिए विभिन्न दण्डों का प्रावधान किया गया है, ताकि अपराधियों को समुचित रूप से दण्डित किया जा सके तथा अपराधों का निवारण किया जा सके।

11.27 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय दण्ड संहिता के विस्तार संबंधी प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
2. साधारण अपवादों से आप क्या समझते है?
3. दण्ड सम्बन्धी विभिन्न प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
4. दुष्प्रेरण एवं आपराधिक षड्यंत्र सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
5. सदोष मानव वध व हत्या सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
6. अपहरण एवं व्यपहरण सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
7. बलात्कार से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
8. चोरी, उद्दापन, लूट एवं डकैती सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
9. आपराधिक अतिचार एवं गृह अतिचार सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
10. विवाह सम्बन्धी अपराधों का वर्णन कीजिए?
11. कूट रचना सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
12. मानहानि से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए?

11.28 सन्दर्भ ग्रंथ

1. भारतीय दण्ड संहिता द्वारा रतन लाल धीरज लाल
2. भारतीय दण्ड संहिता द्वारा डॉ. बसन्ती लाल बाबेल
3. भारतीय दण्ड संहिता द्वारा टी. भट्टाचार्य

इकाई - 12

मानव शरीर को प्रभावित करने वाले अपराध

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 मानव शरीर को प्रभावित करने वाले अपराध
12.3 मानव जीवन के प्रति अपराध
12.4 सदोष मानव हत्या
12.5 हत्या
12.6 हत्या के लिए सजा
12.7 सदोष मानव हत्या, (जो कि हत्या नहीं मानी जाती) के लिए सजा
12.8 लापरवाही के कारण मृत्यु का कारण बनने पर सजा
12.9 सारांश
12.10 अभ्यास प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- मनुष्य के शरीर और संपत्ति को प्रभावित करने वाले अपराधों की प्रकृति और संभावना व उनमें से हरेक के लिए तय की गई दंड की व्यवस्था से परिचित हो सकेंगे।
- ऐसे प्रयासों और उनके लिए दिए गए दंड के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मानव जीवन के प्रति अपराध व सदोष हत्या के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हत्या और हत्या के लिए सजा सम्बन्धित प्रावधानों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

किसी भी समाज में मनुष्य के शरीर और उसकी संपत्ति को प्रभावित करने वाले अपराध सबसे ज्यादा पाए जाते हैं। इनमें से कुछ तो प्रकृति में अत्यंत जघन्य होते हैं और उनके लिए उन्हीं के अनुरूप कठोर दंड भी दिया जाता है।

मानव शरीर को नुकसान पहुंचाने वाले अपराध प्रकृति में संपत्ति को नुकसान पहुंचाने वाले अपराधों से अलग होते है। इसीलिए, दोनों तरह के अपराध के लिए भारतीय दंड संहिता के अलग अध्यायों में व्यवस्था दी गई है। इनके तहत न केवल इन अपराधों की परिभाषा तय की गई है, बल्कि इनमें से प्रत्येक के लिए दंड भी नियत किया गया है।

12.2 मानव शरीर को प्रभावित करने वाले अपराध

भारतीय दंड संहिता का अध्याय 16 मानव शरीर को नुकसान पहुंचाने वाले अपराधों से संबंधित है। इस अध्याय को भी विभिन्न भागों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग अलग प्रकार के अपराध से संबंध रखता है। सामान्य तौर पर कहें तो मानव शरीर को नुकसान पहुंचाने वाले अपराधों को दो मुख्य भागों में बांटा जा सकता है यथा (अ) मानव जीवन के खिलाफ अपराध (ब) मानव शरीर के खिलाफ अपराध।

12.3 मानव जीवन के प्रति अपराध

भारतीय दंड संहिता की धारा 299 से 318 मानव के जीवन को नुकसान पहुंचाने वाले अपराधों से संबंधित है। इसमें इन अपराधों को शामिल किया गया है. -

(1) सदोष मानव हत्या (धारा 299,301 और 304)

(2) हत्या (धारा 300,303)

(3) लापरवाही के चलते दूसरे की मृत्यु का कारण बनना (धारा 304ए)

(4) दहेज के लिए हत्या (धारा 304बी)

(5) आत्महत्या के लिए उकसाना (धारा 305-306)

(6) कोशिश (हत्या के प्रयास, सदोष मानव हत्या अथवा आत्महत्या) (धारा 307-309)

(7) ठगी, लूटमार, बटमारी के लिए (धारा 310 व 311)

(8) गर्भपात का कारण बनने अथवा बच्चे को क्षति पहुंचाने (धारा 312-318)

12.4 सदोष मानव हत्या

एक व्यक्ति के किसी दूसरे व्यक्ति को मारने को मानव हत्या की संज्ञा दी जाती है। हालांकि एक हत्या इनमें से कुछ भी हो सकती है

(अ) कानूनी

(ब) गैरकानूनी

(अ) कानूनी हत्या किसी व्यक्ति के ऐसे कृत्य के परिणामस्वरूप दूसरे व्यक्ति की मौत हो जाना है, जिसे इस तथ्य के कारण अपराध नहीं माना जाता है, क्योंकि इस कृत्य को भारतीय दंड संहिता की धारा चार अथवा किसी अन्य प्रभावी कानून के तहत अपवाद माना गया हो और वह किसी अविवेकपूर्ण अथवा लापरवाही भरे कृत्य का परिणाम न हो।

(ब) गैरकानूनी मानव हत्या में सदोष मानव हत्या, अविवेकपूर्ण और लापरवाही भरे कृत्य से मानव की हत्या और आत्महत्या को शामिल किया गया है। सदोष शब्द का अर्थ है जिसके लिए दोषी ठहराया जा सकें अथवा अन्य शब्दों में कहें तो प्रकृति से आपराधिक।

सदोष मानव हत्या के अपराध की व्याख्या भारतीय दंड संहिता की धारा 299 के तहत की गई है। विश्लेषण के बाद सदोष मानव हत्या के ये घटक सामने आते हैं : -

1. मृत्यु का कारण एक कृत्य हो -

(अ) इरादे के साथ इसका कारण बनना -

(i) हत्या अथवा

(ii) ऐसी शारीरिक चोटें, जिनके मृत्यु का कारण बनने की संभावना हो। अथवा

(ब) जानकारी के साथ ऐसा कृत्य करना, जो मृत्यु का कारण बन सकता है।

2. सदोष मानव हत्या करना

यहां याद रखना चाहिए कि इसमें ये उपादान होने चाहिए -

(अ) (I) और (II) इसमें इरादे की शर्त हो

(ब) इसमें जानकारी की शर्त का उपयोग किया गया हो। इस प्रकार इस अपराध को साबित करने के लिए दोषी मानसिकता का उपादान महत्वपूर्ण है।

धारा तीन व्याख्याएं उपलब्ध कराती हैं, जिन्हें दिमाग में रखा जाना भी जरूरी है। ये इस प्रकार हैं. -

(1) एक व्यक्ति,. जो दूसरे को शारीरिक क्षति पहुंचाने का कारण बनता है, वह किसी विकार, बीमारी और शारीरिक अशक्तता का शिकार हो और इसीलिए दूसरे की मृत्यु का कारण बना हो, उसे पता होना चाहिए कि वह उसकी मृत्यु का कारण बन रहा है।

(2) जहाँ मृत्यु शारीरिक रूप से घायल होने के चलते हुई हो, इस शारीरिक रूप से घायल होने का कारण बनने वाले को पता होना चाहिए कि यह मृत्यु का कारण बन सकता है, यद्यपि आखिर में समुचित इलाज और दवाइयों का सहारा लेकर मृत्यु को टाला जा सकता हो।

(3) मां के गर्भ में पल रहे शिशु की मृत्यु का कारण बनने को सदोष नहीं माना जाता, लेकिन एक जीवित शिशु की मृत्यु का कारण बनने को सदोष मानव हत्या माना जा सकता है, यदि उसका कोई भी अंग बाहर आ चुका हो, यद्यपि बच्चा चाहे सांस न ले रहा हो और पूरी तरह जन्म ले चुका हो।

12.5 हत्या

हत्या यह सदोष मानव हत्या से भी ज्यादा संगीन माना जाता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 300 हत्या की तय करती है। इस परिभाषा को इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है -

एक सदोष मानव हत्या को हत्या माना जाता है -

अ) यदि मृत्यु का कारण बनने वाला कृत्य इनका कारण बनने के इरादे से किया गया हो-

(i) हत्या अथवा

(ii) शरीर को इस प्रकार का नुकसान पहुंचाना

(ए) जैसे हमलावर को पता हो कि वह व्यक्ति को जिस प्रकार का नुकसान पहुंचा रहा है, वह उसकी मृत्यु का कारण बन सकता है अथवा

(बी) जिस कृत्य से सामान्य तौर पर किसी व्यक्ति की मृत्यु हो सकती हो

(ब) यदि हमलावर - जानता हो कि जिस कृत्य के कारण से मृत्यु हुई है, वह बेहद खतरनाक है और यह कि इसका कारण बनने की पूरी संभावना है :-

(I) मृत्यु अथवा

(II) ऐसी गंभीर चोटें पहुंचना, जिनके मृत्यु का कारण बनने की संभावना हो और

(स) बिना किसी कारण के इस प्रकार के जोखिम भरे कृत्य के लिए उत्तरदायी होना।

यह धारा पांच अपवाद भी बताती है। यानी कि यह बताती है कि इन पांच तरह की परिस्थितियों में सदोष मानव हत्या का कृत्य हत्या नहीं माना जाता किसी विशेष केस में इन तय किए गए तथ्यों की उपस्थिति और अनुपस्थिति के आधार पर तय किया जाता है कि यह मामला हत्या का है अथवा इस सदोष मानव हत्या को हया नहीं माना जा सकता।

यदि हत्या का कारण बनने वाला कृत्य किया गया हो -

(i) बिना किसी पूर्वयोजना

(ii) अचानक हुए झगड़े के कारण

(iii) उन्माद की हालत में

(iv) हमलावर ने किसी प्रकार का अनुचित लाभ न उठाया हो या

(v) क्रूरतापूर्ण तरीके से न हो और असाधारण हो

(vi) भारतीय दंड संहिता के अध्याय चार में दिए गए अपवादों में से किसी की भी परिधि में नहीं आता हो अथवा

(vii) मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 में दिए गए किसी अपवाद की श्रेणी में आता हो, तो यह मामला सदोष मानव हत्या जो कि हत्या नहीं है का होगा।

धारा 300 के तहत दिए गए अपवादों में तय किया गया है कि यदि कोई कृत्य किया गया है -

(i) गहराई से प्रभाव डालने वाली किसी तत्काल उत्तेजना के कारण

(ii) अपने निजी बचाव के अधिकार के प्रयास में

(iii) किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने कर्त्तव्य के निर्वहन के समय

(iv) अचानक हुई किसी लड़ाई के दौरान

(v) पीड़ित व्यक्ति, उसके अभिभावक अथवा देखभाल करने वाले की सहमति से इन हालात में यह कृत्य हत्या नहीं, बल्कि सदोष मानव हत्या है, जो कि हत्या नहीं मानी जाएगी।

हत्या और सदोष मानव हत्या के बीच अंतर : आंध्र प्रदेश राज्य और पुनैथ्या ए.आई.आर 1977 एस.सी. 45 में कहा गया है कि एक सदोष मानव हत्या को मानव हत्या के समान मानने के लिए जरूरी नहीं है कि धारा 300 के तहत बताई गई सभी स्थितियां सभी केसों में उपस्थित हों। यदि इन चारों में से कोई एक स्थिति भी केस में उपस्थित हो तो भी पर्याप्त है।

इन दोनों ही धाराओं में कम या ज्यादा एक वसा शब्दावली और स्थितियां होती हैं, लेकिन हत्या का अपराध क्योंकि सदोष मानव हत्या से कहीं, ज्यादा संगीन होता है, इसलिए इसे स्थापित करने के लिए सदोष मानव हत्या से कहीं ज्यादा स्थितियों की जरूरत होती है।

किशोर सिंह व अन्य बनाम मध्य प्रदेश सरकार 1977 सर्वोच्च न्यायालय के मुकदमे (सीआरआई) 656 में कहा गया है कि सदोष मानव हत्या (धारा 299) और हत्या (धारा 300) के बीच अंतर करते समय यह बात दिमाग में ध्यानपूर्वक स्थापित करना जरूरी है कि जब धारा 302 के तहत हत्या के मामले में निर्णय दिया जाए तो गैरकानूनी मानव हत्या की श्रेणी में सदोष मानव हत्या जो हत्या है और सदोष मानव हत्या, जो हत्या नहीं है दोनों ही आते हैं। सदोष मानव हत्या, हत्या नहीं है, जबकि केस धारा 300 के तहत दिए गए चार अपवादों के तहत आता हो। यहां तक कि यदि किसी केस में ये चार अपवाद लागू नहीं होते और प्रथम दृष्टया इन्हें सबूतों में शामिल भी नहीं किया गया है तो भी अभियोजन पक्ष के लिए कानूनी तौर पर जरूरी है कि वह केस का धारा 300 के तहत दिए गए चार अपवादों के तहत परीक्षण कर हत्या का अभियोग जारी रखने पर निर्णय ले। यदि अभियोजन किसी मामले में धारा 300 में दिए गए इन चार अपवादों, पहले से चौथे को, को स्थापित करने का दायित्व वहन करने में अक्षम रहता है तो हत्या का केस नहीं बनेगा, बल्कि वह मामला सदोष मानव हत्या का होगा, जो कि धारा 299 के तहत हत्या नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न फैसलों के आधार पर धारा 299 और धारा 300 के बीच तुलना करते हुए इनकी शब्दावली के आधार पर इस टेबल से ज्यादा स्पष्ट समझा जा सकता है।

सदोष मानव हत्या (धारा 299)

एक व्यक्ति सदोष मानव हत्या करता है, जबकि दूसरे की मृत्यु का कारण बना कृत्य किया गया हो

(अ) इनका कारण बनने के उद्देश्य से

i) मृत्यु या

ii) शारीरिक रूप से घायल करने के उद्देश्य से, जो कि मृत्यु का कारण बन जाए या

(ब) इस जानकारी के साथ कि यह कृत्य दूसरे की मृत्यु का कारण बन सकता है।

मानव हत्या (धारा 300)

विभिन्न अपवादों के साथ, सदोष मानव हत्या हत्या है, जबकि मृत्यु का कारण बना कृत्य किया गया हो

(अ) इसका कारण बनने के उद्देश्य से

i) मृत्यु या

ii) शारीरिक रूप से घायल करना, जिसके बारे में हमलावर को पता हो कि जिस व्यक्ति को नुकसान पहुंचाया जा रहा है, वह उसकी मृत्यु का कारण बन सकता है।

iii) किसी व्यक्ति को इस प्रकार शारीरिक क्षति पहुंचाना, जो कि सामान्य तौर पर किसी व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त हो।

(ब) कृत्य इस जानकारी के साथ किया गया हो कि यह इस कदर खतरनाक सिद्ध हो सकता है

i) यह कि इसका परिणाम किसी भी तरह मृत्यु ही होगा।

ii) इस प्रकार की शारीरिक चोटें, जिनसे कि मृत्यु होने की संभावना हो अथवा

iii) बिना किसी कारण के अथवा खुद मृत्यु के लिए उत्तरदायी होना या इस प्रकार की चोटें पहुंचाना, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

यहां यह नोट करना चाहिए कि हमने इस प्रकार की स्थितियों का अध्ययन किया है, जहाँ हमलावर किसी व्यक्ति की मृत्यु का कारण उसकी हत्या के इरादे से बना है। हालांकि ऐसा भी मामला हो सकता है, जहाँ हमलावर किसी व्यक्ति. की हत्या करना चाहता हो, लेकिन कुछ ऐसी परिस्थितियों के चलते, जिन पर उसका कोई बस नहीं, वह किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु का कारण बन जाता है, जिसकी मृत्यु का कारण वह कभी नहीं बनना चाहता था। इन हालात में उसकी क्या जिम्मेदारी होगी? इस प्रश्न का उत्तर भारतीय दंड संहिता की धारा 301 में दिया गया है। इसमें कहा गया है कि यदि एक व्यक्ति ऐसा कोई कृत्य करता है, जिसके बारे में वह समझता है अथवा जानता है कि वह मृत्यु का कारण बन सकता है, तो किसी भी व्यक्ति की मृत्यु के लिए, वह सदोष मानव हत्या का दोषी होगा। जिसकी हत्या का उसका कोई इरादा नहीं था और न ही वह स्वयं जानता था कि इससे उसकी मृत्यु हो सकती है। हमलावर का कृत्य इस परिभाषा के तहत आता है कि वह कृत्य उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनेगा, जिसकी हत्या करने का उसका इरादा था और वह स्वयं जानता था कि यह इसका कारण बन सकता है।

इन हालात में भारतीय दंड संहिता की धारा 301 दुर्भावना के अंतरण की सुविधा देती है। उदाहरण के लिए ए निशाना बनाकर बी को मारने के उद्देश्य से गोली चलाता है, लेकिन उसका निशाना चूक जाता है और वह गोली सी को लगती है और उसकी मृत्यु हो जाती है, जिसे वह कभी भी मारना नहीं चाहता था। इस केस में यद्यपि, ए का सी को मारने का कोई इरादा नहीं था, इन हालात में यह कृत्य सदोष मानव हत्या का होगा जैसे कि उसका इरादा सी को मारने का होता लेकिन समान तरीके से जैसे वह बी को मारना चाहता था।

12.6 हत्या के लिए सजा

भारतीय दंड संहिता की धारा 302 हत्या करने वाले_ व्यक्ति के लिए निम्न सजाएं उपलब्ध कराती है :-

(अ) मृत्यु अथवा

(ब) आजीवन कारावास और

(स) जुर्माना

सीआरपीसी 1973 की धारा 354(3) अनुसार सजा देते समय यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सामान्य स्थितियों में मृत्यु के अलावा अन्य सजाएं दी जानी चाहिएं। मृत्यु की सजा दुर्लभ से दु र्लभतम मामले में दी जानी चाहिए।

भारतीय दंड संहिता की धारा 303 ऐसे व्यक्ति को मृत्यु की सजा देती है, जो आजीवन कारावास की सजा काट रहा हो और उसी दौरान किसी व्यक्ति की हत्या कर दे। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान की अनुच्छेद 14 और 21 का अतिक्रमण करने वाली बताते हु ए इस धारा पर रोक लगा दी है। कोर्ट ने विश्लेषण किया कि यह धारा आजीवन कारावास की सजा पाए लोगों को बिना की उचित आधार के एक अलग खतरनाक श्रेणी में रखती है, इसलिए यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। बाद में व्यवस्था दी गई कि यह धारा न्यायिक विचारशीलता का हनन करती है और एक ऐसा कानून बन जाती है, जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 और साथ में अनुच्छेद 14 को पढ़ा जाए तो उनके तात्पर्य के मुताबिक उचित और व्यावहारिक नहीं है।

इन कानूनी सुधारों के चलते सभी हत्या के मामलों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत ही निपटाया जाता है।

12.7 सदोष मानव हत्या, (जो कि हत्या नहीं मानी जाती) के लिए सजा

भारतीय दंड संहिता की धारा 304 सदोष मानव हत्या, जो कि हत्या नहीं मानी जाती के लिए सजा की व्याख्या करती है।

इस धारा के तहत दो प्रकार की स्थितियों का वर्णन किया गया है और उसी के मुताबिक सजा की व्यवस्था की गई है।

(1) यदि मृत्यु का कारण ऐसा कृत्य हो, जो कि मृत्यु का कारण बनने या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से किया गया हो, जो मृत्यु का कारण बन जाए तो इस प्रकार के कृत्य के लिए आजीवन कारावास अथवा दस साल तक के कारावास और जुर्माने की सजा दी जा सकती है।

(2) ऐसे मामलों में, जहाँ मृत्यु का कारण बना क्यू इस जानकारी के साथ किया गया हो कि इससे मृत्यु हो सकती है, लेकिन यहां मृत्यु का कारण बनने अथवा ऐसी शारीरिक क्षति पहुंचाने का कोई इरादा न हो, जो कि मृत्यु का कारण बने, इस धारा के तहत कारावास की व्यवस्था है। इस सजा को दस वर्ष और जुर्माने तक बढ़ाया जा सकता है। या साथ में जुर्माना नहीं भी लगाया जा सकता है।

यहां यह नोट करना चाहिए कि पहले भाग में हमले का मुख्य तत्व इरादा है और इसी के मुताबिक सजा को आजीवन कारावास और जुर्माने तक बढाया गया है। दूसरे भाग में मुख्य तत्व जानकारी है और यहां आजीवन कारावास की व्यवस्था नहीं की गई है। यहां सजा को दस वर्ष कारावास और जुर्माने तक बढाया जा सकता है और कारावास के साथ जुर्माना नहीं भी लगाया जा सकता है।

12.8 लापरवाही के कारण मृत्यु का कारण बनने पर सजा

भारतीय दंड संहिता की धारा 304ए लापरवाही और जल्दबाजी के चलते मृत्यु का कारण बनने पर सजा की व्यवस्था देती है। इस धारा के तहत वे मामले आते हैं, जो कि इरादे अथवा जानकारी के अभाव में हत्या अथवा सदोष मानव हत्या, जिसे हत्या नहीं माना जाता, की श्रेणी में नहीं आते।

इस धारा के तहत दो तरह के कृत्यों को शामिल किया गया है -

(i) ऐसा कृत्य, जो कि जल्दबाजी हो

(ii) ऐसा कृत्य, जो कि लापरवाही हो

इस धारा के प्रयोग के लिए दिए गए मामले में इनमें से किसी का होना जरूरी है। ऐसे भी मामले हो सकते हैं, जहाँ ये दोनों तथ्य हों, ऐसी स्थिति में भी यह धारा लागू होती है।

12.9 सारांश

भारतीय दंड संहिता का अध्याय 16 मानव शरीर को नुकसान पहुंचाने वाले अपराधों से संबंधित है। इस अध्याय को इसके बाद भी विभिन्न भागों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग अलग प्रकार के अपराध से संबंध रखता है। सामान्य तौर पर कहें तो मानव शरीर को नुकसान पहुंचाने वाले अपराधों को दो मुख्य भागों में बांटा जा सकता है यथा (अ) मानव जीवन के खिलाफ अपराध (ब) मानव शरीर के खिलाफ अपराध।

भारतीय दंड संहिता की धारा 299 से 318 मानव के जीवन को नुकसान पहुंचाने वाले अपराधों से संबंधित है। इसमें इन अपराधों को शामिल किया गया है

(1) सदोष मानव हत्या (धारा 299, 301 और 304)

(2) हत्या (धारा 300,303)

(3) लापरवाही के चलते दूसरे की मृत्यु का कारण बनना (धारा 304ए)

(4) दहेज के लिए हत्या (धारा 304बी)

(5) आत्महत्या के लिए उकसाना (धारा 305-306)

(6) कोशिश (हत्या के प्रयास, सदोष मानव हत्या अथवा आत्महत्या) (धारा 307-309)

(7) ठगी, लूटमार, बिमारी के लिए (धारा 310 व 311)

(8) गर्भपात का कारण बनने अथवा बच्चे को क्षति पहुंचाने (धारा 312-318)

भारतीय दंड संहिता की धारा 302 हत्या करने वाले व्यक्ति के लिए निम्न सजाएं उपलब्ध कराती है

(अ) मृत्यु अथवा

(ब) आजीवन कारावास और

(स) जुर्माना

सीआरपीसी 1973 की धारा 354(3) के मुताबिक, सजा देते समय यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सामान्य स्थितियों में मृत्यु के अलावा अन्य सजाएं दी जानी चाहिएं। मृत्यु की सजा दुर्लभ से दुर्लभतम मामले में दी जानी चाहिए।

इन कानूनी सुधारों के चलते सभी हत्या के मामलों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत ही निपटाया जाता है।

12.10 अभ्यास प्रश्न

1. मानव जीवन के खिलाफ अपराध व मानव शरीर के खिलाफ अपराधों की व्याख्या कीजिए।
2. सदोष मानव हत्या (धारा 299,301 व 304) की व्याख्या कीजिए।
3. सदोष मानव हत्या व मानव हत्या में अन्तर लिखिए।
4. हत्या के लिए सजा के विभिन्न प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
5. सदोष मानव हत्या, जो हत्या नहीं मानी जाती के लिए सजा के प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
6. लापरवाही के कारण मृत्यु का कारण बनाने पर सजा के प्रावधानों पर प्रकाश डालिए।

इकाई - 13

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 : एक अवलोकन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 तथ्यों की सुसंगति
13.3 न्याय - निर्णयन की सुसंगतता
13.4 अन्य व्यक्ति - मत की सुसंगतता
13.5 शील की सुसंगतता
13.6 सबूत के विषय
13.7 दस्तावेजों के बारे में उपधारणाये
13.8 सबूत का भार
13.9 विबन्ध
13.10 साक्षियों के विषय में
13.11 सारांश
13.12 अभ्यास प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- साक्ष्य विधि की भूमिका के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगे।
- साक्ष्य विधि के विभिन्न सिद्धान्तों एवं नियमों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सुसंगत तथ्य व विबाधक तथ्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वीकृतियां व सस्वीकृतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- दस्तावेजों के बारे में विभिन्न अवधारणाओं से अवगत हो सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

न्यायिक प्रणाली के प्रभावी रूप से कार्य करने में साक्ष्य विधि की भूमिका मुख्य होती है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 दिनांक 01 सितम्बर 1872 को प्रभावी हुआ है जिसका विस्तार जम्मु कश्मीर राज्य के अलावा सम्पूर्ण भारत पर है। यह अधिनियम किसी भी न्यायालय या किसी सेना न्यायालय के समक्ष समस्त न्यायिक कार्यवाहियों जिनका उद्देश्य एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति, या व्यक्तियों के समूह के बीच, या उसके और जन समुदाय के बीच विधिगत सम्बन्धों को अवधारित करना है, पर लागू होता है। यह अधिनियम निःशेषकारक नहीं है, ऐसे मामले आ ही जाते है, जिनके समाधान के लिए सामान्य विधि के सिद्धान्तों का आश्रय लेना पडता है। साक्ष्य अधिनियम तीन भागों में विभाजित है, प्रथम तथ्यों की सुसंगति, द्वितीय मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा तथ्यों के सबूत के उपबन्ध तथा तृतीय न्यायालय में साक्ष्य पेश करने के नियम, उपधाराणाओं के प्रभाव तथा साक्ष्य पर विचार करने के न्यायालय के कर्त्तव्य है। साक्ष्य विधि का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि सभी स्थिति में सर्वोत्तम साक्ष्य ही दिया जाना चाहिए।

13.2 तथ्यों की सुसंगति

साक्ष्य के नियमों में, सर्वाधिक स्पष्ट यह नियम है कि, जो भी साक्ष्य न्यायालय में प्रस्तुत किए जाते हैं; वह हर तरह से उन्हीं बातों की ओर निर्देशित और सीमित होना चाहिए जो विवादग्रस्त हो, या जो अन्वेषण का विषय हों। सुसंगत शब्द को साक्ष्य अधिनियम में दो सुभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है, पहला ग्राह्य साक्ष्य के रूप में तथा दूसरा सम्बन्धित होने के रूप में। साक्ष्य किसी वाद या कार्यवाही में जा सकते है। साक्ष्य अभिप्राप्त करने के ढंग का अभिप्राप्त साक्ष्य के आन्तरिक मूल्य से कोई सम्बंध नहीं होता। साक्ष्य शब्द की परिभाषा पूर्ण नहीं है। बहुत सी ऐसी बातें है जो इसमें शामिल नहीं है जिन के आधार पर न्यायिक विनिश्चय किए जाते है।

तथ्य

ऐसी कोई वस्तु, वस्तुओं की अवस्था, या वस्तुओं का सम्बन्ध जो इन्द्रियों द्वारा बोधगम्य हो, कोई मानसिक दशा, जिसका भान किसी व्यक्ति को हो, तथ्य कहलाता है।

सुसंगत तथ्य:- एक तथ्य दूसरे तथ्य से सुसंगत कहा जाता है जबकि तथ्यों की सुसंगति से सम्बन्धित इस अधिनियम के उपकधों में निर्दिष्ट प्रकारों में से किसी भी प्रकार से वह तथ्य उस दूसरे तथ्य से संसका हो।

विवाद्यक तथ्य :- ऐसा कोई भी तथ्य जिस अकेले ही से, या अन्य तथ्यों के संसर्ग, में किसी ऐसे अधिकार, दायित्व या निर्योग्यता के, जिसका किसी वाद या कार्यवाही में प्राख्यान या प्रत्याख्यान किया गया है, अस्तित्व, अनस्तित्व, प्रकृति या विस्तार की उत्पत्ति अवश्यमेव होती है, विवाद्यक तथ्य कहलाता है।

वे तथ्य जो तथ्य विवाद्यक न होते हुए भी किसी विवाद्यक तथ्य इस प्रकार संसक्त है कि वे एक ही संव्यवहार के भाग हैं, वे तथ्य सुसंगत हैं, यह प्रावधान'सम्बन्धित तथ्य और कार्य के सिद्धान्त पर आधारित है।

वे तथ्य जो सुसंगत तथ्यों के या विवाचक तथ्यों के अव्यवहित या अन्यथा प्रसंग, हेतुक या परिणाम है, या जो उस वस्तु स्थिति को गठित करते हैं जिसके अन्तर्गत वे घटित हुए हैं, सुसंगत हैं।

किसी वाद या कार्यवाही के किसी पक्षकार या उसमें विवाद्यक तथ्य या उससे सुसंगत किसी तथ्य के बारे में आचरण और किसी ऐसे व्यक्तिका आचरण, जिसके विरूद्ध कोई अपराध किसी कार्यवाही का विएषय है, सुसंगत है। जहाँ कि यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि दो या अधिक व्यक्तियों ने अपराध या अनुयोज्य दोष करने के लिए मिलकर षड्यंत्र किया है, वहाँ उनके सामान्य आशय के बारे में उनमें से किसी एक व्यक्ति द्वारा उस समय के पश्चात् जब ऐसा आशय उनमें से किसी एक ने प्रथम बार मन में धारण किया, कही की, या लिखी गई कोई बात उन व्यक्तियों में से हर एक व्यक्ति के विरूद्ध जिनके बारे में विश्वास किया जाता है कि उन्होंने इस प्रकार षड्यंत्र किया है, षड्यंत्र का अस्तित्व साबित करने के सुसंगत तथ्य हैं।

वे तथ्य, जो अन्यथा सुसंगत नहीं है, सुसंगत है- यदि वे किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य से असंगत हैं, यदि वे स्वयंमेव या अन्य तथ्यों के संसर्ग में किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य का अस्तित्व या अनस्तित्व अत्यन्त अधिस्मभाव्य या अनधिसम्माव्य बनाते हैं।

उन वादों में, जिनमें नुकसानी का दावा किया गया है, कोई भी तथ्य सुसंगत है जिससे न्यायालय नुकसानी की वह रकम अवधारित करने के लिए समर्थ हो जाए।

मन की कोई भी दशा जैसे आशय, ज्ञान, सद्भाव, उपेक्षा, उतावलापन, किसी विशिष्ट व्यक्ति के प्रति वैमनस्य या सदिच्छा दर्शित करने वाले अथवा शरीर की या शारीरिक संवेदना की किसी दशा का अस्तित्व दर्शित करने वाले तथ्य सुसंगत हैं।

स्वीकृतिया

स्वीकृति वह मौखिक या दस्तावेजी अथवा इलैक्ट्रॉनिक रूप में अन्तर्विष्ट कथन है, जो किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य के बारे में कोई अनुमान इंगित करता है।

स्वीकृतियां उन्हें करने वाले व्यक्ति के या उसके हित प्रतिनिधि के विरूद्ध सुसंगत है और साबित की जा सकती है, किन्तु उन्हें करने वाले व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से या उसके हित प्रतिनिधि द्वारा कुछ अवस्थाओं में ही साबित की जा सकती है। स्वीकृतियां, स्वीकृत विषयों का निश्चायक सबूत नहीं है, किन्तु विबन्ध के रूप में प्रवर्तित हो सकती है।

संस्वीकृतियाँ

संस्वीकृति ऐसी स्वीकृति है जो किसी व्यक्ति द्वारा उस समय की गई हो जब कि उस पर किसी अपराध का आरोप लगा हो, जिससे यह अनुमान कथित या इंगित होता हो कि उसने ही वह अपराध किया था। अभियुक्त व्यक्ति द्वारा की गई संस्वीकृति दाण्डिक कार्यवाही में सुसंगत नहीं होती है, यदि ऐसी संस्वीकृति उत्प्रेरणा, धमकी या वचन द्वारा जो किसी प्राधिकारवान व्यक्ति की ओर से दी गई है कि उसके करने से वह अपने विरूद्ध कार्यवाहियों के बारे में ऐहिक रूप का कोई फायदा उठाएगा या ऐहिक रूप की किसी बुराई का परिवर्जन कर लेगा।

किसी पुलिस आफिसर से की गई संस्वीकृति साक्ष्य में अग्रादय होती है। कोई भी संस्वीदाऋति, जो किसी व्यक्ति ने पुलिस ऑफिसर की अभिरक्षा में की है, ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध तब ही साबित की जा सकती है जब कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में की गई हो। परन्तु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस ऑफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्वीकृति की कोटि मे आती हो या नहीं,एतद्द्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया सम्बन्धित है, साबित की जा सकती है, यदि कोई ऐसी संस्वीकृति अन्यथा सुसंगत है तो वह केवल इसलिए कि वह गुप्त रखने के वचन के अधीन या उसे अभिप्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अभियुक्त व्यक्ति से की गई प्रवंचना के परिणामस्वरूप, या उस समय जबकि वह मत्त था, की गई थी अथवा इसलिए शिवप ऐसे प्रश्नों के, चाहे उनका रूप कैसा ही क्यों न रहा हो, उत्तर में की गई थी जिनका उत्तर देना उसके लिए आवश्यक नहीं था, अथवा केवल इसलिए कि उसे यह चेतावनी नहीं दी गई थी कि वह ऐसी संस्वीकृति करने के लिए आबद्ध नहीं था और कि उसके विरूद्ध उसका साक्ष्य दिया जा सकेगा, विसंगत नहीं हो जाती। जबकि एक से अधिक व्यक्ति एक ही अपराध के लिए संयुक्त रूप से विचारित है तथा ऐसे व्यक्तियों में से किसी एक के द्वारा अपने को और ऐसे व्यक्तियों में से किसी अन्य को प्रभावित करने वाली संस्वीकृति की गई है, तब न्यायालय ऐसी संस्वीकृति को ऐसे अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध तथा ऐसी संस्वीकृति करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध विचार में ले सकता है। जबकि वह कथन किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कारण के बारे में मृत्यु कालिक कथन है। उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो के सम्बन्ध में मृत्युकालिक कथन महत्वपूर्ण होते है जो कि साक्ष्य में ग्रादय होते है अथवा कारबार के अनुक्रम में किया गया कथन है अथवा करने वाले के हित के विरूद्ध है अथवा लोक अधिकार या रूढ़ि के बारे में या साधारण हित के विषयों के बारे में कोई राय देता है अथवा नातेदारी के अस्तित्व से सम्बन्धित है अथवा कौटुम्बिक बातों से सम्बन्धित विल या विलेख में किया गया है अथवा जबकि

वह कथन किसी ऐसे विलेख, विल या अन्य दस्तावेज में अन्तर्विष्ट है, जो किसी ऐसे संव्यवहार से सम्बन्धित है अथवा जबकि वह कथन कई व्यक्तियों द्वारा किया गया था और प्रश्नगत बात से सुसंगत उनकी भावनाओं या धारणाओं को अभिव्यक्ति करता है।

वह साक्ष्य, जो किसी साक्षी ने किसी न्यायिक कार्यवाही में, या विधि द्वारा उसे लेने के लिए प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष दिया है, उन तथ्यों की सत्यता को, जो उस साक्ष्य में कथित है, किसी पश्चात्वर्ती न्यायिक कार्यवाही में या उसी न्यायिक कार्यवाही के आगामी प्रक्रम में साबित करने के प्रयोजन के लिए सुसंगत है, यदि वह साक्षी मर गया है या मिल नहीं सकता है, या वह साक्ष्य देने के लिए असमर्थ है या प्रतिपक्षी द्वारा उसे पहुँच के बाहर कर दिया गया है अथवा यदि उसकी उपस्थिति इतने विलम्ब या व्यय के बिना, जितना कि मामले की परिस्थितियों में न्यायालय अयुक्तियुक्त समझता है, अभिप्राप्त नहीं की जा सकती।

विवाचक तथ्यों या सुसंगत तथ्यों के वे कथन, जो प्रकाशित मानचित्रों या चाटो में, जो लोक विक्रय के लिए साधारणत: प्रस्थापित किए जाते है अथवा केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के प्राधिकार के अधीन बनाए गए मानचित्रों या रेखाको में किए गए हैं, उन विषयों के बारे में, जो ऐसे मानचित्रों, चाटो, रेखाको में प्राय: रूपित या कथित होते हैं, स्वयं सुसंगत तथ्य हैं।

13.3 न्याय -

निर्णयन की सुसंगतता साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निर्णयों के रूप में निर्णय या न्याय निर्णयन इस धारा के अधीन पूर्व-न्याय के रूप में ग्राह्य हैं और लोक प्रकृति के मामलों से सम्बंधित होने के रूप में निर्णयों को छोडकर अन्य निर्णय सुसंगत हो सकते है, यदि उनका अस्तित्व विवाद्यक तथ्य है या किसी अन्य उपबंध के अधीन सुसंगत है। किसी ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का अस्तित्व, जो किसी न्यायालय को किसी वाद के संज्ञान से या कोई विचारण करने से विधि द्वारा निवारित करता है, सुसंगत तथ्य है। किसी सक्षम न्यायालय के प्रोबेट-विषयक विवाह-विषयक, नावधिकरण-विषयक या दिवाला विषयक अधिकारित के प्रयोग में दिया हुआ अन्तिम निर्णय, आदेश या डिक्री, जो किसी व्यक्ति को, या से कोई विधिक हैसियत प्रदान करती या ले लेती है या जो सर्वत: न कि किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति के विरूद्ध किसी व्यक्ति को ऐसी किसी हैसियत का हकदार या किसी विनिर्दिष्ट चीज का हकदार घोषित करती है, तब सुसंगत है जबकि ऐसी विधिक हैसियत, या किसी ऐसी चीज पर किसी ऐसे व्यक्ति के हम का अस्तित्व सुसंगत है। ऐसा निर्णय, आदेश डिक्री इस बात का निश्चायक सबूत है।

वे निर्णय, आदेश या डिक्रियाँ यदि वे जाँच में सुसंगत लोक प्रकृति की बातों से सम्बन्धित हैं, तो वे सुसंगत हैं, किन्तु ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्रियां उन बातों का निश्चायक सबूत नहीं है जिनका वे कथन करती हैं। अन्य निर्णय, आदेश या डिक्रिया सुसंगत नहीं हैं जब तक कि ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का अस्तित्व विवाद्यक तथ्य न हो या वह इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अन्तर्गत सुसंगत न हो। वाद या अन्य कार्यवाही का कोई भी पक्षकार यह दर्शित कर सकेगा कि कोई निर्णय, आदेश या डिक्री, और जो प्रतिपक्षी द्वारा साबित की जा चुकी है, ऐसे न्यायालय द्वारा दी गई थी जो उसे देने के लिए अक्षम था या कपट या दुस्संधि द्वारा अभिप्राप्त की गई थी।

13.4 अन्य व्यक्ति-मत की सुसंगतता

जब न्यायालय को विदेशी विधि की या विज्ञान की या कला की किसी बात पर या हस्तलेख या अंगुली-चिहनों की अनन्यता के बारे में राय बनानी हो तब उस बात पर ऐसी विदेशी विधि, विज्ञान

या कला में या हस्तलेख या अंगुली-चिहनों की अनन्यता विषयक प्रश्नों के विषय में विशेषज्ञों की राय सुसंगत होती है। जब कार्यवाही में, न्यायालय को संचारित सूचना या कम्प्यूटर स्त्रोत में संरक्षित, सूचना या अन्य इलेक्ट्रॉनिक या अंकीय रूप में अपनी राय बनानी हो तो इलैक्ट्रॉनिक साक्ष्य परीक्षक की राय एक सुसंगत तथ्य है। इलैक्ट्रॉनिक साक्ष्य के लिए परीक्षक एक विशेषज्ञ' होता है।'विशेषज्ञ' साक्षी वह होता है जो ज्ञान की किसी विशिष्ट शाखा का अध्ययन किए होता है और इस प्रकार, उन बातों के बारे में विशेष रूप से कुशल होता है जिनके बारे में उसे अपनी राय देने के लिए कहा जाता है। किसी अधिकरण को संतोषजनक निष्कर्ष पर पहुँचने के सक्षम बनाने के लिए ऐसी बातों के बारे में उसका साक्ष्य ग्रादय है। वे तथ्य, जो अन्यथा सुसंगत नहीं हैं सुसंगत होते हैं यदि वे विशेषज्ञों की रायों का समर्थन करते हों या उनसे असंगत हों जबकि ऐसी रायें सुसंगत हो। जबकि न्यायालय को राय बनानी हो कि कोई दस्तावेज किस व्यक्ति ने लिखी या हस्ताक्षरित की थी, तब उस व्यक्ति के हस्तलेख से, जिसके द्वारा वह लिखी या हस्ताक्षरित की गई अनुमानित की जाती है, परिचित किसी व्यक्ति की यह राय कि वह उस व्यक्ति द्वारा लिखी या हस्ताक्षरित की गई थी अथवा लिखी या हस्ताक्षरित नहीं की गई थी, सुसंगत तथ्य है।

जब. न्यायालय को किसी व्यक्ति के इलैक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर के बारे में राय बनानी हो, तब उस प्रमाणकर्ता प्राधिकारी की राय, जिसने इलैक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर प्रमाणपत्र जारी किया है, सुसंगत तथ्य है।

जबकि न्यायालय को किसी साधारण रूढ़ि या अधिकार के अस्तित्व के बारे में राय बनानी हो, तब ऐसी रूढ़ि या अधिकार के अस्तित्व के बारे में उन व्यक्तियों की रायें सुसंगत हैं, जो यदि उसका अस्तित्व होता तो सम्माव्यत: उसे जानते होते।

जबकि न्यायालय को - मनुष्यों के किसी निकाय या कुटुम्ब की प्रथाओं और सिद्धान्तों के,- किसी धार्मिक या खैराती प्रतिष्ठान के संविधान और शासन के, अथवा विशिष्ट जिले में या विशिष्ट वर्गो के लोगों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले शब्दों या पदों के अर्थो के बारे में राय बनानी हो, तब उनके सम्बन्ध में ज्ञान के विशेष साधन रखने वाले व्यक्तियों की रखायें सुसंगत तथ्य है। जबकि न्यायालय को एक व्यक्ति की किसी अन्य के साथ नातेदारी के बारे में राय बनानी हो, तब ऐसी नातेदारी के अस्तित्व के बारे में ऐसे किसी व्यक्ति के आचरण द्वारा अभिव्यक्त राय जिसके पास कुटुम्ब के सदस्य के रूप में या अन्यथा उस विषय के सम्बन्ध में ज्ञान के विशेष साधन हैं, सुसंगत तथ्य है: ऐसी राय विवाह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। जब कभी किसी जीवित व्यक्ति की राय सुसंगत है, तब वे आधार भी, जिन पर वह आधारित है, सुसंगत है।

13.5 शील की सुसंगतता

'शील' में ख्याति और स्वभाव दोनों शामिल होते हैं।'शील' की सुसंगति का प्रश्न सिविल या आपराधिक मामलों में उठ सकता है।

सिविल मामलों में किसी सम्पृक्त व्यक्ति का शील उस पर अध्यारोपित किसी आचरण को अधिस्मभाव्य बना देता है, तब ही सुसंगत है, जब ऐसा शील अन्यथा सुसंगत तथ्यों से प्रकट होता है। सिविल मामलों में, यह तथ्य कि किसी व्यक्ति का शील ऐसा है जिससे नुकसानी की रकम पर, जो उसे मिलनी चाहिए, प्रभाव पडता है, सुसंगत है। दांडिक कार्यवाहियों में यह तथ्य सुसंगत है कि अभियुक्त व्यक्ति अच्छे शील का है। दांडिक कार्यवाहियों में यह तथ्य कि अभियुक्त व्यक्ति बुरे शील का है, सुसंगत नहीं है, जब तक कि इस बात का साक्ष्य न दिया गया हो कि वह अच्छे शील का है

जिसके दिए जाने की दशा में वह सुसंगत हो जाता है। यह धारा उन मामलों को लागू नहीं है जिनमें किसी व्यक्ति का बुरा शील स्वयं विवाद्यक तथ्य है। पूर्व दोष सिद्ध बुरे शील के साक्ष्य के रूप में सुसंगत है।

13.6 सबूत के विषय

साक्ष्य से अभिप्राय -

1. मौखिक साक्ष्य, अर्थात् जाँच के अधीन तथ्य की बातों के सम्बन्ध में वे समस्त कथन न्यायालय साक्षियों द्वारा अपने समक्ष किए जाने की अनुज्ञा देता है या अपेक्षा करता है।
2. दस्तावेजी साक्ष्य, अर्थात् वे समस्त दस्तावेज जो न्यायालय के निरीक्षण के लिए पेश किए जाते हैं। जिस तथ्य की न्यायालय न्यायिक अवेक्षा करेगा तथा स्वीकृत तथ्यों को साबित करना आवश्यक नहीं है।

मौखिक साक्ष्य : दस्तावेजों या इलैक्ट्रोनिक अभिलेखों की अन्तवर्स्तु के सिवाय सभी तथ्य मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित किए जा सकते है। मौखिक साक्ष्य समस्त अवस्थाओं में प्रत्यक्ष ही होना चाहिए, अर्थात - यदि वह किसी देखे जा सकने वाले तथ्य के बारे में ऐसे साक्षी का साक्ष्य जो यह कहता है कि उसने उसे देखा है, यदि वह किसी सुने जा सकने वाले तथ्य के बारे में है, तो वह ऐसे साक्षी का ही साक्ष्य होता है जो कहता है कि उसने उसे सुना है, यदि वह किसी ऐसे तथ्य के बारे में है जिसका किसी अन्य इन्द्रिय द्वारा या किसी अन्य रीति से बोध हो सकता था, तो वह ऐसे साक्षी का ही साक्ष्य होता है जो यह कहता है कि उसने उसका बोध इस इन्द्रिय द्वारा या उस रीति से किया है, यदि वह किसी राय के, या उन आधारों के, जिन पर राय धारित है, बारे में है, तो वह उस व्यक्ति का ही साक्ष्य होगा जो वह राय उन आधारों पर धारण करता है। यदि मौखिक साक्ष्य दस्तावेज से भिन्न किसी भौतिक चीज के अस्तित्व या दशा के बारे में है, तो न्यायालय, ऐसी भौतिक चीज का अपने निरीक्षणार्थ पेश किया जाना अपेक्षित कर सकता है।

दस्तावेजी साक्ष्य से ऐसा कोई विषय अभिप्रेत है जिसको किसी पदार्थ पर अक्षरों, अंकों या चिह्नों के साधन द्वारा या उनमें से एक से अधिक साधनों द्वारा अभिव्यक्त या वर्णित किया गया है जो उस विषय के अभिलेखन के प्रयोजन से उपयोग किए जाने को आशयित हो या उपयोग किया जा सके। दस्तावेजों की अन्तर्वस्तु या तो प्राथमिक या द्वितीयिक साक्ष्य द्वारा साबित की जा सकती है।

प्राथमिक साक्ष्य से न्यायालय के निरीक्षण के लिए पेश की गई मूल दस्तावेज अभिप्रेत है।

द्वितीयिक साक्ष्य : प्रमाणित प्रतियाँ, मूल से ऐसी यान्त्रिक प्रक्रियाओं द्वारा, जो प्रक्रियाएं स्वयं ही प्रति की शुद्धता सुनिश्चित करती हैं, बनाई गई प्रतियां तथा ऐसी प्रतियों से तुलना की हुई प्रतिलिपियां, मूल से बनाई गई या तुलना की गई प्रतियां, उन पक्षकारों के विरूध जिन्होंने उन्हें निष्पादित नहीं किया है, दस्तावेजों के प्रतिलेख, किसी दस्तावेज की अन्तर्वस्तु का उस व्यक्ति द्वारा, जिसने स्वयं उसे देखा है, दिया हुआ मौखिक वृत्तान्त आदि द्वितीयक साक्ष्य कहलाती हैं।

किसी दस्तावेज के अस्तित्व, दशा या अन्तर्वस्तु का द्वितीयिक साक्ष्य दिया जा सकता है, जबकि मूल ऐसे व्यक्ति के कब्जे में या शकयधीन है, जिसके विरूद्ध उस दस्तावेज को साबित किया जाना ईप्सित है, अथवा जो न्यायालय की आदेशिका की पहुंच के बाहर है, या ऐसी आदेशिका के अध्यधीन नहीं है, अथवा जो उसे पेश करने के लिए वैध रूप से आबद्ध है और जबकि ऐसा सूचना के पश्चात् उसे पेश नहीं करता है, जबकि मूल के अस्तित्व, दशा या अन्तर्वस्तु को उस व्यक्ति द्वारा, जिसके विरूद्ध उसे साबित किया जाना है या उसके हित प्रतिनिधि द्वारा लिखित रूप में स्वीकृत किया जाना

साबित कर दिया गया है। जबकि मूल नष्ट हो गया है, या खो गया, अथवा जबकि उसकी अन्तर्वस्तु का साक्ष्य देने की प्रस्थापना करने वाला पक्षकार अपने स्वयं के व्यतिक्रम या उपेक्षा से अनुभूत अन्य किसी कारण से उसे युक्तियुक्त समय में पेश नहीं कर सकता। जबकि मूल इस प्रकृति का है कि उसे आसानी से स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता। जबकि मूल एक लोक-दस्तावेज है। जबकि मूल ऐसी दस्तावेज है जिसकी प्रमाणित प्रति का साक्ष्य में दिया जाना इस अधिनियम द्वारा या भारत में प्रवृता किसी अन्य विधि द्वारा अनुज्ञात है। जबकि मूल ऐसे अनेक लेखाओं या अन्य दस्तावेजों से गठित है जिनकी न्यायालय में सुविधापूर्वक परीक्षा नहीं की जा सकती और वह तथ्य जिसे साबित किया जाना है सम्पूर्ण संग्रह का साधारण परिणाम है।

किसी इलैक्ट्रॉनिक अभिलेख अर्थात कम्प्यूटर निर्गम को एक दस्तावेज समझा जाता है वह मूल की किसी अन्तर्वस्तु या उसमें कथित किसी तथ्य के साक्ष्य के रूप में, जिसका प्रत्यक्ष साक्ष्य ग्रादय होता, अतिरिक्त सबूत या मूल को पेश किए बिना ही किन्हीं कार्यवाहियों में ग्राह्य होता है। दस्तावेजों की अन्तर्वस्तु का द्वितीयिक साक्ष्य तब तक न दिया जा सकेगा जब तक ऐसे द्वितीयिक साक्ष्य देने की प्रस्थापना करने वाले पक्षकार ने उसका पक्षकार को, जिसके कब्जे में या शकयधीन वह दस्तावेज है या उसके अटर्नी या लीडर को, उसे पेश करने के लिए ऐसी सूचना न दे दी हो, ऐसी सूचना निम्नलिखित अवस्थाओं में द्वितीयिक साक्ष्य को ग्राहय बनाने के लिए अपेक्षित नहीं की जाएगी- जबकि साबित की जाने वाली दस्तावेज स्वयं एक सूदना है। जबकि प्रतिपक्षी को मामले की प्रकृति से यह जानना ही होगा कि उसे पेश करने की उससे अपेक्षा की जाएगी, जबकि यह प्रतीत होता है या साबित किया जाता है कि प्रतिपक्षी ने मूल पर कब्जा कपट या बल द्वारा अभिप्राप्त कर लिया है, जबकि मूल प्रतिपक्षी या उसके अभिकर्ता के पास न्यायालय में है, जबकि प्रतिपक्षी या उसके अभिकर्ता ने उसका खो जाना स्वीकार कर लिया है, जबकि दस्तवेज पर कब्जा रखने वाला व्यक्ति न्यायालय की आदेशिका की पहुंच के बाहर है या ऐसी आदेशिका के अध्यधीन नहीं है।

यदि किसी दस्तावेज का अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है तो उसे साक्ष्य के रूप में उपयोग में नहीं लाया जा सकता जब तक कि कम-से-कम एक अनुप्रमाणक साक्षी, उसका निष्पादन साबित करने के प्रयोजन से न बुलाया गया हो। परन्तु ऐसी किसी दस्तावेज के निष्पादन को साबित करने के लिए, जो वसीयत नहीं है, रजिस्ट्रीकृत है, किसी अनुप्रमाणक साक्षी को बुलाना आवश्यक न होगा।

लोक दस्तावेजें- निम्नलिखित दस्तावेजों लोक-दस्तावेजों हैं:-

1. वे दस्तावेजों जो-
   - क. प्रभुतासम्पन्न प्राधिकारी के
   - ख. शासकीय निकायों और अधिकरणों के, तथा
   - ग. भारत के किसी भाग के या कामनवेल्थ के, या किसी विदेश के विधायी, न्यायिक तथा कार्यपालक लोक ऑफिसरों के, कार्यो के रूप में या कार्यो के अभिलेख के रूप में है।
2. किसी राज्य में रखे गए प्राइवेट दस्तावेजें के लोक-अभिलेख। अन्य सभी दस्तावेजें प्राइवेट है।

लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां - हर लोक-ऑफिसर, जिसकी अभिरक्षा में कोई ऐसी लोक-दस्तावेज की नियमानुसार प्रमाणित प्रतियां दी जा सकती है। ऐसी प्रमाणित प्रतियां उन लोक-दस्तावेजों की या उन-लोक दस्तावेज के भागों की अन्तर्वस्तु के सबूत में पेश की जा सकेगी जिनकी वे प्रतियां होना तात्पर्यित है।

13.7 दस्तावेजों के बारे में उपधारणायें

न्यायालय प्रमाणित प्रतियों का असली होना उपधारित करेगा। साध्य के अभिलेख के तौर पर पेश की गई दस्तावेजों, राजपत्रों, समाचार पत्रों, पार्लियामेन्ट के प्राइवेट ऐक्टों आदि के सम्बन्ध में असली होना उपधारित करेगा। इलैक्ट्रोनिक रूप में रखे गये राजपत्रों के सम्बन्ध में भी न्यायालय असली होना उपधारित करेगा। न्यायालय यह उपधारित करेगा कि वे मानचित्र या रेखांक जो केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के प्राधिकार द्वारा बनाए गए तात्पर्यित है, वैसे ही बनाए गए थे और वे शुद्ध है। न्यायालय, यह उपधारित करेगा कि हर ऐसा इलैक्ट्रॉनिक अभिलेख, जिसका ऐसा करार होना तात्पर्यित है, जिस पर पक्षकारों इलैक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर हैं, पक्षकारों के इलैक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर लगा कर किया गया था। न्यायालय यह उपधारित कर सकेगा कि ऐसे किसी देश के, जो भारत का या हर मजेस्टी के अधिक्षेत्रों का भाग नहीं है, न्यायिक अभिलेख की प्रमाणित प्रति तात्पर्यित होने वाली कोई दस्तावेज असली और शुद्ध है। न्यायालय उपधारित करेगा कि हर दस्तावेज, जिसे पेश करने की अपेक्षा की गई थी और जो पेश करने की सूचना के पश्चात् पेश नहीं की गई है, विधि द्वारा अपेक्षित प्रकार से अनुप्रमाणित, स्टाम्पित और निष्पादित की गई थी। जहाँ कि कोई दस्तावेज, जिसका तीस वर्ष पुरानी होना तात्पर्यित है या साबित किया गया है, ऐसी किसी अभिरक्षा में से, जिसे न्यायालय उस विशिष्ट मामले में उचित समझता है, पेश की गई है, वहाँ न्यायालय यह उपधारित कर सकेगा कि ऐसी दस्तावेज सम्यक रूप से निष्पादित की गई थी।

जबकि किसी संविदा के या अनुदेन के या सम्पत्ति के किसी अन्य व्ययन के निबन्ध दस्तावेज के रूप में लेखबद्ध कर लिए गए हों के निबन्धनों को साबित किए जाने के लिए उस दस्तावेज के सिवाय अथवा उसकी अन्तर्वस्तु के द्वितीयिक साक्ष्य के सिवाय, कोई भी साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है, अर्थात दस्तावेजी के साक्ष्य के सम्बन्ध में मौखिक साक्ष्य सिवाए साक्ष्य अधिनियम में वर्णित अपवादों के नहीं दिया जाएगा।

जबकि किसी ऐसी संविदा, अनुदान या सम्पत्ति के अन्य व्ययन के निबन्धनों को लेखबद्ध कर लिया जाता है इस सम्बन्ध में किसी मौखिक करार या कथन का कोई भी साक्ष्य उसके निबन्धनों का खण्डन करने के या उनमें फेरफार करने के या जोडने के या उनमें से घटाने के प्रयोजन के लिए कुछ''अपवादों को छोडकर'' ग्रहण नहीं किया जा सकता है।

किसी भी दस्तावेज की भाषा को देखते हु ए दस्तावेज यदि प्रत्यक्षत: संदिग्ध और त्रुटीपूर्ण प्रतीत होता है अथवा यदि किसी दस्तावेज में प्रयुक्त भाषा देखते ही संदिग्धार्थ या त्रुटिपूर्ण है, तब उन तथ्यों का साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है, जो उनका अर्थ दर्शित या उसकी त्रुटियों की पूर्ति कर दे। जबकि दस्तावेज में प्रयुक्त भाषा स्वयं स्पष्ट हो और जबकि वह विद्यमान तथ्यों को ठीक-ठीक लागू होती हो, तब यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य नहीं दिया जा सकेगा कि वह ऐसे तथ्यों को लागू होने के लिए अभिप्रेत नहीं थी।

जबकि दस्तावेज में प्रयुक्त भाप स्वयं स्पष्ट हो, किन्तु विद्यमान तथ्यों के संदर्भ में अर्थहीन हो, तो यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य दिया जा सकेगा कि वह एक विशिष्ट भाव में प्रस्तुत की गई थी। यदि दस्तावेज की भाषा अप्रत्यक्षत: संदिग्ध और त्रुटिपूर्ण है तथा ऐसी प्रयुक्त भाषा कई व्यक्तियों या चीजों में से किसी एक को लागू होती हो तब उन तथ्यों का साक्ष्य दिया जा सकेगा जो यह दर्शित करते हैं कि उन व्यक्तियों या चीजों में से किसको लागू होने के लिए यह आशयित थी। प्रयुक्त भाषा भागत: विद्यमान तथ्यों के एक संवर्ग को और भागत: विद्यमान तथ्यों के अन्य संवर्ग को लागू होती है, किन्तु वह पूरी की पूरी दोनों में से किसी एक को भी ठीक-ठीक लागू नहीं होती, तब यह दर्शित

करने के लिए साक्ष्य दिया सकेगा कि वह दोनों में से किसको लागू होने के लिए अभिप्रेत थी, ऐसी लिपि का, जो पढी नहीं जा सके या सामान्यत: समझी नहीं जाती हो, विदेशी, अप्रचलित पारिभाषित, स्थानीय और प्रान्तीय शब्द प्रयोगों का सक्षेपाक्षरों का और विशिष्ट भाव में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ दर्शित करने के लिए साक्ष्य दिया जा सकता है।

13.8 सबूत का भार

किसी वाद या कार्यवाही मे सबूत का भार उस व्यक्ति पर होता है जो असफल हो जायेगा, यदि दोनों में से किसी भी ओर से कोई भी साक्ष्य न दिया जाए। किसी विशिष्ट तथ्य के सबूत का भार उस व्यक्ति पर होता है जो न्यायालय से यह चाहता है कि उसके अस्तित्व में न्यायालय विश्वास करें। उन परिस्थितियों के अस्तित्व को साबित करने का भार, जो किसी अभियुक्त के किसी मामले को भारतीय दण्ड संहिता के साधारण अपवादों में से किसी के अन्तर्गत या उसी संहिता के किसी विशेष अपवाद या परन्तुक के अन्तर्गत कर देती है, उस व्यक्ति पर है और न्यायालय ऐसी परिस्थितियों के अभाव की उपधारण करेगा। जबकि कोई तथ्य विशेषत: किसी व्यक्ति के ज्ञान में है, तब उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर है।

न्यायालय ऐसे किसी तथ्य का अस्तित्व उपधारित कर सकेगा जिसका घटित होना उस विशिष्ट मामले के तथ्यों के सम्बन्ध में प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण तथा लोक और प्राइवेट कारोबार के सामान्य अनुक्रम को ध्यान में रखते हुए वह संभाव्य समझता है। बलात्संग के अभियोजन में जहाँ अभियुक्त द्वारा मैथुन करना साबित हो जाता है और वह स्त्री, न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में यह कथन करती है कि उसने सम्मति नहीं दी थी, वहाँ न्यायालय यह उपधारित करेगा कि उसने सम्मति नहीं दी थी। उस व्यक्ति की मृत्यु साबित करने के भार जिसका तीस वर्ष के भीतर जीवित होना ज्ञात है तब यह साबित करने का भार, उस व्यक्ति पर है जो प्रतिज्ञात करता है कि उसकी मृत्यु हो चुकी है परन्तु जबकि प्रश्न यह है कि कोई मनुष्य जीवित है या मर गया है और यह साबित किया गया है कि उसके बारे में सात वर्ष से उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे में यदि वह जीवित होता तो स्वाभाविकतया सुना होता, तब यह साबित करने का भार कि वह जीवित है उस व्यक्ति पर चला जाता है, जो उसे प्रतिज्ञात करता है। जहाँ कि उन पक्षकारों के बीच के संव्यवहार के सद्भाव के बारे में प्रश्न हैं, जिनमें से एक-दूसरे के प्रति सक्रिय विश्वास की स्थिति में है वहाँ, उस संव्यवहार के सद्भाव को साबित करने का भार उस पक्षकार पर है जो सक्रिय विश्वास की स्थित में है।

विवाहित स्थिति के दौरान में जन्म होना धर्मजत्व का निश्चायक सबूत है जब तक कि यह दर्शित न किया जा सके कि विवाह के पक्षकारों की परस्पर पहुंच ऐसे किसी समय नहीं थी जब उसका गर्भाधान किया जा सकता था। किसी विवाहित स्त्री द्वारा आत्महत्या के दुष्प्रेरण के बारे में जब यह दर्शित किया गया है कि उसने अपने विवाह की तारीख से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या की थी और यह कि उसके पति या उसके पति के ऐसे नातेदार ने उसके प्रति क्रूरता की थी, तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि ऐसी आत्महत्या उसके पति या उसके पति के ऐसे नातेदार द्वारा दुष्टेरित की गई थी।

दहेज मृत्यु के बारे में जब यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी माँग के लिए, या उसके सम्बन्ध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या उसको तंग किया था तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी। न्यायालय ऐसे किसी तथ्य का अस्तित्व उपधारित कर सकता है जिसका घटित होना उस विशिष्ट मामले के तथ्यों के सम्बन्ध में प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण तथा लोक और प्राइवेट कारबार के सामान्य

अनुक्रम को ध्यान में रखते हुए वह सम्माव्य समझता बलात्संग के कुछ अभियोजनों में सम्मत्ति के सम्बन्ध में स्त्री की सम्मन्ति के बिना किया गया है जिससे बलात्सग किया जाना अभिकथित है और वह स्त्री न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में यह कथन करती है कि उसने सम्मस्ति नहीं दी थी, वहाँ न्यायालय यह उपधारित करेगा कि उसने सम्मस्ति नहीं दी थी।

13.9 विबन्ध

विबन्ध - जबकि एक व्यक्ति ने अपनी घोषणा, कार्य या लोप द्वारा अन्य व्यक्ति को विश्वास साशय कराया है या कर लेने दिया है कि कोई बात सत्य है और ऐसे विश्वास पर कार्य कराया या करने दिया है, तब न तो उसे और न उसके प्रतिनिधि को अपने और ऐसे व्यक्ति के या उसके प्रतिनिधि के, बीच किसी बाद या कार्यवाही में उस बात की सत्यता का प्रत्याख्यान करने दिया जाएगा।

13.10 साक्षियों के विषय में

कौन साक्ष्य दे सकेगा - सभी व्यक्ति साक्ष्य देने के लिए सक्षम होंगे, जब तक कि न्यायालय का यह विचार न हो कि कोमल वयस, अतिवार्धक्य शरीर के या मन के रोग या इसी प्रकार के किसी अन्य कारण से वे उनसे किए गए प्रश्नों को समझने से या उन प्रश्नों के युक्तिसंगत उत्तर देने में असमर्थ है। कोई पागल व्यक्ति साक्ष्य देने के लिए अक्षम नहीं है, जब तक कि वह अपने पागलपन के कारण उससे किए गए प्रश्नों को समझने से या उनके युक्तिसंगत उत्तर देने में असमर्थ न हो। किसी मामले में किसी तथ्य को साबित करने के लिए साक्षियों की कोई विशिष्ट संख्या अपेक्षित नहीं है।

मूक साक्षी जो बोलने में असमर्थ है, अपना साक्ष्य किसी अन्य प्रकार से, जिसमें वह उसे बोधगम्य बना सकता हो, यथा लिखकर या संकेतों द्वारा दे सकेगा, किन्तु ऐसा लेख और वे संकेत खुले न्यायालय में ही लिखने होंगे या करने होंगे। इस प्रकार दिया हुआ साक्ष्य मौखिक साक्ष्य ही समझा जाएगा। सभी सिविल एवं दाण्डिक कार्यवाहियों में उस व्यक्ति का पति या पत्नी सक्षम साक्षी होते हैं।

कोई भी व्यक्ति, जो विवाहित है या जो विवाहित रह चुका है, किसी संसूचना को, जो किसी व्यक्ति द्वारा जिससे वह विवाहित है या रह चुका है, विवाहित स्थिति के दौरान में उसे दी गई थी, प्रकट करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है, और न वह किसी ऐसी संसूचना को प्रकट करने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है।

वृत्तिक संसूचनाएं - कोई भी बैरिस्टर, अटर्नी, प्लीडर या वकील अपने कक्षीकार की अभिव्यक्त सम्पत्ति के सिवाय ऐसी किसी संसूचना को प्रकट करने के लिए, जो उसके ऐसे बैरिस्टर, अटर्नी, प्लीडर या वकील की हैसियत में नियोजन के अनुक्रम में, या के प्रयोजनार्थ उसके कक्षीकार द्वारा, या की और से उसे दी गई हो अथवा किसी दस्तावेज की, जिससे वह अपने वृत्तिक नियोजन के अनुक्रम में या प्रयोजनार्थ परिचित हो गया है की अन्तर्वस्तु या दशा कथित करने को अथवा किसी सलाह को, जो ऐसे नियोजन के अनुक्रम में या के प्रयोजनार्थ उसने अपने कक्षीकार को दी है, प्रकट करने के लिए किसी भी समय अनुज्ञात नहीं किया जा सकता। कोई भी व्यक्ति किसी गोपनीय संसूचना को, जो उसके और उसके विधि-वृजिक सलाहकार के बीच हुई है, न्यायालय को प्रकट करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, जब तक कि वह अपने को साक्षी के तौर पर पेश न कर दे, ऐसे पेश करने की दशा में किन्हीं भी ऐसी संसूचनाओं को, जिन्हें उस किसी साक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए जानना, जो उसने दिया है, न्यायालय को आवश्यक प्रतीत हो, प्रकट करने के लिए विवश किया जा सकता है किन्तु किन्हीं भी अन्य संसूचनाओं को पेश करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसे विलेखों

के पेशकरण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के साथ या ऐसे किसी व्यक्ति के साथ जिससे खुत्पन्न अधिकार से वह व्यक्ति दावा करता है, उन्हें पेश करने का लिखित करार न कर लिया हो।

कोई साक्षी किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही में विवाद्यक विषय से सुसंगत किसी विषय के बारे में किए गए किसी प्रश्न का उत्तर देने से इस आधार पर क्षम्य नहीं होता कि ऐसे प्रश्न का उत्तर ऐसे साक्षी को अपराध में फंसाएगा, या उसकी प्रवृति प्रत्यक्षत: या परोक्षतः अपराध में फंसाने की होगी अथवा वह ऐसे साक्षी को किसी किस्म की शास्ति या समपहरण के लिए उच्छन्न करेगा या इसकी प्रवृजि प्रत्यक्षत: या परोक्षतः उच्छन्न करने की होगी। परन्तु ऐसा कोई भी उत्तर, जिसे देने के लिए कोई साक्षी विवश किया जाएगा उसे गिरफ्तारी या अभियोजन के अध्यधीन नहीं करेगा और न ऐसे उत्तर द्वारा मिथ्या साक्ष्य देने के लिए अभियोजन के सिवाय वह उसके विरूद्ध किसी दाण्डिक कार्यवाही में साबित किया जाएगा। सह अपराधी अन्य सह अपराधी, अभियुक्त व्यक्ति के विरूद्ध सक्षम साक्षी होता है, और कोई दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है कि वह किसी सहअपराधी के असमुष्ट परिसाक्ष्य के आधार पर की गई है।

साक्षियों की परीक्षा- साक्षियों के पेशकरण और उनकी परीक्षा का कम क्रमश: सिविल और दण्ड प्रक्रिया से तत्समय सम्बन्धित विधि और पद्धति द्वारा तथा ऐसी किसी विधि के अभाव में न्यायालय के विवेक द्वारा विनियमित होगा। कोई पक्षकार किसी तथ्य का साक्ष्य देने की प्रस्थापना करता है, तब न्यायाधीश साक्ष्य देने की प्रस्थापना करने वाले पक्षकार से पूछ सकेगा कि अभिकथित तथ्य, यदि वह साबित हो जाए, किसी प्रकार सुसंगत होगा। साक्षियों से प्रथमत: मुख्य परीक्षा होगी, तत्पश्चात् प्रतिपरीक्षा होगी, तत्पश्चात् पुन: परीक्षा होगी। परीक्षा और प्रतिपरीक्षा को सुसंगत तथ्यों से सम्बन्धित होना चाहिए, किन्तु प्रतिपरीक्षा का उन तथ्यों तक सीमित रहना आवश्यक नहीं है, जिनकी साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा में परिसाक्ष्य दिया है। पुन: परीक्षा उन बातों के स्पष्टीकरण से सम्बन्धित होगी जो प्रतिपरीक्षा में पूछी गई है, तथा यदि पुन: परीक्षा में न्यायालय की अनुज्ञा से कोई नई बात प्रविष्ट की गई हो, तो प्रतिपक्षी उस बात के बारे में अतिरिक्त प्रतिपरीक्षा कर सकता है। किसी दस्तावेज को पेश क्यने के लिए समनित व्यक्ति केवल इस तथ्य के कारण कि वह उसे पेश करता है साक्षी नहीं हो जाता तथा यदि और जब तक वह साक्षी के तौर पर बुलाया नहीं जाता, उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती। शील का साक्ष्य देने वाले साक्षियों की प्रतिपरीक्षा और पुन: परीक्षा की जा सकती है।

कोई प्रश्न, जो उस उत्तर को सुझाता है, जिसे पूछने वाला व्यक्ति पाना चाहता है या पाने की आशा करता है, सूचक प्रश्न कहा जाता है। सूचक प्रश्न, मुख्य परीक्षा में या पुन: परीक्षा में, यदि विरोधी पक्षकार द्वारा आक्षेप

किया जाता है, तो न्यायालय की अनुइग़ के बिना नहीं पूछे जाने चाहिए। न्यायालय उन बातों के बारे में, जो पुन: स्थापना के रूप में या निर्विवाद है या जो उसकी राय में पहले से ही पर्याप्त रूप से साबित हो चुके हैं, सूचक प्रश्नों के लिए अनुज्ञा दे सकता है। सूचक प्रश्न प्रतिपरीक्षा में पूछे जा सकते है। किसी साक्षी की उसके द्वारा पूर्वतन किए गए कथनों के बारे में प्रतिपरीक्षा की जा सकती है और उसे लेखबद्ध किया जा सकता है, यदि उस लेख से उसका खंडन किया जाना आशयित है, तो इसके पूर्व कि वह लेख साबित किया जा सके उसके उन भागों की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया जाना होगा जिनका उपयोग उसके खंडन के प्रयोजन से किया जाना जबकि किसी साक्षी से प्रतिपरीक्षा की जाती है, तब उसकी सत्यवादिता परखने के लिए, यह पता चलाने के लिए कि वह कौन है और जीवन में उसकी स्थिति क्या है, अथवा उसके शील को दोष लगाकर उसकी विश्वसनीयता को धक्का पहुंचाने के लिए कोई भी प्रश्न पूछे जा सकते हैं, बलात्सग या बलात्संग करने के प्रयत्न के लिए किसी

अभियोजन में अभियोगी की प्रतिपरीक्षा में उसके साधारण अनैतिक चरित्र के बारे में प्रश्न नहीं पूछे जा सकते।

शील के बारे में प्रश्नों के सम्बन्ध में न्यायालय विनिश्चित करेगा कि साक्षी को उत्तर देने के लिए विवश किया जाए या नहीं जब तक कि पूछने वाले व्यक्ति के पास यह सोचने के लिए युक्तियुक्त आधार न हो कि वह लांछन, जिसका उससे प्रवहरण होता है, सुआधारित है। न्यायालय किन्हीं प्रश्नों का या पूछताछों का, जिन्हें वह अशिष्ट या कलंकात्मक समझता है, निषेध कर सकता है, जब तक कि वे विवाद्यक तथ्यों के या उन विषयों के सम्बन्ध में न हों, जिनका ज्ञात होना अवधारित करने के लिए आवश्यक हैं कि विवाचक तथ्य विद्यमान थे या नहीं। न्यायालय ऐसे प्रश्न का निषेध करेगा, जो उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपमानित या क्षुब्द करने के लिए आशयित हैं, वह अनावश्यक तौर पर संतापकारी है। साक्षी की विश्वसनीयता पर अधिक्षेप किया जा सकता है। कोई साक्षी जो किसी अन्य साक्षी को विश्वसनीयता के लिए अपात्र घोषित करता है, अपने से की गई मुख्य परीक्षा में अपने विश्वास के कारणों को चाहे न बताए, किन्तु प्रति परीक्षा में उससे उनके कारणों को पूछा जा सकता है, और उन उत्तरों का, जिन्हें वह देता है, खण्डन नहीं किया जा सकता, तथापि यदि वे मिथ्या हो तो तत्पश्चात् उस पर मिथ्या साक्ष्य देने का आरोप लगाया जा सकता है।

किसी साक्षी के परिसाक्ष्य की समुष्टि करने के लिए ऐसे साक्षी द्वारा उसी तथ्य से सम्बन्धित, उस समय पर या के लगभग जब वह तथ्य घटित हुआ था, किया हुआ या उस तथ्य का अन्वेषण करने के लिए विधि द्वारा सक्षम किसी प्राधिकारी के समक्ष किया हुआ कोई पूर्वतन कथन साबित किया जा सकता है। जब कभी कोई कथन, सुंसगत है साबित कर दिया जाता है, तब उसके खण्डन के लिए या संपुष्टि के लिए या जिसके द्वारा वह किया गया था उस व्यक्ति की विश्वसनीयता को अधिक्षिप्त या पुष्ट करने के लिए वे सभी बातें साबित की जा सकती है, जो यदि वह व्यक्ति साक्षी के रूप में बुलाया गया हो और उसने प्रतिपरीक्षा में सुझायी हुई बात की सत्यता का प्रत्याख्यान किया होता तो साबित की जा सकती थी। कोई साक्षी, किसी ऐसे लेख को देख करके, जो कि स्वयं उसने उस संव्यवहार के समय जिसके संबंध में उससे प्रश्न किया जा रहा है, या इतने शीघ्र पश्चात् बनाया हो कि न्यायालय इसे सम्भाव्य समझता हो कि वह संव्यवहार उस समय उसकी स्मृति में ताजा था, अपनी स्मृति को ताजा कर सकेगा। किसी दस्तावेज को पेश करने के लिए समनित साक्षी, उस दस्तावेज को न्यायालय में लाएगा, और किसी आक्षेप की विधिमान्यता न्यायालय द्वारा विनिश्चित की जाएगी। जबकि कोई पक्षकार ऐसी किसी दस्तावेज को पेश करने से इनकार कर देता है, जिसे पेश करने की उसे सूचना मिल चुकी है, तब वह तत्पश्चात् उस दस्तावेज को दूसरे पक्षकार की सम्मलि के या न्यायालय के आदेश के बिना साक्ष्य के रूप में उपयोग में नहीं ला सकता।

न्यायाधीश सुसंगत तथ्यों का पता चलाने के लिए या उनका उचित सबूत अभिप्राप्त करने के लिए, भी रूप में किसी भी समय किसी भी साक्षी या पक्षकारों से किसी भी सुसंगत या विसंगत तथ्य के बारे में कोई भी प्रश्न, जो वह चाहे, पूछ सकता है, तथा किसी भी दस्तावेज या चीज को पेश करने का आदेश दे सकता है, और न तो पक्षकार और न उनके अभिकर्ता हकदार होंगे कि वह किसी भी ऐसे प्रश्न या आदेश के प्रति कोई भी आक्षेप करें, न ऐसे किसी भी प्रश्न के प्रत्युतार में दिए गए किसी भी उत्तर पर किसी भी साक्षी की न्यायालय की इजाजत के बिना प्रति परीक्षा करने के हकदार होंगे।

साक्ष्य का अनुचित ग्रहण या अग्रहण स्वयंमेव किसी भी मामले में नवीन विचारण के लिए या किसी विनिश्चय के उलटे जाने के लिए आधार नहीं होता है, यदि उस न्यायालय को जिसके समक्ष

ऐसा आक्षेप उठाया गया है यह प्रतीत होता है कि आक्षिप्त और गहीत उस साक्ष्य के बिना भी विनिश्चय के न्यायोचित ठहराने के लिए यथेष्ट साक्ष्य अथवा यह कि यदि अगहीत साक्ष्य लिया भी गया होता, तो उससे विनिश्चय में फेरफार नहीं होता है।

13.11 सारांश

न्यायिक प्रणाली के प्रभावी रूप से कार्य करने में साक्ष्य विधि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साक्ष्य विधि का आधारभूत सिद्धान्त है कि सभी स्थितियों में सर्वोत्तम साक्ष्य ही दिया जाना चाहिए। समस्त न्यायिक कार्यो का उद्देश्य एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के बीच सम्बन्धों को भी अवधारित करना है। इस उद्देश्य से साक्ष्य विधि में विभिन्न प्रावधान बनाये गये हैं ताकि विवाद्यक तथ्यों जिन से किसी अधिकार दायित्व या निर्योग्यता की उत्पत्ति होती है; के सम्बन्ध में सर्वोत्तम साक्ष्य प्रलेख पर लाई जा सकें और पक्षकारान के मध्य विवादों का समुचित रूप से निस्तारण किया जा सकें तथा उचित न्याय निर्णयन किया जा सकें।

13.12 अभ्यास प्रश्न

1. तथ्यों की सुसंगतता संबंधित प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
2. स्वीकृति एवं संस्वीकृति से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
3. न्यायालयों के निर्णय कब सुसंगत है? स्पष्ट कीजिए।
4. प्राथमिक साक्ष्य एवं द्वितीयक साक्ष्य से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों का वर्णन कीजिए? द्वितीयक साक्ष्य कब दिए जा सकते है? उल्लेख कीजिए।
5. दस्तावेज साक्ष्य के सम्बन्ध में मौखिक साक्ष्य कब दिए जा सकती है? उल्लेख कीजिए।
6. सबूत के भार से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए?
7. साक्ष्यों की परीक्षा के क्रम से आप क्या समझते है? सूचक प्रश्न कब पूछे जा सकते है?
8. साक्ष्य के अनुचित ग्रहण और अग्रहण का प्रभाव बताइये?

13.13 संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय साक्ष्य अधिनियम द्वारा रतन लाल तथा धीरज लाल
2. प्रिन्सीपल्स ऑफ द एवीडेन्स द्वारा अवतार सिंह
3. द लॉ ऑफ एवीडेन्स द्वारा बटुक लाल

इकाई - 14

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 : तथ्यों की सुसंगतता

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 तथ्यों की सुसंगति
14.3 स्वीकृतियाँ
14.4 संस्वीकृतियाँ
14.5 उन व्यक्तियों के कथन, जिन्हें साक्ष्य में बुलाया नहीं जा सकता
14.6 विशेष परिस्थितियों में किये गये कथन
14.7 न्यायालयों के निर्णय की सुसंगतता
14.8 अन्य व्यक्तियों की राय की सुसंगतता
14.9 शील की सुसंगतता
14.10 सारांश
14.11 अभ्यास प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- साक्ष्य अधिनियम 1872 के प्रावधानों के अधीन तथ्यों की सुसंगति के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे क्योंकि अधिकारों के प्राख्यान को सुसंगत एवं ग्राह्य साक्ष्य के द्वारा ही साबित किया जा सकता है।
- शील की सुसंगता विषय पर जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वीकृति एवं संस्वीकृति में अन्तर के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- यह जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि न्यायालय के निर्णय कब सुसंगत है।

14.1 प्रस्तावना

न्यायिक प्रणाली के प्रभावी रूप से कार्य करने में साध्य विधि की भूमिका मुख्य होती है। उस व्यक्ति के लिए जो विधि वृत्ति में आगे बढने के लिए गम्भीरता से इच्छुक है, उसके लिए साक्ष्य विधि के सिद्धान्तों का पूरा-पूरा ज्ञान अनिवार्य है। साक्ष्य अधिनियम प्रक्रिया विधि की सबसे महत्वपूर्ण शाखा है, जिसकी सहायता से न्यायाधीश तथ्यों से जो उसके समक्ष पेश किये जाते है; के न्यायसंगत और परस्पर संबंध का विनिश्चय करता है, परिस्थितियों से सही निष्कर्ष निकालता है और प्रत्यक्ष परिसाक्ष्य का मूल्याकंन करता है तथा अधिसंभाव्यताओं के आधार पर अपना निर्णय करने के सक्षम हो पाता है। यह अधिनियम निःशेषकारक नहीं है, ऐसे मामले आ ही जाते है, जिनके समाधान के लिए सामान्य विधि के सिद्धान्तों का आश्रय लेना पडता है। इस अधिनियम का उद्देश्य साक्ष्य की ग्राह्यता में शिथिलता को निवारित करना और पूर्ववर्ती प्रचलित व्यवहार के नियम से अधिक सही और एकरूप व्यवहार के नियम को पुन: स्थापित करना है। साक्ष्य विधि के आधारभूत सिद्धान्त यह है कि साक्ष्य विवाद्य विषयों तक ही सीमित रहना चाहिए, अनुश्रुत साक्ष्य ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए और सभी स्थिति में सर्वोत्तम साक्ष्य ही दिया जाना चाहिए।

14.2 तथ्यों की सुसंगति

साक्ष्य कें नियमों में, सर्वस्व सबसे स्पष्ट यह नियम है कि, जो भी साक्ष्य न्यायालय में प्रस्तुत् किये जाते हैं वह हर तरह से उन्हीं बातों की ओर निर्देशित और सीमित होना चाहिए जो विवादग्रस्त हो, या जो अन्वेषण का विषय हों और कोई ऐसी चीज जो उन मामलों से न तो प्रत्यक्ष रूप से सुसंगत हो और न ही अप्रत्यक्ष रूप से उसे तुरंत अलग कर दिया जाना चाहिए। सुसंगत शब्द को साध्य अधिनियम में दो सुभिन्न अर्थो में प्रयुक्त किया गया है पहला:- ग्राह्य साक्ष्य के रूप में तथा दूसरा सम्बन्धित होने के रूप में।

भारतीय साध्य अधिनियम की धारा 3 के निर्वचन खण्ड के अनुसार''तथ्य'' से अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत आती हैं-

1. ऐसी कोई वस्तु, वस्तुओं की अवस्था, या वस्तुओं का सम्बन्ध जो इन्द्रियों द्वारा बोधगम्य हो,
2. कोई मानसिक दशा, जिसका भान किसी व्यक्ति को हो। इसी निर्वचन खण्ड के अनुसार एक तथ्य दूसरे से सुसंगत तब कहा जाता है जबकि तथ्यों की सुसंगति से सम्बन्धित इस अधिनियम के उपबन्धों में निर्दिष्ट प्रकारों में से किसी भी प्रकार से यह तथ्य उस दूसरे तथ्य से संसक्त हो। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 5 से 55 तक के प्रावधान तथ्यों की सुसंगति के सम्बन्ध में वर्णित किये गये हैं।

साक्ष्य अधिनियम के अनुसार किसी वाद या कार्यवाही में हर विवाचक तथ्य के और ऐसे अन्य तथ्यों के, जिन्हें सुसंगत घोषित किया गया है, अस्तित्व या अनस्तित्व का साक्ष्य दिया जा सकेगा और किन्हीं अन्यों का नहीं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के निर्वचन खण्ड के अनुसार विवाद्यक तथ्य वे तथ्य होते है जिनसे जाँच में समावेशित कुछ वैध अधिकार, दायित्व या असमर्थता आवश्यक रूप से उत्पन्न होती है। ऐसी बाते जिनकी वाद के एक पक्षकार ने पुष्टि कर दी हो और दूसरे ने उनसे इन्कार कर दिया हो उन्हें विवाद्यक तथ्य कहा जाता है। आपराधिक मामलों में आरोप ही विवाद्यक तथ्य को गठित करता है और वह उसी में सम्मलित होता है।

वे तथ्य जो तथ्य विवाद्यक न होते हुए भी किसी विवाद्यक तथ्य इस प्रकार संसक्त है कि वे एक ही संव्यवहार के भाग हैं, वे तथ्य सुसंगत हैं, चाहे वे उसी समय और स्थान पर या विभिन्न समयों और स्थानों पर घटित हुए हों। यह प्रावधान सम्बन्धित तथ्य और कार्य (res gestae) के सिद्धान्त पर आधारित है।

वे तथ्य सुसंगत हैं, जो सुसंगत तथ्यों के या विवाद्यक तथ्यों के अव्यवहित या अन्यथा प्रसंग, हेतुक या परिणाम है, या जो उस वस्तु स्थिति को गठित करते हैं जिसके अन्तर्गत वे घटित हुए या जिसने उनके घटने या संव्यवहार का अवसर दिया। कोई भी तथ्य, जो किसी विवाचक तथ्य या सुसंगत तथ्य का हेतु या तैयारी दर्शित या गठित करता है, सुसंगत है।

किसी वाद या कार्यवाही के किसी पक्षकार या किसी पक्षकार के अभिकर्ता का ऐसे वाद या कार्यवाही के बारे में या उसमें विवाद्यक तथ्य या उससे सुसंगत किसी तथ्य के बारे में आचरण और किसी ऐसे व्यक्तिका आचरण, जिसके विरूद्ध कोई अपराध किसी कार्यवाही का विषय है, सुसंगत -है, यदि ऐसा आचरण किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य को प्रभावित करता है या उससे प्रभावित होता है, चाहे वह उससे पूर्व का हो या पश्चात् का। इस धारा में''आचरण'' शब्द के अन्तर्गत कथन नहीं आते, जब तक कि वे कथन उन कथनों से भिन्न कार्यो के साथ-साथ और उन्हें स्पष्ट करने वाले न हों, किन्तु इस अधिनियम की किसी अन्य धारा के अधीन उन कथनों की सुसंगति पर इस स्पष्टीकरण

-का प्रभाव नहीं पड़ेगा। जब किसी व्यक्ति का आचरण सुसंगत है, तब उससे, या उसकी उपस्थिति और श्रवणगोचरता में किया गया कोई भी कथन, जो उस आचरण पर प्रभाव डालता है, सुसंगत है।

वे तथ्य, जो विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य के स्पष्टीकरण या पुन: स्थापन के लिए आवश्यक है अथवा जो किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य द्वारा इंगित अनुमान का समर्थन या खण्डन करते हैं, अथवा जो किसी व्यक्ति या वस्तु का, जिसकी अनन्यता सुसंगत हो, अनन्यता स्थापित करते हैं जब या जहाँ कोई विवाचक तथ्य या सुसंगत तथ्य घटित हुआ अथवा जो उन पक्षकारों का सम्बन्ध दर्शित करते हैं, जिनके द्वारा ऐसे किसी तथ्य का संव्यवहार किया गया था, वहाँ तक सुसंगत है जहाँ तक वे उस प्रयोजन के लिए आवश्यक हों।

जहाँ कि यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि दो या अधिक व्यक्तियों ने अपराध या अनुयोज्य दोष करने के लिए मिलकर षड्यंत्र किया है, वहाँ उनके सामान्य आशय के बारे में उनमें से किसी एक व्यक्ति द्वारा उस समय के पश्चात् जब ऐसा आशय उनमें से किसी एक ने प्रथम बार मन में धारण किया, कही की, या लिखी गई कोई बात उन व्यक्तियों में से हर एक व्यक्ति के विरूद्ध (जनज़ बारे में विश्वास किया जाता है कि उन्होंने इस प्रकार षड्यंत्र किया है, षड्यंत्र का अस्तित्व साबित करने के प्रयोजनार्थ उसी प्रकार सुसंगत तथ्य है जिस प्रकार यह दर्शित करने के प्रयोजनार्थ कि ऐसा कोई व्यक्ति उसका पक्षकार था।

वे तथ्य, जो अन्यथा सुसंगत नहीं है, सुसंगत है-

1. यदि वे किसी विवाद्यकु तथ्य या सुसंगत तथ्य से असंगत हैं,
2. यदि वे स्वयंमेव या अन्य तथ्यों के संसर्ग में किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य का अस्तित्व या अनस्तित्व अत्यन्त अधिस्मभाव्य या अनधिसम्भाव्य बनाते हैं।

उन वादों में, जिनमें नुकसानी का दावा किया गया है, कोई भी तथ्य सुसंगत है जिससे न्यायालय नुकसानी की वह रकम अवधारित करने के लिए समर्थ हो जाए, जो अधिनिर्णीत की जानी चाहिए।

जहाँ कि किसी अधिकार का रूढ़ि के अस्तित्व के बारे में प्रश्न है, निम्नलिखित तथ्य सुसंगत हैं-

(क) कोई संव्यवहार, जिसके द्वारा प्रश्नगत अधिकार या रूढ़ि सृष्ट, दावाकृत, उपांतरित मान्यकृत प्राख्यात या प्रयाख्यात की गई थी, या जो उसके अस्तित्व से असंगत था,

(ख) वे विशिष्ट उदाहरण, जिनमें वह अधिकार या रूढ़ि दावाकृत, मान्यकृत या प्रयुक्त की गई थी या जिनमें उसका प्रयोग विवादग्रस्त था या प्राख्यात किया गया था या उसका अनुसरण नहीं किया गया था।

मन की कोई भी दशा जैसे आशय, ज्ञान, सद्भाव, उपेक्षा, उतावलापन, किसी विशिष्ट व्यक्ति के प्रति वैमनस्य या सदिच्छा दर्शित करने वाले अथवा शरीर की या शारीरिक संवेदना की किसी दशा का अस्तित्व दर्शित करने वाले तथ्य तब सुसंगत है, जबकि ऐसी मन की या शरीर की या शारीरिक संवेदन की किसी ऐसी दशा का अस्तित्व विवाद्य या सुसंगत है। जो तथ्य इस नाते सुसंगत है कि वह मन की सुसंगत दशा के अस्तित्व को दर्शित करता है, उससे यह दर्शित होना ही चाहिए कि मन की वह दशा साधारणत: नहीं अपितु प्रश्नगत विशिष्ट विषय के बारे में, अस्तित्व में हैं। किन्तु जब किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विचारण में इस धारा के अर्थ के अन्तर्गत उस अभियुक्त द्वारा किसी अपराध का कभी पहले किया जाना सुसंगत हो, तब ऐसे व्यक्ति की पूर्व-दोषसिद्धि भी सुसंगत तथ्य होगी।

जबकि प्रश्न यह है कि कार्य आकस्मिक या साशय था या किसी विशिष्ट ज्ञान या आशय से किया गया था, तब यह तथ्य कि ऐसा कार्य समरूप घटनाओं की अवली का भाग था जिनमें से हर एक घटना के साथ वह कार्य करने वाला व्यक्ति संपृक्त था, सुसंगत है। जबकि प्रश्न यह है कि क्या कोई विशिष्ट कार्य किया गया था, तब कारगर के ऐसे किसी भी अनुक्रम का अस्तित्व, जिसके अनुसार वह कार्य स्वभावत् किया जाता सुसंगत तथ्य है।

14.3 स्वीकृतियाँ

स्वीकृति वह मौखिक या दस्तावेजी अथवा इलेक्ट्रॉनिक रूप में अन्तर्विष्ट कथन है, जो किसी विवाद्यक तथ्य या सुसंगत तथ्य के बारे में कोई अनुमान इंगित करता है। वे कथन स्वीकृतियां है, जिन्हें कार्यवाही के किसी पक्षकार ने किया हो, या ऐसे किसी पक्षकार के ऐसे किसी अभिकर्ता ने किया जो जिसे मामले की परिस्थितियों में न्यायालय उन कथनों को करने के लिए उस पक्षकार द्वारा अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से प्राधिकृत किया हुआ मानता है। वाद के ऐसे पक्षकारों द्वारा, जो प्रतिनिधिक हैसियत में वाद ला रहे हो जो या जिन पर प्रतिनिधिक हैसियत में वाद लाया जा रहा हो, किए गए कथन, जब तक कि वे उस समय न किए गए हो जबकि उनको करने वाला पक्षकार वैसी हैसियत धारण करता था, स्वीकृतियां नहीं है।

इसी तरह वे कथन स्वीकृतियां हैं, जो- विषयवस्तु में हितबद्ध पक्षकार द्वारा-ऐसे व्यक्तियों द्वारा किए गए है, जिनका कार्यवाही की विषयवस्तु में कोई साम्पत्तिक या धन संबंधी हित है और जो इस प्रकार हितबद्ध व्यक्तियों की हैसियत में वह कथन करते है, अथवा उस व्यक्ति द्वारा जिससे हित व्युत्पन्न हुआ हो-ऐसे व्यक्तियों द्वारा किये गए है, जिनसे वाद के पक्षकारों का वाद की विषय वस्तु में अपना हित व्युत्पन्न हुआ है, यदि वे कथन उन्हें करने वाले व्यक्तियों के हित के चालू रहने के दौरान में किए गए हैं। वे कथन, जो उन व्यक्तियों द्वारा किए गए है जिनकी वाद के किसी पक्षकार के विरूद्ध स्थिति या दायित्व साबित करना आवश्यक है, स्वीकृतियां है, यदि ऐसे कथन व्यक्तियों द्वारा या उन पर लाए गए वाद में ऐसी स्थिति या दायित्व के सम्बन्ध में ऐसे व्यक्तियों के विरूद्ध सुसंगत होते और यदि वे उस समय किए गए हों जबकि उन्हें करने वाला व्यक्ति ऐसी स्थिति ग्रहण किए हुए हैं या ऐसे दायित्व के अधीन है। वे कथन, जो उन व्यक्तियों द्वारा किए गए हैं जिनको वाद के किसी पक्षकार ने किसी विवादग्रस्त विषय के बारे में जानकारी के लिए अभिव्यक्त रूप से निर्दिष्ट किया है, स्वीकृतियां है।

स्वीकृतियां उन्हें करने वाले व्यक्ति के या उसके हित प्रतिनिधि के विरूद्ध सुसंगत है और साबित की जा सकेगी, किन्तु उन्हें करने वाले व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से या उसके हित प्रतिनिधि द्वारा निम्नलिखित अवस्थाओं में साबित किया जा सकेगा यदि:

1. वह इस प्रकृति की है कि यदि उसे करने वाला व्यक्ति मर गया होता, तो वह अन्य व्यक्तियों के बीच धारा 32 के अधीन सुसंगत होती।
2. जबकि वह मन की या शरीर की सुसंगत या विवाद्य किसी दशा के अस्तित्व का ऐसा कथन है जो उस समय या उसके लगभग किया गया था जब मन की या शरीर की ऐसी दशा विद्यमान थी ऐसे आचरण के साथ है जो उसकी असत्यता को अनधिसम्भाव्य कर देता है।
3. यदि वह स्वीकृति के रूप में नहीं किन्तु अन्यथा सुसंगत है।

किसी दस्तावेज की अन्तर्वस्तु के बारे में मौखिक स्वीकृतियां तब तक सुसंगत नहीं होती, यदि और जब तक उन्हें साबित करने की प्रस्थापना करने वाला पक्षकार यह दर्शित न कर दे कि ऐसी दस्तावेज की अन्तर्वस्तुओं का द्वितीयक साक्ष्य देने का वह नियमानुसार हकदार है, अथवा जब तक पेश की गई दस्तावेज का असली होना प्रश्नगत न हो। किसी इलैक्ट्रोनिक अभिलेख की अन्तर्वस्तु के बारे में मौखिक स्वीकृतियां तब तक सुसंगत नहीं होती जब तक पेश किए गए इलैक्ट्रोनिक अभिलेख का असली होना प्रश्नगत न हो। सिविल मामलों में कोई भी स्वीकृति सुसंगत नहीं है, यदि वह या तो इस अभिव्यक्त शर्त पर की गई हो कि उसका साक्ष्य नहीं दिया जाएगा या ऐसी परिस्थितियों के अधीन दी गई हो जिनसे न्यायालय यह अनुमान कर सके कि पक्षकार इस बात पर परस्पर सहमत हो गये थे कि उसका साक्ष्य नहीं दिया जाना चाहिए। इस धारा की कोई भी बात किसी बैरिस्टर, लीडर अटर्नी या वकील को किसी ऐसी बात का साक्ष्य देने से छूट देने वाली नहीं मानी जाएगी जिसका साक्ष्य देने के लिए उसे विवश किया जा सकता है। स्वीकृतियां, स्वीकृत विषयों का निश्चायक सबूत नहीं है, किन्तु विबन्ध के रूप में प्रवर्तित हो सकेंगी।

14.4 संस्वीकृतियाँ

संस्वीकृति ऐसी स्वीकृति है जो किसी व्यक्ति द्वारा उस समय की गई हो जब कि उस पर किसी अपराध का आरोप लगा हो, जिससे यह अनुमान कथित या इंगित होता हो कि उसने ही वह अपराध किया था।

अभियुक्त व्यक्ति द्वारा की गई संस्वीकृति दाण्डिक कार्यवाही में विसंगत होती है, यदि उसके किए जाने के बारे में न्यायालय को प्रतीत होता हो कि अभियुक्त व्यक्ति के विरूद्ध आरोप के बारे में वह ऐसी उत्पेरणा, धमकी या वचन द्वारा कराई गई है जो प्राधिकारवान व्यक्ति की ओर से दिया गया है और जो न्यायालय की राय में इसके लिए पर्याप्त हो कि वह अभियुक्त व्यक्ति को यह अनुमान करने के लिए उसे युकि।युक्त प्रतीत होने वाले आधार देती है कि उसके करने से वह अपने विरूद्ध कार्यवाहियों के बारे में ऐहिक रूप का कोई फायदा उठाएगा या ऐहिक रूप की किसी बुराई का परिवर्जन कर लेगा।

किसी पुलिस ऑफिसर से की गई कोई भी संस्वीकृति किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरूद्ध साबित न की जाएगी। किसी पुलिस आफिसर से की गई संस्वीकृति साक्ष्य में अग्राहय होती है। वह सिद्धान्त जिसके आधार पर किसी अभियुक्त द्वारा पुलिस के किसी अधिकारी से या ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में होते हुए की गई संस्वीकृति की अस्वीकृति आधारित होती है वह यह है कि इस प्रकार की गई या अभिप्राप्त की गई संस्वीकृति अविश्वसनीय होती है। जिस कारण से पुलिस के किसी अधिकारी से की गई संस्वीकृति को ग्रहण नहीं किया जाता वह है मिथ्या संस्वीकृति ग्रहण किए जाने के खतरे से बचना। कोई भी संस्वीकृति, जो किसी व्यक्ति ने उस समय की हो जब वह पुलिस ऑफिसर की अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध साबित न की जाएगी जब तक, कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में न की गई हो। परन्तु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस ऑफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी एतदद्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टयता सम्बन्धित है, साबित की जा सकेगी। यदि ऐसी संस्वीकृति अन्यथा सुसंगत है तो वह केवल इसलिए कि वह गुप्त रखने के वचन के अधीन या उसे अभिप्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अभियुक्त व्यक्ति से की गई प्रवंचना के परिणामस्वरूप, या उस समय जबकि वह मत्त था, की गई थी अथवा इसलिए कि ऐसे प्रश्नों के, चाहे उनका रूप कैसा

ही क्यों न रहा हो, उत्तर में की गई थी जिनका उत्तर देना उसके लिए आवश्यक नहीं था, अथवा केवल इसलिए कि उसे यह चेतावनी नहीं दी गई थी कि वह ऐसी संस्वीकृति करने के लिए आबद्ध नहीं था और कि उसके विरूद्ध उसका साक्ष्य दिया जा सकेगा, विसंगत नहीं हो जाती। जबकि एक से अधिक व्यक्ति एक ही अपराध के लिए संयुक्ता रूप से विचारित है तथा ऐसे व्यक्तियों में से किसी एक के द्वारा अपने को और ऐसे व्यक्तियों में से किसी अन्य को प्रभावित करने वाली की गई संस्वीकृति को साबित किया जाता है, तब न्यायालय ऐसी संस्वीकृति को ऐसे अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध तथा ऐसी संस्वीकृति करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध विचार में ले सकेगा। इस धारा में प्रयुक्त"अपराध" शब्द के अन्तर्गत उस अपराध का दुष्प्रेरण या उसे करने का प्रयन्त भी आता है।

स्वीकृति एवं संस्वीकृति में अन्तरः-

1. संस्वीकृति अभियुक्त द्वारा किया गया वह कथन होता है जिसे दाण्डिक कार्यवाही में उसी के विरूद्ध उसके द्वारा किए गए अपराध को साबित करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जबकि स्वीकृति का संबंध प्राय: सिविल संव्यवहार से होता है।
2. किसी संस्वीकृति को, यदि उसे जानबूझकर और स्वेच्छया किया गया है, सास्वीकृतिक मामलों में अपने आप में ही निश्चायक होने के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। स्वीकृति बातों का निश्चायक सबूत नहीं होती, किन्तु विबंध के रूप में सम्प्रवर्तित हो सकती है।
3. संस्वीकृति सदैव ही उस व्यक्ति के विरूद्ध जाती है जो उसे करता है, स्वीकृति का उपयोग करने वाले की ओर से कुछ अपवादों के अधीन ही किया जा सकता है।
4. एक ही अपराध के करने के लिए दो या अधिक अभियुक्तों के संयुक्त: विचारण में उनमें से एक के द्वारा की गई सस्वीकृतियो को सह-अभियुक्तों के विरूद्ध विचारण में, लिया जा सकता है। किन्तु, किसी वाद के कई प्रतिवादियों में से एक के द्वारा की गई स्वीकृति दूसरे प्रतिवादी के विरूद्ध कोई साक्ष्य नहीं होती।

14.5 उन व्यक्तियों के कथन, जिन्हें साक्ष्य में बुलाया नहीं जा सकता

सुसंगत तथ्यों के लिखित या मौखिक कथन, जो ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए थे, जो मर गया है या मिल नहीं सकता है या जो साक्ष्य देने के लिए असमर्थ हो गया है या जिसकी हाजिरी इतने विलम्ब या व्यय के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती, जितना मामले की परिस्थितियों में न्यायालय को अयुकियुक्त प्रतीत होता है, निम्नलिखित दशाओं में स्वयंमेव सुसंगत है-

1. **जबकि वह कथन किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कारण के बारे** में या उस संव्यवहार की किसी परिस्थिति के बारे में किया गया है जिसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, तब उन मामलों में, जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो। ऐसे कथन सुसंगत है, चाहे उस व्यक्ति को, जिसने उन्हें किया है, उस समय जब वे किये गये थे, मृत्यु की प्रत्याशका थी या नहीं और चाहे उस कार्यवाही की, जिसमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत होता है, प्रकृति कैसी ही क्यों न हो।

उपर्युक्त वर्णित कथन मृत्युकालिक कथन होते हैं जो कि साक्ष्य में ग्राह्य होते हैं। इसके पूर्व कि किसी मृत्युकालिक कथन को साक्ष्य में ग्रहण किया जाय, यह साबित किया जाना आवश्यक होगा कि वह मृतक द्वारा किया गया था। इसके लिए आवश्यक है कि उसमें उसके मृत्यु के कारण एवं परिस्थितियों का वर्णन किया गया हो। असंपुष्ट मृत्युकालिक कथन पर आधारित

दोषसिद्ध वैध होती है। न तो विधि का ऐसा कोई नियम है न ही प्रज्ञा का कि मृत्युकालिक कथन की दूसरी साक्ष्य से संपुष्टि आवश्यक होती है।

2. **अथवा कारबार के अनुक्रम में किया गया है**- जबकि वह कथन ऐसे व्यक्ति द्वारा कारबार के मामूली अनुक्रम में किया गया था तथा विशेषत: जबकि वह, उसके द्वारा कारबार के मामूली अनुक्रम में या वृत्तिक कर्त्तव्य के निर्वहन में रखी जाने वाली पुस्तकों में उसके द्वारा की गई किसी प्रविष्टि या किए गए ज्ञापन के रूप में है, अथवा उसके द्वारा धन, माल, प्रतिफूइतयों या किसी भी किस्म की सम्पत्ति की प्राप्ति की लिखित या हस्ताक्षरित अभिस्वीकृति है, अथवा वाणिज्य में उपयोग में आने वाली उसके द्वारा लिखित या हस्ताक्षरित किसी दस्तावेज की तारीख के रूप में है, जो कि उसके द्वारा प्राय: दिनांकित, लिखित या हस्ताक्षरित की जाती थी।

3. **अथवा करने वाले के हित के विरूद्ध है**- जबकि वह कथन उसे करने वाले व्यक्ति के धन सम्बन्धी या साम्पतिक हित के विरूद्ध है या जबकि, यदि वह सत्य हो, तो उसके कारण उस पर दाण्डिक अभियोजन या नुकसानी का वाद लाया जा सकता है या लाया जा सकता था।

4. **अथवा लोक अधिकार या रूढ़ि के बारे में या साधारण हित के विषयों के बारे में कोई राय** देता है- जबकि उस कथन में उपर्युक्त व्यक्ति की राय किसी ऐसे लोक अधिकार या रूढ़ि अथवा लोक या साधारण हित के विषय के अस्तित्व के बारे में है, जिसके अस्तित्व से, यदि वह अस्तित्व में होता तो उससे उस व्यक्ति का अवगत होना सम्भाव्य होता और जबकि ऐसा कथन ऐसे किसी अधिकार, रूढ़ि या बात के बारे में किसी सविवाद के उत्पन्न होने से पहले किया गया था।

5. **अथवा नातेदारी के अस्तित्व से सम्बन्धित है**- जबकि वह कथन किन्हीं ऐसे व्यक्तियों के बीच रक्त, विवाह या दस्तक ग्रहण पर आधारित किसी नातेदारी के अस्तित्व के सष्कध में है, जिन व्यक्तियों की रक्त विवाह या दस्तक ग्रहण पर आधारित नातेदारी के बारे में उस व्यक्ति के पास, जिसने वह कथन किया है, ज्ञान के विशेष साधन थे और जब कि वह कथन विवादग्रस्त प्रश्न के उठाए जाने से पूर्व किया गया था।

6. **अथवा कौदुम्बिक बातों से सम्बन्धित विल या विलेख में किया गया है** - जबकि वह कथन मृत व्यक्तियों के बीच रक्त, विवाह या दस्तक ग्रहण पर आधारित किसी नातेदारी के अस्तित्व के सम्बन्ध में है और उस कुटुम्ब की बातों से, जिसका ऐसा मृत व्यक्ति अंग था, सम्बन्धित किसी विल या विलेख में या किसी कुटुम्ब-वंशावली में या किसी समाधि प्रस्तर, कुटुम्ब-चित्र या अन्य चीजों पर जिन पर ऐसे कथन प्राय: किए जाते हैं, किया गया है, और जब कि ऐसा कथन विवादग्रस्त प्रश्न के उठाए जाने से पूर्व किया गया था।

7. **अथवा** - जबकि वह कथन किसी ऐसे विलेख, विल या अन्य दस्तावेज में अन्तर्विष्ट है, जो किसी ऐसे संव्यवहार से सम्बन्धित है।

8. **अथवा** जबकि वह कथन कई व्यक्तियों द्वारा किया गया था और प्रश्नगत बात से सुसंगत उनकी भावनाओं या धारणाओं को अभिव्यक्ति करता है।

वह साक्ष्य, जो किसी साक्षी ने किसी न्यायिक कार्यवाही में, या विधि द्वारा उसे लेने के लिए प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष दिया है, उन तथ्यों की सत्यता को, जो उस साक्ष्य में कथित है, किसी पश्चात्वर्ती न्यायिक कार्यवाही में या उसी न्यायिक कार्यवाही के आगामी प्रक्रम में साबित करने के प्रयोजन के लिए तब सुसंगत है, जबकि वह साक्षी मर गया है या मिल नहीं सकता है, या वह साक्ष्य

देने के लिए असमर्थ है या प्रतिपक्षी द्वारा उसे पहुँच के बाहर कर दिया गया है अथवा यदि उसकी उपस्थिति इतने विलम्ब या व्यय के बिना, जितना कि मामले की परिस्थितियों में न्यायालय अयुक्तियुक्त समझता है, अभिप्राप्त नहीं की जा सकती, परन्तु वह तब जब कि वह कार्यवाही उन्हीं पक्षकारों या उनके हित प्रतिनिधियों के बीच में थी, प्रथम कार्यवाही में प्रतिपक्षी को प्रतिपरीक्षा का अधिकार और अवसर था, विवाद्य प्रश्न प्रथम कार्यवाही में सारत: वही थे जो द्वितीय कार्यवाही में है। दाण्डिक विचारण या जाँच इस धारा के अर्थ के अन्तर्गत अभियोजक और अभियुक्त के बीच कार्यवाही समझी जायेगी।

14.6 विशेष परिस्थितियों में किये गये कथन

कारबार के अनुक्रम में नियमित रूप से रखी गई लेखा पुस्तकों की प्रविष्टियां, जिनके अन्तर्गत वे भी हैं, जो इलैक्ट्रॉनिक रूप में रखी गई हो, जब कभी वे ऐसे विषय का निर्देश करती हैं, जिसमें न्यायालय को जाँच करनी सुसंगत है, किन्तु अकेले ऐसे कथन ही किसी व्यक्ति को दायित्व से भारित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं होंगे। किसी लोक या अन्य राजकीय पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख या इलैक्ट्रॉनिक अभिलेख में की गई प्रविष्टि, जो किसी विवाद्यक या सुसंगत तथ्य का कथन करती है और किसी लोक सेवक द्वारा अपनी पदीय कर्त्तव्य के निर्वहन में या उस देश की, जिसमें ऐसी पुस्तक, रजिस्टर या अभिलेख या इलैक्ट्रॉनिक अभिलेख रखा जाता है, विधि द्वारा विशेष रूप से व्यादिष्ट कर्त्तव्य के पालन में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की गई है, स्वयं सुसंगत तथ्य है।

विवाद्यक तथ्यों या सुसंगत तथ्यों के वे कथन, जो प्रकाशित मानचित्रों या चाटो में, जो लोक विक्रय के लिए साधारणत: प्रस्थापित किए जाते है अथवा केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के प्राधिकार के अधीन बनाए गए मानचित्रों या रेखाको में किए गए है, उन विषयों के बारे में, जो ऐसे मानचित्रों, चार्टो, रेखाको में प्राय: रूपित या कथित होते हैं, स्वयं सुसंगत तथ्य है।

प्रकृति के तथ्य के बारे में कथन की सुसंगति- जबकि न्यायालय को किसी लोक-प्रकृति के तथ्य के अस्तित्व के बारे में राय बनानी है तब यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेन्ट के ऐक्ट में किसी केन्द्रोय अधिनियम प्रान्तीय अधिनियम या राज्य अधिनियम में या शासकीय राजपत्र में प्रकाशित किसी सरकारी अधिसूचना या क्राउन रिप्रेजेन्टेटिव द्वारा की गई अधिसूचना में या लन्दन गजट या हिज मैजेस्टी के किसी डोमिनियन, उपनिवेश या कब्लाधीन क्षेत्र का सरकारी राजपत्र तात्पर्यित होने वाले किसी मुद्रित पत्र में अन्तर्विष्ट परिवर्णन में किया गया उसका कोई कथन सुसंगत तथ्य हैं।

जबकि न्यायालय को किसी देश की विधि के बारे में राय बनानी है, तब ऐसी विधि क्रा कोई भी कथन, जो ऐसी किसी पुस्तक में अन्तर्विष्ट है जो ऐसे देश की सरकार के प्राधिकार के अधीन मुद्रित या प्रकाशित और ऐसी किसी विधि को अन्तर्विष्ट करने वाली तात्पर्यित है, और ऐसे देश के न्यायालयों के किसी विनिर्णय की कोई रिपोर्ट, जो ऐसी व्यवस्थाओं की रिपोर्ट से तात्पर्यित होने वाली किसी पुस्तक में अन्तर्विष्ट है, सुसंगत हैं।

जबकि कोई कथन, जिसका साक्ष्य दिया जाता है, किसी वृहतार कथन का या किसी बातचीत का भाग है या किसी एकल दस्तावेज का भाग है, या किसी ऐसी दस्तावेज में अन्तर्विष्ट है, जो किसी पुस्तक का अथवा पत्रों का कागज पत्रों की संसक्त अवली का भाग है, या इलैक्ट्रॉनिक अभिलेख के भाग में अंतर्विष्ट है तब उस कथन, बातचीत, दस्तावेज, इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख, पुस्तक अथवा पत्रों या कागज पत्रों की आवली के उतने का ही, न कि उतने से अधिक का, साक्ष्य दिया जाएगा, जितना

न्यायालय उस कथन की प्रकृति और प्रभाव को तथा उन परिस्थितियों को, जिन अधीन वह किया गया था, पूर्णत: समझने के लिए उस विशिष्ट मामले में आवश्यक विचार करता है।

14.7 न्यायालयों के निर्णय की सुसंगतता

साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निर्णयों के रूप में निर्णय या न्याय निर्णयन इस धारा के अधीन पूर्व-न्याय के रूप में ग्राह्य हैं और लोक प्रकृति के मामलों से सम्बंधित होने के रूप में निर्णयों को छोडकर अन्य निर्णय सुसंगत हो सकते हैं, यदि उनका अस्तित्व विवाद्यक तथ्य है या किसी अन्य उपबंध के अधीन सुसंगत है।

किसी ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का अस्तित्व, जो किसी न्यायालय को किसी वाद के संज्ञान से या कोई विचारण करने से विधि द्वारा निवारित करता है, सुसंगत तथ्य है जबकि प्रश्न यह हो कि क्या ऐसे न्यायालय को ऐसे वाद का संज्ञान या ऐसे विचारण करना चाहिए। किसी सक्षम न्यायालय के प्रोबेट-विषयक विवाह-विषयक, नवाधिकरण-विषयक या दिवाला विषयक अधिकारित के प्रयोग में दिया हुआ अन्तिम निर्णय, आदेश या डिक्री, जो किसी व्यक्ति को, या से कोई विधिक हैसियत प्रदान करती या ले लेती है या जो सर्वत: न कि किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति के विरूद्ध किसी व्यक्ति को ऐसी किसी हैसियत का हकदार या किसी विनिर्दिष्ट चीज का हकदार घोषित करती है, तब सुसंगत है जबकि ऐसी विधिक हैसियत, या किसी ऐसी चीज पर किसी ऐसे व्यक्ति के हम का अस्तित्व सुसंगत है।

ऐसा निर्णय, आदेश डिक्री इस बात का निश्चायक सबूत है- कि कोई विधिक हैसियत, जो वह प्रदत्त करती है, उस समय प्रोद्भूत हुई जब ऐसा निर्णय, आदेश या डिक्री परिवर्तन में आई, कि कोई विधिक हैसियत, जिसके लिए वह किसी व्यक्ति को हकदार घोषित करती है, उस व्यक्ति को उस समय प्रोद्भूत हुई जो समय ऐसे निर्णय आदेश या डिक्री द्वारा घोषित है कि उस समय वह उस व्यक्ति को प्रोद्भूत हुई, कि कोई विधिक हैसियत, जिसे वह किसी ऐसे व्यक्ति से ले लेती है उस समय खत्म हुई जो उस समय ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री द्वारा घोषित है कि उस समय से वह हैसियत खत्म हो गई थी या खत्म हो जानी चाहिए, और कि कोई चीज, जिसके लिए वह किसी व्यक्ति को ऐसा हकदार घोषित करती है उस व्यक्ति की उस समय सम्पत्ति थी जो समय ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री द्वारा घोषित है कि उस समय से वह चीज उसकी सम्पत्ति थी या होनी चाहिए।

वे निर्णय, आदेश या डिक्रिया यदि वे जाँच में सुसंगत लोक प्रकृति की बातों से सम्बन्धित हैं, तो वे सुसंगत हैं, किन्तु ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्रियां उन बातों का निश्चायक सबूत नहीं है जिनका वे कथन करती है। अन्य निर्णय, आदेश या डिक्रिया विसंगत हैं जब तक कि ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का अस्तित्व विवाद्यक तथ्य न हो या वह इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अन्तर्गत सुसंगत न हो। वाद या अन्य कार्यवाही का कोई भी पक्षकार यह दर्शित कर सकेगा कि कोई निर्णय, आदेश या डिक्री, जो धारा 40, 41 या 42 के अधीन सुसंगत है और जो प्रतिपक्षी द्वारा साबित की जा चुकी है, ऐसे न्यायालय द्वारा दी गई थी जो उसे देने के लिए अक्षम था या कपट या दुस्संधि द्वारा अभिप्राप्त की गई थी।

14.8 अन्य व्यक्तियों की राय की सुसंगतता

जब की न्यायालय को विदेशी विधि की या विज्ञान की या कला की किसी बात पर या हस्तलेख या अंगुली-चिह्नों की अनन्यता के बारे में राय बनानी हो तब उस बात पर ऐसी विदेशी विधि, विज्ञान या कला में या हस्तलेख या अंगुली-चिह्नों की अनन्यता विषयक प्रश्नों में, विशेष कुशल व्यक्तियों की रायें सुसंगत तथ्य है। ऐसे व्यक्ति विशेषज्ञ कहलाते हैं।

जब कार्यवाही में, न्यायालय को संचारित सूचना या कम्प्यूटर स्त्रोत में संरक्षित, सूचना या अन्य इलैक्ट्रॉनिक या अंकीय रूप में अपनी राय बनानी हो तो इलैक्ट्रॉनिक साक्ष्य परीक्षक की राय एक सुसंगत तथ्य है। इस धारा के प्रयोजन के लिए इलैक्ट्रॉनिक साक्ष्य के लिए परीक्षक एक विशेषज्ञ होगा।

'विशेषज्ञ' साक्षी वह होता है जो ज्ञान की किसी विशिष्ट शाखा का अध्ययन किए होता है और इस प्रकार, उन बातों के बारे में विशेष रूप से कुशल होता है जिनके बारे मैं उसे अपनी राय देने के लिए कहा जाता है। किसी अधिकरण को संतोषाजनक निष्कर्ष पर पहुँचने के सक्षम बनाने के लिए ऐसी बातों के बारे में उसका साक्ष्य ग्राह्य है। वे तथ्य, जो अन्यथा सुसंगत नहीं हैं सुसंगत होते हैं यदि वे विशेषज्ञों की रायों का समर्थन करते हों या उनसे असंगत हों जबकि ऐसी रायें सुसंगत हो। जबकि न्यायालय को राय बनानी हो कि कोई दस्तावेज किस व्यक्ति ने लिखी या हस्ताक्षरित की थी, तब उस व्यक्ति के हस्तलेख से, जिसके द्वारा वह लिखी या हस्ताक्षरित की गई अनुमानित की जाती है, परिचित किसी व्यक्ति की यह राय कि वह उस व्यक्ति द्वारा लिखी या हस्ताक्षरित की गई थी अथवा लिखी या हस्ताक्षरित नहीं की गई थी, सुसंगत तथ्य हैं।

जब न्यायालय को किसी व्यक्ति के इलैक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर के बारे में राय बनानी हो, तब उस प्रमाणकर्ता प्राधिकारी की राय, जिसने इलैक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर प्रमाणपत्र जारी किया है, सुसंगत तथ्य है।

जबकि न्यायालय को किसी साधारण रूढ़ि या अधिकार के अस्तित्व के बारे में राय बनानी हो, तब ऐसी रूढ़ि या अधिकार के अस्तित्व के बारे में उन व्यक्तियों की रायें सुसंगत हैं, जो यदि उसका अस्तित्व होता तो सम्भाव्यत: उसे जानते होते।"साधारण रूढ़ि या अधिकार" के अन्तर्गत ऐसी रूढ़ियां या अधिकार आते हैं जो व्यक्तियों के किसी काफी बड़े वर्ग के लिए सामान्य हैं।

जबकि न्यायालय को - मनुष्यों के किसी निकाय या कुटुम्ब की प्रथाओं और सिद्धान्तों के, - किसी धार्मिक या खैराती प्रतिष्ठान के संविधान और शासन के, अथवा विशिष्ट जिले में या विशिष्ट वर्गो के लोगों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले शब्दों या पदों के अर्थो के बारे में राय बनानी हो, तब उनके सम्बन्ध में ज्ञान के विशेष साधान रखने वाले व्यक्तियों की रायें सुसंगत तथ्य है। जबकि न्यायालय को एक व्यक्ति की किसी अन्य के साथ नातेदारी के बारे में राय बनानी हो, तब ऐसी नातेदारी के अस्तित्व के बारे में ऐसे किसी व्यक्ति के आचरण द्वारा अभिव्यक्त राय जिसके पास कुटुम्ब के सदस्य के रूप में या अन्यथा उस विषय के सम्बन्ध में ज्ञान के विशेष साधन हैं, सुसंगत तथ्य है: ऐसी राय विवाह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। जब कभी किसी जीवित व्यक्ति की राय सुसंगत है, तब वे आधार भी, जिन पर वह आधारित है, सुसंगत हैं।

14.9 शील की सुसंगतता

'शील' में ख्याति और स्वभाव दोनों शामिल होते हैं।'ख्याति' से अभिप्राय जो कुछ दूसरे लोग किसी व्यक्ति के बारे में सोचते हैं, उससे है, और वह लोकमत से गठित होती है।'स्वभाव' के सम्बन्ध मस्तिष्क की बनावट और संरचना से है।'मनोदशा' किसी क्षण किए गए कार्य को प्रभावित करती है,'स्वभाव' स्थाई और स्थिर होता है,'मनोदशा' अस्थाई और अस्थिर हो सकती है।'शील' की सुसंगति का प्रश्न सिविल या आपराधिक मामलों में उठ सकता है।

सिविल मामलों में यह तथ्य कि किसी समृक्त व्यक्ति का शील ऐसा है कि जो उस पर अध्यारोपित किसी आचरण को अधिस्मभाव्य बना देता है, विसंगत हैं वहाँ तक के; सिवाए जहाँ तक कि ऐसा शील अन्यथा सुसंगत तथ्यों से प्रकट होता है।

दांडिक कार्यवाहियों में यह तथ्य सुसंगत है कि अभियुक्त व्यक्ति अच्छे शील का है। दांडिक कार्यवाहियों में यह तथ्य कि अभियुक्त व्यक्ति बुरे शील का है, सुसंगत नहीं है, जब तक कि इस बात का साक्ष्य न दिया गया हो कि वह अच्छे शील का है जिसके दिए जाने की दशा में वह सुसंगत हो जाता है। यह धारा उन मामलों को लागू नहीं है जिनमें किसी व्यक्ति का बुरा शील स्वयं विवाद्यक तथ्य है। पूर्व दोष सिद्ध बुरे शील के साक्ष्य के रूप में सुसंगत है।

सिविल मामलों में, यह तथ्य कि किसी व्यक्ति का शील ऐसा है जिससे नुकसानी की रकम पर, जो उसे मिलनी चाहिए, प्रभाव पडता है, सुसंगत है।'शील'' शब्द के अन्तर्गत ख्याति और स्वभाव दोनों आते हैं। केवल साधारण ख्याति व साधारण स्वभाव का ही न कि ऐसे विशिष्ट कार्यो का, जिनके द्वारा ख्याति या स्वभाव दर्शित हुये थे, साक्ष्य दिया जा सकेगा।

14.10 सारांश

सुसंगत तथ्य वह तथ्य है जिसमें कुछ स्तर की प्रमाणिक शक्ति होती है। सुसंगति के सम्बन्ध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 5 से 55 तक विभिन्न प्रावधान वर्णित किये गये है। एक ही संव्यवहार के भाग होने वाले तथ्य, वे तथ्य जो विवाद्यक तथ्यों के प्रसंग या परिणाम है, वे तथ्य जो हेतु तैयारी और पूर्व या पश्चात् का आचरण है, वे तथ्य जो सुसंगत तथ्यों के स्पष्टीकरण या पुन: स्थापन के लिए आवश्यक है, वे तथ्य जो षड्यंत्र कारी द्वारा सामान्य परिकल्पना के बारे में कहे गये हैं या किये गये है, वे तथ्य जो नुकसानी के वादों में रकम अवधारित करने के लिए न्यायालय को समर्थ करने की प्रवृत्ति रखते है, किसी अधिकार या रूढ़ि के बारे में हैं, मन की या शरीर की दशा या शारीरिक संवेदना का अस्तित्व दर्शित करते हैं, कार्य आकस्मिक या साशय था इस प्रश्न पर प्रकाश डालते है या कारबार के अनुक्रम में किए गये हैं, सुसंगत तथ्य है। इसी तरह स्वीकृतियाँ, संस्वीकृतियाँ, ऐसे व्यक्तियों के कथन जिन्हें साक्षी के रूप में नहीं बुलाया जा सकता। विशेष परिस्थितियों के अधीन कथन, न्यायालयों के निर्णय, अन्य व्यक्तियों की राय। पक्षकारों का शील आदि तथ्य कुछ परिस्थितियों के अधीन सुसंगत तथ्य हैं। परन्तु सुसंगत शब्द ग्रादय शब्द के समविस्तीर्ण नहीं है। कुछ तथ्य सुसंगत हो सकते है किन्तु समस्त सुसंगत तथ्य साक्ष्य में ग्राद्दय नहीं है। उनकी ग्राह्यता के बारे में विधिक अवरोध हो सकते हैं। ग्राह्यता में सुसंगति शामिल होती है परन्तु सुसंगति में ग्राह्यता शामिल नहीं होती है।

14.11 अभ्यास प्रश्न

1. तथ्यों की सुसंगति से आप क्या समझते है?
2. स्वीकृति से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
3. संस्वीकृति से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
4. स्वीकृति से आप क्या समझते है?
5. 5 संस्वीकृति की परिभाषा दीजिए।
6. उन व्यक्तियों के कथनों, जिन्हें साक्ष्य में नहीं बुलाया जा सकता से सम्बन्धित प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
7. विशेष परिस्थितियों में किये गये कथनों सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
8. अन्य व्यक्तियों की राय कब सुसंगत है?
9. शील कब सुसंगत है?
10. न्यायालयों के निर्णय कब सुसंगत है?

14.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय साक्ष्य अधिनियम द्वारा रतन लाल तथा धीरजलाल
2. प्रिन्सीपल्स ऑफ द एवीडेन्स द्वारा अवतार सिंह
3. द लॉ ऑफ एवीडेन्स द्वारा बटुक लाल

इकाई - 15

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 : विशेषज्ञों के मत और महत्व (सेक्शन 45-51)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 विशेषज्ञ कौन होता है?

15.3 मामले अथवा मुकदमे (जिनमें विशेषज्ञ प्रमाण या सबूत दाखिल किये जा सकते हैं)

15.4 विशेषज्ञ प्रमाण या सबूत की विषय- वस्तु

15.5 सेक्शन 47 इंडियन एविडेंस एक्ट

15.6 सेक्शन 48 इंडियन एविडेंस एक्ट

15.7 सेक्शन 49 एण्ड 50 इंडियन एविडेंस एक्ट

15.8 सेक्शन 51 इंडियन एविडेंस एक्ट

15.9 ओपिनियन एज टू द कैरेक्टर

15.10 विशेषज्ञों का प्रमाण मूल्य

15.11 विशेषज्ञ गवाह के रूप में प्रस्तुत ना हो

15.12 मेडिकल प्रमाण एवं ओक्यूलर प्रमाण के बीच मतभेद

15.13 सारांश

15.14 अभ्यास प्रश्न

15.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप
- इंडियन एविडेंस एक्ट 1872 के तहत विशेषज्ञों के मत और महत्व से सम्बन्धित सेक्शन 45 से 51 की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इंडियन एविडेंस एक्ट 1872 में विशेषज्ञ प्रमाण के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर सकेंगे।
- विशेषज्ञ प्रमाण की विषय वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मेडिकल प्रमाण एवं ओक्यूलर प्रमाण के बीच मतभेद समझ सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

प्रमाण का कानून एक व्यक्ति, जो कि किसी मुद्दे के तथ्यों का गवाह है या प्रासंगिक तथ्यों की जानकारी देता है, उसे अनुमति देता है लेकिन उस पर निष्कर्ष नहीं निकालता। यह दोनों फौजदारी एवं दीवानी कानून में लागू होता है। न्यायाधीश, जो कि तथ्यों का निर्णय लेता है, उसके अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति का मत मामले के निर्णय में अप्रासंगिक होता है जिसे वे सबसे स्पष्ट कारणों से जोड़ते हैं।

यह नियम हालांकि अपने अपवाद से रहित नहीं है। अगर कानून में कोई मुद्दा उठता है जो कि अन्य विज्ञान व विषय से जुड़ा हो, तो साधारणत: हम उसी विज्ञान व विषय की सहायता लेते है जो उससे संबंधित हो।

अत: विशेषज्ञ साक्ष्य या प्रमाण प्रतिरोधक या निवारक नियम के लिए एक अपवाद है और मत साक्ष्य या प्रमाण देने के लिए स्वीकृत है। न्यायाधीश से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह सभी क्षेत्रों में विशेषज्ञ या ज्ञाता हो खासतौर पर जहाँ विषय वस्तु में तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता हो। जो तथ्य अत्याधिक तकनीकी हो, उनमें से परिणाम निकालना उसके लिए संभव नहीं है। इन स्थितियों में उसे एक विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है, जिसे उच्च स्तर का ज्ञान हा या उस विषय के संबंध में अनुभव हो। यह योग्यता उस विशिष्ट मामले में पहले प्रमाण को स्वीकार्य बना देती है, हालांकि वह उस मामले से किसी भी प्रकार से संबंधित ना हो क्योंकि विशेषज्ञ के पास विशिष्ट जानकारी होती है जबकि न्यायाधीश, जो कि तकनीकी ज्ञान से सुसज्जित नहीं है और इसीलिए उसके समक्ष प्रस्तुत तथ्यों से परिणाम निकालने या निर्णय लेने में समर्थ नहीं होता।

15.2 विशेषज्ञ कौन होता है?

विशेषज्ञ वह व्यक्ति है जो अपना समय और अध्ययन अपनी विशिष्ट ज्ञान या विद्या को देता है। अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के अनुसार विशेषज्ञ वह व्यक्ति है जिसके पास वह ज्ञान और अनुभव है जो साधारणत: अन्य किसी व्यक्ति के पास नहीं होता। भारतीय न्यायालयों के अनुसार विशेषज्ञ वह व्यक्ति है जिसके पास किसी कला, व्यापार या पेशे में कुछ खास ज्ञान, गुण एवं अनुभव होता है। और जरूरी नहीं ऐसा ज्ञान किसी विश्वविद्यालय द्वारा ही दिया जाए, वह ऐसे ज्ञान को अभ्यास, अवलोकन और ध्यानपूर्ण अध्ययन से भी अर्जित कर सकता है। विशेषज्ञ साधारण ज्ञान की सीमा से ऊपर वाले क्षेत्र में कार्य करता है। जब न्यायालय को किसी विदेशी कानून, कला व विज्ञान, और हस्तरेखा या हस्तलिपि पहचानने आदि बिंदुओं से संबंधित कोई मत निर्धारित करना होता है, तो ऐसे में प्रासंगिक तथ्य इन क्षेत्रों के विशेषज्ञ के मत द्वारा ही लिए जा सकते हैं। इन व्यक्तियों को ही विशेषज्ञ कहा जाता हे। निष्कर्ष यह है कि किसी भी विशिष्ट कला, व्यापार एवं पेशे में विशिष्ट ज्ञान रखने वाला व्यक्ति ही विशेषज्ञ कहलाता है।

विशेषज्ञ एक साक्ष्य के रूप में

विशेषज्ञ का कथन या गवाही सभी प्रकार के मत प्रमाण या साक्ष्यों के संदर्भ में लागू नहीं होती है। साक्ष्य वह नहीं है जो बिना किसी विशेष ज्ञान के अपने विचारों को प्रमाणित कर गवाही दे दे। साधारण ज्ञान के प्रश्न के लिए विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं है जैसे कि स्टील की थाली को 10 किलो के हथौड़े से मारने पर आवाज आएगी अथवा नहीं। विशेषज्ञ प्रमाण और साक्ष्य ज्यादातर हस्थलिपि या लिखावट, उस, मौसम एवं किसी व्यापार से जुड़े आचरण आदि के संदर्भ तलाशा जाता है। कोई व्यक्ति जिसे जमीनों की कीमत के बारे में अपने अनुभव के कारण खास ज्ञान है. लेकिन वह इस व्यवसाय में नहीं है तब भी उसे उस क्षेत्र का विशेषज्ञ माना जाएगा। कई वर्षा से भारतीय न्यायालयों में सुनार के कथन या गवाही को सोने के खरेपन के लिए और उसे पहचानने के लिए विशेषज्ञ माना जाता रहा है जबकि यह परीक्षण बहुत ही अपरिपक्व है क्योंकि इसमें केवल धातु को किसी खास पत्थर पर घिस के ही पता लगाया जाता है और अब जब सोने की शुद्धता को जाँचने की तकनीक का विकास हो चुका है, सुनार के साक्ष्य महत्वहीन हो जाते हैं।

15.3 मामले अथवा मुकदमें (जिनमें विशेषज्ञ प्रमाण या सबूत दाखिल किये जा सकते हैं)

न्यू हैंम्पस्टेड के सुप्रीम कोर्ट अर्थात उच्च न्यायालय ने इन मामलों को तीन भागों में विभाजित किया है और यह घोषणा की है कि विशेषज्ञ निम्न बातों पर अपने मत दे सकते है-

1. विज्ञान, किसी कौशल या व्यापार या अन्य किसी विषय के प्रश्न पर
2. जब पूछताछ की विषय वस्तु की प्रकृति कुछ ऐसी है कि बिना किसी मदद के अनुभवहीन व्यक्ति कोई उचित निर्णय नहीं बना सकता।
3. जब जाँच की विषय वस्तु की प्रकृति विज्ञान से जुड़ी है, जिसका पर्याय किसी पुरानी आदत और किसी ज्ञान को प्राप्त करने के अध्ययन से हो।

इंडियन एविडेंस एक्ट में विशेषज्ञ प्रमाण या सबूत

विशेषज्ञ प्रमाण इंडियन एविडेंस एक्ट की धारा 45-51 के अंतर्गत आते हैं। इस अधिनियम की धारा 45 यह अनुमति देती है कि जब जाँच की विषय वस्तु विज्ञान व कला से संबंधित हो जिसमें पुरानी आदत या अध्ययन की जानकारी की आवश्यकता हो और इस संबंध में अनुभवहीन व्यक्ति उचित निर्णय नहीं ले सकता इसीलिए जाँच की विषय वस्तु की महत्वपूर्ण जानकारी रखने वाले के मत अर्थात जिसे विशेषज्ञ कहा जा सके, वही प्रासंगिक होता है। हालांकि एक व्यक्ति समर्थ व पर्याप्त साक्ष्य है या नहीं, यह उसके न्यायालय में दिये गये कथन या गवाही से ही सिद्ध होता है। किसी विशेषज्ञ की निपुणता न्यायाधीश के समक्ष एक प्राथमिक प्रशन है। विशेषज्ञ, जरूरी नहीं है कि पेशेवर विशेषज्ञ हो, जो कि अपनी जीविका ऐसे साक्ष्य प्रदान कर ही चलाता हो, लेकिन उसके पास पर्याप्त समय और विषय की पूरी जानकारी होनी चाहिए ताकि वह अपने प्रमाण को सिद्ध कर सके और उन्हें विश्वसनीय बना सके।

15.4 विशेषज्ञ प्रमाण या सबूत की विषय वस्तु

धारा में उल्लिखित विशेषज्ञ कथन या गवाही के विषय हैं- विदेशी कानून, विज्ञान, कला और हस्तलिपि या अंगुलियों के निशान पहचानना। किसी अन्य विषय पर विशेषज्ञ स्वीकार्य नहीं है। 1954 में यह स्थिति थी। लेकिन अब यह कानून नहीं है। प्रमाण से संबंधित कानून पीस मील पद्धति के रूप में विकसित हुआ है जो कि प्रत्येक क्षेत्र में विकसित होती तकनीक के साथ प्रगति कर रहा है। विज्ञान और कला, ये शब्द, अगर छोटे अर्थ में समझे जाएं उन मुद्दों को अलग कर देंगे जिनमें विशेषज्ञ कथन या गवाही स्वीकार्य होती है जैसे कि व्यापार हथकरघा, अस्त्र विज्ञान इत्यादि। प्रत्येक व्यापार और कारोबार जिसमें कोई विशेष वर्ग किसी उद्यम से जुड़ा हुआ हो, वह कला या व्यापार की श्रेणी में आता है। जब विदेशी कानून का प्रशन उठता है तब किसी पेशेवर वकील का प्रमाण किसी पद पर बैठे अफसर जिसकी आवश्यकता होती है और इसीलिए कानूनी ज्ञान या फिर विधी के शिक्षक का प्रमाण स्वीकार्य होता है। जहाँ तक विज्ञान और कला का संबंध है, मोटे तौर पर इनका आशय यह है जिनमें सभी विषय शामिल किये जाते हैं जिनपर मत निर्धारित करने के लिए खास अध्ययन एवं अनुभव की आवश्यकता होती है।

किसी चिकित्सा के क्षेत्र से जुड़े व्यक्ति का मत उन प्रश्नों पर स्वीकार्य होता है जो कि उसके क्षेत्र के होते हैं जैसे कि पागलपन, बीमारियों के कारण, चोट की प्रकृति या स्थिति, या फिर इन चोट को पहुंचाने के लिए प्रयोग में लिए गये हथियार, मौत के कारण, मार डालने के लिए प्रयोग में लिए जाने वाले हथियार, दवाईयां, जहर, गर्भावस्था की स्थिति, आस पड़ोस के स्वास्थ्य पर अस्पतालों का असर आदि। अन्य विशेषज्ञ प्रमाणों में शामिल हैं प्रकृतिवादियों के प्रमाण जो कि नदी की बाधाओं को रोकने के लिए मछली की क्षमताएं, रसायनशास्त्री के प्रमाण जो कि गुआनो को विशिष्ट खाद या उर्वरक का महत्व बता सकें, नॉन एक्सप्लोसिव कैंफीन और फ्लड लैंप की सुरक्षा, किसी कैमिकल कंपाउंड का मौलिक भाग, किसी विशेष जहर का असर, मदिरा या चराब का खमीर भूवैज्ञानिकों के लिए कोयले की मौजूदगी, वनस्पतिशास्त्रियों के लिए कोयले की भट्टी से आसपास के पेड़ों को होने वाला नुकसान,

बीमा एजेंट, जो बीमा से संबंधित मुद्दों की जानकारी रखते हैं और परीक्षक, जो कि कमरे में होने वाले विभाजन से अगिनशमन इंतजाम पर पड़ते असर और बढ़ते खतरे के बारे में जानकारी रखते हैं, और इसी प्रकार विज्ञान की अन्य शाखाएँ।

कला के क्षेत्र में कलाकारों का मत स्वीकार्य होता है ताकि कला के कार्य की वास्तविक कीमत की जानकारी मिल सके, किसी अच्छी फोटो के लिए फोटोग्राफर का मत, बांध के निर्माण के संबंध में इंजीनियर का मत, स्वीकार्य होता है। यह सूचि व्यापक है लेकिन व्याख्यात्मक है हालांकि यह न्यायाधीश पर निर्भर करता है कि वह इन प्रमाणों को स्वीकार करे या फिर नामंजूर करे।

15.5 सेक्शन 47 इंडियन एविडेंस एक्ट

यह व्याख्या और अधिक विस्तार से उन स्थितियों को स्पष्ट करती है जिनमें एक व्यक्ति विवादित लिखावट के लिए जाना जाता है। इस धारा के अंतर्गत जो व्यक्ति साक्ष्य देता है, यह जरूरी नहीं कि वह लिखावट का विशेषज्ञ हो बल्कि किसी व्यक्ति की लिखावट के बारे में कोई विशेष जानकारी या सूचना, जो कि गवाह ने सोच समझकर या फिर अनजाने में प्राप्त की हो, बिना किसी पक्ष या चक की स्थिति में, किसी अनुभवी व्यक्ति के विस्तृत तुलनात्मक वर्णन से कहीं अधिक संतोषजनक है। हम किसी की लिखावट को कई प्रकार से जान सकते हैं जैसे अगर किसी की लिखावट की विशेष बात देखी हो, किसी के पत्र नियमित रूप से मिलते रहे हो, किसी उच्च अधिकारी ने अपने अधीनस्थ की लिखावट को कई अवसरों पर देखा हो लेकिन अगर साक्ष्य किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जा रहा है जो कि उस व्यक्ति से परिचित ना हो, तो उसे रद्द किया जा सकता है। इंडियन एविडेंस एक्ट इस बात पर जोर देता है कि दस्तावेजों की पुष्टि या तो प्राथमिक प्रमाणों या फिर द्वितीय स्तर के प्रमाणों द्वारा की जानी चाहिए।

धारा 67 किसी दस्तावेज पर किये जाने वाले हस्ताक्षर के तरीके को प्रिस्काइब करता है। हालांकि वह मत जिसके अनुसार लिखावट स्वीकार्य होती है, वह धारा या में उल्लिखित शर्त के पूरे होने पर ही संभव है, वह यह कि गवाह किसी व्यक्ति की लिखावट से धारा में उल्लिखत तरीकों में से एक तरीके से परिचित होना चाहिए। हालांकि विशेषज्ञ का मत प्रासंगिक तभी होगा जब न्यायालय को विज्ञान या कला के बिंदु पर मत निर्धारित करना हो। कई प्रकार विशेषज्ञों का मत सिद्ध एवं स्वीकृत तथ्यों से भिन्न होते हैं लेकिन जब तथ्य स्वीकृत नहीं होते तब न्यायालय को पहले प्रमाण के निष्कर्ष तक पहुंचना होता है कि कौनसे तथ्य सिद्ध हो चुके हैं और फिर विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा दिये गये मतों को लागू कर उन तथ्यों को जाँचना होता है। लिखावट के संबंध में विशेषज्ञ के मत को बहुत ही सावधानी के साथ लिया जाना चाहिए और किसी पुष्टि पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। लेकिन फिंगर प्रिंट्स के मामले में किसी प्रकार की पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। परंतु हां विशेषज्ञ हमेशा अपनी याददाश्त को तरोताजा करने के लिए किताबों का प्रयोग कर सकता है। एक चिकित्सक मेडिकल की किताबों को, मोलभाव करने वाला कीमतों की सूचि को, विदेशी वकील कानूनी कोड, किताबों व अन्य जर्नल आदि का प्रयोग कर विषय के बारे में अपना ज्ञान बढ़ा सकता है।

एक समय विशेषज्ञ प्रमाण या साक्ष्य चिकित्सक, इंजीनियर, आर्कीटेक्ट, स्टॉक ब्रोकर आदि तक ही सीमित थे लेकिन अब तकनीक व विज्ञान इतनी उचाईयों तक पहुंच चुका है कि विशेषज्ञ प्रमाण उल्लिखित विषयों या क्षेत्रों तक सीमित नहीं रह गया है बल्कि प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक हैं। जहाँ तक फौजदारी कानून का संबंध है, प्राक्षेपिक विशेषज्ञ, फारेंसिक एक्सपर्ट, वैज्ञानिक जो कि डी.एन.ए टैस्ट, कैमिकल परीक्षक, मनोचिकित्सक, रेडियोलॉजिस्ट और खोजी कुत्तों की मदद से यथार्थ का पता लगाते

हैं और अपराध की जाच में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और इनके साक्ष्य न्यायालय में स्वीकार्य होते हैं।

वैज्ञानिक प्रमाण वह प्रमाण है जो वैज्ञानिक अनुमान का समर्थन करता है या फिर उसको खंडित करता है। ऐसे प्रमाणों या साक्ष्यों के अनुभवाश्रित व प्रयोगाश्रित होने की अपेक्षा होती है और यह उचित प्रकार से वैज्ञानिक पद्धति से प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जैसा कि उस विशेष जाँच के क्षेत्र के अनुकूल हो। प्रमाण के मानदण्ड जाँच की प्रकृति या क्षेत्र के आधार पर भिन्न हो सकते हैं कि यह नैचुरल साईस अर्थात प्राकृतिक विज्ञान की जाँच है अथवा सामाजिक विज्ञान की। वैज्ञानिक प्रमाण प्रदर्शनात्मक होते हैं। मौखिक कथन या गवाही जो कि गवाह के बयान पर निर्भर होती है, के बिल्कुल विपरीत वैज्ञानिक प्रमाण वैज्ञानिक पद्धतियों से प्राप्त की जाती है। वैज्ञानिक प्रमाण जो कि सुनवाई में स्वीकृत किया जाता है, वह प्रासंगिक होना चाहिए और विश्वसनीय भी एक विशेषज्ञ साक्ष्य वैज्ञानिक प्रमाण की विश्वसनीयता की पुष्टि करता है और इसे सुनवाई के समय प्रस्तुत किया जा सकता है।

फुटप्रिंट्स अर्थात पदचिह्न

फुटप्रिरट अर्थात पदचिह्न की पहचान विश्वसनीय होती है। हमारे नंगे पैरों में घर्षण के कारण ऊपर उठी हुई कुछ आकृतियां होती हैं जो कि प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होती है। अत घटना से प्राप्त हाथों की खासतौर पर उंगलियों की रेखाएं और पदचिह्न अपराधी को पकड़ने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। न्यायालयों द्वारा वैज्ञानिक तरीके से पदचिह्न और फिंगरप्रिंट्स जानने की तकनीक को मान्यता दी जा चुकी है। प्रीतम सिंह बनाम पंजाब राज्य में शव के पास फैले खून में मिले और स्नानघर तक जाते विवादित पदचिह्नों को अभियुक्त के पदचिह्नों से मिलाया गया था। विशेषज्ञों ने अपने बयान में दांये पैर में 9 समानताएं दर्शाई और बायें में 10 समानताएं दर्शाई वहीं दोनों पैरों में 3-3 असमानताएं दर्शाई और असमानताएं खून व स्याही के घनत्व से संबंधित थी। यह माना गया कि तुलना से परीक्षण स्पष्ट हुआ और इन स्थितियों में घटना पर खून में मिले पदचिह्न, अभियुक्त के ही है।

डी.एन.ए अर्थात डीऔक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड

प्रत्येक व्यक्ति के आनुवांशिक अर्थात जेनेटिक ढांचे में डी.एन.ए होता है और यह हर व्यक्ति का भिन्न होता है। डी.एन.ए किसी व्यक्ति के बालों, रक्त, सलाइवा, वीर्य आदि से जाँचा जा सकता है और यह किसी व्यक्ति की पहचान करने में मदद करता है। अगर किसी घटनास्थल पर रक्त की बूंद या एक बाल भी प्राप्त होता है, उसके डी.एन.ए की जाँच करके अभियुक्त या संदिग्ध के साथ मिलान कर, अपराधी को पकड़ा जा सकता है। इसमें विशेषज्ञ का मत इस प्रकार लिया जा सकता है कि जो रक्त के निशान घटना स्थल पर प्राप्त हुए, वे उसी व्यक्ति से मिलते हैं अथवा नहीं। डी.एन.ए जाँच पितृत्व की जाँच या पितृत्व सिद्ध करने के लिए भी की जाती है। विशेषज्ञों का मानना है कि डी.एन.ए जाँच यह निर्विवाद रूप से घटनास्थल पर मिले साक्ष्यों को अभियुक्त या संदिग्ध से मिलान कर स्थिति स्पष्ट कर देता है जबकि पारंपरिक फिंगरप्रिंट्स मिलान में कई बार हस्तरेखाएं सर्जरी की मदद से बदल दी जाती थी। डी. एन. ए. प्रत्येक टिश्यू में पाया जाता है और इसको किसी सर्जरी या कैमिकल से बदला नहीं जा सकता।

ट्रैकर डॉग अर्थात् खोजी कुत्ते

भारत में अभी भी खोजी कुत्तों को सारभूत साक्ष्य नहीं माना जाता। उच्च न्यायालय ने अब्दुल रज्जाक मुर्तजा दफादार बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 1970, धारा 283 के अनुसार खोजी कुत्ते का साक्ष्य स्वीकार्य होते हुए भी वर्तमान वैज्ञानिक जानकारी के होते हुए इतना महत्वपूर्ण नहीं है। यही बात अन्य मामले में दोहराई गई। रामला बनाम राज्य (1963) जिसमें यह माना गया कि खोजी कुत्ते का साक्ष्य कम महत्वपूर्ण है। अभियोग पक्ष के खिलाफ इस बात पर कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला

जा सकता कि उसने खोजी कुत्ते के साक्ष्य का परीक्षण नहीं किया। हालांकि जब से टेलीफोन अर्थात् दूरभाषी, मन: चिकित्सा, पदचिह्नों की पहचान और खोजी कुत्तों के साक्ष्य स्वीकृत किये जाने लगे है, यह देखा गया कि विज्ञान व कला, शब्दों का अर्थ निकालने में एक स्थिर मत मान्य नहीं है। हाल ही में 1993 में, न्यायालय में माना गया कि खोजी कुत्तों के साक्ष्यों की जाँच की जानी चाहिए और यह भी किसी अन्य साक्ष्य या प्रमाण की भांति अच्छा या बुरा हो सकता है।

लाइ डिटेक्टर

पॉलीग्राफ टेस्ट अर्थात झूठ पकडने वाला टेस्ट साधारणत: न्यायालय द्वारा पॉलीग्राफ टेस्ट के नतीजों को स्वीकार्य नहीं किया जाता है। यह किसी व्यक्ति के अचेतन शारीरिक प्रतिकियाओ को तब जाँचता है जब उस व्यक्ति से प्रश्न किये जा रहे हों जैसे कि श्वास लेने की प्रक्रिया, हृदय गति, और गैलवैनिक स्किन रिस्पॉन्स। इसके निहित नियम यह. है कि जब व्यक्ति झूठ बोलता है तब उस पर दबाव पडता है और इस दबाव को उस व्यक्ति में हो रही शारीरिक प्रतिकियाओं में बदलाव की मदद से पकड़ लिया जाता है। हालांकि इस संबंध में एक चिंता यह है कि कई व्यक्ति झूठ बोलते समय अपनी प्रतिकियाओ को छिपा सकते हैं। पॉलीग्राफ टेस्ट को इसलिए भी अविश्वसनीय माना जाता है क्योंकि यह बताना संभव नहीं है कि व्यक्ति पर दबाव झूठ बोलने के कारण पड़ रहा है या फिर टेस्ट की प्रक्रिया के कारण।

बैलिस्टिक एक्सपर्ट प्रमाण

बैलिस्टिक अर्थात् प्राक्षेप वह विज्ञान है जो कि मोशन यानि गति, व्यवहार और प्रक्षेप्य खासतौर पर बुलेट अर्थात गोली, ग्रेविटि बम, रॉकेट्स आदि के प्रभाव से संबंधित है। प्रक्षेप्य को निर्मित एवं रूपांकित करने की कला व विज्ञान जिससे इच्छित कार्य निष्पादन हो सके। सूरत सिंह बनाम राज्य: 1995 के मामले में जहाँ मत बैलिस्टिक विशेषज्ञ द्वारा दिया जाता है जो कि सभी परीक्षण करने के बाद न्यायालय में साक्ष्य प्रस्तुत करता है और इसीलिए उसके मत का अविश्वास करने का कोई प्रश्न नहीं उठता। और उसे स्वीकृत किया जा सकता है। प्रत्येक मामले में जहाँ अभियुक्त द्वारा बंदूक इस्तेमाल की जाती है, प्रत्यक्ष साक्ष्य के अतिरिक्त, अभियोग पक्ष द्वारा बैलिस्टिक विशेषज्ञ के साक्ष्य भी लेने चाहिए, हालांकि प्रत्यक्ष साक्ष्य अच्छे होते हैं और यह रिकॉर्ड में भी होता है। कथित प्रत्यक्ष साक्ष्य, कार्तिक हरिजन बनाम उड़ीसा राज्य, 1995, पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

मेडिकल विशेषज्ञ

जहां तक मेडिकल एक्सपर्ट्स की बात है, भारतीय न्यायालयों के विभिन्न मत है। कुछ मामलों में, उन्होनें साक्ष्य को स्वीकृत किया है। एक पति के अनुसार विवाह के समय उसकी पत्नी गर्भवती थी, जो डॉक्टर प्रसूति विद्या में कुशल थी, ने इस दावे को सही बताया। हालांकि वह स्त्री रोग विशेषज्ञ नहीं थी, लेकिन न्यायालय ने उसके साक्ष्य को स्वीकार किया। बलदेव राज मिगलानी बनाम उर्मिला ए.आई.आर 1979 सेक्शन 87, लेकिन अन्य मामलों में मेडिकल साक्ष्य शायद ही निर्णायक और अंतिम हो क्योंकि यह साक्ष्य मत से जुड़ा है। न्यायालय केवल मेडिकल साक्ष्य पर ही विचार विमर्श नहीं करती बल्कि अन्य साक्ष्य और महत्वपूर्ण स्थितियों पर भी गौर करना पड़ता है। मनि राम बनाम राजस्थान राज्य, ए.आई.आर 1993 सेक्शन 245, लेकिन जहाँ तक पोस्टमार्टम परीक्षा की बात है, उस डॉक्टर की बात को पर्याप्त वजन दिया जाता है, जो पोस्टमार्टम करता है। जब पोस्टमार्टम की रिपोर्ट अभियुक्त के पक्ष में हो और मेडिकल रिपोर्ट व जाँच की रिपोर्ट के बीच विरोधाभास हो, तब उसका लाभ अभियुक्त को मिल जाता है और पोस्ट मार्टम की रिपोर्ट को स्वीकार किया जाता है। सेरोलॉजिस्ट की रिपोर्ट जहाँ यह कहती है कि दो कपड़ों पर जो रक्त है, वह मानव रक्त है और अभियुक्त के कपड़े उसे अपराध

से जोड़ते हैं। चोट व मृत्यु के समय से जुड़े साक्ष्य के लिए विशेषज्ञ प्रमाण स्वीकार्य होता है परंतु यह अन्य स्थितियों पर भी निर्भर करता है। उम्र से जुड़े साक्ष्य के लिए जन्म पंजीकरण रजिस्टर से मिल जाते हैं, परिवार के सदस्यों से, और डॉक्टर के मत को अधिक महत्व दिया जाता है लेकिन साक्ष्य असंतोषजनक है और औसिफिकेशन टेस्ट पूर्ण हो चुका है, ऐसा परीक्षण उम्र निर्धारण में निश्चित आधार होता है। जहाँ तक पितृत्व की बात है, आजकल ब्लड टेस्ट का प्रयोग बहुत ही सामान्य हो गया है। ब्लड ग्रुप, वैज्ञानिकों के अनुसार, में उत्पादक संबंध होते हैं जनक व संतान के बीच में। ब्लड ग्रुप टैस्ट इस संभावना को दूर करने के लिए लाभदायक है कि एक व्यक्ति पिता है। उच्च स्तर के ब्लड टैस्ट अपनाए जा चुके हैं जो कि बहुत विकसित हैं, और पैतृत्व की बहुत बड़ी या छोटी संभावना प्रदान करने में सक्षम है। डी.एन.ए. टैस्ट पैतृत्व मामलों में सुनिश्चितता प्रदान करते हैं।

15.6 सेक्शन 48 इंडियन एविडेंस एक्ट

विशेषज्ञ प्रमाण केवल लिखावट तक ही सीमित नहीं है। रीति रिवाजों के संबंध में भी मत इंडियन एविडेंस एक्ट के सेक्शन 48 के अनुसार स्वीकार्य है। धारा 13 और धारा 32(4) भी रीति रिवाजों का उल्लेख करते हैं। धारा 13 सभी अधिकार और रिवाजों, सार्वजनिक, साधारण एवं निजि और विशेष तथ्यों से संबंध रखती है जो कि साक्ष्य के तौर पर दिये जा सकते हैं। दूसरा एक तथाकथित साक्ष्य है जहाँ' द्वितीय स्तर का मत न्यायालय द्वारा स्वीकार्य है। यहां जो व्यक्ति मत देता है, उसे किसी सार्वजनिक अधिकार, रीति रिवाज और सार्वजनिक या साधारण मामलों के लिए न्यायालय के समक्ष मृत्यु या किसी शारीरिक कमी के कारण नहीं लाया जा सकता। लेकिन धारा 48 जीवित साक्ष्य से संबंध रखती है, जो कि न्यायालय में आकर खड़ा हो सकता है और अपना साक्ष्य दे सकता है और उससे प्रश्न किये जा सकते हैं। ना केवल रीति रिवाज, बल्कि इस धारा के अंतर्गत उपयोग से संबंधित मत भी स्वीकार्य होते हैं। न्यायालय द्वारा केवल एक शर्त रखी जाती है कि रीति रिवाज से संबंधित साक्ष्य निष्पक्ष होने चाहिए।

15.7 सेक्शन 49 एण्ड 50 इंडियन एविडेंस एक्ट

धारा 49 धारणाओं से संबंधित मत के बारे में है और धारा 50 संबंधों से जुड़े मत के बारे में है। इंडियन एविडेंस एक्ट की धारा 32(5) संबंधों के संबंध में दिये गये मतों के स्वीकृति के बारे में है। कई मामलों में एपेक्स न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस प्रावधान के अंतर्गत साबित रिश्तों एवं संबंधों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रावधान स्वीकार्य नहीं होगा। लेकिन इन दोनों प्रावधानों के बीच एक मूल अंतर है। सेक्शन 32 केवल मृत व्यक्तियों के कथन से संबंधित है जबकि सेक्शन 50 जीवित लोगों के बयान से जुड़ा हुआ है। सेक्शन 50 के महत्वपूर्ण बिंदु हैं कि ऐसा मामला हो, जिसमे न्यायालय को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के संबंधों पर मत निर्धारित करता हो। ऐसे मामले में मत व्यवहार से निर्मित होता है जैसे कि ऐसे रिश्ते की स्थिति, वह परिवार का सदस्य होना चाहिए, अन्यथा उसे खास किसी विशेष रिश्ते से जुड़ी जानकारी होनी चाहिए। यह सेक्शन केवल साधारण सम्मान को रिश्ते के सबूत के तौर पर नहीं स्वीकार करता। खास जानकारी को एकत्रित करना केवल परिवार के सदस्यों से जानकारी लेने तक ही सीमित नहीं है। लेकिन इसे काफी विस्तृत अर्थ दे दिया गया है'अन्यथा'' शब्द से। खास प्रकार की जानकारी को मतों से स्वतंत्र रखना चाहिए। सेक्शन 50 की भाषा किसी प्रकार का संदेह नहीं छोड़ती कि मत किसी व्यक्ति के व्यवहार से प्रदर्शित या बयान होता है, जिसके पास परिवार के सदस्य के रूप में या अन्यथा एक व्यक्ति से दूसरे के साथ संबंध के बारे में

खास जानकारी हो और जिसके बारे में न्यायालय को बिना इस तथ्य को देखे कि वह व्यक्ति स्वयं गवाह है या नहीं, प्रासंगिक मत निर्धारित करना होता है।

हालांकि धारा 50 का प्रावधान साधारण दीवानी मामलों पर लागू नहीं होता जहाँ विवाह या तलाक के तथ्य में भी विवाद हो। कानून द्वारा किसी समझदार व्यक्ति की जरूरतों को एक स्थिर मानदंड के रूप में अपनाया गया है जिसकी मदद से तथ्यों की जाँच की जा सके। क्योंकि दीवानी मामलों में अनिश्चितता की अधिकता पर्याप्त है।

फौजदारी मामलों में दोष सभी यथोचित संदेहों के उपर भी सिद्ध हो जाता है। नियम से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी एक उद्देश्य के लिए पर्याप्त साक्ष्य किसी दूसरे उद्देश्य के लिए पर्याप्त नहीं है। व्यभिचार के आरोप में होने वाली सुनवाई में, विवाह का नियम कठोर होना आवश्यक है। यदि न्यायालय इंडियन पीनल कोड के सेक्शन 498 के अंतर्गत दोषी सिद्ध करे तो अभियोग पक्ष को यह साबित करना होगा कि शिकायत दर्ज करने वाला और महिला, जिसके लिए आरोप लगाया गया है, पति पत्नी की तरह साथ रहते थे। इंडियन एविडेंस एक्ट के सेक्शन 60 के अंतर्गत एक वैध विवाह सिद्ध होना चाहिए। सेक्शन 50 के प्रावधान को देखते हुए, अनेक अधिकारियों का मानना है कि अभियोग पक्ष के लिए आई.पी.सी. की धारा 494,497 और 498 के अंतर्गत विवाह को कठोरता के साथ एक तथ्य के रूप में सिद्ध किया जाना चाहिए और न्यायालयों द्वारा किसी भी प्रकार का अनुमान या परिकल्पना नहीं लगानी चाहिए।

15.8 सेक्शन 51 इंडियन एविडेंस एक्ट

जिस प्रकार कई व्यक्तियों के मत या बयान प्रासंगिक होते हैं, उसी प्रकार जिस आधार पर वे मत बनते हैं वे भी प्रासंगिक बन जाते हैं। यह नियम इंडियन एविडेंस एक्ट की धारा 51 में उल्लिखित है। केवल गवाहों के मत या बयान अधिक महत्व नहीं रखते जब तक उन्हें किसी बेहतर या उचित कारण के साथ समर्थन ना दिया जाए। अगर कारण अधूरे और अपर्याप्त हैं तो गवाह के बयान की कोई कीमत नहीं होती। विशेषज्ञ का मत साक्ष्य में स्वीकार्य तभी नहीं होता जब यह व्यक्तिगत अवलोकन या विचार और जाँच पर निर्भर हो बल्कि तब भी जब सुनवाई के दौरान अन्य गवाहों द्वारा सिद्ध किया जाता है।

15.9 ओपिनियन एज टू द कैरेक्टर

दीवानी मामलों में मुकदमे में किसी पक्ष के व्यक्ति के साक्ष्य, किसी व्यवहार की संभावना और असंभावना, जिसका उस पर आरोप लगाया गया हो, को सिद्ध करना अप्रासंगिक है। किसी चरित्र के साधारण बहिष्कार का साक्ष्य सार्वजनिक नियम व इमानदारी पर आधारित होता है। साधारण नियम यह है कि दीवानी मामलों में साक्ष्य किसी व्यक्ति के चरित्र के रूप में अप्रासंगिक है। किसी चरित्र का साक्ष्य या तो गवाह के चरित्र या फिर पार्टियों के चरित्र से संबद्ध होता है। गवाह का चरित्र उसकी विश्वसनीयता को प्रभावित करता है और यह महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह न्यायालय को निष्कर्ष तक पहुंचने में मदद करता है कि उसके साक्ष्य को विश्वसनीय माना जाए अथवा नहीं। गवाह के चरित्र से जुड़े प्रश्न गवाह से पूछने की अनुमति दी जाती है, जो कि मामले में गवाही देने आता है। फौजदारी मामलों में ऐसा नहीं होता। एक अच्छा चरित्र प्रतिपक्ष नहीं है क्योंकि फिर हम दोषी सिद्ध हो सकते हैं कि सभी अच्छे चरित्र से ही शुरूआत करते हैं। प्रतिवादी, हालांकि इस तथ्य पर विश्वास करता है कि वह पहले अच्छे चरित्र का था और इस बात को कमजोर सिद्ध कर देगा कि उसने अपराध किया है। अगर कही संदेह की जगह है, तो उसका अच्छा चरित्र उसके पक्ष में चला जाएगा। धारा 54 यह

विचार रखती है कि पूर्व में रहा खराब चरित्र प्रासंगिक नहीं है। धारा 55 के अंतर्गत चरित्र नुकसान को प्रभावित करता है। हालांकि चरित्र के संबंध में मत विशेषज्ञ मत या बयान की श्रेणी में नहीं आता।

15.10 विशेषज्ञों का प्रमाण मूल्य विशेषज्ञ की साक्ष्य से संबंधित मूल्य

विशेषज्ञ का मत सलाह से अधिक कुछ और नहीं होता। यह साक्ष्य का एक भाग है, जो कि निर्णायक नहीं होता लेकिन प्रबोधक होता है। विशेषज्ञ, हालांकि वह कितना भी ज्ञानी व कुशल हो, यह कहना गलत नहीं होगा कि मानव निर्णय दोषक्षम या दोषमुक्त नहीं हो सकता। इसी तरह, विशेषडा साक्ष्य सदैव प्रमाणित करने वाला साक्ष्य होता है ना कि स्थायी। यदि विशेषज्ञ की किसी विषय में कम जानकारी हो तो उसका साक्ष्य कमजोर पड़ जाता है।

15.11 विशेषज्ञ गवाह के रूप में प्रस्तुत ना हो

विशेषज्ञ मत स्वीकार्य केवल तभी होता है जब न्यायालय में गवाह के तौर पर उससे पूछताछ की गई हो। उसकी रिपोर्ट तब तक स्वीकार नहीं की जाती है, जब तक वह अपने बयान या मत का कारण नहीं दे देता और प्रतिपक्ष द्वारा उसके साक्ष्य का परीक्षण किया जाता है। लेकिन विशेषज्ञ की मदद लेने से संबंधित देरी और खर्च को कम करने के लिए कानून कुछ वैज्ञानिक विशेषज्ञों को परीक्षण दे देता है। उदाहरण के तौर पर निम्न विज्ञान विशेज्ञों की रिपोर्ट को साक्ष्य के रूप में स्वीकर किया गया।

कैमिकल एक्जामिनर अर्थात रसायन परीक्षक
चीफ एक्सपर्ट ऑफ एक्सप्लोजिव्स
डायरेक्टर ऑफ फिंगरप्रिंट ब्यूरो
डायरेक्टर ऑफ हैफकीन्स इंस्टीट्यूट
डायरेक्टर ऑफ सेंट्रल एण्ड स्टेट फारेंसिक साइन्स लेबोरेटरीज
सेरोलॉजिस्ट टू द गवर्नमेंट

15.12 मेडिकल प्रमाण एवं ओक्यूलर प्रमाण के बीच मतभेद

जब मेडिकल साक्ष्य एवं दृष्टि संबंधी साक्ष्य के बीच विरोध होता है, तो अंतिम प्रश्न यह उठता है कि क्या यह विरोध असंगत और कभी दूर नहीं किया जा सकता? अगर ऐसा है तो दृष्टि संबंधी साक्ष्य संदेह जनक हो जाते हैं। ऐसे मामले में मौखिक गवाही को ध्यान पूर्वक महत्व दिया जाता है और अगर यह दोषारोपण से उपर नहीं है तो इसे खारिज भी किया जा सकता है।

दो विशेषज्ञों के मत के बीच मतभेद

जब एक मेडिकल विशेषज्ञ का मत दूसरे से असंगत हो, और दोनों विशेषज्ञ मत देने के लिए समान रूप से योग्य हों, न्यायालय उस विशेषज्ञ के मत को स्वीकारता है जो कि मामले में प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रदान करता है।

15.13 सारांश

निष्कर्ष यह है कि यह मुख्य रूप से विज्ञान और व्यापार का प्रश्न है कि किसी विषय में विशेष कौशल वाले व्यक्ति को साक्ष्य में अपना मत देने की अनुमति दी जाती है और साथ ही तथ्यों का परीक्षण करने की भी। अत: मेडिकल विशेषज्ञ का मत निरंतर मौत का समय, पार्टियों की उम्र, मृत्यु का कारण, हथियार के उपयोग की संभावना, बीमारी, चोट, पागलपन आदि के लिए स्वीकृत होता है। इन दिनों परिवार से संबंधित मामले व कानून जैसे कि बच्चे की परवरिश और असलियत में बच्चे के पितृत्व को सिद्ध करने के लिए डी. एन. ए. टैस्ट का उपयोग किया जाता है। कुल मिलाकर, यह

साधारण नियम है कि न्यायालय में उस व्यक्ति का मत स्वीकार्य होगा जिसके पास विशेष कौशल है। इस नियम में कुछ अपवाद हो सकते हैं लेकिन फिर भी जब भी साक्ष्यों की कमी होती है और कुछ मामलों में वर्तमान तथ्यों की पुष्टि के लिए विशेषज्ञ मत लिया जाता है।

15.14 अभ्यास प्रश्न

1. ''विशेषज्ञ कौन होता है'' - इंडियन एविडेंस एक्ट 1872 के संदर्भ में प्रकाश डालिए।
2. इंडियन एविडेन्स एक्ट 1872 की सेक्शन या से 51 तक की विभिन्न धाराओं पर प्रकाश डालिए।
3. मेडिकल प्रमाण व ओक्यूलर प्रमाण के बीच मतभेद की व्याख्या कीजिए।
4. विशेषज्ञ प्रमाण या सबूत की विषय वस्तु समझाइए।
5. ''भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872: विशेषज्ञों के मत एवं महत्व' विषय पर लेख लिखिए।

इकाई - 16

जाँच व न्यायालय में गवाह एवं साक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

भाग (I) मौखिक व लिखित धाराएँ अथवा अनुभाग

16.1 प्रस्तावना

16.2 साक्ष्यों या प्रमाण के प्रकार

16.3 प्राथमिक साक्ष्य

16.4 माध्यमिक अथवा सैकंडरी साक्ष्य

16.5 जन प्रलेखन या दस्तावेज के प्रमाण अथवा परीक्षण की विधि

16.6 सामान्य नियम पर रोक

16.7 चर्चित साक्ष्य

भाग (II) जाँच व न्यायालय में गवाह, साक्ष्य

16.8 प्रस्तावना

16.9 गवाहों की योग्यताएँ व विश्वसनीयता

16.10 गवाह का परीक्षण

16.11 गवाहों के प्रकार

16.12 रिफ्रेशिंग ऑफ मैमोरी

16.13 गवाहों के परीक्षण में आवश्यक मुद्दे

16.14 सारांश

16.15 अभ्यास प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप. -

- जाँच व न्यायालय में गवाह एवं साक्ष्य से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मौखिक व लिखित अनुभागों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के साक्ष्यों के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- जाँच व न्यायालय में गवाहों की योग्यताओं व विश्वसनीयता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- गवाहों के परीक्षण में आवश्यक मुद्दों पर प्रकाश डाल पाऐंगे।

भाग (1) मौखिक व लिखित धाराएँ अथवा अनुभाग

16.1 प्रस्तावना

साक्ष्य या प्रमाण शब्द लैटिन शब्द"एविडेयर" से लिया गया है जिसका अर्थ है- अवलोकन या देखने के लिए स्पष्ट करना। एविडेंस एक्ट का उद्देश्य है कि न्यायाधीश के जहन में किसी विशेष

तथ्य का अस्तित्व या अनुपस्थिति का विश्वास पैदा करना जिसके आधार पर दोनों पक्षों के अधिकार और जिम्मेदारियों का निर्णय लिया जा सके।

तथ्य स्थूल अथवा बाद्दय या फिर मनावैज्ञानिक भी हो सकते हैं। स्थूल तथ्य इस प्रकार हैं- वस्तुएं, वस्तुओं की स्थित, वस्तुओं का संबंध जिसे देखा, सुना, सूंघा, अथवा जिसे अपने विवेक से महसूस किया जा सके। मनोवैज्ञानिक या जहनी तथ्य किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति की ओर संकेत करते हैं जैसे उसके इरादे, नेक विचार या भाव, प्रतिष्ठा आदि। स्थूल तथ्यों की केवल प्रत्यक्ष या फिर पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा ही पुष्टि की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक तथ्य पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा या फिर इकबाल ए-जुर्म के द्वारा साबित किये जा सकते है।

उदाहरण:

अ. ए बंदूक से बी पर गोली चलाता है। गोली चलाना एक स्थूल या बाहरी तथ्य है और इसे किसी चश्मदीद गवाह या स्थिति से सम्बन्धित गवाह के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। ब. गोली चलाने का ईरादा मनोवैज्ञानिक तथ्य है और इसे साबित करने के लिए या तो पारिस्थितिक साक्ष्य या फिर ए द्वारा किया गया इकबाल ए-जुर्म।

16.2 साक्ष्यों या प्रमाण के प्रकार

साक्ष्य हो सकते हैं-

अ. मौखिक

ब. लिखित या दस्तावेजी

स. स्थूल या वास्तविक

अ. मौखिक साक्ष्य- सभी बयान या कथन, जिन्हें गवाह द्वारा तथ्यों की जाँच के संदर्भ में अदालत में प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है या जिन्हें प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। दस्तावेजों की विषय वस्तु के अतिरिक्त सभी तथ्य मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित किये जा सकते हैं। धारा 59,60,63(5),91(3), 92- प्रोवाईजो (2) एवं (3),119क एवं धारा 144- व्याख्या सभी मौखिक साक्ष्य से सम्बन्धित हैं।

साक्ष्य का प्रमुख नियम यह है कि किसी दस्तावेज की विकाय वस्तु मूल दस्तावेज द्वारा सिद्ध की जानी चाहिए। दस्तावेज के विषय वस्तु के अतिरिक्त सभी तथ्य मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित किये जा सकते हैं (धारा 59 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)। कुछ अपवाद स्थितियों में दस्तावेजों विषय वस्तु द्वितीय श्रेणी के साक्ष्यों द्वारा सिद्ध किये जा सकते हैं जिसमें मौखिक गवाही शामिल है। (धारा 63(5) के साथ धारा 65 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)

मौखिक साक्ष्य, जिसे स्वीकृति दी जाए, वह प्रत्यक्ष होना चाहिए। इसमें गवाह द्वारा की गई यह घोषणा शामिल होनी चाहिए कि जिस तथ्य की पुष्टि उसके द्वारा की गई है, वह उसके अपने विवेक के आधार पर है। अगर तथ्य कथित रूप से देखा गया है, तो जिस व्यक्ति ने उसे देखा है, उसका साक्ष्य होना चाहिए और अगर तथ्य कथित रूप से सुना गया है तो जिसने उसे सुना है, उसी का साक्ष्य होना चाहिए अन्यथा प्रतिकूल परीक्षण से गवाह की सत्यता जानना असंभव हो जाए और यही नहीं मौखिक अप्रत्यक्ष कथन अस्वीकृत होते हैं क्योंकि वे अप्रत्यक्ष एवं चर्चित साक्ष्य होते हैं। (सेक्शन 60 ऑफ एविडेंस एक्ट)

उदाहरण -

अ. पर ब के खून का इल्जाम लगता है। तथ्य इस प्रकार हैं-

1. अ दिन के 12 बजे घटना स्थल से भागता हुआ आता है।
2. ब उसी समय और स्थान पर चिल्लाता है कि अ मुझे मार रहा है

3. स घटनास्थल पर खून देखता है और अ के हाथों व कपड़ों पर खून लगा देखता है।
4. द यह मत देता है कि व को लगने वाली धारदार हथियार की चोट उसकी मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त है।

यह तथ्य कि अ घटनास्थल से दौड़ता हुआ आया, को गवाह द्वारा साबित करना चाहिए जिसने स्वयं ने अ को दौड़ते हुए देखा। यह तथ्य कि ब चिल्लाया था, इसको भी उसी गवाह द्वारा सिद्ध करना होगा जिसने ब को चिल्लाते हुए सुना और यह तथ्य कि अ के हाथों व कपडों पर खून लगा था, इसकी भी स को पुष्टि करनी होगी, जिसने ऐसा देखा। यह तथ्य कि व को लगी चोट मौत का कारण बनी, उस डॉक्टर को साबित करनी होगी जिसने चोटों की जाँच की। दूसरी तरफ रु के इस प्रकार के कथन अप्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में अस्वीकृत माने जाऐंगे की

- उसे पड़ौसियों ने ब के चिल्लाने के बारे में बताया जब अ उसको मार रहा था, और
- दूसरा यह कि मेरे बच्चे ने अ को घटना होने के बाद घटनास्थल से दौड़कर आते हुए देखा या
- तीसरा कि ब की पत्नी ने मुझे बताया कि अ ने घटना के एक दिन पूर्व ब को धमकी दी थी (सेक्शन 60 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)

मौखिक साक्ष्य का अर्थ हर समय यह नहीं होता कि शब्द गवाह के ओठों से ही निकले। इसमें व्यक्ति के द्वारा दिखाए गये चिह्न या इशारे भी शामिल होते है, अर्थात कोई व्यक्ति बीमारी या शारीरिक दुर्बलता के कारण बोलने में सक्षम ना हो। एक मूक व बधिर व्यक्ति अपनी गवाही लिख कर या इशारों से या अन्य ऐसे किसी प्रकार से दे सकता है जिससे वह अपना विवेक सिद्ध कर सके। ऐसे मूक बधिर व्यक्ति की गवाही मौखिक साक्ष्य कहलाती है। (सेक्शन 119 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)

ब. लिखित या दस्तावेजी साक्ष्य- वह सभी दस्तावेज जो कि अदालत में जाँच के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं, इनमें इलेक्ट्रोनिक रिकॉर्ड भी शामिल हैं।

दस्तावेज- किसी भी वस्तु की व्याख्या करने के लिए पत्र, आँकड़ाएं, या चिह्नों के माध्यम से समझाने में सक्षम किसी भी प्रकार की विषय वस्तु दस्तावेज कहलाती है। (सेक्शन 3 ऑफ द इंडियन एविडेंस एक्ट) उदाहरण के तौर पर एक चित्र अथवा फोटो, नक्षा, मुद्रा या नोट, पत्थर पर उकेरा हुआ शिलालेख, पेड़ों पर बने निशान आदि सभी दस्तावेज की श्रेणी में आते हैं।

दस्तावेजों को दो प्रकार से विभाजित किया जा सकता है-

1. पब्लिक डाक्यूमेंट अर्थात सार्वजनिक दस्तावेज
2. प्राईवेट डाक्यूमेंट अर्थात निजी दस्तावेज।

पब्लिक डाक्यूमेंट अर्थात् सरकारी या सार्वजनिक दस्तावेज-

1. सरकारी और कार्यालय संबंधी कार्य या कानूनी जिम्मेदारी पूरी करते समय सरकारी कर्मचारियों द्वारा बनाए गये दस्तावेज सरकारी व सार्वजनिक दस्तावेज कहलाते हैं (सेक्शन 74(1) इंडियन एविडेंस एक्ट)। उदाहरणार्थ नगरपालिका या निगम द्वारा बनाया और जारी किया गया मृत्यु प्रमाण पत्र। पुलिस स्टेशन में सेक्शन 154 ऑफ सी.आर.पी.सी के अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत एफ.आई.आर, रिप्रसेंटेशन ऑफ पीपल एक्ट के अंतर्गत कलेक्टर के कार्यालय में बनाया गया इलेक्टोरल रोल।
2. सरकारी व सार्वजनिक रिकॉर्ड, किसी भी राज्य के निजी दस्तावेजों में रखे हो, वह सार्वजनिक या सरकारी दस्तावेज कहलाते हैं। सेक्शन 74(2) आई ई एक्ट, उदाहरण जिला रजिस्ट्रार के कार्यालय में रखी हुई रजिस्ट्रीकृत कार्यो की प्रति।

3. सरकारी संस्थाओं, न्यायालय या कचहरी, सरकारी कर्मचारी के निर्माण व कार्यो से सम्बन्धित दस्तावेज भी सरकारी दस्तावेज कहलाते हैं। सेक्शन 74(1) आई.ई एक्ट। उदाहरणार्थ सेक्शन 144 सी आर पी सी के अंतर्गत पुलिस अधिकारी के द्वारा सुनवाई से सम्बन्धित मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत जाँच की रिपोर्ट। और राज्य में जमीन के सर्वेक्षण के बाद रिवेन्यु अथॉरिटी अर्थात राजस्व अधिकारी द्वारा बनाए गये अधिकारों के रिकॉर्ड या दस्तावेज।

निजी दस्तावेज- वे सभी दस्तावेज जो सरकारी नहीं है, वे निजी दस्तावेज कहलाते हैं, सेक्शन 75 ऑफ आई ई एक्ट। उदाहरणार्थ अपंजीकृत विक्रय और साझेदारी का कार्य।

दस्तावेजी साक्ष्य वह सभी दस्तावेज होते हैं जो कि अदालत में जाँच के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं। दस्तावेजी साक्ष्य दस्तावेज में उल्लिखित कथन या बयान है। दस्तावेज की विषय वस्तु प्राथमिक या फिर माध्यमिक साक्ष्य द्वारा सिद्ध होनी चाहिए। सेक्शन 61 ऑफ एविडेंस एक्ट। साक्ष्य के संदर्भ में महत्वपूर्ण या स्वर्ण नियम यह है कि अदालत में श्रेष्ठ साक्ष्य प्रस्तुत होना चाहिए अर्थात अदालत में मूल दस्तावेज प्रस्तुत होने चाहिए।

प्राथमिक साक्ष्य वह साक्ष्य है कानून प्राथमिकता से प्रस्तुत करवाना चाहता है और सेकंडरी या माध्यमिक साक्ष्य वह है जो प्राथमिक साक्ष्यों की कमी के कारण प्रस्तुत किये जाते हैं और जब प्राथमिक साक्ष्यों के ना होने का पूर्ण विवरण दिया गया हो। अन्य शब्दों में, प्राथमिक साक्ष्यों की उपस्थिति माध्यमिक साक्ष्यों को बाहर निकाल देती है। चैप्टर 5 एवं 6 ऑफ आई ई एक्ट डील विद डॉक्यूमेंटरी एविडेंस (सेक्शन 61 से 100)

16.3 प्राथमिक साक्ष्य

प्राथमिक साक्ष्य का अर्थ है वह मूल दस्तावेज जो कि अदालत में जाँच के लिए तैयार हुए हो, (सेक्शन 62 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)। जब किसी दस्तावेजों की अनेक प्रतियां निकाली जाती है और प्रत्येक पर सभी पार्टियों से हस्ताक्षर करवाए जाते हैं, तब यह दस्तावेजों को विभिन्न भागों में लागू या प्रयोग किये जाने से सम्बन्धित होता है और प्रत्येक भाग उस दस्तावेज का प्राथमिक साक्ष्य होता है। अगर दो पार्टियां है, और एक दस्तावेज की दो प्रतियां बनाई जाती है और पहली प्रति पर एक पार्टी से और दूसरी प्रति दूसरी पाटी से हस्ताक्षर करवाए जाते हैं और प्रत्येक पार्टी अपने हस्ताक्षर वाली प्रति दूसरी पार्टी को दे देते हैं तो यह काउंटर पार्ट या प्रति प्रयोग में लाने या लागू करने का मामला होता है। प्रत्येक काउंटर पार्ट अर्थात प्रति हस्ताक्षर करने वाले पार्टी के खिलाफ या सामने दस्तावेज का प्राथमिक साक्ष्य होता है। कृषि लीज मामले या कार्य प्रति के रूप में प्रयोग में लाए गये प्राथमिक साक्ष्य का उदाहरण होते हैं।

जब संख्या में एक समान प्रक्रिया से दस्तावेज बनाए जाते हैं, तो वह कानूनन मूल दस्तावेज का काउंटर पार्ट होते हैं और प्रत्येक अन्य दस्तावेजों का प्राथमिक साक्ष्य होता है। जिरोक्स, फोटोग्राफी, सायक्लोस्टाइल, लिथोग्राफी, कार्बन प्रोसेस एवं टाइपराईटिग समान प्रक्रिया से तैयार किये गये दस्तावेजों के प्रकार हैं। अखबार की प्रति उस अखबार के अन्य सभी प्रतियों की विक्रय वस्तु का प्राथमिक साक्ष्य है, परंतु अखबार की प्रति हस्तलिखित दस्तावेज की की विषय वस्तु का प्राथमिक साक्ष्य नहीं है।

16.4 माध्यमिक अथवा सैकंडरी साक्ष्य

सैकंडरी साक्ष्य प्राथमिक साक्ष्य का विकल्प होते हैं और कुछ नहीं। यह रजिस्ट्रीकृत प्रति या दस्तावेज की तुलनात्मक और सही प्रति है जो कि मूल दस्तावेज जितनी उचित है। करीब 5 प्रकार के मूल दस्तावेज होते हैं और सभी एक दूसरे के समान बेहतर होते हैं। उदाहरणार्थ रजिस्ट्रीकृत प्रति, यांत्रिक प्रक्रिया द्वारा तैयार की गई प्रति, और मूल दस्तावेज से तुलना की हुई प्रति, वह प्रतियां जो

कि मूल दस्तावेज से बनी है लेकिन तुलना की हुई नहीं है और वह प्रतियां जो मूल से तुलना करने के बाद बनाई गई है परंतु मूल दस्तावेज से नहीं बनी है (सेक्शन 63 ऑफ आई ई एक्ट)

अदालत एक पार्टी या पक्ष को यह अनुमति नहीं देती कि वह सैकंडरी गवाह प्रस्तुत करे जब तक कि यह' सिद्ध ना हो जाए कि दस्तावेजों को सिद्ध करने के लिए प्राथमिक गवाह प्रस्तुत' नही किये जा सकते। उदाहरणार्थ, अधिग्रहण ज्ञापन की प्रति जो कि मूल दस्तावेज से बनी हो और आई ओ द्वारा उस पर हस्ताक्षर किये गये हो, वही सैकंडरी साक्ष्य है। इसे साक्ष्य के रूप में स्वीकृति तब तक नहीं दी जा सकती जब तक कि यह उल्लेख ना किया जाए कि मूल दस्तावेज खो गया है या नष्ट हो चुका है। हालांकि आई ओ द्वारा बनाई गई और गवाह द्वारा समान रूप से हस्ताक्षर की गई अधिग्रहण इमपन की मूल प्रति, कार्बन कॉपी सहित, मूल दस्तावेज की विषय वस्तु का प्राथमिक साक्ष्य है। (आई. ई. के सेक्शन 62 की व्याख्या 2) और (वेंकट समना बनाम नारायण राव, ए.आई.आर, 1973 मद्रास 807)।

16.5 जन प्रलेख या दस्तावेज के प्रमाण अथवा परीक्षण की विधि

जन प्रलेख या सरकारी दस्तावेज को सिद्ध करने के लिए रजिस्ट्रीकृत प्रति पर्याप्त साक्ष्य है। अदालत में सुविधा के आधार पर इस प्रकार की विधि को अनुमति दी है क्योंकि सरकारी कर्मचारियों को अदालत के समक्ष दस्तावेज सिद्ध करने के लिए अनेकों प्रकार के कष्ट दिये जा सकते है। बार बार अदालत में प्रस्तुत करने के कारण सरकारी रिकॉर्ड के नुकसान पहुंचने की संभावना है। कानून सरकारी कर्मचारियों में बहुत विश्वास रखता है और उनके द्वारा बनाये गये दस्तावेज बिना किसी विरोध के सैकंडरी साक्ष्य के रूप में स्वीकृत होते हैं। सेक्शन 81अ, 85अ, 85ब, 85स, 88अ, 90अ देखें।

16.6 सामान्य नियम पर रोक

सरकारी दस्तावेजों की रजिस्ट्रीकृत प्रति, बिना उस सरकारी कर्मचारी की जाँच के, जिसने वह बनाई है, रिपोर्ट की भांति साक्ष्य के तौर पर स्वीकृत नहीं की जाएगी। उदाहरणार्थ पोस्ट मार्टम रिपोर्ट, सरकारी कर्मचारी द्वारा बनाई गई किसी भी तरह की जाँच रिपोर्ट क्योंकि जब अदालत सेक्शन 81 आई.ई एक्ट के अंतर्गत, इसकी वास्तविकता समझें, इसमें उल्लिखित विषाय की सत्यता, अदालत समझ सकती है (सेक्शन 114, इलस्ट्रेशन ई के अंतर्गत)। फौजदारी मामलों में, अदालत केवल अनुमानों के आधार पर कार्य नहीं करती।

स्थूल या भौतिक साक्ष्य- इंडियन एविडेंस एक्ट के सेक्शन 3 की साक्ष्य की परिभाषा में स्थूल या भौतिक साक्ष्य सख्ती से शामिल नहीं है। दस्तावेजों के अतिरिक्त अन्य भौतिक वस्तुएं, जो कि अदालत की जाँच के लिए प्रस्तुत की जाती है, वही वास्तविक साक्ष्य कहलाती हैं। कई बार इन्हें भौतिक अथवा स्थूल साक्ष्य भी कहा जाता है, जो कि संदिग्ध अथवा अभियुक्त को अपराध से जोड़ती है। इसे तथ्यों की प्रासंगिकता को सिद्ध करने के लिए भी प्रयोग में लिया जाता है। इसे प्रासंगिक तथ्यों को स्थापित करने के लिए किये गये प्रयास के रूप में भी प्रयोग में लिया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, घटना स्थल से प्राप्त खून से सना हुआ चाकू जिस पर अभियुक्त की अंगुलियों के निशान है, अदालत में जाँच के लिए भौतिक व स्थूल साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह साक्ष्य बिना फिंगरप्रिंट एक्सपर्ट के बयान के बहुत कम कीमत रखता है, जो कि यह सिद्ध करता है कि चाकू पर लगे निशान, अभियुक्त के हैं। साथ ही डॉक्टर का भी यह मत या बयान हो कि मृत्यु का कारण और चोट की प्रकृति चाकू से लगी चोट ही है। अत: वास्तविक साक्ष्य बहुत महत्वपूर्ण होता है लेकिन तभी जब यह अन्य साक्ष्यों के साथ सम्मिलित हो और अभियुक्त से सभी बातों जुड़े।

आई.ओ द्वारा रिकवर्ड दस्तावेज के अतिरिक्त खोए हुए आलेख और अभियुक्त को अपराध से जोड़ने वाले अन्य दस्तावेज, वास्तविक या स्थूल साक्ष्य के रूप में प्रयोग में लिए जाते हैं। गवाहों के आचरण या व्यवहार, पार्टियों के व्यवहार, और न्यायाधीश द्वारा की गई स्थानीय जाँच को भी वास्तविक साक्ष्य में शामिल किया जाता है।

16.7 चर्चित साक्ष्य

चर्चित साक्ष्य ऐसा बयान या कथन है जो कि गवाह द्वारा नहीं दिया गया है या फिर ऐसा बयान, जो कि दस्तावेजों में रिकॉर्ड किया हुआ है लेकिन उसे प्रस्तुत नहीं किया गया और उसकी पुष्टि भी नहीं हुई। जे.डी जैन मामले में, ए.आई.आर 1982, सेक्शन 673, सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह इंगित किया गया कि कई बार चर्चित का अर्थ होता है जो भी व्यक्ति ने चर्चा सुनी और कई बार इसका अर्थ होता है जो भी व्यक्ति ने किसी दूसरे के द्वारा दी गई सूचना पर घोषणा की। ऐसे व्यक्ति का बयान जो कि गवाह नहीं कहलाता चर्चित हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। उदाहरणार्थ किसी तीसरे व्यक्ति का मिथ्या या निंदात्मक कथन, जो कि गवाह द्वारा सुना गया, प्रासंगिक है, कथन की विषय वस्तु की सत्यता के संदर्भ में नहीं लेकिन कहे गये कथन या बयान के तथ्य के संदर्भ में।

साधारण नियम के अनुसार, चर्चित साक्ष्य स्वीकृत नहीं होता क्योंकि इसमें बयान देने वाले या कहने वाले को ना ही शपथ दिलवाई गई होती है और ना ही उसका प्रतिकूल परीक्षण किया जाता है। इस नियम का आधार यह है कि प्रत्येक गवाह को अपना बयान ऐसी स्थितियों में देना होगा जिनमे उसे झूठ के सभी जुर्माने या सजा के बारे में अवगत करवा दिया जाए। सही नियम यह है कि सेंकंड हैंड साक्ष्य, चाहे दस्तावेज की पूरी विषय वस्तु या तीसरे व्यक्ति की भाषा को अस्वीकृत कर दिया जाता है क्योंकि यह, जिस पार्टी के खिलाफ प्रस्तुत की गई है, जिम्मेदार या विश्वसनीय गवाही से जुड़ी हुई नहीं है।

भाग (II) जाँच व न्यायालय में गवाह, साक्ष्य

16.8 प्रस्तावना

गवाह का अर्थ उस व्यक्ति से है जो न्यायालय के सामने साक्ष्य रखे। दूसरे शब्दों में गवाह एक ऐसा व्यक्ति है जो अदालत द्वारा किये जाने वाले किसी निरीक्षण या जाँच में किसी चीज के बारे में गवाही दे।

गवाह के परीक्षण का अर्थ है पूछताछ जिसमें सामान्यत: वादी या उनके वकीलों द्वारा विवाद के बारे में सामग्री जुटाने की दृष्टि से गवाह से कुछ प्रश्न किये जाते हैं जिसके तहत वह अदालत में मुकदमा पेश कर सके:-

अ. धारा 118 गवाह की योग्यता से सम्बन्धित

ब. गवाह के परीक्षण से सम्बन्धित

16.9 गवाहों की योग्यताएँ व विश्वसनीयता

कोई भी ऐसा व्यक्ति जो प्रश्नों को समझ सके और उनके उचित जवाब दे सके, एक योग्य गवाह है। कच्ची उम्र, अधिक उम्र, शारीरिक या मानसिक बीमारी और इसी प्रकार के किसी कारण से यदि कोई व्यक्ति प्रश्नों को समझने और उनके उचित जवाब देने में असमर्थ है तो वह गवाही देने के लिए अयोग्य कहलाएगा।

यह जरूरी नहीं है कि एक योग्य गवाह एक विश्वसनीय गवाह होगा। अदालत एक गवाह की गवाही पर उसकी विश्वसनीयता की परख करने के पश्चात ही भरोसा करेगी।

मूक व बधिर गवाह

एक गवाह जो कि बोलने में असमर्थ है, अपनी गवाही किसी भी ऐसे रूप में दे सकता है जिसको वह स्पष्ट कर सके उदाहरणार्थ लिखकर या सूजको द्वारा या ईशारो द्वारा, परंतु यह खुली अदालत में होना चाहिए और इसको रिकॉर्ड भी किया जाना चाहिए। इस प्रकार के गवाह द्वारा दी गई गवाही को मौखिक गवाही कहते है।

16.10 गवाह का परीक्षण

गवाह के परीक्षण का कम- एक आपराधिक मुकदमे में, साक्ष्य का न्यायिक भार अभियोजन पर होता है कि वह अभियुक्त पर लगे आरोपों को संदेह की छाया से दूर रखते हुए पेश करे। सामान्यत: सबसे पहले चश्मदीद गवाहों का परीक्षण किया जाता है और उसके बाद प्राथमिकता के कम में अन्य आवश्यक गवाही सामग्री और अंत में विशेषज्ञ गवाह व औपचारिक गवाहों का।

गवाहों के परीक्षण के तीन भाग है-

1. एक्जामिनेशन इन चीफ
2. प्रतिकूल परीक्षण
3. पुन: परीक्षण

सबसे पहले एक गवाह का परीक्षण उसको बुलाए जाने वाले वादी द्वारा किया जाता है। इसके पश्चात यदि विरोधी दल या विपरीत वादी चाहे तो उसके द्वारा गवाह का प्रतिकूल परीक्षण किया जाता है। उसके बाद यदि गवाह को प्रस्तुत करने वाला वादी दल चाहे तो गवाह का पुन: परीक्षण किया जा सकता है (धारा 138 ऑफ आई.ई एक्ट) इस प्रकार के हर परीक्षण के दौरान कुछ मुद्दे उठ सकते हैं जैसे कि - अ. प्रमुख प्रश्न ब. पुष्टिकरण स. प्रतिवाद ड. याददाश्त का तरोताजा किया जाना ई. भरोसे को चुनौती इत्यादि

1. एक्जामिनेशन इन चीफ-

वादी जिसने कि गवाह को प्रस्तुत होने के लिए बुलाया है, उसके द्वारा गवाह का परीक्षण एक्जामिनेशन इन चीफ कहलाता है। (किसी भी गवाह के एक्लामिनेशन इन चीफ का प्रयोजन गवाह प्रस्तुत करने वाले दल के फायदे के और उपयुक्त मुद्दों के साक्ष्यों को निकालना है।

एक्जामिनेशन इन चीफ की सीमा-

अ. इसका संबंध प्रासंगिक तथ्यों से होना चाहिए

ब. एक्जामिनेशन इन चीफ के दौरान सामान्यत: मुख्य प्रश्नों को पूछने की अनुमति नहीं है। हालांकि यदि प्रमुख प्रश्न आरंभिक है या अविवादित तथ्यों या उन तथ्यों से सम्बन्धित है जो कि अदालत की दृष्टि में पूर्ण से साबित हो चुके हैं तो अदालत की आज्ञा से एक्लामिनेशन इन चीफ के दौरान प्रमुख प्रश्न किये जा सकते हैं। (धारा 142 ऑफ आई ई एक्ट)

2. प्रतिकूल परीक्षण-

गवाह का विरोधी दल द्वारा परीक्षण प्रतिकूल परीक्षण कहलाता है (धारा 137 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)। प्रतिकूल परीक्षण के अभिप्राय है- अ. गवाह की सत्यता की जाँच करना, ब. गवाह से ऐसे बयान व स्वीकृति लेना जो कि उसका प्रतिकूल परीक्षण करने वाले दल के हित में हो, स. अविश्वास के जरिए विरोधी के मुकदमे को नष्ट करना या कमजोर करना।

प्रतिकूल परीक्षण की सीमा-

प्रतिकूल परीक्षण प्रासंगिक तथ्यों से सम्बन्धित होना चाहिए, लेकिन उसका एक्जामिनेशन इन चीफ के दौरान गवाह द्वारा दी गई गवाही तक सीमित होना आवश्यक नहीं है।

3. पुन: परीक्षण-

प्रतिकूल परीक्षण के पश्चात गवाह को प्रस्तुत कर,ने वाले दल द्वारा गवाह के परीक्षण को पुन: परीक्षण कहते हैं, (धारा 137 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)। प्रतिकूल परीक्षण के दौरान उत्पन्न हुई विसंगतियों को ठीक करने के उद्देश्य से गवाह को प्रस्तुत करने वाला दल प्रतिकूल परीक्षण के बाद उसका पुन: परीक्षण कर सकता है। पुन: परीक्षण का उद्देश्य गवाह के उन मुद्दों पर व्याख्या और स्पष्टीकरण लेना है जो कि प्रतिकूल परीक्षण के दौरान उत्पन्न हुए और जो कि गवाह को प्रस्तुत करने वाले दल का अहित कर सकते हैं।

पुन: परीक्षण की सीमा

अ. पुन: परीक्षण, प्रतिकूल परीक्षण में उत्पन्न हुए मुद्दों की व्याख्या तक ही सीमित होना चाहिए परंतु प्रतिकूल परीक्षण के दौरान गवाही में आई कमी को पुनःपरीक्षण में पूरा नहीं किया जा सकता।

ब. सामान्यत: पुन: परीक्षण के दौरान नये तथ्यों को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। हालांकि अदालत की अनुमति से, पुन: परीक्षण के दौरान भी नये तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं। पुन: परीक्षण के दौरान नये तथ्य प्रस्तुत किये जाते हैं तब विरोधी दल को यह अधिकार है कि वह गवाहों का केवल उन तथ्यों पर प्रतिकूल परीक्षण कर सके।

स. अदालत की आज्ञा बिना पुन: परीक्षण के दौरान प्रमुख प्रश्न नहीं किये जा सकते।

16.11 गवाहों के प्रकार

1. **बाल गवाह**- एक बालक एक योग्य गवाह बन सकता है यदि वह बालक उसको पूछे जाने वाले प्रश्नों का उचित उत्तर दे सके। एक बालक के संबंध में योग्यता का प्रमाण उसकी समझ है ना कि उम्र। (धारा 118 ऑफ आई ई एक्ट) बाल गवाह की समझदारी की जाँच करने के लिए सामान्यत: उससे साधारण तरह के कुछ प्रश्न किये जाते है और यह देखा जाता है कि क्या वह उन प्रश्नों को समझने और उनका उचित जवाब देने में समर्थ है या नहीं और बाल गवाह की गवाही लेने से पहले उन प्रश्नों और उसके द्वारा दिये गये जवाबों का लिखित नोट लिया जाता है।

2. **मूक व बधिर गवाह**- एक गवाह जो कि बोलने में असमर्थ है, अपनी गवाही किसी भी ऐसे रूप में दे सकता है जिसको वह स्पष्ट कर सके उदाहरणार्थ लिखकर या सूचकों द्वारा या इशारों द्वारा, परंतु यह खुली अदालत में होना चाहिए और इसको रिकॉर्ड भी किया जाना चाहिए। इस प्रकार के गवाह द्वारा दी गई गवाही को मौखिक गवाही कहते हैं।

3. **दोषी व्यक्ति**- एक दोषी सदैव अदालत के सामने गवाही देने के लिए योग्य समझा जाता है। दोषी अपनी इच्छा से गवाही दे सकता है, परंतु उसे गवाह बनने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। (धारा 315 ऑफ सी.आर.पी.सी)

4. **सह अपराधी**- एक ऐसा व्यक्ति जो कि जानबूझकर एक दूसरे व्यक्ति को अपराध करने में सहायता करे या मदद प्रदान करे उसको सहाअपराधी कहते हैं। सहअपराधी सहित ट्रैप गवाह व अनुमोदक या समर्थक अदालत के सामने गवाही देने के योग्य हैं।

   अ. अनुमोदक- केवल क्षमादान के वादे के आधार पर ही एक सहअपराधी एक अनुमोदक बनता है (धारा 306 एवं 307)। एक अनुमोदक एक योग्य गवाह है परन्तु उसकी गवाही विश्वसनीय नहीं समझी जा सकती।

   क्षमादान का प्रस्ताव और अभियोजन से मुक्ति की उम्मीद अनुमोदक की विश्वसनीयता पर प्रभाव डालते हैं। आपराधिक दायित्व से छुटकारा पाने के लिए एक अनुमोदक अपने साथी

को छोडकर विरोधी से हाथ मिला लेता है। समझदारी व अनुभव कहता है कि ऐसे व्यक्ति का तब तक भरोसा नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि उसकी गवाही का पुष्टिकरण किसी स्वतंत्र माध्यम से ना किया गया हो (अब्दुल सत्तार बनाम चंडीगढ़ गणराज्य- 1986)

ब. ट्रैप गवाह- एक ट्रैप गवाह और एक अनुमोदक की स्थिति समान नहीं होती क्योंकि एक ट्रैप गवाह अपराधी का पता लगाने के उद्देश्य से अपराध किये जाने के लिए उत्तेजित करता है। दूसरे शब्दों में ट्रैप गवाह सामाजिक हितों के लिए कार्य करता है और वह मैन्स री को बांटता नहीं है परंतु वह अभियोजन का पक्षधर हो सकता है। इसीलिए वह एक अधिक से अधिक एक पक्षधर या हितपरायण गवाह समझा जा सकता है। (महाराष्ट्र राज्य बनाम एन जी पिंपल 1984)।

5. पक्षधर अथवा हितपरायण गवाह- दोस्तों और रिश्तेदारों को, जो कि मुकदमे के तथ्यों से परिचित हैं, हितपरायण गवाह नहीं समझा जा सकता। वह लोग किसी पुरानी रंजिश के चलते अभियुक्त पर लगे आरोपों को सिद्ध होते देखने चाहते हैं, हितपरायण गवाह कहलाते हैं। ऐसा कोई नियम नहीं है कि अदालत हितपरायण गवाह की गवाही पर विश्वास ना करे। परंतु पूर्ण विचार का सिद्धांत यह कहता है कि हितपरायण गवाह की गवाही पर भरोसा करने से पहले अदालत द्वारा उसकी बारीकी से जाँच की जानी चाहिए (तमेश्वर साही बनाम यू पी राज्य- ए.आई.आर 1976 सेक्शन 59, यू पी राज्य बनाम राम स्वरूप- 1988(1) काइम्स 994)।

6. पुलिस गवाह- किसी भी गवाह की गवाही केवल इस आधार पर अस्वीकृत नहीं की जा सकती कि वह पूछताछ का प्रभारी पुलिस अधिकारी है। यह परिकल्पना की एक व्यक्ति ईमानदारी से पेश आएगा, एक पुलिस अधिकारी के सम्बन्धित में भी उतनी ही उचित है जितनी कि किसी अन्य व्यक्ति के संबंध में, और इसीलिए बिना किसी ठोस आधार के उस पर अविश्वास करना या संदेह करना एक न्यायिक पद्धति नहीं है (ए.आई.आर 1956 सेक्शन 217(219))।

7. प्रतिपक्ष गवाह- यह शब्द इंडियन एविडेंस एक्ट में शामिल नहीं है। यदि गवाह को प्रस्तुत करने वाले दल को गवाह का प्रतिकूल परीक्षण करने की अदालत अनुमति दे तो वह प्रतिपक्षी गवाह कहलाता है। अपने न्यायिक अधिकार के अंतर्गत अदालत यह अनुमति दे सकता है। यदि यह अनुमति दे दी गई है, तो गवाह को प्रस्तुत करने वाले दल को यह अधिकार है कि वह गवाह से कोई भी प्रश्न पूछ सके जिसमें प्रमुख प्रश्न भी शामिल है जो कि विरोधी दल द्वारा पूछा जा चुका हो। यदि गवाही, आचरण, प्रकृति, भाव, स्वरूप और प्रश्नों का उत्तर देने की आदत, गवाह द्वारा पूर्व में दिये गये असंगत बयानों के अवलोकन से अदालत को लगता है कि न्याय करने के लिए और सत्य जानने के लिए अनुमति देना आवश्यक है, तो कोर्ट ऐसा कर सकती है (154 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)।

प्रमुख प्रश्न

कोई भी ऐसा प्रश्न जिसका जवाब प्रश्न करने वाले दल की उम्मीद के अनुरूप हो या जो वह दल सुनना चाहता हो, को प्रमुख प्रश्न कहते हैं (धारा 141 ऑफ आई.ई एक्ट) दूसरे शब्दों में प्रमुख प्रश्न वह है जो कि गवाह के मुख में शब्द डालता है या ऐसा जवाब सुझाता है जो कि पूछने वाला सुनना चाहता है।

16.12 रिफैशिंग ऑफ मैमोरी

एक गवाह आमतौर पर अपनी याददाश्त के आधार पर साक्ष्य देता है, परंतु कभी कभी याददाश्त कमजोर पड़ जाती है और यदि कोई ऐसे दस्तावेज हों जिनमें उसकी गवाही से सम्बन्धित तथ्य हैं, तो उनके जरिए उसकी याददाश्त को फिर से ताजा किया जाना जरूरी हो जाता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि गवाह की याददाश्त के कमजोर पड़ने के कारण सच्चाई की हानि ना हो अदालत यह रियायत दे देती है (धारा 159 ऑफ आई.ई एक्ट)। एक गवाह अपनी याददाश्त को ताजा करने के लिए निम्न परिस्थितियों में कोई भी दस्तावेज देख सकता है -

1. यदि यह उसके तथ्यों के संग्रह को ताजा करता है।
2. यदि वह उसके दिमाग में यह भरोसा पैदा करता है कि जब वह लिखा गया था, तब उसको उसके सही होने का पता था।

16.13 गवाहों के परीक्षण में आवश्यक मुद्दे पर गवाहों के परीक्षण के दौरान निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाता है-

1. **प्रमुख प्रश्न**- कोई भी ऐसा प्रश्न जिसका जवाब प्रश्न करने वाले दल की उम्मीद के अनुरूप हो या जो वह दल सुनना चाहता हो, को प्रमुख प्रश्न कहते हैं (धारा 141 ऑफ आई.ई एक्ट)। दूसरे शब्दों में प्रमुख प्रश्न वह है जो कि गवाह के मुख में शब्द डालता है या ऐसा जवाब सुझाता है जो कि पूछने वाला सुनना चाहता है।

उदाहरण

अ. 'क्या आप उस समय फुटबॉल खेल रहे थे?' यह एक प्रमुख प्रश्न है। यह दूसरे तरीके से पूछा जाना चाहिए था:'आप उस समय क्या कर रहे थे?

ब. 'क्या यह घटना अंधेरी रात में खत्म हुई थी?' यह एक प्रमुख प्रश्न है। यदि घटना के आधी रात में घटित होने को लेकर कोई विरोध नहीं है, तो अदालत की अनुमति से एग्जामिनेशन इन चीफ के दौरान गवाह से यह प्रश्न किया जा सकता है।

स. 'क्या आपने दुर्घटना टॉर्च के प्रकाश में देखी?" यह भी एक प्रमुख प्रश्न है जो कि प्रतिकूल परीक्षण के दौरान पूछा जा सकता है, परंतु यदि इस सत्य को लेकर विरोध है कि गवाह ने घटना को किस प्रकार देखा तो यह प्रश्न एग्जामिनेशन इन चीफ या पुन: परीक्षण के दौरान नहीं किया जा सकता। यदि यह प्रश्न दूसरे तरीके से पूछा जाए तो यह प्रमुख प्रश्न नहीं कहलाएगा जैसे कि'आपने अंधेरी रात में यह घटना किस प्रकार देखी?'

द. कोई भी इस प्रकार का मुख्य प्रश्न जो कि अस्पष्ट, भ्रामक, संदिग्ध और समझ में ना आने योग्य हो, उसको अदालत कभी भी अस्वीकार कर सकती है। उदाहरण के लिए'क्या आपने अपनी पत्नी को मारना बंद कर दिया है?" यदि इसका जवाब हां में है तो इसका यह अर्थ हुआ कि गवाह पहले अपनी पत्नी को मारता था। यदि जवाब नकारात्मक है, ना में है, तो इसका अर्थ यह है कि गवाह अब भी अपनी पत्नी को मारता है। इस प्रकार के संदिग्ध और भ्रामक प्रमुख प्रश्नों को अदालत अस्वीकृत कर सकता है।

2. **पुष्टिकरण**- मानव द्वारा दी गई गवाही तीन प्रकार की हो' सकती है-

1. पूर्णत: विश्वसनीय
2. पूर्णत: अविश्वसनीय
3. ना पूर्णत: विश्वसनीय ना ही पूर्णत: अविश्वसनीय

जब गवाही पूर्णत: विश्वसनीय है, तो अदालत को पुष्टिकरण पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है। जब गवाही पूर्णत: अविश्वसनीय है, तो अदालत को इसमें बिना पुष्टिकरण के ही अस्वीकार कर देना चाहिए। परंतु जब गवाही ना पूर्णत: विश्वसनीय है और ना पूर्णत: अविश्वसनीय, तो यह अदालत का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसका पुष्टिकरण करे। पुष्टिकरण की आवश्यकता अंतिम प्रकार के गवाहों की गवाही के लिए होती है।

अ. पुष्टिकरण का अर्थ- पुष्टिकरण का शाब्दिक अर्थ है सत्यापन। पुष्टिकरण का अर्थ है दूसरे शब्दों में, सत्यापित करना, मजबूती देना, समर्थन देना, और विश्वसनीयता को बढ़ाना। पुष्टिकरण का उद्देश्य कोर्ट को यह संतुष्टि दिलाना है कि जिस गवाह की गवाही का पुष्टिकरण किया गया है, उसने सत्य कहा था। पुष्टिकरण साक्ष्य, साक्षात् हो सकता है या पारिस्थितिक। वह साक्ष्य जिसके माध्यम से पुष्टिकरण किया गया हो, उसे पुष्टिकरण साक्ष्य कहते हैं।

ब. पुष्टिकरण की प्रकृति- अदालत में मुकदमे के दौरान गवाह की गवाही के पुष्टिकरण के लिए उसके द्वारा पूर्व में दिये गये बयान का उपयोग किया जा सकता है (सेक्शन 157 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)। उदाहरण-

1. अदालत के समक्ष सुनवाई के दौरान गवाह द्वारा गवाही के समर्थन और पुष्टिकरण के लिए दिये गये बयान की स्वीकृति जिसे मजिस्ट्रेट यू एस 164 सी.आर.पी.सी द्वारा रिकॉर्ड किया गया हो। एफ.आई.आर में दिया गया बयान, जिसे थाने का अधिकारी रिकॉर्ड करता है, को एफ आई आर लिखवाने वाले व्यक्ति के बयान के समर्थन और पुष्टिकरण के लिए स्वीकृत किया जा सकता है।

प्रासंगिक तथ्यों के बयान की पुष्टि के लिए किये गये प्रश्न साक्ष्य के रूप में स्वीकृत किये जा सकते हैं। किसी भी गवाह के मौखिक बयान की पुष्टि पारिस्थितिक बयान द्वारा की जा सकती है (सेक्शन 156 ऑफ आई.ई एक्ट)

स. निम्न प्रकार के साक्ष्यों को स्वीकृति देने से पहले अदालत हमेशा दूसरे साक्ष्यों की माँग करती है-

1. रद्द स्वीकृति या अपराध स्वीकरण
2. अतिरिक्त न्यायिक स्वीकृति
3. सहापराधि की गवाही
4. ऐसे गवाह की गवाही जो ना पूर्णत: विश्वसनीय है, ना पूर्णत: अविश्वसनीय

3. **विरोधाभास**- ऐसा गवाह जो कि अपनी गवाही पर दृढ़ नहीं है, विश्वसनीय होने का दावा ना के बराबर ही कर सकता है। यदि विरोधी पार्टी जिसके खिलाफ गवाह ने बयान दिया है, गवाह के बयान में विरोधाभास प्रकट कर पाते है तो अदालत को मजबूर होकर उस गवाह की गवाही को अस्वीकृत करना पड़ता है।

अ. विरोधाभास का अर्थ- विरोधाभास का अर्थ है विपरीत को स्वीकार करना। दूसरे शब्दों में, यह गवाह उसके द्वारा पूर्व में दिये गये बयानों से सामना करवाकर विरोधाभास प्रकट करना है।

ब. विरोधाभास का उद्देश्य- इसका उद्देश्य प्रतिकूल परीक्षण के दौरान विरोधी दल द्वारा, गवाह के पूर्व में दिये गये बयानों में विरोधाभास प्रकट करके उसकी विश्वसनीयता को चुनौती देना है, या फिर गवाह जब प्रतिपक्षी घोषित कर दिया गया हो, तब एग्जामिनेशन इन चीफ के दौरान गवाह को प्रस्तुत करने वाले दल के द्वारा ऐसा किया जाना।

एक गवाह के पूर्व में दिये गये बयान केवल उसके ही खिलाफ प्रयोग में लाये जा सकते हैं, किसी दूसरे गवाह को चुनौती देने के लिए नहीं।

स. विरोधाभास का तरीका- किसी भी गवाह से उसके द्वारा पूर्व में दिये गये बयानों के आधार पर पूछताछ की जा सकती है। गवाह द्वारा पूर्व में दिये गये बयान लिखित रूप में उसके अदालत के समक्ष प्रतिकूल निरीक्षण के दौरान उसके सामने रखे जा सकते हैं जिससे कि पूछताछ के दौरा; उसके द्वारा दिये गये ब्यानों और मुकदमे के दौरान दी गई गवाही में विरोध प्रकट किया जा सके। गवाह का ध्यान उसके द्वारों पूर्व में दिये गये बयानों के आवश्यक भाग पर केंद्रित किया जाना चाहिए (सेक्शन 145 आई.ई एक्ट)। उदाहरण 1, स्टेटमेंट रिकॉर्डेड बाय आई.ओ.यू/एस 161 ऑफ सी आर पी सी, 2. मजिस्ट्रेट यू एस 164 ऑफ सी आर पी सी एक्ट, 3. एफ आई आर यू एस 154 ऑफ सी आर पी सी, 4. टी आई परेड, लैटर, ऑडियो एवं वीडियो कैसट इत्यादि की रिपोर्ट में सम्मिलित अन्य बयान।

16.14 सारांश

एविडेंस एक्ट का उद्देश्य है कि न्यायाधीश के जहन में किसी विशेष तथ्य का अस्तित्व या अनुपस्थिति का विश्वास पैदा करना जिसके आधार पर दोनों पक्षों के अधिकार और जिम्मेदारियों का निर्णय लिया जा सके।

तथ्य स्थूल अथवा बाहय या फिर मनावैज्ञानिक भी हो सकते हैं। स्थूल तथ्य इस प्रकार हैं- वस्तुएं, वस्तुओं की स्थित, वस्तुओं का संबंध जिसे देखा, सुना, सूंघा, अथवा जिसे अपने विवेक से महसूस किया जा सके। मनोवैज्ञानिक या जोहनी तथ्य किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति की ओर संकेत करते हैं जैसे उसके इरादे, नेक विचार या भाव, प्रतिष्ठा आदि। स्थूल तथ्यों की केवल प्रत्यक्ष या फिर पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा ही पुष्टि की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक तथ्य पारिस्थितिक साक्ष्य द्वारा या फिर इकबाल ए जुर्म के द्वारा साबित किये जा सकते है।

साक्ष्य हो सकते हैं- अ. मौखिक **ब**. लिखित या दस्तावेजी **स**. स्थूल या वास्तविक

प्राथमिक साक्ष्य का अर्थ है वह मूल दस्तावेज जो कि अदालत में जाँच के लिए तैयार हुए हों, (सेक्शन 62 ऑफ इंडियन एविडेंस एक्ट)।

सैकंडरी साक्ष्य प्राथमिक साक्ष्य का विकल्प होते हैं और कुछ नहीं। यह रजिस्ट्रीकृत प्रति या दस्तावेज की तुलनात्मक और सही प्रति है जो कि मूल दस्तावेज जितनी उचित है। करीब 5 प्रकार के मूल दस्तावेज होते हैं और सभी एक दूसरे के समान बेहतर होते हैं। चर्चित साक्ष्य ऐसा बयान या कथन है जो कि गवाह द्वारा नहीं दिया'गया है या फिर ऐसा बयान, जो कि दस्तावेजों में रिकॉर्ड कइया हुआ है लेकिन उसे प्रस्तुत नहीं किया गया और उसकी पुष्टि भी नहीं हुई।

गवाह का अर्थ उस व्यक्ति से है जो न्यायालय के सामने साक्ष्य रखे। दूसरे शब्दों में गवाह एक ऐसा व्यक्ति है जो अदालत द्वारा किये जाने वाले किसी निरीक्षण या जाँच में किसी चीज के बारे में गवाही दे। गवाह के परीक्षण का अर्थ है पूछताछ जिसमें सामान्यत: वादी या उनके वकीलों द्वारा विवाद के बारे में सामग्री जुटाने की दृष्टि से गवाह से कुछ प्रश्न किये जाते हैं जिसके तहत वह अदालत में मुकदमा पेश कर सके।

अ. धारा 118 गवाह की योग्यता से सम्बन्धित ब गवाह के परीक्षण से सम्बन्धित अदालत द्वारा किये जाने वाले किसी निरीक्षण या जाँच में किसी चीज के बारे में गवाही दे।

गवाहों के परीक्षण के तीन भाग है- 1. एक्जामिनेशन इन चीफ 2. प्रतिकूल परीक्षण 3. पुन: परीक्षण

16.19 अभ्यास प्रश्न

1. निजी व सरकारी दस्तावेजों से संबंधित प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या करें?
2. सरकारी व जन साधारण प्रलेख अथवा दस्तावेजों के पुष्टिकरण की विधि पर प्रकाश डाले'
3. 3''मौखिक वे लिखित धाराएँ अथवा अनुभाग'' विषय पर लेख लिखिए।
4. साक्ष्यों के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. प्राथमिक, माध्यमिक व चर्चित साक्ष्यों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
6. गवाहों के परीक्षण के विभिन्न भाग व उनकी सीमाओं का वर्णन कीजिए।
7. विभिन्न प्रकार के गवाहों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

16.20 संदर्भ ग्रंथ

1. एक्शन या धारा 3659-100
2. इडियन एविडेंस एक्ट की धारा 118,119,133,114(ब),134,135 से 165

इकाई-17

राजस्थान लघु (माइनर) अधिनियम

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 राजस्थान आबकारी अधिनियम, 1950
17.3 राजस्थान समाज-विरोधी क्रियाकलाप निवारण अधिनियम, 2006
17.4 राजस्थान सार्वजनिक सूत (जुआ) अध्यादेश, 1949
17.5 राजस्थान गुण्डा नियंत्रण अधिनियम, 1975
17.6 दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 एवं नियम 2004
17.7 राजस्थान ध्वनि नियंत्रण अधिनियम, 1963
17.8 सारांश
17.9 अभ्यास प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :-

- राजस्थान प्रदेश में प्रचलित महत्वपूर्ण लघु अधिनियमों से विद्यार्थियों को परिचित करवा सकेंगे।
- चयनित राज्य लघु अधिनियमों के बारे में जानकारी प्रदान कर सकेंगे।
- प्रत्येक लघु अधिनियम का परिचय, विहंगावलोकन, महत्वपूर्ण प्रावधानों, अपराधों व प्रक्रियाओं के बारे में ज्ञान प्रदान करना।
- राज्य लघु अधिनियमों के महत्व को प्रतिपादित करते हु ए पुलिस एवं अन्य इकाइयों की भूमिका को स्पष्ट करना।

17.1 प्रस्तावना

मादक पदार्थो का सेवन व्यक्ति, परिवार व समाज, सभी के लिए हानिकारक होता है। नशा, चाहे वह किसी भी प्रकार का हो, व्यक्ति के शरीर, मन व स्वास्थ्य को खत्म करता है। नशे की लत व्यक्ति को शनै: शनै: व्यसनी बना देती है। इस प्रकार का व्यसन व्यक्ति को निष्क्रिय, चिड़चिड़ा एवं रोगी बना देता है। नशे का आदि व्यक्ति अपने पर, परिवार व समाज पर अन्ततोगत्वा एक बोझ बन कर रह जाता है। व्यक्ति की आर्थिक स्थिति गड़बड़ा जाती है। उसकी आदतें खराब हो जाती है तथा वह निकम्मेपन की ओर अग्रसर हो जाता है। इसका प्रतिकूल प्रभाव व्यसनी के परिवार व बच्चों पर भी पड़ता है। यहां तक की व्यसनी व्यक्ति का परिवार भी बर्बादी व तबाही के कगार पर आ जाता है। मादक पदार्थो का अनियंत्रित व अवैज्ञानिक प्रयोग जहाँ गम्भीर रूप से घातक होता है, वहीं, यह भी एक ठोस सत्य है कि मादक पदार्थो का चिकित्सकीय उपयोग भी अपार होता है। मादक पदार्थो के आधार पर अनेक प्रकार की औषधियों का निर्माण होता है। शल्य क्रिया में भी इनका अमूल्य योगदान होता है। ऐसे में मादक पदार्थो का सर्वथा उन्मूलन किया जाना संभव नहीं है। यही कारण है कि हर समाज में मादक पदार्थो के निर्माण, प्रयोग, परिवहन, भण्डारण एवं वितरण को नियंत्रित एवं नियमित करने

के लिए कानूनों का निर्माण किया जाता है। राजस्थान में इस कार्य हेतु राजस्थान अधिनियम, 1950 अस्तित्व में है।

17.2 राजस्थान आबकारी अधिनियम, 1950

17.2.1 विहंगावलोकन

इस अधिनियम में कूल 10 अध्याय एवं 75 धाराएँ हैं। **प्रथम अध्याय** इस अधिनियम के शीर्षक, लागू होने की तिथि तथा प्रसार से सम्बन्धित है। इस अध्याय की धारा 2 महत्वपूर्ण परिभाषाओं से सम्बन्धित है। अधिनियम का **दूसरा अध्याय** नियंत्रण एवं स्थापन के विविध पक्षों का वर्णन करता हैं। **तीसरा अध्याय** आबकारी वस्तुओं के आयात, निर्यात और परिवहन से सम्बन्धित है। **चौथा अध्याय** शराब एवं नशीले पदार्थो के विनिर्माण कब्जा एवं विक्रय से सम्बन्धित है। वहीं **पांचवा अध्याय** विभिन्न प्रकार की फीस एवं शुल्क के बारे में जानकारी प्रदान करता है। **छठवां अध्याय** मादक पदार्थो के सम्बन्ध में निर्धारित अनुज्ञपतियो, अनुज्ञाप्तयो, प्रपत्रों एवं परमिट/पास आदि से परिचय करवाता है। **सातवां अध्याय** साधारण उपबन्धों यथा माप, बाट और परीक्षण के औजारों एवं बकारी राजस्व की वसूली, राज्य सरकार एवं अन्य प्राधिकारियों की नियम बनाने की शक्ति जैसे विषयों का विवेचन करता है। **आठवां अध्याय** सम्बन्धित अधिकारियों की शक्तियों एवं कर्त्तव्यों का वर्णन करता है, वहीं **नवां अध्याय** अपराधों, अपराधों के लिए दण्ड एवं शास्ति संबंध रखता है। **दसवां अध्याय** अधिनियम के विविध पक्षों यथा छूटों, नियमों और अधि सूचनाओं के प्रकाशन आदि से सम्बन्धित है।

राजस्थान में नशीले पदार्थ, शराब एवं मादक औषधि द्रव्यों (Narcotics drugs substances) के आयात, निर्यात, परिवहन, विनिर्माण, विक्रय एवं कब्जे के बारे में विधि का समेकन और संशोधन करने एवं तत्संबंधी कतिपय अन्य मामलों के लिए उपबन्ध करने के उद्देश्य से राजस्थान आबकारी अधिनियम 1950 का निर्माण किया गया है।

17.2.2 परिचय एवं परिभाषा

आबकारी अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत इस अधिनियम से सम्बन्धित परिभाषाओं को स्पष्ट किया गया है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए महत्वपूर्ण परिभाषाओं को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है :-

धारा 34 आबकारी योग्य वस्तु : आबकारी योग्य वस्तु से निम्न अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत भी है -

स्पिरिट खमीरित शराब या कोई मद्यसारिक शराब, जो मानवीय, उपभोग के लिए भी हो अथवा विकृतिकृत स्पिरिट या विकृतिकृत स्पिरिट युक्त निर्मित अथवा

(i) कोई मादक औषधि-द्रव्य, अथवा

(ii) भभका या आसवन के लिए अन्य पदार्थ, अथवा

(iii) खमीरित वास या आसवन के लिए अन्य पदार्थ, अथवा

(iv) कोई अन्य वस्तु, जिसे राज्य सरकार समय-समय पर, इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ आबकारी योग्य वस्तु घोषित करती हैं।

धारा 3.14 मादक औषधि द्रव्य' : मादक औषधि द्रव्य से अभिप्रेत है -

(i) हैम्प पौधे (कनोविस सतिवा) पत्तियां, छोटे डंठल एवं पुष्प या फल से युका सिरे जिनमें भॉग या गांजा के रूप में जानने वाली सब प्रकार की वस्तुएं सम्मिलित होती है

(ii) चरस अर्थात् हैम्प पौधें से प्राप्त राल जिसमें संवेष्टन और परिवहन के लिए आवश्यक क्रिया से अलग कोई अन्य किया नहीं की गई हैं

(iii) मादक औषधि द्रव्य से उपर्युक्त किसी भी रूप का कोई मिश्रण जो अमादक सामग्री, सहित या रहित हो या उस मिश्रण से तैयार किया गया कोई भी पेय, और

(iv) अन्य कोई मादक या स्वापक पदार्थ जिसे राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा मादक औषधि द्रव्य घोषित करें और जो अनिष्टतर मादक द्रव्य अधिनियम, 1930(2 ऑफ 1930) में यथा परिभाषित अफीम कोका की पत्तियाँ या विनिर्मित औषधि-द्रव्य न हो।

धारा 3.15 शराब : शराब से अभिप्रेत भी है नशीली शराब और इसमें वाइन-स्पिरिट, स्पिरिट वाइन ताड़ी, पचावर, बीयर और समस्त द्रव्य जिनमें मद्यसार है या जो मद्यसार से मिलकर बनते हैं, या ऐसा कोई पदार्थ, जिसे राज्य सरकार समय-समय पर राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए शराब घोषित करें, सम्मिलित होता है।

धारा 3.17 विनिर्माण : विनिर्माण में ऐसे प्रत्येक प्राकृतिक या कृत्रिम प्रक्रिया (प्रोसेस) सम्मिलित है जिसके द्वारा कोई आबकारी योग्य वस्तु पूर्णतः या अंशतः उत्पादित या तैयार की जाती है तथा पुनअरसवान और शराब का परिशोधन, अपचयन, सुवासित और सम्मिश्रण करने या रंगीन बनाने की प्रत्येक प्रक्रिया भी इसमें सम्मिलित होती है।

17.2.3 महत्वपूर्ण प्रावधान

राजस्थान आबकारी अधिनियम 1950 के महत्वपूर्ण प्रावधानों में परिभाषाएं, आबकारी विभाग का नियंत्रण एवं स्थापन, आबकारी वस्तुओं के आयात, निर्यात और परिवहन तथा उनके विनिर्माण, कब्जा और विक्रय प्रावधानों के अलावा शुल्क व फीस, अनुज्ञप्तियाँ, अनुज्ञापत्र और पत्र के साथ ही साधारण उपबन्धों से सम्बन्धित अध्याय महत्वपूर्ण प्रावधान माने जाते है। इन सबमें अधिक महत्वपूर्ण प्रावधान जो कि विद्यार्थियों के ज्ञान वर्धन की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण माने जाते है, वे अध्याय 8 में वर्णित अधिकारियों की शक्तियों और कर्त्तव्यों से सम्बन्धित हैं वहीं अध्याय 9 में वर्णित प्रावधान, जो अपराधों एवं शास्तियों से सम्बन्धित हैं, को भी अति महत्वपूर्ण माना जाता है। इन प्रावधानों के महत्वपूर्ण पक्षों का मूल प्रस्तुतीकरण, यहां पर विद्यार्थियों की सुविधा के लिए किया जा रहा है।

17.2.4 अधिकारियों की शक्तियाँ एवं कर्त्तव्य

आबकारी अधिनियम में वर्णित प्रावधानों, स्थितियों एवं तथ्यों की अनुपालना निश्चित करने के लिए आबकारी अधिकारी नियुक्त किये जाते है। अधिनियम में वर्णित प्रावधानों का उल्लंघन करने वाले दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही करने की शक्तियां इन अधिकारियों में विहित रहती है। इन अधिकारियों को अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन निर्धारित अपेक्षाओं के अनुसार करना चाहिए। इन शक्तियों, अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के समझने के लिए आबकारी अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का वर्णन यहां किया जा रहा है।

धारा 43. विनिर्माण और विक्रय के स्थान में प्रवेश करने और निरीक्षण करने की शक्ति-

आबकारी आयुक्त या कोई भी आबकारी अधिकारी, जो ऐसे पद से कम का न हो, जिसे राज्य सरकार विहित करें -

(क) किसी भी ऐसे स्थान में, जिसमें कोई भी अनुज्ञप्त विनिर्माता किसी आबकारी योग्य वस्तु का विनिर्माण या संग्रह करता है, दिन में या रत्रौ में किसी भी समय प्रवेश कर सकेगा और उसका निरीक्षण भी कर सकता है।

(ख) किसी भी स्थान में जिसमें कोई आबकारी योग्य वस्तु इस अधिनियम के अन्तर्गत अनुलप्ति के धारक किसी भी व्यक्ति द्वारा विक्रय के लिए रखी जाती है, विक्रय के लिए अनुज्ञात समय के दौरान किसी भी समय और अन्य किसी भी ऐसे समय में जिसके दौरान वह स्थान खुला हो, प्रवेश कर सकेगा और निरीक्षण भी कर सकता है।

(ग) उक्त स्थान पर पायी गई किसी भी बही, लेखे या रजिस्टर की परीक्षा कर सकेगा या किसी भी सामग्री भभको, बर्तनों औजारों, यंत्रों या बकारी योग्य वस्तु की परीक्षा, परख, तोल या माप कर सकेगा और

(घ) ऐसे किन्हीं भी मापो बाटों या परख करने के उपकरणों को अभिगृहीत कर सकेगा, जिनके झूठे होने का विश्वास किये जाने का कारण उसके पास हैं।

धारा 44. इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय अपराधों का अन्वेषण (इन्वेस्टीगशन) करने की शक्ति-

(1) आबकारी विभाग का अधिकारी, जो ऐसे पद से कम का नहीं हो, जिसे सरकार विहित करे, इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय किसी भी ऐसे अपराध का अन्वेषण कर सकेगा, जो उस क्षेत्र की सीमाओं के अन्दर किया गया है, जिसमें किसी उक्त अधिकारी की अधिकारिता है

(2) उक्त अधिकारी ऐसे अन्वेषण के संबंध में उन्हीं अधिकारों का उपयोग कर सकता है, जिनका किसी थाना का प्रभारी अधिकारी दण्ड प्रक्रिया के उपबंधो के अन्तर्गत संज्ञेय किसी मामले में प्रयोग कर सकता है और यदि उसे राज्य सरकार द्वारा विशेष रूप से सशक्त किया गया हो तो वह अधिकारी किसी भी अपराध से सम्बन्धित या अनुमानत: सम्बन्धित किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध आगे की कार्यवाहियां, कारणों को लेखबद्ध करके, रोक सकता है।

धारा 45 : गिरफ्तारी. अभिग्रहण और निरोध की शक्ति-

आबकारी, पुलिस, नमक, सीमा शुल्क, स्वापक (नारकोटिक) द्रव्य या भू-राजस्व विभाग का कोई अधिकारी, जो ऐसे पद से नीचे का नहीं है, जिसे, और ऐसे निकश्वनों के अधीन जिन्हें, राज्य सरकार विहित करें और इस निमित्त सम्यक् रूप से सशक्त कोई भी अन्य व्यक्ति, इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय किसी अपराध को करते हुए पाये गये किसी भी व्यक्ति को बिना वारण्ट के गिरफ्तार कर सकेगा और किसी ऐसी आबकारी योग्य या अन्य वस्तु को, जिसे इस अधिनियम के अन्तर्गत या आबकारी राजस्व से सम्बन्धित तत्समय प्रवृत्त किसी भी अन्य विधि के अन्तर्गत अधिहरणीय होने का विश्वास करने का कारण उसके पास है, अभिगहित कर सकेगा, और ऐसे किसी भी व्यक्ति को जिस पर और ऐसे किसी भी जलयान, बेडे गाड़ी, पशु संवेष्टन, पात्र या आवेष्टन को, जिसमें या जिस पर उक्त वस्तु के होने सन्देह करने का उसके पास युक्तियुक्त कारण हो, निरुद्ध कर सकता है या उसकी तलाशी ले सकता हैं।

धारा 46. तलाशी लेने या गिरफ्तार करने के लिए वारण्ट जारी करने की आबकारी आयुक्त या मजिस्ट्रेट की शक्ति

आबकारी आयुक्त या कोई मजिस्ट्रेट या इस निमित्त सम्यक् रूप से सशक्त कोई आबकारी अधिकारी जिसके पास ऐसा विश्वास करने का कारण हो कि इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई अपराध किया गया है, या किया जा रहा है या किये जाने की सम्भावना है -

(क) ऐसे किसी भी स्थान की तलाशी के लिए वारण्ट जारी कर सकता है, जिसमें, उसके पास ऐसा विश्वास करने का कारण होता कि ऐसी कोई आबकारी योग्य वस्तु या कोई बर्तन, औजार, यंत्र या सामग्री रखी गई है या छिपायी गयी है, जिसके बारे में या जिससे उक्त ऐसा अपराध किया गया है, या किया जा रहा है या किये जाने की सम्भावना है, और

(ख) ऐसे किसी भी व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए वारण्ट जारी कर सकता है, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि वह उक्त किसी अपराध को करने से सम्बन्धित हैं।

धारा 47. आबकारी अधिकारी की बिना वारण्ट की तलाशी लेने की शक्ति -

(1) जब किसी भी आबकारी विभाग के किसी अधिकारी के पास जो ऐसे पद से नीचे का नहीं है, जिसे राज्य सरकार विहित करे, यह विश्वास करने कारण हो कि किसी भी स्थान में इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय कोई अपराध किया गया है, या किया जा रहा है या किए जाने की सम्भावना है और यह कि अपराधी के निकल भागने या अपराध के साक्ष्य (एवीडेंस) को छिपाने का अवसर मिले, बिना तलाशी का वारण्ट अभिप्राप्त नहीं किया जा सकता, तो वह दिन में या रात्रि में, किसी भी समय, उस स्थान में प्रवेश कर सकता है और तलाशी ले सकता है लेकिन ऐसे स्थान में प्रवेश करने से पूर्व ऐसा अधिकारी यथा पूर्वोक्त विश्वास करने के अपने आधारों को अभिलिखित करेगा।

(2) यथापूर्वोक्त प्रत्येक आबकारी अधिकारी ऐसे स्थान में पायी गई ऐसी किसी भी चीज को, जिसके इस अधिनियम के अन्तर्गत अधिहरणीय होने का विश्वास करने का उसके पास कारण हो, अभिगृहीत कर सकता है और उक्त स्थान में पाये गये किसी भी व्यक्ति को, जिसके यथा पूर्वोका अपराध का अपराधी होने का विश्वास करने का उसके पास कारण हो, निरूद्ध कर सकता है और उसकी तलाशी ले सकता है, यदि वह उचित समझे तो उसे गिरफ्तार भी कर सकता है।

धारा 53 : लोक शान्ति के लिए दुकानें बन्द करने की शक्ति -

(1) जिला मजिस्ट्रेट अनुज्ञप्तिधारी से, लिखित नोटिस देकर, अपेक्षा कर सकता है कि ऐसी कोई भी दुकान, जिसमें आबकारी योग्य वस्तु या नारकोटिक ड्रग्स सब्सटेन्स का विक्रय किया जाता है, ऐसे समय या ऐसी समयावधि के लिए, जिसे वह लोक शांति के बनाए रखने के लिए आवश्यक समझे, बन्द रख सकेगा।

(2) यदि उक्त किसी दुकान के समीप कोई बल या विधि-विरूद्ध जमाव हो जाये या होने की आशंका हो तो भी किसी भी वर्ग का मजिस्ट्रेट या कोई भी पुलिस अधिकारी, जो कॉन्स्टेबल से ऊपर के किसी पद का हो, जो वहाँ उपस्थित हो, उक्त दुकान को ऐसी समयावधि के लिए रखने की अपेक्षा कर सकता है, जो वह आवश्यक समझता है।

17.2.5. अपराध एवं दण्ड

आबकारी अधिनियम के निर्धारित प्रावधानों, शर्तो एवं स्थितियों के उल्लंघन की स्थिति में दोषी व्यक्तियों के अधिनियम में वर्णित अपराधों को आरोपी माना जाता है तथा उसके खिलाफ निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही की जाकर उसे दण्डित किये जाने का प्रावधान किया गया है। आबकारी अपराधों एवं उनसे सम्बन्धित दण्ड प्रावधानों का वर्णन अधिनियम की धारा 54 से 70 तक किया गया है। महत्वपूर्ण धाराओं का मूल प्रस्तुतीकरण विद्यार्थियों की सुविधा के लिए यहां किया जा रहा है।

धारा 54. विधि-विरूद्ध आयात, निर्यात. परिवहन, विनिर्माण, कब्जें आदि के लिए दण्ड-

इस अधिनियम के या इसके अन्तर्गत बनाये गये किसी नियम या दिये गये किसी आदेश के या दी गई किसी अनुज्ञप्ति, अनुज्ञा-पत्र या पास के उल्लंघन में जो कोई -

(क) किसी भी आबकारी योग्य' वस्तु का आयात, निर्यात, परिवहन, विनिर्माण, संग्रह, विक्रय करता है या उसे अपने कब्जे में रखता है, या

(ख) हैम्प के किसी पौधे (कनोविस सतिवा) की खेती करता है, या

(ग) किसी आसवनी, घट-भभके या मद्य निर्माणशाला का निर्माण करता है या उसे चलाता है या

(घ) ताड़ी से भिन्न किसी आबकारी योग्य वस्तु के विनिर्माण के प्रयोजन के लिए कोई सामग्री बर्तन, औजार, यंत्र जो भी हो, उपयोग में लाता है, या रखता है या अपने कब्जे में रखता है, या

(ङ) (ड़) इस अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित या अनुज्ञाप्त किसी आसवानी घट-भभके, मद्य निर्माणशाला या भण्डागार से किसी भी आबकारी योग्य वस्तु को हटाया है, या

(च) शराब को विक्रय के प्रयोजनार्थ बोतलों में भरता है, या

(छ) किसी भी ताड़ी उत्पादक वृक्ष से ताड़ी चुआता या निकालता है,

वह ऐसी अवस्था के कारावास से, जो छह मास से कम की नही होगी किन्तु जो तीन वर्ष तक की हो सकेगी और बीस हजार रूपये या आबकारी शुल्क की हानि से पाँच गुने, जो भी अधिक हो, के जुर्माने से दण्डनीय होगी।

धारा 54 ख अपमिश्रण के परिणामस्वरूप मृत्यु इत्यादि के लिए शास्ति-

1. जो कोई भी किसी लिकर या मादक औषधि में कोई अपेयकर पदार्थ या ऐसा पदार्थ मिश्रित करता है या मिश्रित किया जाना अनुज्ञत करता है जिसमें किसी मानव को निःशक्तता या गम्भीर उपहति या मृत्यु होने की संभावना है वह, दोषसिद्धि पर-
   - (i) यदि ऐसे किसी कार्य के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो, ऐसी अवधि के कारावास से, जो दो वर्ष से कम की नही किन्तु जो आजीवन हो सकेगी और ऐसे जुर्माने से, जो एक लाख रूपये से कम का नही होगा किन्तु दस लाख रूपये तक का हो सकेगा,
   - (ii) यदि ऐसे किसी कार्य के परिणामस्वरूप किसी कोई निःशक्तता या गम्भीर उपहति होती है तो ऐसी अवधि के कारावास से, जो दो वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो आजीवन हो सकेगी और ऐसे जुर्माने से, जो पचास हजार रूपये से कम का नहीं होगा किन्तु जो पांच लाख रूपये तक का हो सकेगा और
   - (iii) अन्य किसी भी मामले में, ऐसी अवधि के कारावास से जो एक वर्ष से कम की नही होगी किन्तु जो दस वर्ष तक की हो सकेगी और ऐसे जुर्माने से, जो पचार हजार रूपये से कम का नहीं होगा किन्तु जो दो लाख पचास हजार रूपये तक हो सकेगा, दण्डनीय होगा।
2. जो कोई भी किसी भी मादक औषधि में किसी अपेयकर पदार्थ या किसी ऐसे पदार्थ के मिश्रण को निवारित करने में युक्तियुक्त पूर्वावधानी बरतने में लोप करता है जिससे किसी मानव को निःशक्तता या गम्भीर उपहति या मृत्यु होने की संभावना है वह, दोषसिद्धि पर -
   - (i) यदि ऐसे लोप के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो, ऐसी अवधि के कारावास से, जो दो वर्ष से कम की नही होगी किन्तु जो आजीवन हो सकेगी ऐसे जुर्माने से जो एक लाख से कम का नही होगा (किन्तु जो दस लाख रूपये तक हो सकेगा,

(ii) ऐसे लोप के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति को कोई निःशक्तता या गम्भीर उपहति होती है तो, ऐसी अवधि के कारावास से, जो दो वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो आजीवन हो सकेगी और ऐसी जुर्माने से, जो पचास हजार रूपये से कम का नहीं होगा किन्तु जो पांच लाख रूपये तक हो सकेगा, और

(iii) अन्य किसी भी मामले में, ऐसी अवधि के कारावास से, जो एक वर्ष से कम नही होगी किन्तु जो दस वर्ष तक की हो सकेगी और ऐसे जुर्माने से जो पचास हजार रूपये से कम का नही होगा किन्तु जो दो लाख पचास हजार रूपये तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा।

धारा 55 : व छ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों के हाथों विधि-विरूद्ध रूप से विक्रय करने या बालकों अथवा स्त्रियों को नियोजित करने के लिए दण्ड -

यदि कोई अनुज्ञप्ति विक्रेता या उसके नियोजन में का या उसकी और से कार्य करने वाला कोई व्यक्ति-

(क) धारा 22 के उल्लंघन में शराब या नारकोटिक ड्रग्स सब्सटेन्स का विक्रय या परिदान करता है, या

(ख) धारा 23 के उल्लंघन में, किसी व्यक्ति को अपने अनुज्ञप्त स्थान के किसी भाग में नियोजित करता है या नियोजित किये जाने की अनुज्ञा देता है, या

(ग) अनुज्ञप्त परिसर में विच्छृंखल आचरण की या जुआ खेलने की अनुज्ञा देता है।

(घ) किसी भी व्यक्ति को, जिसके बारे में वह जानता है या जिसके बारे में उसके पास ऐसा विश्वास करने का कारण है कि वह अजमानतीय अपराध के लिए सिद्ध-दोष हो चुका है या किसी भी जानी-मानी वेश्या के, चाहे किसी अपराध या वैश्यावृति के प्रयोजनों के लिए या अन्यथा अपने अनुज्ञापा परिसर में अक्सर घूमने-फिरने की अनुज्ञा देता है।

तब वह अन्य किसी ऐसे दण्ड के अतिरिक्त जिसके कि वह दायित्वाधीन हो, पाँच सौ रूपये तक के आर्थिक जुर्माने से दण्डनीय होगा।

धारा 56. विकृतिकृत स्पिरिट का मानव उपयोग के योग्य बनाने के लिए दण्ड-

जो कोई भी स्पिरिटयुक्त को (चाहे कहीं भी विनिर्मित हो) जिसे विकृत कर दिया गया है या किसी विकृतिकृत स्पिरिट युक्त निर्मित को मानव उपभोग के योग्य बनाता है या बनाने का प्रयत्न करता है या जिसके कब्जे में ऐसी कोई विकृतिकृत स्पिरिट या विकृतिकृत स्पिरिटयुक्त निर्मित, है जिसे मानव उपभोग के योग्य बना दिया गया है या जिसे इस प्रकार योग्य बनाने का कोई प्रयत्न किया गया है या जिसमें कोई परिवर्तन किया गया है, या जिसे इस प्रकार योग्य बनाने का प्रयत्न किया गया है या जिसमें कोई परिवर्तन किया गया है, वह ऐसे कारावास से, जो दो वर्ष से कम नही होगा, किन्तु जो पांच वर्ष तक का हो सकेगा और ऐसे जुर्माने से, जो दो लाख रूपये या अन्तर्वलित विकृतिकृत स्प्रिट या विकृतिकृत स्प्रिट युक्त निर्मित के प्रति बल्क लीटर के लिए पांच हजार रूपये, जो भी अधिक हो, दंडित किया जायेगा।

धारा 57: विधि-विरूद्ध आयातित किसी आबकारी योग्य वस्तु को कब्जे में रखने के लिए दण्ड-

जो कोई भी विधि-युका प्राधिकार के बिना किसी भी आबकारी योग्य वस्तु का किसी भी मात्रा में यह जानते हुए कि उसका विधिविरूद्ध आयात, निर्यात, परिवहन, विनिर्माण या उसकी खेती या संग्रह किया गया है, या यह जानते हुए कि उस पर विहित शुल्क संदत्त नही किया गया है अपने कब्जे में रखता है, उसे'तीन माह तक की समयावधि के कारावास से या'एक हजार रूपये' तक के आर्थिक जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जा सकेगा।

धारा 58 : अनुज्ञप्तिधारी या उसके सेवकों द्वारा किए गये कतिपय कार्यो के लिए दण्ड -

कोई इन अधिनियम के अन्तर्गत दी गई किसी अनुज्ञप्ति, अनुज्ञा-पत्र या पास का धारक होते हुए या उक्त धारक के नियोजन में होते हुए और उसकी ओर से कार्य करते हुए-

(क) किसी भी आबकारी अधिकारी द्वारा या माँग करने के लिए सम्यक् रूप से सशक्त अन्य किसी भी अधिकारी द्वारा माँग किये जाने पर उक्त अनुज्ञप्ति, अनुज्ञा-पत्र या पास के पेश करने में असफल रहता है, या

(ख) धारा 54 में अनुबन्धित किसी भी मामले में धारा 41 या 42 के अधीन बनाये: गये किसी भी नियम का जान-बूझकर उल्लंघन करता है, या

(ग) इस अधिनियम में अन्यथा अनुबन्धित अनुज्ञप्ति, अनुज्ञा-पत्र या पास की किन्हीं भी शर्तो को भंग करते हुए जान-बूझकर कोई ऐसा कार्य करता है या करने का लोप करता है।

वह उक्त प्रत्येक अपराध के लिए पांच हजार रूपये तक के आर्थिक दण्ड से दण्डित किया जायेगा।

धारा 60 : अपने कर्त्तव्य का पालने करने से मना करने वाले आबकारी अधिकारी के लिए दण्ड-

किसी भी ऐसे आबकारी अधिकारी को, जो बिना किसी विधियुक्ता कारण के तथा आबकारी आयुक्त की अभिव्यक्त: लिखित अनुला के बिना या अपने वरिष्ठ अधिकारी को दो माह का लिखित में नोटिस दिये बिना अपने पद के कर्त्तव्यों का पालन करना बंद कर देता है या करने से इन्कार करता है या अपने को निवर्तित करता है, वह तीन माह तक के कारावास से या पांच सौ रूपये तक के आर्थिक जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जा सकता है।

धारा 61. परेशान करने हेतु तलाशी आदि करने वाले आबकारी अधिकारी के लिए दण्ड-

यदि कोई आबकारी अधिकारी-

(क) सन्देह के युक्तियुक्त आधारों के बिना ही किसी स्थान में प्रवेश करता है, निरीक्षण करता है या तलाशी लेता है अथवा प्रवेश, निरीक्षण या तलाशी कराता है, तो

(ख) इस अधिनियम के अन्तर्गत अधिहरणीय किसी वस्तु के अभिग्रहण या उसकी तलाशी करने के बहाने किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को अनावश्यक रूप से और तंग करने हेतु अभिग्रहीत करता है, या

(ग) किसी व्यक्ति को तंग करने हेतु और अनावश्यक रूप से निरूद्ध करता है, उसकी तलाशी लेता है. या उसे गिरफ्तार करता है।

तो वह तीन माह तक की समयावधि के कारावास से पांच सौ रूपये तक के आर्थिक जुर्माने से, या दोनों से दण्डित किया जायेगा।

धारा 70 अपराधों का शमन करने की आबकारी अधिकारियों की शक्ति -

आबकारी आयुक्त या इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा विशेष रूप से सशक्त कोई भी अन्य आबकारी अधिकारी ऐसी शर्तो और निर्बन्धनों के अन्तर्गत, जो कि विहित किया जाये, ऐसे किसी भी व्यक्ति से, जिसकी अनुज्ञप्ति, अनुज्ञा-पत्र या पास इस अधिनियम के अन्तर्गत जो कि विहित किया जाये, ऐसे किसी भी व्यक्ति से, जिसकी अनुज्ञप्ति, अनुज्ञा-पत्र, या पास इस अधिनियम के अन्तर्गत रद्द या निलम्बित किये जाने के दायित्वाधीन है, या जिसके बारे में युक्तियुक्त रूप से संदेह किया गया हो कि उसने इस अधिनियम अन्तर्गत दण्डनीय कोई अपराध किया है, यथास्थिति ऐसे रद्दकारण निलम्बन के बदले में या ऐसे अपराध के जो किया गया हो, शमनार्थ'दस हजार रूपये, तक की धनराशि स्वीकार कर सकता है और समस्त मामलों में, चाहे वे कैसे भी हो, जिनमें किसी सम्पत्तित का उसे

इस अधिनियम के अन्तर्गत अधिहरण योग्य मानते हुए अभिगृहण कर लिया गया है, ऐसी समस्त सम्पत्ति को, अलावा आबकारी योग्य वस्तु के, ऐसे अधिकारी द्वारा प्राक्कलित उसके मूल्य का संदाय किए जाने पर, निर्मुक्त कर सकेगा और आबकारी योग्य वस्तु अधिगहीत कर सकेगा।

ऐसे अधिकारी को, ऐसी धनराशि का संदाय किए जाने पर अभियुक्त को, यदि वह अभिरक्षा में हो, उन्मुक्त कर दिया जाएगा, अभिगहीत सम्पत्ति निर्मुक्त कर दी जाएगी और ऐसे अपराध के बारे में ऐसे व्यक्ति या सम्पत्ति के विरूद्ध आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।

17.3 राजस्थान समाज-विरोधी क्रियाकलाप निवारण अधिनियम, 2006

17.3.1 विहंगावलोकन

असामाजिक तत्वों की अवैधानिक, गैरकानूनी एवं अवांछनीय गतिविधियों से समाज को राहत दिलवाने के लिए राजस्थान समाज-विरोधी क्रिया कलाप निवारण अधिनियम, राजस्थान प्रदेश में लागू किया गया है। इसमें कुल 18 धाराएँ है जिनका विहंगावलोकन निम्नांकित है :-

विषय सूची

1. संक्षिप्त नाम, प्रसार और प्रारम्भ
2. परिभाषाएँ
3. कतिपय व्यक्तियों को निरुद्ध करने के आदेश
4. निरोध आदेशों का निष्पादन
5. निरोध का स्थान और शर्तें विनियोजित करने की शक्ति
6. निरोध के आधारों का पृथक्करणीय होना
7. निरोध आदेशों का कतिपय आधारों पर अविधिमान्य या अप्रवर्तनीय न होना
8. फरार व्यक्तियों के बारे में शक्तियाँ
9. निरोध आदेश के आधारों का निरूद्ध व्यक्ति को प्रकट किया जाना
10. सलाहकार बोर्डो का गठन
11. सलाहकार बोर्ड को निर्देश
12. सलाहकार बोर्ड की प्रक्रिया
13. सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट पर कार्यवाही
14. निरोध की अधिकतम कालावधि
15. निरोध आदेशों का वापस लिया जाना
16. निरुद्ध व्यक्तियों का अस्थायी रूप से छोड़ा जाना
17. सद्भावपूर्वक की गई कार्यवाही के लिए संरक्षण
18. इस अधिनियम की परिधि के भीतर आने वाले विषयों का केवल इस अधिनियम के अधीन निपटाया जाना।

शराब के चोर बाजारों, खतरनाक व्यक्तियों, मादक द्रव्य, अपराधियों, अनैतिक-व्यापार अपराधियों और सम्पत्ति हथियाने वालों तथा लोक व्यवस्था बनाये रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले समाज-विरोधी और खतरनाक क्रियाकलापों का निवारण करने के लिए निवारक निरोध किये जाने हेतु उपबंध करने के लिए यह अधिनियम बनाया गया है।

17.3.2 परिचय एवं परिभाषा

राजस्थान समाज विरोधी क्रिया कलाप निवारण अधिनियम 2006 में पारित किया गया था और तभी से यह राजस्थान राज्य में लागू कर दिया गया था। यह अधिनियम सारे राज्य में लागू है। इस अधिनियम में निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिभाषाएं है -

धारा 2 (ख) शराब का चोरबाजारिया - से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो आभ्यासिक रूप से राजस्थान आबकारी अधिनिवम 1950(2 ऑफ 1950) और तद्धीन बनाये गये नियमों और किये गये आदेशों के या तत्समय प्रवृत्त किसी भी अन्य विधि के किसी भी उपबन्ध के उल्लंघन में किसी भी शराब, मादक औषधि या अन्य पदार्थ का आसवन, विनिर्माण, भण्डारण, परिवहन, आयात, निर्यात विक्रय या वितरण करता है या जानते हुए किसी भी अन्य व्यक्ति के द्वारा या जरिये ऊपर वर्णित किसी भी बात के किये जाणे को अग्रसर करने या समर्थन देने के लिए कोई भी धन खर्च या उपयोजित करता है या किसी भी पशु, यान, जल-यान या अन्य प्रवहन का या किसी भी आधान या किसी भी प्रकार की अन्य सामग्री का प्रदाय करता है, या किसी भी ऐसी बात के किये जाने का किसी भी अन्य रीति से दुष्प्रेरण करता है।

धारा 2 (ग) खतरनाक व्यक्ति - से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो या तो स्वयं या किसी गिरोह के सदस्य या मुखिया के रूप में, भारतीय दण्ड संहिता, 1960(53 ऑफ 1860) के अध्याय 16 या अध्याय 17 के अधीन दण्डनीय कोई भी अपराध या आयुध अधिनियम, 1959,(54 ऑफ 1959) के अध्याय 5 के अधीन दण्डनीय कोई भी अपराध या वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972(53 ऑफ 1972) की धारा 51 की उप-धारा (1) के प्रथम परन्तु और उप-धारा (क) के अधीन दण्डनीय कोई अपराध या सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000(21 ऑफ 2000) की धारा 67 के अधीन दण्डनीय कोई भी अपराध आभ्यासिक रूप से करता है; करने का प्रयत्न करता है या किये जाने का दुष्प्रेरण करता है।

धारा 2 (च) औषधि अपराधी से कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो आभ्यासिक रूप से-

(i) औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940(23 ऑफ 1940) (जिसे आगे इस परिभाषा में"औषधि अधिनियम" कहा गया है) की धारा 10 के उल्लंघन में कोई भी औषधि आयात करता है।

(ii) औषधि अधिनियम की धारा 18 के उल्लंघन में किसी भी औषधि का विक्रय का विक्रय के लिए विनिर्माण करता है, या विक्रय करता है या विक्रय के लिए स्टॉक करता है या प्रदर्शन करता है या वितरण करता है।

(iii) औषधि अधिनियम की धारा 33 के उल्लंघन में किसी भी आयुर्वेदिक, सिद्ध या यूनानी औषधि का विक्रय या वितरण के लिए विनिर्माण करता है या विक्रय करता है, या विक्रय के लिए स्टॉक करता है या प्रदर्शन करता है या प्रस्ताव करता है, या वितरण करता है।

(iv) स्वापक औषधि और मन: प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (61 ऑफ 1985) की धारा 8 के उल्लंघन में, किसी भी कोका पौधे, अफीम पोस्त या केनेबिस पौध से खेती करता है या कोई भी स्वापक औषधि या मन: प्रभावी पदार्थ उत्पन्न विनिर्मित करता है, रखता है विक्रीत, क्रीत, परिवहित करता है, भण्डारण में रखता है, अन्तर्राज्यिक तौर पर आयात, अन्तर्राल्लियक तौर पर निर्यात करता है, भारत में आयात, भारत से निर्यात करता है या स्थानान्तरण करता है।

धारा (ज़) अनैतिक व्यापार अपराधी - से कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1958(104 ऑफ 1956) के अधीन कोई भी अपराध आभ्यासिक रूप से करता है या उसका दुष्प्रेरण करता है।

धारा 2 (झ) सम्पत्ति हथियाने वाला - से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी जिला मुख्यालय की नगरीय सीमाओं के भीतर स्थित ऐसी किसी भी भूमि का कब्जा अवैध रूप से लेता है जो उसकी नहीं है किन्तु जो सरकार, स्थानीय प्राधिकारी या किसी भी अन्य व्यक्ति की है, या जो ऐसी भूमि के संबंध में अवैध अभिधृतियां या इजाजत और अनुज्ञप्ति करार या कोई भी अन्य करार करता है या सृजित करता है या जो विक्रय या भाड़े के लिए उस पर कोई भी संरचना संनिर्मित करता है या ऐसी भूमि का अवैध कब्जा लेने के लिए या उस पर किसी संरचना के संनिर्माण या उपयोग और अधिभोग के लिए किराये पर या इजाजत और अनुज्ञप्ति आधार पर देता है. या जो ऐसी भूमि का अवैध कब्जा लेने के लिए या उस पर किसी संरचना के सनिर्माण के लिए किसी भी व्यक्ति को जानते हुए वित्तीय सहायता देता है, या जो ऐसी भूमि के किन्ही भी अधिभोगियों से किराया, प्रतिहर या अन्य प्रकार आपराधिक अभित्रास द्वारा संग्रहित करता है या संगृहीत करने का प्रयत्न करता है या जो किन्हीं भी ऐसे अधिभोगियों को विधिपूर्ण प्रक्रिया का सहारा लिए बिना बलपूर्वक बेदखल करता है या बेदखल करने का प्रयत्न करता है, या जो ऊपर उल्लिखित बातों में से किसी के भी किये जाने का किसी भी रीति से दुष्प्रेरण करता है।

17.3.3 महत्वपूर्ण प्रावधान

अधिनियम की धारा तीन व्यक्तियों को निरुद्ध करने की राज्य सरकार की शक्ति एवं जिला मजिस्ट्रेट एवं अन्य प्राधिकृत अधिकारियों को उपलब्ध अधिकारों से संबंधित है। इस धारा के अनुसार यदि राज्य सरकार को यह समाधान हो जाएं कि लोक व्यवस्था बनाए रखने पर किसी व्यक्ति की उपस्थिति प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है तो राज्य सरकार उस व्यक्ति को निरुद्ध करने का आदेश दे सकती है। धारा चार निरोध आदेशों के क्रियान्वयन से संबंधित है तथा धारा 5 निरोध किये जाने वाले स्थान निरुद्ध किये जाने संबंधित अन्य शर्तो का वर्णन करती हैं। धारा 8 उन व्यक्तियों से संबंधित है जिन्हें निरुद्ध किये जाने के आदेश दिये गये है परन्तु ऐसे व्यक्ति फरार हो गये हैं। इस धारा के अनुसार ऐसे फरार व्यक्तियों को कुर्क किया जा रहा हैं।

सलाहकार बोर्ड

इस अधिनियम के प्रावधानों को कारगर रूप से लागू करने के लिए सलाहकार बोर्डों के गठन का प्रावधान अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत किया गया है। सलाहकार बोर्डों से संबंधित प्रावधानों का वर्णन धारा 11,12 व 13 में किया गया है। कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित है -

17.3.4 सलाहकार बोर्डों की प्रक्रिया

(1) सलाहकार बोर्ड, उसके समक्ष रखी गई सामग्री पर विचार करने के पश्चात् और राज्य सरकार से या राज्य सरकार के माध्यम से इस प्रयोजन के लिए बुलाये गये किसी व्यक्ति से या निरुद्ध व्यक्ति ऐसी और जानकारी की, जिसे वह आवश्यक समझे, अपेक्षा करने के पश्चात् और यदि, किसी मामले विशेष में सलाहकार बोर्ड ऐसा करना अत्यावश्यक समझे या निरुद्ध व्यक्ति सुने जाने की वांछी करे तो निरुद्ध व्यक्ति की व्यक्तिश: सुनवाई के पश्चात् अपनी रिपोर्ट निरुद्ध व्यक्ति के निरोध की दिनांक से 50 दिवस के भीतर-भीतर राज्य सरकार को प्रस्तुत करेगा।

(2) सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट में उसके एक पृथक भाग में सलाहकार बोर्ड की इस बारे में राय विनिर्दिष्ट होगी कि निरुद्ध व्यक्ति के निरोध के लिए पर्याप्त हेतुक है या नहीं।

(3) जब सलाहकार बोर्ड के सदस्यों के बीच मतभेद हो तो ऐसे व्यक्तियों की बहुमत की राय बोर्ड की राय समझी जायेगी।

(4) सलाहकार बोर्ड की कार्यवाहियां और उसकी रिपोर्ट, रिपोर्ट के उस भाग को छोडकर जिसमें सलाहकार बोर्ड की राय विनिर्दिष्ट की गई है, गोपनीय होगी।

(5) इस धारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके विरूद्ध निरोध आदेश किया गया है, सलाहकार बोर्ड को निर्देश से संसक्त किसी भी विषय में किसी विधि व्यवसायी के द्वारा उपस्थित होने का हकदार नही बनायेगी।

सलाहकार बोर्डों की रिपोर्ट पर कार्यवाही -

(1) किसी ऐसे मामले में, जिसमें सलाहकार बोर्ड ने यह रिपोर्ट की है कि उसकी राय में निरुद्ध व्यक्ति के निरोध का पर्याप्त हेतुक है, राज्य सरकार निरोध आदेश को पुष्ट कर सकेगी और निरुद्ध व्यक्ति के निरोध की धारा 14 विहित की गई अधिकतम कालावधि से अनधिक इतनी कालावधि तक जारी रख सकेगी जितनी वह उचित समझे।

(2) किसी ऐसे मामले में जिसमें सलाहकार बोर्ड ने यह रिपोर्ट की है कि उसकी राय में संबंधित व्यक्ति के निरोध का कोई पर्याप्त हेतुक नहीं है, राज्य सरकार निरोध आदेश को वापस ले लेगी और निरूद्ध व्यक्ति को तत्काल छुडवायेगी।

17.4 राजस्थान सार्वजनिक सूत (जुआ) अध्यादेश 1949

17.4.1 विहंगावलोकन

एक सामाजिक बुराई एवं व्यक्तिगत अवगुण के रूप में जुआ एक कुप्रथा के रूप में अनादि काल से अस्तित्व में है। इस बुराई की वजह से व्यक्ति, परिवार व समाज बर्बादी के कगार पर पहुंच सकते है। इस बुराई पर नियत्रंण के लिए राजस्थान सार्वजनिक सूत (जुआ) अध्यादेश 1949 अस्तित्व में है। इस अध्यादेश में कुल 19 धाराएँ थी परन्तु कुछ धाराएँ विलोपित कर दी गई है। इस अधिनियम की विषय-वस्तु निम्नांकित है :-

विषय - सूची

1. किसी घ्यूत-गृह का मालिक होने अथवा उसको चलाने या उसके जिम्मेदार होने के लिए दण्ड।
2. घ्यूत-गृह में पाये जाने पर दण्ड।
3. प्रवेश करने तथा पुलिस को प्रवेश करने तथा तलाशी लेने के लिए प्राधिकृत (Authorise) करने की शक्ति।
4. संदिग्ध गृह में ताश आदि का मिलना इस बात का सबूत होगा कि ऐसे गृह सामान्य घ्यूत-गृह है।
5. झूठा नाम तथा पते देने पर गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों पर दण्ड।
6. घ्यूत-गृह चलाने के लिए दोषसिद्धि पर सूत उपकरणों को नष्ट किया जाना।
7. दाव के लिए खोजने की साक्ष्य का जरूरी ना होना।
8. पकड़े गए किसी भी व्यक्ति से शपथ लेने तथा साक्ष्य देने की मजिस्ट्रेट अपेक्षा कर सकेगा।
9. साक्षियों की क्षतिपूर्ति।
10. अध्यादेश का कतिपय खेलों पर लागू न होना।
11. सार्वजनिक मार्गों में सूत तथा पक्षियों और जीव-जन्तुओं को लड़ाने की व्यवस्था करना, सार्वजनिक मार्गों में पाये गये सूत उपकरणों को नष्ट करना।

12. अपराध का विचारणीय होना।
13. धारा 4 के अधीन पश्चातवर्ती अपराध के लिए दण्ड।
14. इत्तिला देने वाले को जुर्माने के भाग का भुगतान किया जाना।
15. जुर्माने की वसूली तथा उपयोजना।
16. विलोपित।

राजस्थान राज्य में सार्वजनिक सूत (जुआ) क्रीडा तथा साधारण घ्यूत-गृह (जुआ खाना) चलाने के लिए दण्ड के प्रावधान करने के लिए यह अध्यादेश है। राजस्थान में सार्वजनिक सूत-क्रीडा तथा सामान्य घ्यूत-गृह चलाने के लिए दण्ड का प्रावधान करना समीचीन है। अत: राजप्रमुख महोदय इस अध्यादेश को बनाने तथा प्रसारित करते हैं।

17.4.2 परिचय एवं परिभाषा

इस अध्यादेश के स्वरूप एवं प्रकृति को समझने के लिए धारा दो में दी गई परिभाषाओं को समझना जरूरी है। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नांकित है -

धारा 2(1) ध्युत क्रीड़ा में पंदयम अथवा बाजी लगाना शामिल है, परन्तु इसके अन्तर्गत लाटरी नहीं आएगी।

धारा 2(2) घूत क्रीड़ा उपकरण में ऐसी कोई भी वस्तु शामिल है जो सूत क्रीड़ा करने अथवा उसके साधन अथवा अनुलग्न के रूप में सूत क्रीड़ा करने अथवा उसे सहज बनाने के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाई जाती हो, तथा उसमें ऐसा कागजात भी आयेगा जो घ्यूत-क्रीड़ा के रजिस्टर अथवा रिकार्ड या साक्ष्य की तरह उपयोग में लाया जाता हो।

धारा 2(3) सामान्य लूत गृह से निम्नलिखित आशयित है -

(i) ध्युत होने की दशा में

(क) कपास, अफीम अथवा अन्य वस्तु को बाजारी कीमत पर अथवा ऐसी कीमत को बताने हेतु उपयोग में लाए गए अंको या अकिड़ो पर, अथवा

(ख) (ख)ऐसी किसी भी वस्तु की बाजारी कीमत में बदलाव की राशि पर अथवा ऐसे बदलाव की रकम को बताने हेतु उपयोग में लाए गये संख्याओं पर, अथवा

(ग) (ग)किसी भी स्टाफ अथवा शेयरों की बाजारी कीमत पर अथवा ऐसी कीमत को बताने हेतु उपयोग में लाये गये अंको या आकड़ों पर, अथवा

(घ) जार अथवा अन्य पात्रों के अन्दर से हाथ से निकाले गए कागज अथवा गांठो के अंको पर, अथवा।

(ङ) (ड़) वारिश अथवा अन्य प्राकृतिक घटना के होने अथवा ना होने पर, अथवा,

(च) वर्षा के परिणाम अथवा ऐसे परिणाम को बताने हेतु उपयोग में लाये गये अंको या आकड़ों पर अथवा ऐसे परिणाम के विस्तार को बताने. वाले अन्य किसी संकेत या प्रतीक पर, अथवा

(छ) किसी अन्य प्राकृतिक घटना के घटित होने के विस्तार पर ऐसा को घर, कमर, तम्बू अहाता, जगह, यान, जलयान, अथवा किसी भी प्रकार की ऐसी कोई जगह जिसमें ऐसा सूत होता है अथवा जिसमें सूत के लिए उपकरण रखे जाते है अथवा उपयोग में लाये जाते है तथा;

(ii) ध्युत के किसी भी अन्य रूप की स्थिति में, ऐसा कोई गृह तम्बू अहाता, जगह, यान, जलयान, अथवा किसी भी प्रकार की ऐसी कोई जगह जिसमें सूत के उपकरण रखे जाते है या ऐसी किसी भी उपकरण का स्वामित्व रखने वाले, अधिभोग करने वाले, उपयोग में लाये जाते हो या रखने

वाले व्यक्ति के लाभ अथवा अभिलाभ के लिए उक्त उपकरण रखे जाते हो अथवा उपयोग में लाए जाते हो, अथवा ऐसा घर कमरा, तम्बू अहाता, उपकरण रखे जाते हो अथवा उपयोग में लाये जाते हो, अथवा ऐसा घर, कमरा, तम्बू अहाता, जगह, वाहन, जलयान अथवा स्थान चाहे उसका उपयोग प्रभार के रूप में अथवा अन्य किसी भी तरह से हो।

17.4.3 महत्वपूर्ण प्रावधान

धारा दो, धारा तीन, चार व 13 इस अध्यादेश की महत्वपूर्ण प्रावधान है। इन धाराओं के अलावा जुआ घर में प्रवेश व तलाशी (धारा पाँच), जुआधर की पहचान (धारा छः), जुआ उपकरणों का नष्ट किया जाना (धारा आठ), अपराधों की विवेचना धारा 14 व पूर्व में किये गये अपराधों के आधार पर दुगना दण्ड दिये जाने के प्रावधान भी इस अध्यादेश के महत्वपूर्ण प्रावधान है।

17.4.4 अपराध एवं दण्ड

इस अध्यादेश की धाराएँ तीन, चार व तेरह अपराधों के स्वरूपों, प्रकृति एवं प्रकार से सम्बन्धित होकर, उन अपराधों के लिए दिए जाने के दण्ड का वर्णन करती है, जो निम्नानुसार है -

अधिनियम की धारा तीन के अनुसार सामान्य घ्यूतगृह के रूप में उपयोजन, खोलना, रखना या उपयोग में लाना तथा ऐसी किसी गृह कमरे, तम्बू, अहाता, जगह, वाहन, जलयान, अथवा स्थान का कोई भी स्वामी या अधिभोगी जानते हुए और जानबूझकर यथा पूर्वोक्त उस सामान्य घ्यूत-गृह के रूप में खोलने, अधिभोग में लाने, उपयोग करने अथवा रखने की अनुमति देता है, और जो भी कोई किसी घर, कमरे, तम्बू अहाता जगह, वाहन, जलयान अथवा स्थान का प्रबन्ध करता है या उपयोग किया हैं या रखा है, और जो भी कोई ऐसे गृह कमरे, तम्बू अहाते. स्थान, वाहन, जलयान, या स्थान, वाहन, जलयान, या स्थान में कई-बार आने वाले लोगों के साथ सूत क प्रयोजनार्थ अग्रिम धन देता है अथवा पैसा देता है, उस व्यक्ति को निम्न प्रकार दण्डित जायेगा-

(क) प्रथम अपराध के लिए ऐसा कारावास से जो छः महीने तक का हो सकेगा अथवा जुर्माने से जो पांच सौ रूपये तक का हो सकेगा अथवा दोनो तरह से

(ख) दोबारा अपराध के लिए ऐसे कारावास से जो, एक साल तक का हो सकेगा तथा न्यायालय के निर्णय में वर्णित किए जाने वाले प्रतिकूल विशेष कारणों के अभाव में ऐसे जुर्माने सहित अथवा रहित जो एक हजार रूपये तक का हो सकेगा, एक माह से कम का नही होगा तथा

(ग) तीसरी बार अथवा बाद के अपराध के लिए ऐसे कारावास से जो एक साल तक का हो सकेगा तथा जो न्यायालय के निर्णय में वर्णित किए जाने वाले प्रतिकूल विशेष कारणों के अभाव में ऐसे जुर्माने सहित जो दो हजार रूपये तक का हो सकेगा, छः महीने से कम का नहीं होगा।

17.5 राजस्थान गुण्डा नियंत्रण अधिनियम, 1975

17.5.1 विहंगावलोकन

राजस्थान गुण्डा नियन्त्रण अधिनियम 1975 में कुल 16 धाराएँ है। इस अधिनियम की विषयसूची के यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

विषय-सूची

1. संक्षिप्त नाम एवं प्रारम्भ
2. परिभाषाएं

3. गुण्डों का निष्कासन आदि
4. अस्थायी रूप से लौटाने की अनुमति
5. आदेश की अवधि को बढ़ाना
6. अपील
7. कतिपय प्रयोजनों के लिए मुचलका
8. साक्ष्य का स्वरूप
9. आदेश को विखण्डित करना
10. धारा 3 से 8 के अधीन उपर्यध के लिए
11. आदेश के उल्लंघन में पुन: प्रवेश करके निष्कासित गुण्डों को बलपूर्वक हटाना
12. अपराधों का संज्ञान
13. आदेशों के बारे में व्यावृत्ति
14. अधिनियम के अधीन की गई कार्यवाही
15. नियम बनान की शक्ति
16. विखण्डन एवं व्यावृत्ति

लोक व्यवस्था बनाये रखने के दृष्टिकोण से गुण्डों पर नियन्त्रण करने एवं उन्हे दबाने के लिए विशेष प्रावधान करने हेतु निर्मित अधिनियम जो सारे राजस्थान में लागू है तथा 26 मार्च 1975 से प्रचलन में है।

परिचय एवं परिभाषा

इस अधिनियम की धारा दो में महत्वपूर्ण परिभाषाओं को दर्शाया गया है। इस अधिनियम को समझने के लिए गुण्डा शब्द को समझना जरूरी है। अधिनियम की धारा 2(ख) में गुण्डा' शब्द को परिभाषित किया गया है जो निम्नलिखित है:

गुण्डा से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जो -

(i) यो तो स्वयं या किसी गेंग के सदस्य या नेता के रूप में भारतीय दण्ड संहिता 1860 (सन् 1860 का अध्याय संख्या 45) के अध्याय xvi या अध्याय xvii अध्याय xxii के अधीन या भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारायें 290 से 294 तक के अधीन दण्डनीय अपराधों को आदतन करता है या करने का प्रयत्न है या उन्हे करने के लिए दुष्प्रेरित करता है या

(ii) महिलाओं एवं कन्याओं में अनैतिक आचरण का दमन अधिनियम 1956(1956 का अधिनियम संख्या 104) के अधीन दोष सिद्ध हो गया है, या

(iii) राजस्थान आबकारी अधिनियम 1950(1950 का राजस्थान अधिनियम संख्या 11) के अधीन कम से कम दो बार दोष सिद्ध हो गया है, या

(iv) एन॰डी.पी.एस. एक्ट के अधीन कम से कम दो बार दोषसिद्ध हो गया है, या

(v) राजस्थान लोक सूत अध्यादेश, 1949 (सन् 1949 का राजस्थान अध्यादेश सं. 48) के अधीन कम से कम दो बार दोष सिद्ध हो गया है, या

(vi) महिलाओं या कन्याओं के प्रति आदतन अभद्र टिप्पणी करता हुआ या उन्हें तंग करता हुआ पाया गया है, या

(vii) हिंसा के कृत्य द्वारा या बल प्रदर्शन द्वारा कानून का पालने करने वाले लोगों का धमकी देने का अभ्यास्त पाया गया है, या

(viii) दंगा (Affray) या शांति भंग, बलुआ (Riot) करने का आदी है बलपूर्वक चन्दा एकत्रित करने या स्वयं के लिए या अन्यों के लिए गैर कानूनी आर्थिक लाभ हेतु लोगों को डराने का अभ्यास्त है या जो व्यक्तियों या सम्पत्तियों को चेतावनी देवे, खतरा पैदा करने या नुकसान करने का अभ्यस्त है।

17.5.3 महत्वपूर्ण प्रावधान

इस अधिनियम के महत्वपूर्ण प्रावधानों में गुण्डों का निष्कासन, निष्कासन अवधि में रियायत, निष्कासन अवधि को बढ़ाना एवं निष्कासन आदेशों को लागू करना व अपील की व्यवस्थाओं को महत्वपूर्ण माना जाता है, जिनका अधिनियम की धारा तीन, चार, पांच व छः में किया गया है। ये महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नानुसार है।

गुण्डों का निष्कासन आदि (1) जहाँ जिला दण्डनायक को यह प्रतीत हो कि -

(क) कोई व्यक्ति गुण्डा है, एवं

(ख) (i) जिले या उसके किसी भाग में उसकी गतिविधियों या कृत्य किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को चेतावनी देने, खतरा पैदा कराने या नुकसान कराने वाली है या कराने के लिए संगणित की जाती है, या

(ii) विश्वास करने के लिए ऐसे उचित कारण है कि धारा 2 के खण्ड (ख) के उपखण्ड (i) से (iv) में विनिर्दिष्ट किसी अपराध या कृत्य के करने या उसके लिए दुष्प्रेरित करने में, जिले या उसके किसी भाग में, लगा हुआ या लगने वाला है एवं

(iii) साक्षी लोग अपने शरीर या सम्पत्ति की सुरक्षा के सम्बन्ध में उनकी ओर से अंश का होने के कारण उसके विरूद्ध साक्ष्य देने के लिए आगे आने के इच्छुक नहीं है।

जिला दण्डनायक उपर्युक्त खण्ड (क), (ख) एवं (ग) के संबंध में उसके विरूद्ध महत्वपूर्ण आरोपों की सामान्य प्रकृति के बारे में उसे लिखित में एक नोटिस द्वारा सूचना देगा तथा उनके सम्बन्ध में अपना स्पष्टीकरण देने हेतु उसे एक उचित अवसर देगा।

1. जिस किसी व्यक्ति के विरूद्ध इस धारा के अधीन कोई आदेश दिया जाना है, उसे अपनी इच्छा के अनुसार किसी वकील से परामर्श कर अपना बचाव कराने का अधिकार होगा तथा यदि वह ऐसा चाहता तो स्वयं की परीक्षा कराने या किसी अन्य साक्षी की परीक्षा कराने अथवा कोई ऐसा सुसंगत दस्तावेज, जिस वह अपने स्पष्टीकरण की पुष्टि हेतु प्रस्तुत करना चाहे, प्रस्तुत करने का उचित अवसर देगा, जबकि ऐसे कारणों से उन्हें लिखित में लेखबद्ध किया जाएगा, जिला दण्डनायक की यह राय नहीं कि वह निवेदन तंग करने या विलम्ब करने के लिए किया गया है।
2. हर जिला दण्डनायक इससे सन्तुष्ट होने पर कि उपधारा (1) के खण्ड (क) (ख) एवं स्थितियों में विनिर्दिष्ट विद्यमान है जब तक कि ऐसी अवधि, जो छह माह से अधिक नहीं होगी तथा जिसका आदेश में उल्लेख किया जाएगा, समाप्त न हो जाएं, लिखित में आदेश द्वारा -

   (क) उस जिले या जिले के किसी भाग से बाहर आदेश में विनिर्दिष्ट मार्ग द्वारा, यदि कोई हो एवं उसमें उल्लेखित समय के भीतर तक लाने के लिए निर्देश देता तथा या उसे वह भी निदेश देगा कि जब तक उसके निष्कासन से आदेश से विनिर्दिष्ट अवधि, जो छह माह से अधिक नही होगी, समाप्त नहीं हो जाये वह उसे जिले में या जिले के विनिर्दिष्ट अवधि, भाग में, जैसी भी स्थिति हो, प्रवेश करने से स्वयं को रोकेगा।

(ख) (I) वह ऐसे तरीके से, ऐसे समय पर तथा ऐसे प्राधिकारी या व्यक्ति को, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाएं अपनी गतिविधियों के बारे में सूचना देने या स्वयं को उपस्थित करने या दोनों के लिए उस व्यक्ति को कहेगा।

(ii) किसी भी ऐसी वस्तु का जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, अपने द्वारा कब्जा लेने या उसका उपयोग करने से उसे मना करेगा या उस पर प्रतिबंध लगाएगा।

(iii) ऐसे तरीके से जो आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए, अन्यथा प्रकार से स्वयं का आचरण करने के लिए उससे कहेगा।

4. **अस्थायी रूप से लौटने की अनुमति** - जिला दण्डनायक किसी भी ऐसे व्यदित्त को जिसके संबंध में धारा 3 की उपधारा (3) के खण्ड (क) के अधीन आदेश जारी किया गया है अस्थायी अवधि के लिए उसे क्षेत्र में प्रवेश करने की अनुमति ऐसी शर्तो पर देगा जिन्हें वह विनिर्दिष्ट कहेगा तथा जिला दण्डनायक ऐसी किसी भी अनुमति को किसी भी समय वापस ले सकेगा।

5. **आदेश की अवधि को बढ़ाना** - जिला दण्डनायक सिवाय उन मामलों के जहाँ किन्ही कारणों से जिन्हे लिखित में लिखा जाएगा, इससे सन्तुष्ट हो कि ऐसा करना अतिव्यावहारिक है संबंधित व्यक्ति को उस संबंध में अपना अभ्यावेदन देने का अवसर देगा तथा सामान्य जन हित में समयःसमय पर धारा 3 के अधीन आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि को बढ़ायेगा, लेकिन इस प्रकार से बढ़ायी गई अवधि किसी भी दशा में कूल मिलाकर दो वर्ष से अधिक की नहीं होगी।

6. **अपील** -

(1) धारा 3, 4 या 5 के अन्तर्गत जारी किये गए आदेश से असन्तुष्ट कोई भी व्यक्ति उस आदेश की तारीख से पन्द्रह दिनों के भीतर संभागीय आयुक्त को अपील कर सकेगा।

(2) अपीलार्थी या उसके वकील किसी भी ऐसे अभिलेख का जिसे धारा 3 के अधीन की गई जाँच में, यदि कोई हो, उसको नही बतलाया गया हो, निरीक्षण करने या उसके बारे में कोई सूचना प्राप्त करने के लिए अधिकृत नही होगा।

(3) अधिकरण आयुक्त या तो आदेश को संशोधनों के साथ या बिना किसी संशोधन के पास करेगा या उसे निरस्त करेगा एवं अपील का निपटारा होने तक, आदेश के प्रवर्तन को ऐसी शर्तो यदि कोई हो, के अधीन स्थगित करेगा जिन्हें वह उपयुका समझे।

17.5.4 अपराध एवं दण्ड

अधिनियम की धारा दस, ग्यारह एवं बारह दण्डात्मक एवं प्रक्रियात्मक पक्षों का वर्णन करती है। इन धाराओं को मूल स्वरूप में यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. **धारा 3 से छ के अधीन आदेशों के उल्लंघन के लिए दण्ड** - जो कोई भी धारा 3 धारा 4 धारा 5 या धारा 6 के अधीन दिये गये किसी आदेश का उल्लंघन करेगा उसे ऐसी अवधि के कठोर कारावास से दण्डित किया जाएगा जिसकी अवधि तीन वर्ष की हो सकेगी छः माह से कम की नही होगी, एवं - उस पर जुर्माना (फाइन) भी किया जा सकेगा।

2. **आदेश के उल्लंघन में पुन**: प्रवेश करने वाले निष्कासित गुड्डों को बलपूर्वक हटाना-

(अ) जहाँ, धारा 3, धारा 4, धारा 5 या धारा 8 के अधीन किसी व्यक्ति के विरूद्ध आदेश किया जाता है और वह व्यक्ति-

(क) आदेश में दिए गए निर्देशों के अनुसार उस जिले या उसके किसी भाग से स्वयं को नहीं हटाता है, या नहीं

(ख) उस क्षेत्र में पुन: प्रवेश करता है जहाँ से उसे उसे आदेश के प्रवर्तक की अवधि में स्वयं को हटाने के आदेश दिया गया था, तो जिला दण्डनायक उसे गिरफ्तार करवाएगा एवं पुलिस की कस्टडी में उसे उसे क्षेत्र से बाहर ऐसे स्थान पर ले जाया जाएगा जिसे वह उस आदेश में विनिर्दिष्ट करेगा।

(ब) थाने का प्रभारी अधिकारी किसी भी ऐसे व्यक्ति को जिसके बारे में उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी कृत्य या लोप करने का उचित संदेह हो, वारण्ट के गिरफ्तार करेगा तथा इस प्रकार से गिरफ्तार किए गये व्यक्ति को निकटतम अधिशाषी दण्डनायक के पास भेजेगा। अधिशाषी दण्डनायक उसे अपने जिला दण्डनायक के पास भेजेगा। जिला दण्डनायक इस पर उस व्यक्ति को पुलिस कस्टडी में, उस आदेश में विनिर्दिष्ट क्षेत्र से बाहर ऐसे स्थान पर पहुंचाएगा जिसके लिए वह निर्देश देगा।

17.6 दहेज प्रतिषेध अधिनियम. 1981 एवं नियम 2004

17.6.1 विहंगावलोकन

दहेज की कुप्रथा ने पवित्र वैवाहिक संस्कार को प्रदूषित कर दिया है। इस कुप्रथा पर नियंत्रण के लिए प्रभावी कानून लागू करने की आवश्यकता के मद्दे-नजर, दहेज प्रतिबंध अधिनियम में कुल 10 धाराएँ है। इसकी विषय - सूची का विहंगावलोकन निम्नानुसार है :-

विषय सूची

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ
2. परिभाषाएं
3. दहेज देने या दहेज लेने के लिए शास्ति
4. (क) विज्ञापन पर प्रतिबन्ध
5. दहेज देने या लेने के लिए करार का शून्य होना
6. दहेज का पत्नी या उसके वारिसों के फायदे के लिए होना
7. अपराधों का संज्ञान
8. कतिपय प्रयोजनों के लिए अपराधी का संज्ञेय होना और जमानतीय तथा राजीनामा अयोग्य होना
   (क) दहेज देने या लेने का दुष्प्रेरण
   (ख) दहेज प्रतिषेध अधिकारी
9. नियम बनाने की शक्ति
10. निरसत एवं व्यावृत्ति
    (क) राज्य सरकार द्वारा नियम बनाने की शक्ति

भारत गणराज्य के बारहवें वर्ष संसद द्वारा यह अधिनियम अधिनियमित किया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य दहेज लेने व देने को प्रतिषेध करना है इस अधिनियम का नाम दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 है। इसका विस्तार जम्मु व कश्मीर को छोडकर सम्पूर्ण भारत में है।

17.6.2 परिचय एवं परिभाषा -

इस अधिनियम के सभी प्रावधानों को समझने के लिए दहेज की अवधारणा व परिभाषा को समझना जरूरी है। इस अधिनियम की धारा दो के द्वारा दहेज को परिभाषित किया गया है। यह परिभाषा निम्नांकित है।

इस अधिनियम में' दहेज से कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात्

(क) विवाह के एक पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे पक्षकार को, या

(ख) विवाह के किसी भी पक्षकार के माता पिता या किसी अन्य व्यक्तियों द्वारा विवाह के किसी भी पक्षकार को या किसी अन्य व्यक्ति (कथित पक्षकारों के विवाह के सम्बन्ध में) (विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात् किसी भी समय या तो प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: दी गई है किन्तु उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में जिन्हें मुस्लिम स्वीय विधि (शरीयत) लागू होती है दहेज या मेहर इसके अन्तर्गत नहीं है।

17.6.3 महत्वपूर्ण प्रावधान

धारा तीन, चार (क), पांच, छः, सात, आठ, आठ (क), आठ (ख) इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान है। धारा पांच के अनुसार दहेज लेने व देने की स्थिति में विवाह का करार शून्य माना जाएगा। धारा सात अपराधों के सहारा लेने से सम्बन्धित है तथा धारा अपराधों के संज्ञेय होने व जमानतीय एवं राजीनामा योग्य नहीं होने से सम्बन्धित है। धारा आठ (ख) दहेज प्रतिषेध अधिकारी की नियुक्ति व कार्यो से सम्बन्धित है, जो निम्नानुसार है।

(1) राज्य सरकार जितना आवश्यक समझे प्रतिषेध अधिकारी नियुक्त कर सकती है और क्षेत्र विनिर्दिष्ट कर सकती है जिसमें वे इस अधिनियम के अधीन उनकी अधिकारिता और शक्तियों का प्रयोग करेंगे।

(2) प्रत्येक दहेज प्रतिषेध अधिकारी निम्नांकित शक्तियों और कृत्यों का निर्वहन करेंगे -

(क) यह देखना कि इस अधिनियम के प्रावधानों का पालन हो रहा है।

(ख) दहेज के माँग करने या लेने या देने का दुष्प्रेरण करने का, जहाँ तक हो सके, निवारण करना।

(ग) इस अधिनियम के अधीन अपराध कारित करने वाले व्यक्तियों के अभियोजन के लिए आवश्यक साक्ष्य एकत्रित करना।

(घ) ऐसी अतिरिक्त कृत्यों का, जैसा राज्य सरकार द्वारा सौंपे जाए अथवा इस अधिनियम के अधीन निर्मित नियमों से विनिर्दिष्ट किए जाएं।

(3) राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना जारी करके प्रतिषेध अधिकारी के पुलिस अधिकारी की ऐसी शक्तियों जैसा कि अधिसूचना में जारी किया जाये प्रदान कर सकेगी जो ऐसी शक्तियों का, ऐसी सीमाओं और शर्तो के प्रयोग करेगा, जैसा कि इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट की जाये।

(4) राज्य सरकार दहेज प्रतिषेध अधिकारियों को इस अधिनियम के अधीन उनके कृत्यों के प्रभावशाली सम्पादन में सलाह देने और सहायता देने के प्रयोजन से उस क्षेत्र में, जिसमें कि ऐसा अधिकारी उपधारा (1) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करता है, पांच से अनधिक समाज कल्याण कार्य कर्त्ताओं जिनमें कम से कम दो महिलाएं होगी, सलाहकार बोर्ड की नियुक्ति करेगी।

17.6.4 अपराध एवं दण्ड

इस अधिनियम की धारा तीन, चार, चार (क), व छ: इस अधिनियम के अपराधों एवं उनके दण्ड से सम्बन्धित है जो निम्नानुसार है

दहेज देने या लेने के लिए शास्ति -

धारा 3(1) यदि कोई व्यक्ति, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात दहेज या लेगा अथवा दहेज देना या लेना दुष्प्रेरित करेगा, तो वह कारावास से (ऐसी अवधि के कारावास से 5 वर्ष का होगा और) अर्थदण्ड से जो पंद्रह हजार रूपये तक हो सकता या ऐसे दहेज के मूल की राशि जो भी अधिक हो, दण्डित करने योग्य होगा -

परन्तु शर्त यह है कि न्यायालय, निर्णय में अभिलिखित किये जाने वाले उपयुका और विशेष कारणों से पांच माह से कम अवधि के कारावास का दण्ड अधि रोपित कर सकती है।

(2) उपधारा (1) में की कोई भी बात -

(क) वधु को विवाह के समय दिये गये उपहारें को (इस सम्बन्ध में बिना किसी प्रकार की माँग किए) परन्तु शर्त यह है कि इस अधिनियम के अन्तर्गत बने नियमों के अनुसार रखी गई सूची में उपहारों की प्रविष्टि कर दी गई है।

(ख) वर को विवाह के समय दिये गये उपहारों को (इस सम्बन्ध में बिना किसी प्रकार की माँग किए) परन्तु शर्त यह है कि इस अधिनियम के अन्तर्गत बने नियमों के अनुसार रखी गई सूची में उपहारों की प्रविष्टि कर दी गई है।

परन्तु आगे यह और जहाँ ऐसे उपहार वधू के द्वारा या वधू की ओर से या वधू से सम्बन्धित किसी व्यक्ति के द्वारा दिये जाते है ऐसे उपहार रूढ़िगत प्रकार के हैं और उनका मूल्य जिस व्यक्ति के द्वारा जिसकी ओर से ऐसे उपहार दिये गये हैं उनकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए अत्यधिक नहीं है।

धारा 4: दहेज माँग करने पर शास्ति -

यथास्थिति, वधु या वर के माता-पिता या अन्य रिश्तेदार संरक्षक से यदि कोई व्यक्ति परोक्ष या अपरोक्ष रूप से कोई दहेज की माँग करता है तो वह ऐसे कारावास से ऐसी अवधि से जो 6 माह से कम की नहीं होगी, परन्तु जो दो वर्ष तक हो सकेगी और अर्थदण्ड से जो दस हजार रूपये तक हो सकेगा, दण्डनीय होगा-

परन्तु शर्त यह है कि, न्यायालय निर्णय में अभिलिखित किए जाने वाले उपयुका और विशेष कारणों छः माह से कम अवधि के लिए कारावास का दण्ड अधिरोपित कर सकती है।

धारा 4क. विज्ञापन पर प्रतिबन्ध :

यदि कोई व्यक्ति किसी नियम कालिक समाचार पत्र, या किसी अन्य माध्यम से।

(क) किसी विज्ञापन द्वारा अपने पुत्र या पुत्री या अन्य रिश्तेदार के विवाह के प्रतिफल के रूप में कोई राशि किसी व्यवस्था के अंश या अपनी संपत्ति के किसी अंश या राशि अथवा दोनों देने की प्रस्थापना करता है

(ख) उप खण्ड (क) में निर्दिष्ट कोई विड़ग़पन प्रकाशित, प्रस्तारित या मुद्रित करता है, वह ऐसे कारावास से जिसकी अवधि छः माह से कम नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकती है या जुमाने से जो 15000/- रूपये तक का हो सकेगा दण्डनीय किया जाएगा।

परन्तु न्यायालय निर्णय में यथोचित और विशेष कारणों को अभिलिखित करते हुए छः माह से कम की अवधि के कारावास का दण्ड अधिरोपित कर सकता है।

इस अधिनियम के अधीन बिना राज्य शासक या जिलाधीश की स्वीकृति के बिना कोई अपराध का संज्ञान लिया जा सकता था। अब धारा 4 पूर्णतया प्रतिस्थापित की गई है।

धारा 5: दहेज देने या लेने के लिए करार का शून्य होना -

दहेज देने या लेने के लिए करार का शून्य होगा।

धारा 8: दहेज का पत्नी या उसके वारिसों के फायदे के लिए होना -

(1) जहाँ कोई दहेज ऐसी स्त्री से भिन्न, उसके विवाह के सम्बन्ध में वह दिया गया है, किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है, वहाँ वह व्यक्ति उस दहेज को -

(क) यदि वह दहेज विवाह से पूर्व प्राप्त किया गया था तो विवाह की तारीख के पश्चात (3 माह) के भीतर, या

(ख) यदि वह दहेज विवाह के समय या उसके पश्चात प्राप्त किया गया था तो उसकी प्राप्ति की तारीख के पश्चात (3 माह) के भीतर, या

(ग) यदि वह उस समय जब स्त्री अव्यस्क थी तब प्राप्त किया गया था तो उसके अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात एक वर्ष के भीतर, स्त्री को अंतरिक कर देगा और ऐसे अन्तरण तक उसे न्याय के रूप में स्त्री के फायदे के लिए धारण करेगा।

यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) में अपेक्षित अनुसार किसी सम्पत्ति को उसमें विनिर्दिष्ट समयवधि के भीतर (या उपधारा (3) द्वारा अपेक्षित) हस्तान्तरित करने में असफल रहता है तो वह ऐसे कारावास से जो छः माह से कम की नहीं होगी किन्तु जो दस हजार रूपये तक हो सकेगा, या दोनों से दण्डित होगा।

इसी क्रम में राजस्थान दहेज प्रतिषेध नियम 2004 के अन्तर्गत धारा पांच व छः में भी दहेज प्रतिषेध अधिनियम व मुख्य दहेज प्रतिषेध अधिकारियों के कर्त्तव्य व दायित्वों का वर्णन किया गया है जो निम्नानुसार है:-

17.8.5 राजस्थान दहेज प्रतिषेध नियम 2004

दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 के प्रभावी व सुगम क्रियान्वयन के लिए राजस्थान दहेज प्रतिषेध नियम 2004 का निर्माण किया गया है। राजस्थान दहेज प्रतिषेध नियम 2004 की विषय सूची, विहंगावलोकन व परिचय निम्नानुसार है -

विषय-सूची

1 संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ
2 परिभाषाएं
3 दहेज प्रतिषेध अधिकारी की अधिकारिता
4 परिवाद फाइल करने के लिए प्रक्रिया
5 दहेज प्रतिषेध अधिकारी द्वारा किये जाने वाले अतिरिक्त कृत्य
6 मुख्य दहेज प्रतिषेध, अधिकारी की नियुक्ति की रीति, कर्त्तव्य और कृत्य
7 विवाह के पक्षकारों द्वारा भेटों की सूची का प्रस्तुत किया जाना
8 अपराधियों के अभियोजन के लिए प्रक्रिया
9 कल्याणकारी संस्थाओं की मान्यता
10 सीमाओं और शर्ते जिनके अध्यधीन रहते हुए कोई दहेज प्रतिषेध अधिकारी, पुलिस अधिकारी की शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा।
11 दहेज अधिकारी की लोक सेवक के रूप में घोषणा
12 सदभावपर्बूक की गई कार्यवाही के लिए संरक्षण
13 निर्वचन
14 निरसन और व्यावृत्तिया

राजस्थान दहेज प्रतिषेध नियम 2004 से अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित है :-

धारा चार -

परिवाद फाइल करने के लिए प्रक्रिया - कोई परिवाद किसी भी व्यथित व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति के माता-पिता या किसी अन्य सम्बन्धी द्वारा या किसी भी मान्यता प्राप्त कल्याण संस्था या संगठन द्वारा दहेज प्रतिषेध अधिकारी को या तो व्यक्तिश: या संदेशवाहक के माध्यम से या डाक से लिखित में किया जा सकेगा।

धारा सात -

विवाह के पक्षकारों द्वारा भेटों की सूची प्रस्तुत किया जाना - किसी भी विवाह के प्रकार या उनके माता-पिता में से कोई भी या उनमें से कोई, सम्बन्धित दहेज प्रतिषेध अधिकारी को दहेज प्रतिषेध (वर-वधू को दी गई भेटों की सूची का रखा जाना) नियम 1985 के अनुसार तैयार की गई भेटों की सूचना विवाह की तारीख से एक मास के भीतर प्रस्तुत करेगा।

धारा नौ -

कल्याणकारी संस्थाओं की मान्यता -

(1) कोई कल्याणकारी संस्था या संगठन जो मुख्यत: निम्नलिखित प्रकार के कार्य के लिए समर्पित है और जिसने तीन वर्ष के अन्यून की कालावधि के लिए क्षेत्र में उल्लेखित सेवा की है, अधिनियम की धारा 7 की उप- धारा (I) के खण्ड (ख) के उप-खण्ड (II) के अधीन मान्यता चाहने के लिए पात्र होगा

(क) महिलाओं की देख-रेख संरक्षण और प्रशिक्षण सहित सामाजिक कल्याण,

(ख) राजव्यापी या अखिल भारतीय महिला संगठन, विख्यात महिला समाज या महिला संगठन,

(ग) निराश्रित, विमुक्त महिलाओं और बच्चों की देख-रेख और संरक्षण सहित सामाजिक प्रतिरक्षा,

(घ) सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन करने में रूचि रखने वाला वकिलों का कोई संगठन।

(2) उप नियम (I) के अधीन पात्र और मान्यता चाहने वाली कोई भी कल्याणकारी संस्था या संगठन नियमों, उपनियमों, संगम-अनुच्छेद में से प्रत्येक की प्रति अपने सदस्यों और पदाधिकारियों की सूचियों और अपने क्रियाकलापों से सम्बन्धित रिपोर्ट और सामाजिक या सामुदायिक सेवा के पूर्व में अभिलेख सहित इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप IV में राज्य सरकार को आवेदन करेगी।

(3) राज्य सरकार, सम्बन्धित विभाग के वरिष्ठ अधिकारी द्वारा ऐसी जाँच करने के पश्चात और संगठन या संस्था जिसने इस सम्बन्ध में आवेदन प्रस्तुत किया है, की सेवा की प्रकृति और पूर्व अभिलेख के बारे में रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात पांच वर्ष की कालावधि के लिए मान्यता प्रदान कर सकेगी जिसका नवीनीकरण, आवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात किया जा सकेगा।

(4) नवीनीकरण या मान्यता के लिए आवेदन नियम 9 के उप-नियम (2) में विहित रीति से, इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप प्रे में प्रस्तुत किया जायेगा जिस पर कार्यवाही उप-नियम (3) में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार की जायेगी और मान्यता ऐसे मामले में मंजूर/नवीनीकृत की जायेगी जिसमें संस्था प्रक्रिया के अनुसार की जायेगी और मान्यता ऐसे मामले में मंजूर/नवीनकृत की जायेगी जिसमें संस्था/संगठन का कामकाज मुख्य दहेज प्रतिषेध अधिकारी द्वारा असन्तोष या अन्यथा जाता है या ऐसी रिपोर्ट की जाती है।

17.7 राजस्थान ध्वनि नियंत्रण अधिनियम, 1963

17.7.1 विहंगावलोकन

राजस्थान ध्वनि नियंत्रण अधिनियम, 1963 में कुल दस धाराएँ जो निम्नांकित हैं : -

विषय - सूची

1 संक्षिप्त नाम, विस्तार, प्रारम्भ एवं प्रयोज्यता
2 परिभाषाएं
3 घोषणा एवं तीव्र ध्वनि निषेध
4 लाउड स्पीकरों के उपयोग एवं बजाने पर प्रतिबंध
5 किसी भी समय किसी भी स्थान पर ध्वनि को रोकने की शक्ति
6 शास्तियां
7 प्रक्रिया
8 गिरफ्तार करने की पुलिस की शक्ति
9 नियम बनाने की शक्ति
10 निरसन

राजस्थान विधान सभा द्वारा भारत के चौदहवें गणतंत्र वर्ष में राजस्थान राज्य में ध्वनि के नियंत्रण हेतु उपबन्ध करने के लिए राजस्थान ध्वनि नियंत्रण अधिनियम, 1963 पारित किया गया।

17.7.2 परिचय एवं परिभाषा

सार्वजनिक एवं सामाजिक स्तर पर विविध प्रकार के प्रदूषणों को नियंत्रित किया जाना आवश्यक होता है। इसी क्रम में ध्वनि एवं शोर को नियंत्रित करने के लिए यह अधिनियम पारित किया गया है। अधिनियम की धारा दो में महत्वपूर्ण धाराओं को परिभाषित किया गया, जो निम्नांकित है -

परिभाषा - इस अधिनियम में, जब तक विषय या प्रसंग द्वारा अन्यथा अपेक्षित न हो -

(i) लाउड स्पीकर या ध्वनि विस्तारक से अभिप्राय ऐसे यंत्र से है जिसके द्वारा मृदु ध्वनियां, चाहे वह गायन, वाद्य यंत्र या रिकार्ड की हुई हो, विस्तारित की जाती है।

(ii) सार्वजनिक स्थान से अभिप्राय ऐसे स्थान (जिसमें सडक, गली या मार्ग चाहे वह आम रास्ता हो या नहीं, तथा उतरने का स्थान शामिल है।) से है जिसमें जनता पहुंचती है या उसे ठहरने का अधिकार है या जिसमें से होकर जनता को गुजरने का अधिकार है।

17.7.3 महत्वपूर्ण प्रावधान

अधिनियम की धारा तीन में तीव्र ध्वनि की घोषणा एवं ध्वनि को प्रतिबन्ध करने के जिला दण्डनायक व अन्य अधिकारियों की शक्तियों का वर्णन किया गया है। धारा चार लाउड स्पीकरों को बजाने एवं उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाने की स्थितियों एवं तत सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन करती है। धारा पांच किसी समय किसी भी स्थान पर ध्वनि को रोकने की शक्ति से सम्बन्धित है। धारा आठ पुलिस की दोषी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की पुलिस को शक्ति से सम्बन्धित है।

17.7.4 अपराध एवं दण्ड

अधिनियम की धारा 6 आपराधिक एवं तत् सम्बन्धी दण्ड के प्रावधान से सम्बन्धित है, जो निम्नानुसार है।

शास्तियाँ - जो कोई भी इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करेगा या उल्लंघन करने का प्रयत्न करेगा या उनके उल्लंघन के लिए दुष्प्रेरित करेगा या इस अधिनियम के अन्तर्गत विधिक रूप से दिये गये किसी आदेश के विरूद्ध कार्य करेगा, ऐसे जुमाने से जो दो सौ पचास रूपये तक का हो सकेगा दण्डित किया जाएगा तथा दूसरी बार या उसके बाद दोषसिद्धि (कनविक्शन) के लिए किसी भी प्रकार के या तो कारावास से जो एक माह तक का होगा या जुर्माने से जो दो सौ पचास रूपये तक का हो सकेगा या दोनों से दण्डित किया जा सकेगा।

17.8 सारांश

राजस्थान आबकारी अधिनियम, 1950 में इस अधिनियम में कूल 10 अध्याय एवं 75 धाराएँ हैं। प्रथम अध्याय इस अधिनियम के शीर्षक, लागू होने की तिथि तथा प्रसार से सम्बन्धित है। इस अध्याय की धारा 2 महत्वपूर्ण परिभाषाओं से सम्बन्धित है। अधिनियम का दूसरा अध्याय नियंत्रण एवं स्थापन के विविध पक्षों का वर्णन करता हैं। तीसरा अध्याय आबकारी वस्तुओं के आयात, निर्यात और परिवहन से सम्बन्धित है। चौथा अध्याय शराब एवं नशीले पदार्थो के विनिर्माण, कब्जा एवं विक्रय से सम्बन्धित है। वहीं पांचवा अध्याय विभिन्न प्रकार की फीस एवं शुल्क के बारे में जानकारी प्रदान करता है। छठवां अध्याय मादक पदार्थो के सम्बन्ध में निर्धारित अनुज्ञापतियों, अनुज्ञायों, प्रपत्रों एवं परमिट/पास आदि से परिचय करवाता है। सातवां अध्याय साधारण उपबन्धों यथा माप, बाट और परीक्षण के औजारों एवं आबकारी राजरच की वसूली, राज्य सरकार एवं अन्य प्राधिकारियों की नियम बनाने की शक्ति जैसे विषयों का विवेचन करता है। आठवां अध्याय सम्बन्धित अधिकारियों की शक्तियों एवं कर्त्तव्यों का वर्णन करता है, वहीं नवां अध्याय अपराधों, अपराधों के लिए दण्ड एवं शास्ति से संबंध रखता है। दसवां अध्याय अधिनियम के विविध पक्षों यथा छूटो, नियमों और अधिसूचनाओं के प्रकाशन आदि से सम्बन्धित है।

असामाजिक तत्वों की अवैधानिक, गैरकानूनी एवं अवांछनीय गतिविधियों से समाज को राहत दिलवाने के लिए राजस्थान समाज-विरोधी क्रिया कलाप निवारण अधिनियम, राजस्थान प्रदेश में लागू किया गया है। इसमें कुल 18 धाराएँ हैं।

एक सामाजिक बुराई एवं व्यक्तिगत अवगुण के रूप में जुआ एक कुप्रथा के रूप में अनादि काल से अस्तित्व में है। इस बुराई की वजह से व्यक्ति, परिवार व समाज बर्बादी के कगार पर पहुंच सकते है। इस बुराई पर नियंत्रण के लिए राजस्थान सार्वजनिक सूत (जुआ) अध्यादेश 1949 अस्तित्व में है। इस अध्यादेश में कुल 19 धाराएँ थी परन्तु कुछ धाराएँ विलोपित कर दी गई है।

राजस्थान गुंडानियन्त्रण अधिनियम 1975 में कुल 16 धाराएँ हैं।

लोक व्यवस्था बनाये रखने के दृष्टिकोण से गुड्डों पर नियन्त्रण करने एवं उन्हे दबाने के लिए विशेष प्रावधान करने हेतु निर्मित अधिनियम जो सारे राजस्थान में आग है तथा 26 मार्च 1975 से प्रचलन में है।

दहेज की कुप्रथा ने पवित्र वैवाहिक संस्कार को प्रकृत कर दिया है। इस कुप्रथा पर नियंत्रण के लिए प्रभावी कानून लागू करने की आवश्यकता के मद्देनजर, दहेज प्रतिबंध अधिनियम लागू किया गया है।

17.8 अभ्यास प्रश्न

1 राजस्थान आबकारी अधिनियम के उद्देश्य एवं महत्व को प्रतिपादित करते हुए यह बताइये कि आबकारी योग्य वस्तु से आप क्या समझते है?

2 आबकारी अधिनियम'में अधिकारियों को प्रदत्त शक्तियों एवं कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिये।

3 राजस्थान समाज औवरोधी क्रिया-कलाप निवारण अधिनियम 2006 के महत्व को प्रतिपादित करते हुए अधिनियम में दर्शाए गये समाज विरोधी विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों एवं वर्गो का विवरण दीजिये।

4 राजस्थान सार्वजनिक जुआ अध्यादेश, 1949 में वर्णित विभिन्न अपराधों का वर्णन करते हुये जुआ घर से क्या आशय है, यह बतलाइये।

5 राजस्थान गुण्डा नियंत्रण अधिनियम, 1975 में गुण्डा शब्द को किस प्रकार परिभाषित किया गया है। अधिनियम में गुण्डों के खिलाफ की जाने वाली कार्यवाही का वर्णन कीजिए।

6 दहेज प्रतिषेध अधिनियम में दहेज को किस प्रकार परिभाषित किया गया है। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिये।

7 राजस्थान ध्वनि नियंत्रण अधिनियम 1963 पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

इकाई - 18

केन्द्रीय लघु (माइनर) अधिनियम

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005

18.3 घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

18.4 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

18.5 सारांश

18.6 अभ्यास प्रश्न

18.0 उद्देश्य

इस अध्याय के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित है :-

- प्रमुख केन्द्रीय लघु अधिनियमों की जानकारी प्रदान करना।
- सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के विविध प्रश्नों, पहलुओं एवं आयामों का वर्णन करना
- घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 के विविध पक्षों, पहलुओं एवं आयामों का वर्णन करना।
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 के विविध पक्षों, पहलुओं एवं आयामों का विवेचन करना

18.1 प्रस्तावना

विभिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं में प्रजातंत्र को विशिष्ट स्थान एवं सम्मान प्राप्त है। यह व्यवस्था खुली व्यवस्था के रूप में कार्य करती है। जन कल्याण के मूल उद्देश्य से यह संचालित होती है। ऐसी व्यवस्था में सभी राजकीय कार्य बुनियादी तौर पर नागरिक हितों के संरक्षण के उद्देश्य से प्रेरित होते है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण तथा अनुसूचित जाति तथा जनजाति अधिनियम अधिनियमित किये गये हैं।

18.2 सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005

यह अधिनियम भारत गणराज्य के 56वे वर्ष में संसद द्वारा अधिनियमित किया गया। यह अधिनियम सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के रूप में प्रचलन में है। इसका विस्तार जम्मु कश्मीर राज्य के अलावा सम्पूर्ण भारत में है।

18.2.1 विहंगावलोकन

यह अधिनियम कुल छः अध्यायों में विभक्त है, जिनमें कुल 31 धाराएँ एवं दो अनुसूचियां है। प्रथम अध्याय प्रारम्भिक प्रकृति का है जिसमें अधिनियम का नाम, विस्तार तथा प्रारम्भ की तिथी दी गई है। इसके अलावा महत्वपूर्ण परिभाषाओं को भी स्पष्ट किया गया है। अध्याय दो सूचना का अधिकार और प्राधिकारी दो की बाध्यताओं से सम्बन्धित है, तथा इसमें धारा 3 से 11 तक का समावेश किया गया है। अध्याय तीन (धारा 12-14) केन्द्रीय सूचना आयोग तथा अध्याय चार (धारा 15-17)

राज्य सूचना आयोग के गठन, सेवा शर्तो तथा अधिकारियों की'नियुक्त एवं इनको हटाने से सम्बन्ध रखता है। अध्याय पांच (धारा 18-20) में सूचना आयोगों की शक्तियों, कृत्य, अपील और शास्तियों का वर्णन किया गया है। अध्याय छः में (धारा 21-31) प्रकीर्ण शीर्ष के अन्तर्गत विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है।

18.2.2 प्रस्तावना

इस अधिनियम के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को अधिनियम के प्रारम्भ में ही दर्शा दिया गया है। अधिनियम की प्रस्तावना निम्नांकित हैं

हरेक लोक प्राधिकरण के कार्यकरण में पारदर्शिता और जवाबदेही का सप्रवर्तन करने की दृष्टि से लोक प्राधिकारियों के नियंत्रण के अन्तर्गत की सूचना तक पहुंच सुनिश्चित करने हेतु सूचना के अधिकार की व्यावहारिक शासन पद्धति स्थापित करने, केन्द्रीय सूचना आयोग और राज्य सूचना आयोगों के गठन और उससे संसक्त या आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम।

चूंकि लोकतंत्र में सूचित नागरिक वर्ग और सूचना की पारदर्शित होना जरूरी है जो उसके कृत्यकरण और भ्रष्टाचार के दमन के लिए भी और सरकारों और उनके अभिकरणों को शासितों के प्रति जवाबदेह बनाने हेतु महत्वपूर्ण होते है,

और चूंकि वास्तविक व्यवहार में सूचना के प्रकटन से लोक हितों जिसमें सरकारों का दक्ष प्रचालन सम्मिलित है, सीमित राजवित्तीय संसाधनों के अधिकतम उपयोग और संवेदनशील सूचना की गोपनीयता बनाये रखने से विरोध की संभावना है।

और चूंकि लोकतांत्रिक आदर्श की सर्वोपरिता बनाये रखने हेतु समय विरोधी हितों में सामंजस्य करना आवश्यक होता है, इसलिए नागरिकों को कतिपय सूचना देने का, जो उसकी वांछा करें, उपबंध करना समीचीन है। अत: भारत गणराज्य के 56वे वर्ष में संसद द्वारा यह अधिनियम अधिनियमित किया गया है।

18.2.3 परिचयात्मक परिभाषाएं

इस अधिनियम के प्रथम अध्याय की धारा दो में अधिनियम की विषय वस्तु के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं को स्पष्ट किया गया है। विद्यार्थियों के लिए निम्नांकित परिभाषाओं को समझना जरूरी है, जिन्हें यहां पर अधिनियम की मूल भाषा में प्रस्तुत किया जा रहा है -

- सूचना
- लोक प्राधिकार
- अभिलेख
- सूचना का अधिकार

- **सूचना**:- सूचना से किसी भी रूप में कोई भी सामग्री अभिप्रेत है, जिसके अंतर्गत अभिलेख, दस्तावेज, ज्ञापन, ई-मेल, राय, सलाह, प्रेस सूचना, परिपत्र, आदेश, लॉगबुक, संविदा, रिपोर्टे, कागजात, नमूने मॉडल, किसी इलैक्ट्रॉनिक रूप में रखी गई डाटा सामग्री और ऐसे किसी भी प्राइवेट निकाय से संबंधित सूचना जिस तक तत्समय प्रवृत्त किसी भी अन्य विधि के अधीन लोक प्राधिकारी की पहुंच हो, है,
- **लोक प्राधिकारी** :-"लोक प्राधिकारी से"

  (क) संविधान द्वारा या उसके अधीन,

  (ख) संसद द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि द्वारा,

(ग) राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि द्वारा

(घ) समुचित सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना या किये गये आदेश द्वारा स्थापित या गठित कोई प्राधिकारी या निकाय या स्वायत्त शासन की संस्था अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत

(i) समुचित सरकार के स्वामित्वाधीन, उसके द्वारा प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उपलब्ध कराई गई विधियों द्वारा नियंत्रित या सारभूत रूप से वित्तपोषित कोई निकाय

(ii) समुचित सरकार द्वारा प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उपलब्ध कराई गई विधियों द्वारा सारभूत रूप से वित्तपोषित कोई गैर-सरकारी संगठन

- **अभिलेख**:- "अभिलेख के अन्तर्गत" हैं-

(क) कोई दस्तावेज, पांडुलिपि और फाइल

(ख) किसी दस्तावेज की कोई माइकोफिल्म, माइकोफिल्म और प्रतिचित्र प्रति

(ग) ऐसी माइकोफिल्म में समाविष्ट प्रतिबिम्ब या प्रतिबिम्बों का कोई पुनरूत्पादन और

(घ) किसी कम्प्यूटर द्वारा या किसी अन्य युक्ति द्वारा उत्पादित कोई अन्य सामग्री, सूचना का अधिकार से इस अधिनियम के अधीन पहुंच में की ऐसी सूचना का अधिकार अभिप्रेत है जो किसी भी लोक प्राधिकारी द्वारा धारित हो या उसके नियंत्रणाधीन हो और इसके अन्तर्गत है-

(i) कार्य, दस्तावेजों, अभिलेखों के निरीक्षण का अधिकार

(ii) दस्तावेजों या अभिलेखों के टिप्पण, उद्धरण या प्रमाणित प्रतियाँ लेने का अधिकार

(iii) सामग्री के प्रमाणित नमूने लेने का अधिकार

(iv) डस्केटों, लापियों टेपों, विडियों कैसेटों के रूप में या किसी भी अन्य इलैक्ट्रॉनिक मोड़ में या प्रिंटआउटों के माध्यम से जहाँ ऐसी सूचना किसी कम्प्यूटर या किसी अन्य युकि में रखी जाती है, सूचना प्राप्त करने का अधिकार।

18.2.4 महत्वपूर्ण प्रावधान

परिभाषाओं से सम्बन्धित धारा दो के अलावा अध्याय दो, तीन, चार व पांच इस अधिनियम के महत्वपूर्ण पक्षों एवं पहलुओं से सम्बन्ध रखते है। अध्याय तीन की धारा तीन के द्वारा सभी नागरिकों को सूचना का अधिकार प्रदान किया गया है। धारा चार लोक प्राधिकारियों की बाध्यताओं से सम्बन्धित है। यह अपेक्षा की गई है कि सभी संगठन एक प्राधिकारी सम्यक रूप से रिकार्ड का निर्धारित तरीके से संधारण करेंगे तथा अपने संगठन से सम्बन्धित सभी सूचनाओं, तथ्यों एवं प्रक्रियाओं को स्पष्ट कर प्रकाशित करेंगे। धारा पांच के अनुसार लोक सूचना अधिकारियों को पदाभित किया जायेगा। धारा छ: सूचना प्राप्त करने के अनुरोध की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। धारा सात अनुरोधों के निपटारे एवं धारा आठ सूचना जो दी जा सकती का वर्णन करती है। धारा चार व छ: के महत्व को ध्यान में रखते हुए, उन्हें अधिनियम की मूल भाषा में यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

धारा 4 लोक प्राधिकारियों की बाध्यतायें - (1) प्रत्येक लोक प्राधिकारी-

(क) सम्यक् रूप से सूचीपत्रित और अनुकमणिकाबद्ध अपने अभिलेख ऐसी रीति से और प्रारूप में रखेगा जो इस अधिनियम के अधीन सूचना के अधिकार को. सुकर बनाये और यह सुनिश्चित करेगा कि सभी अभिलेख जो कम्प्यूटरीकृत किये जाने के लिए समुचित हो, युक्तियुक्त समय के भीतर और संसाधनों की उप्लभ्द्ता के अध्यधीन कम्प्यूटरीकृत किये जाते है और विभिन्न प्रणालियों से पूरे देश में नेटवर्क के माध्यम से जोड़े जाते हैं जिसमें ऐसे अभिलेखों तक पहुंच सुकर हो जायें

(ख) इस अधिनियम के अधिनियमन से एक सौ बीस दिन भीतर-

(i) अपने संगठन की विशिष्टियां, कृत्य और कर्त्तव्य,

(ii) अपने अधिकारियों और कर्मचारियों की शक्तियाँ और कर्त्तव्य,

(iii) विनिश्चय करने की प्रक्रिया में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया जिसमें पर्यवेक्षण और जवाबदेही की प्रणाली सम्मिलित है

(iv) अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए उसके द्वारा स्थापित सन्नियम,

(v) अपने द्वारा रखे गये या उसके नियंत्रण के अधीन के या उसके कृत्यों के निर्वहन के लिए उसके कर्मचारियों द्वारा प्रयुक्त नियम, विनियम, अनुदेश, नियमावली और अभिलेख,

(vi) अभिलेखों के प्रवर्गो का विवरण जो उसके द्वारा या उसके नियंत्रण के अधीन रखे जाते है

(vii) किसी ऐसे इन्तजाम की विशिष्टियां जो उसकी नीतियों के बनाये जाने या उनके कियान्वयन के संबंध में जनता के सदस्यों से परामर्श या उनके द्वारा अभ्यावेदन के लिए विद्यमान हों,

(viii) अपने भाग के रूप में उसे सलाह देने के प्रयोजन के लिए गठित दो या अधिक व्यक्तियों से मिलकर बने बोर्डो, परिषदों समितियों और अन्य निकायों की बैठकें

(ix) अपने अधिकारियों और कर्मचारियों की निदेशिका,

(x) अपने विनियमों में यथा- उपबंधित प्रतिकर प्रणाली को सम्मिलित करते हुए अपने प्रत्येक अधिकारी और कर्मचारी द्वारा प्राप्त मासिक पारिश्रमिक,

(xi) सभी योजनाओं, प्रस्तावित व्ययों की और किये गये संवितरणों की रिपोर्टो की विशिष्टियां उपदर्शित करते हुए अपनी प्रत्येक एजेन्सी को आवंटित बजट,

(xii) सहायकी कार्यक्रमों के निष्पादन की रीति, जिसमें आवंटित राशि और ऐसे कार्यक्रमों के

(xiii) हिताधिकारियों का ब्यौरा सम्मिलित है।

(xiv) अपने द्वारा दी गई रियायतों, परमिटों या प्राधिकारों प्राप्तकर्ताओं की विशिष्टियां

(xv) उसको उपलब्ध या उसके द्वारा धारित सूचना, जो इलेक्ट्रॉनिक रूप में रखी गई हो, के बारे में ब्यौरा

(xvi) सूचना प्राप्त करने के लिए नागरिकों को उपलब्ध सुविधाओं की विशिष्टिया जिनमें पुस्तकालयों का अध्ययन कक्षों, यदि जनता के उपयोग के लिए रखे जाते है, का कार्य समय सम्मिलित है,

(xvii) लोक सूचना अधिकारियों के नाम, पदनाम और अन्य विशिष्टियां,

(xviii) ऐसी अन्य सूचना, जो विहित की जाये, प्रकाशित करेगा और तत्पश्चात् इन प्रकाशनों को प्रतिवर्ष अघ्यतन करेगा।

धारा 6 : सूचना प्राप्त करने के लिए अनुरोध :

(1) इस के अधीन कोई भी सूचना प्राप्त करने का इच्छुक व्यक्ति -

(क) सम्बन्धित लोक प्राधिकारी के केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या यथास्थिति, राज्य लोक सूचना अधिकारी को

(ख) केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या यथास्थिति राज्य सहायक लोक सूचना अधिकारी को अपने द्वारा माँगी गई सूचना की विशिष्टियॉ विनिर्दिष्ट करते हुए अंग्रेजी या हिन्दी में या उस क्षेत्र की राजभाषा में जिसमें आवेदन किया जा रहा है, लिखित रूप में या इलैक्ट्रॉनिक साधनों

के माध्यम से, ऐसी फीस संलग्न करते हुए, जो विहित की जाये, अनुरोध करेगा, परन्तु जहाँ ऐसा अनुरोध लिखित रूप में नहीं किया जा सकता है वहाँ केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या यथास्थिति राज्य लोक सूचना अधिकारी मौखिक रूप से अनुरोध करने वाले व्यक्ति को उसे लेखबद्ध करने के लिए सभी युक्ति युक्त सहायता प्रदान करेगा।

(2) सूचना के लिए अनुरोध करने वाले आवेदक से सूचना का अनुरोध करने का कोई कारण देने या किसी भी अन्य वैयक्तिक ब्यौरों की, उनकों छोडकर, जो उससे संपर्क करने के लिए आवश्यक हों अपेक्षा नहीं की जायेगी।

(3) जहाँ कोई आवेदन ऐसी सूचना के लिए अनुरोध करते हुए लोक प्राधिकारी को किया जाता है

i. जो अन्य लोक प्राधिकारी द्वारा रखी जाती है या

ii. जिसकी विषय- वस्तु अन्य लोक प्राधिकारी के कृत्यों के ज्यादा निकट है, तो वह लोक प्राधिकारी, जिसको ऐसा आवेदन किया जाता है, आवेदक या उसके ऐसे भाग को, जो समुचित हो, उस अन्य प्राधिकारी को अंतरित करेगा और आवेदक को ऐसे अंतरण के बारे में तुरन्त सूचना देगा, परन्तु इस उप- धारा के अनुसरण में आवेदक का अंतरण यथावश्यक शीघ्र किन्तु किसी भी दशा में आवेदन की प्राप्ति की दिनांक से पांच दिन के भीतर किया जायेगा।

धारा 15 : राज्य सूचना आयोग का गठन-

(1) प्रत्येक राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा सूचना आयोग के नाम से एक निकाय का गठन करेगी जो उसे इस अधिनियम के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग और समनुदिष्ट कृत्यों का पालन करेगा।

(2) राज्य सूचना आयोग में निम्नलिखित होंगे-

(क) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त, और

(ख) दस से अनधिक इतने राज्य सूचना आयुक्त जितने आवश्यक समझे जायें।

(3) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्त निम्नलिखित से मिलकर बनी समिति की सिफारिश पर राज्यपाल द्वारा नियुक्त किये जायेंगे:-

i. मुख्यमंत्री, जो समिति का अध्यक्ष होगा

ii. विधानसभा में प्रतिपक्ष का नेता, और

iii. मुख्यमंत्री द्वारा नाम निर्देशित किये जाने पर मंत्रिमण्डल का सदस्य।

(4) राज्य सूचना आयुक्त के कार्यकलापों का साधारण अधीक्षण, निर्देशन और प्रशासन राज्य मुख्य सूचना आयुक्त में निहित होगा जिसकी सहायता राज्य सूचना आयुक्त करेंगे और वह ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे सभी कार्य और बाते कर सकेगा जो इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य प्राधिकारी के निर्देशों के अधीन हुए बिना राज्य सूचना आयोग द्वारा स्वायत्ततः प्रयुक्त की जा सकेंगी।

(5) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्त लोक जीवन में सुविख्यात व्यक्ति होंगे जिन्हें विधि, विज्ञान और तकनीका, सामाजिक सेवा प्रबंध, पत्रकारिता, मास मीडिया या प्रशासन और शासन का व्यापक ज्ञान और अनुभव होगा।

(6) राज्य मुख्य सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त संसद का सदस्य या यथास्थिति, किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के विधानमण्डल का सदस्य नहीं होगा या लाभ का कोई पद धारित

नहीं करेगा या किसी राजनैतिक दल से जुड़ा हुआ नहीं होगा या कोई भी कारोबार या कोई भी व्यवसाय नहीं कर रहा होगा।

(7) राज्य सूचना आयोग का मुख्यालय राज्य में ऐसे स्थान पर होगा जो राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करें और राज्य सूचना आयोग, राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, राज्य में अन्य स्थानों पर कार्यालय स्थापित कर सकेगा।

18.2.5 शक्तियाँ एवं कर्त्तव्य

अधिनियम का अध्याय पांच सूचना आयोगों की शक्तियों, कृत्यों एवं अपील के प्रावधानों से सम्बन्धित है। विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित है :-

(अ) सूचना आयोगों की शक्तियाँ और कृत्य

1. इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए केन्द्रीय सूचना आयोग या, यथास्थिति राज्य सूचना आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसे किसी भी व्यक्ति की शिकायत प्राप्त करें और उसकी जाँच करें-

(क) जो केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी, या यथास्थिति राज्य लोक सेवा सूचना अधिकारी को, या तो इस कारण से कि ऐसा कोई अधिकारी इस अधिनियम के अधीन नियुक्त नहीं किया गया है या इस कारण से कि केन्द्रीय सहायक लोक सूचना अधिकारी या, यथास्थिति, राज्य सहायक लोक सूचना अधिकारी ने इस अधिनियम के अधीन सूचना के लिए उसके आवेदन या अपील को, उसे केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या केन्द्रीय सूचना आयोग या यथास्थिति, राज्य सूचना आयोग को अग्रेषित करने के लिए स्वीकार करने से इंकार कर दिया है, अनुरोध करने मे असमर्थ है,

(ख) जिसे ऐसी किसी सूचना तक पहुंच से इंकार कर दिया गया है जिसके लिए इस अधिनियम के अधीन अनुरोध किया गया है,

(ग) जिसे सूचना या सूचना तक पहुंच के लिए किये गये अनुरोध का इस अधिनियम के अधीन विनिर्दिष्ट समय सीमा के भीतर उत्तर नहीं मिला है,

(घ) जिससे फीस की ऐसी राशि संदत्त करने की अपेक्षा की गई है जिसे वह अयुक्तियुक्त मानता है,

(ङ) जो यह विश्वास करता है कि उसे इस अधिनियम के अधीन अपूर्ण, भ्रामक या मिथ्या सूचना दी गई है, और

(च) इस अधिनियम के अधीन अभिलेख तक पहुंच का अनुरोध प्राप्त करने से संबंधित किसी अन्य विषय के बारे में।

2. जहाँ केन्द्रीय सूचना आयोग या, यथास्थिति, राज्य सूचना आयोग का यह समाधान हो जाता है कि मामले में जाँच करने के समुचित आधार है, वहाँ वह उसके संबंध में जाँच प्रारंभ कर सकेगा।

3. केन्द्रीय सूचना आयोग या, यथास्थिति राज्य सूचना आयोग को इस धारा के अधीन किसी मामले की जॉच करते समय वहीं शक्तियाँ होगी जो किसी सिविल न्यायालय में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908(5 ऑफ 1908) के अधीन निम्नलिखित विषयों के संबंध में याद का निर्धारण करते समय निहित है, अर्थात-

(क) व्यक्तियों को समन करना और हाजिर कराना और उन्हें शपथ पर मौखिक या लिखित साक्ष्य देने और दस्तावेज या चीजे पेश करने के लिए बाध्य करना,

(ख) दस्तावेजों की खोज और निरीक्षण की अपेक्षा करना,

(ग) शपथ-पत्र पर साक्ष्य लेना

(घ) किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी भी अभिलेख या उसकी प्रतियों की अध्यपेक्षा करना,

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए समन जारी करना और

(च) कोई भी अन्य विषय जो विहित किया जाये।

4. संसद या, यथास्थिति, राज्य विधानमण्डल के किसी भी अन्य अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी असंगत बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सूचना आयोग, यथास्थिति, राज्य सूचना आयोग, इस अधिनियम के अधीन किसी शिकायत की जाँच के दौरान, ऐसे किसी भी अभिलेखीय परीक्षा कर सकेगा जिसको यह अधिनियम लागू होता है और जो लोक प्राधिकारी के नियंत्रण में है और ऐसा कोई अभिलेख उससे किसी भी आधार पर रोका नहीं जा सकेगा।

(ब) अपील-

(1) ऐसा कोई भी व्यक्ति जो धारा 7 की उपधारा (1) या उपधारा (3) के खण्ड (क) में विनिर्दिष्ट समय के भीतर विनिश्चय प्राप्त नहीं करता है या केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या, यथास्थिति, राज्य लोक सूचना अधिकारी के विनिश्चिय से व्यथित है, ऐसी अवधि की समाप्ति से या ऐसे विनिश्चय की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर ऐसे अधिकारी को अपील कर सकेगा जहो प्रत्येक लोक प्राधिकारी में केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या, यथास्थिति, राज्य लोक सूचना अधिकारी से रैंक में वरिष्ठ है परन्तु ऐसा अधिकारी तीस दिन की समयावधि समाप्त होने के पश्चात अपील ग्रहण कर सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाए कि अपीलार्थी किसी पर्याप्त कारण से उक्त अपील समय रहते फाइल नहीं कर सका था।

18.2.6 अपराध एवं दण्ड

अधिनियम की धारा 20 शास्तियों से सम्बन्धित है। प्रावधानों के अनुसार सूचना प्रदान करने के निराधार कारणों की वजह से सम्बन्धित अधिकारी पर 250 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से शास्ति अधिरोपित की जाएगी जो अधिकतम 25000 तक हो सकती है। साथ ही दोषी अधिकारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही किये जाने का प्रावधान भी किया गया है।

18.3 घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

24 अगस्त 2005 को लोक सभा द्वारा तथा दिनांक 29 अगस्त 2005 को राज्य सभा द्वारा पारित किये जाने पर 13 सितम्बर 2005 को इस अधिनियम पर भारत के राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई तथा कानून पुस्तक में घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005(43 ऑफ 2 व 5) के रूप में अस्तित्व में आया। इसका विस्तार जम्मु कश्मीर राज्य को छोड़ कर पूरे भारत पर होगा।

18.3.1 विहंगावलोकन

यह अधिनियम पांच अध्यायों में विभक्त है, जिनमें कुल 37 धाराओं के माध्यम से अधिनियम के विभिन्न पक्षों, पहलुओं एवं प्रावधानों का वर्णन किया गया है। अध्याय एक प्रारम्भिक प्रकृति'का है, जिसमें महत्वपूर्ण परिभाषाओं का समावेश किया गया है। अध्याय दो घरेलू हिंसा को विस्तार से परिभाषित करता है। अध्याय तीन संरक्षण अधिकारियों तथा सेवा प्रदाताओं की शक्तियाँ एवं कर्त्तव्यों से सम्बन्धित है। अध्याय चार पीडित महिला को प्रदान किये जाने वाली राहतों की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित हैं। अध्याय पाँच अधिनियम के विविध पक्षों एवं पहलुओं का वर्णन करता है।

18.3.2 प्रस्तावना

संविधान के अधीन उन महिलाओं के जो परिवार के भीतर घटित होने वाली किसी प्रकार की हिंसा की शिकार है, गारन्टी कृत अधिकारों के अधीन प्रभावशाली संरक्षण के लिए तथा उससे सम्बन्धित या उसके आनुषंगीय मामलों के लिए उपबन्ध करने हेतु यह अधिनियम प्रस्तावित किया गया है। यह विधेयक अन्य बातों के साथ निम्नलिखित के लिए उपबन्ध करने का यत्न करता है:-

i. यह अधिनियम उन महिलाओं को अपने क्षेत्र में लेता है जो दुरूपयोगकर्ता (एब्यूजर) के साथ किसी सम्बन्ध में है या रही है जहाँ पर दोनों पक्षकार किसी साझे में साथ रहे है तथा समरक्तता, विवाह द्वारा या विवाह अंगीकरण (एडोप्शन) की प्रकृति में किसी सम्बन्ध के माध्यम से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार के रूप में साथ रहने वाले परिवार के सदस्यों के साथ सम्बन्धों को भी शामिल किया गया है। यहां तक कि वे महिलायें भी जो बहिनें विधवायें, मातायें, एकल महिलायें है या पुरूषयोगकर्ता (एब्यूजर) के साथ रह रही है प्रस्तावित कानून के अन्तर्गत कानूनी संरक्षण के लिए अधिकृत है। यह विधेयक किसी सम्बन्धी के विरूद्ध प्रस्तावित आक्त्रयम के अधीन शिकायत प्रस्तुत करने में समर्थ बानाता है, वहाँ यह पति या पुरूष भागीदार की किसी महिला सम्बन्धी को पत्नी या महिला, भागीदार के विरूद्ध कोई शिकायत प्रस्तुत करने के लिए समर्थ नहीं बनाता है।

ii. "घेरलू हिंसा" की परिभाषा में वास्तविक दुरूपयोग या धमकी या उस दुरूपयोग को शामिल किया गया है जो वास्तविक, लैंगिक, मौखिक, भावनात्मक या आर्थिक है। विधि विरूद्ध दहेज की माँग के रूप में महिला या उसके सम्बन्धियों को तंग करने को भी इस परिभाषा के अन्तर्गत शामिल किया जायेगा।

iii. यह आवास प्राप्त करने के महिलाओं के अधिकारों के लिए उपबन्ध करता है। यह महिलाओं के दाम्पत्य निवास या साझे गृह (शेयर हाउस होल्ड) में निवास करने के महिला के अधिकारों के लिए उपबंध करता है, चाहे ऐसे निवास या राह में वह कोई हक (टाइटिल) या अधिकार रखती या न रखती हो। यह अधिकार एक निवास आदेश (रेजीडेंस आर्डर) द्वारा, जो कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया है, सुरक्षित होता है।

iv. यह घरेलू हिंसा का कोई कृत्य करने या कोई अन्य विनिर्दिष्ट कृत्य में सहायता करने या उसके करने में, किसी कार्य स्थल या किसी अन्य स्थान में जहाँ व्यथित व्यक्ति द्वारा बार-बार में ली गई किन्हीं (असेट्स) को अलग करने, तथा व्यथित व्यक्ति, उसके सम्बन्धियों एवं अन्यों पर, जो घरेलू हिंसा के विरूद्ध उसे सहायता प्रदान करते है, हिंसा कारित करने से, प्रत्यर्थी को रोकने के लिए व्यथित व्यक्ति के पक्ष में संरक्षण आदेश पारित करने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्ति प्रदान करता हैं।

v. यह संरक्षण अधिकारियों की नियुक्ति एवं व्यथित व्यक्ति को उसकी चिकित्सीय जाँच कराने उसे कानूनी सहायता एवं सुरक्षित शरण आदि प्राप्त करने में सहायता प्रदान करने के लिए सेवा प्रदाताओं के रूप में गैर सरकारी संगठनों के पंजीयन के लिए उपबंध करता है।

18.3.3 परिचयात्मक परिभाषाएँ

अधिनियम की धारा दो परिभाषाओं से सम्बन्धित है। निम्नांकित परिभाषाएं महत्वपूर्ण होने से ये जानकारी विद्यार्थियों को दी जा रही है।

- **व्यथित व्यक्ति** :- से ऐसी कोई महिला अभिप्रेत है जो प्रत्यर्थी के साथ एक घरेलू सम्बन्ध में है या रही है तथा जो प्रत्यर्थी द्वारा घरेलू हिंसा के किसी कृत्य के अधीन किये जाने का अभिकथन करती है।
- **घरेलू सम्बन्ध** :- से दो व्यक्तियों के बीच ऐसा सम्बन्ध अभिप्रेत है जो किसी समय बिन्दु पर किसी साझे गृह में जब वे समरक्तता, विवाह द्वारा, या विवाह अंगीकरण की प्रकृति में किसी सम्बन्ध के जरिये सम्बन्धित है, साथ-साथ रहते है या रहे है या संयुक्त परिवार के रूप में साथ-साथ रहने वाले परिवार के सदस्य है।
- **सांझा गृह** :- से ऐसा घर अभिप्रेत है जहाँ वह व्यक्ति जो व्यथित है, या तो अकेला या प्रत्यर्थी के साथ किसी घरेलू सम्बन्ध में रहता है यरा किसी स्टेज पर रहा है तथा इसमें ऐसा घर शामिल है जो या तो व्यथित व्यक्ति एवं प्रत्यर्थी द्वारा या तो संयुक्त रूप से स्वामित्व प्राप्त है या किराये पर लिया गया है, या उनमें से किसी के द्वारा या तो संयुक्त रूप से स्वामित्व प्राप्त है या किराये पर लिया गया है, या उनमें से किसी के द्वारा इस प्रकार स्वामित्व प्राप्त है जिसके कि सम्बन्धों में या तो व्यथित व्यक्ति या प्रत्यर्थी या दोनों संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हक, हित या इक्विटी रखते है तथा इसमें ऐसा घर शामिल है जो उसके संयुक्त परिवार से सम्बन्धित है, जिसका कि प्रत्यर्थी एक सदस्य है चाहे प्रत्यर्थी या व्यथित व्यक्ति उस समय घर में कोई अधिकार, हक या हित रखता या न रखता हो।

18.3.4 घरेलू हिंसा

इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ, प्रत्यर्थी का कोई कृत्य, लोप या किया जाना या आचरण घरेलू हिंसा का गठन करेगा यदि वह-

(क) व्यथित व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुरक्षा, जीवन, अंग या कल्याण को नुकसान करता है या क्षतिग्रस्त करता है या संकटापन्न करता है या ऐसा करने की प्रवृत्ति रखता है तथा इसमें शारीरिक दुरूपयोग कारित करना शामिल है, या

(ख) किसी दहेज या अनरू सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए कोई विधि विरूद्ध माँग को पूरा करने के लिए उसे या उससे सम्बन्धित किसी अन्य व्यक्ति को प्रपीडित करने की दृष्टि से व्यथित व्यक्ति को तंग करता है, नुकसान करता है, क्षतिग्रस्त करता है या संकटापन्न करता है, या

(ग) खण्ड क या ख में वर्णित किसी आचरण के द्वारा व्यथित व्यक्ति या उससे सम्बन्धित किसी व्यक्ति को धमकी देने का प्रभाव रखता है, या

(घ) व्यथित व्यक्ति को चाहे शारीरिक या मानसिक अन्यथा क्षतिग्रस्त करता है या नुकसान पहुँचाता है।

स्पष्टीकरण 1 :- इस धारा के प्रयोजनों के लिए-

i. शारीरिक दुरूपयोग से तात्पर्य किसी ऐसे कृत्य या आचरण से है जो ऐसी प्रकृति का है कि वह व्यथित व्यक्ति को शारीरिक कष्ट, नुकसान पहुंचाता है या उसके जीवन, अंग या स्वास्थ्य को खतरा पैदा करता है या उसके स्वास्थ्य या विकास का हास करता है एवं इसमें हमला, आपराधिक अभित्रास या आपराधिक बल शामिल है,

ii. लैंगिक दुरूपयोग से लैंगिक प्रकृति का ऐसा कोई आचरण शामिल है जो महिला की गरिमा का दुरूपयोग करता है, अपमानित करता है, तिरस्कृत करता है, या अन्यथा उल्लंघन करता है,

iii. मौखिक एवं भावनात्मक दुरूपयोग में शामिल है:-

(क) अनादर, मजाक, अपमान, नाम पुकारना एवं अनादर या मजाक विशेष रूप से कोई बच्चा या पुरूष बालक नहीं होने के सम्बन्ध मे, एवं

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति को जिसमें व्यथित व्यक्ति हित रखता है शारीरिक कष्ट पहुंचाने के लिए बार-बार धमकियां

iv. आर्थिक दुरूपयोग में शामिल है-

(क) उन समस्त या किन्हीं आर्थिक या वित्तीय संसाधनों से वंचित करना जिनके लिए व्यथित व्यक्ति किसी कानून या रूढि (कस्टम) के अधीन अधिकृत है चाहे वे किसी न्यायालय के आदेश के अधीन या अन्यथा संदेय हों या जिनकी व्यथित व्यक्ति आवश्यकता के कारण अपेक्षा करता हो, जिसमें व्यथित व्यक्ति एवं उसके बालकों के लिए, घर की आवश्यकतायें, यदि कोई हों, स्त्रीधन, व्यथित व्यक्ति द्वारा संयुक्त रूप से या पृथक रूप से स्वामित्व प्राप्त सम्पत्ति, साझा घर से सम्बन्धित, किराये का भुगतान एवं रख-रखाव भी शामिल है किन्तु यह इन्हीं तक सीमित नहीं होगा।

18.3.5 सरंक्षण अधिकारियों एवं सेवा प्रदाताओं की शक्तियाँ एवं कर्त्तव्य

(i) पुलिस अधिकारियों, सेवा प्रदाताओं एवं मजिस्ट्रेट के कर्त्तव्य:- कोई पुलिस अधिकारी, संरक्षण अधिकारी, सेवा प्रदाता या मजिस्ट्रेट जिसने घरेलू हिंसा की शिकायत प्राप्त की है या जो घरेलू हिंसा की घटना के स्थान पर अन्यथा मौजूद है या जब घरेलू हिंसा की घटना की सूचना उसे दी जाती है तो वह व्यथित व्यक्ति को निम्न के बारे में सूचना देगा:

(क) संरक्षण आदेश, आर्थिक राहत के लिए आदेश, अभिरक्षा आदेश, निवास आदेश, प्रतिकर आदेश या इस अधिनियम के अधीन एक ऐसे आदेश से अधिक के रूप में राहत प्राप्त करने के लिए आवेदन करने के उसके अधिकार के बारे में,

(ख) सेवा प्रदाताओं की सेवाओं की उपलब्धता के बारे में,

(ग) संरक्षण अधिकारियों की सेवाओं की उपलब्धता के बारे में,

(घ) विधिक सेवायें प्राधिकरण अधिनियम, 1987(39 ऑफ 1987) के अधीन मुत विधिक सेवाओं के लिए उसके अधिकार के बारे में

(ङ) जहाँ सुसंगत हो, भारतीय दण्ड संहिता, 1860(45 ऑफ 1860) की धारा 498 का के अधीन शिकायत प्रस्तुत करने के उसके अधिकार के बारे में,

(ii) सरंक्षण अधिकारियों के कर्त्तव्य एवं कार्य:- संरक्षण अधिकारियों के निम्न कार्य होंगे:-

(क) इस अधिनियम के अधीन मजिस्ट्रेट को उसके कार्यो का निर्वहन करने में सहायता करना,

(ख) मजिस्ट्रेट को घरेलू घटना की रिपोर्ट, ऐसे प्रारूप में तथा ऐसे ढंग से जो विहित किया जायेगा, घरेलू हिंसा की शिकायत के प्राप्त होने पर करना तथा उस पुलिस थाने के, जिसकी अधिकारिता की स्थानीय पर सीमाओं के भीतर घरेलू हिंसा किये जाने का अभिकथन किया गया है, प्रभारी पुलिस अधिकारी को तथा उसे क्षेत्र में में सेवा प्रदाताओं को उसकी प्रतियां अग्रेषित करना,

(ग) यदि व्यथित व्यक्ति ऐसा चाहता है तो संरक्षण आदेश को जारी करने के लिए राहत का क्लेम करने हेतु मजिस्ट्रेट को ऐसे प्रारूप में तथा ऐसे तरीके से जो विहित किया जायेगा आवेदन-पत्र देना,

(घ) यह सुनिश्चित करना कि व्यथित व्यक्ति को विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987(39 ऑफ 1987) क अधीन विधिक सहायता प्रदान की गई है तथा निःशुल्क विहित प्रपत्र, जिसमें शिकायत की जानी है, उसे उपलब्ध करा दिया गया है

(ङ) (ड़) मजिस्ट्रेट की अधिकारिता के भीतर किसी स्थानीय क्षेत्र में विधिक सहायता, या परामर्श प्रदान करने वाले समस्त सेवा प्रदाताओं, आश्रय गृहो एवं चिकित्सा सुविधाओं की एक सूची तैयार करना,

(च) यदि व्यथित व्यक्ति ऐसी अपेक्षा करता है तो उसे एक सुरक्षित आश्रय गृह उपलब्ध कराना तथा व्यथित व्यक्ति को किसी आश्रय गृह में दाखिल करने की उसकी रिपोर्ट की एक प्रति पुलिस थाने को एवं उस क्षेत्र में जहाँ आश्रय गृह स्थित है, अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करना,

(छ) यदि उसने शारीरिक रूप से क्षति उठाई है तो उस व्यथित की चिकित्सीय जाँच करवाना तथा उस चिकित्सा रिपोर्ट की एक प्रति उस क्षेत्र में जहाँ घरेलू हिंसा घटित होने या अभिकथन किया गया है, आधिकारिता रखने वाले पुलिस थाने एवं मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करना

(ज) यह सुनिश्चित करना कि धारा 20 के अधीन आर्थिक राहत (मोनेट्री रिलीफ) के लिए आदेश की अनुपालना एवं निष्पादन, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973(2 ऑफ 1974) के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार किया गया है।

(झ) ऐसे अन्य कर्त्तव्य निष्पादित करना जो विहित किये जायेंगे।

18.3.8 राहतों के आदेश प्राप्त करने की प्रक्रिया

राहतों के आदेश प्राप्त करने की प्रक्रिया के विविध चरणों, पक्षों एवं पहलुओं का वर्णन अधिनियम के अध्याय चार में धारा 12 से 29 तक वर्णित की गई है जो निम्नांकित है-

धारा 12 मजिस्ट्रेट के समक्ष सम्बन्धित आवेदन प्रस्तुत करना

धारा 13 नोटिस की तामील की प्रक्रिया : इस धारा के प्रावधानों के अनुसार आवेदन-पत्र की सुनवाई की तारीख की सूचना मजिस्ट्रेट द्वारा संरक्षण अधिकारी को दी जायेगी। संरक्षण अधिकारी इस नोटिस की तामील प्रत्यर्थी पर विहित किये तरीके से तथा अन्य किन्हीं व्यक्तियों पर मजिस्ट्रेट द्वारा किये गये निर्देशों के अनुसार करवायेगा। जब तक विपरीत रूप में सिद्ध न हो, इस प्रकार की प्रत्यर्थी एवं अन्य व्यक्तियों पर नोटिस की तामील कराये जाने को सिद्ध हुआ माना जायेगा।

धारा 14 परामर्शन की सुविधा : यह धारा मजिस्ट्रेट की कार्यवाही की किसी भी स्टेज पर, प्रत्यर्थी या व्यथित व्यक्ति को अकेले या संयुक्त रूप से, सेवा प्रदाता के सदस्य के साथ परामर्श करने के लिए निर्देश दे सकेगा। यह परामर्श देनेवाला सेवा प्रदाता परामर्शन में ऐसी अर्हतायें एवं अनुभव रखेगा जो विहित किये जायेंगे। उपधारा (1) मजिस्ट्रेट इस प्रकार परामर्शन के लिए निर्देश देता है वह मामले की सुनवाई की अगली तारीख निश्चित करेगा जो दो माह से अधिक की नहीं होगी।

धारा 15 कल्याण विशेषज्ञों की सहायता: यह धारा प्रावधान करती है कि मजिस्ट्रेट इस अधिनियम के अधीन कार्यो के निर्वहन के लिए किसी कार्यवाही में किसी व्यक्ति या महिला की सहायता ले सकेगा। चाहे वह महिला व्यथित व्यक्ति की सम्बन्धी हो या नही।

धारा 16 कार्यवाही बंद कमरे में किए जाने का प्रावधान

धारा 17 सांझा घर में व्यथित को निवास करने का अधिकार

धारा 18 व्यथित को संरक्षण आदेश प्रदान करना

धारा 19. व्यथित को निवास का अधिकार

धारा 20 व्यथित को आर्थिक राहत किए जाने से सम्बन्धित है

धारा 21 अभिरक्षा आदेश से सम्बन्धित है

धारा 22. क्षतिपूर्ति आदेश दिये जाने से सम्बन्धित है।

धारा 23 व्यथित को एक पक्षीय अन्तरिम आदेश प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

धारा 24 व्यथित को न्यायालय आदेश प्रतियां निःशुल्क प्राप्त करने से सम्बन्धित

धारा 25 आदेशों की अवधि एवं उनमें परिवर्तन

धारा 26 अन्य वादों एवं कानूनी कार्यवाहियों में राहत

18.4 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम. 1989

यह अधिनियम भारत गणराज्य के चालीसवें वर्ष में माननीय संसद द्वारा पारित किया गया तथा राष्ट्रपति के अनुमोदन के बाद कानूनी प्रस्तुति 33 अधि. 1989 के आधार पर अस्तित्व में आया। इसका विस्तार जम्मु कश्मीर के अलावा सम्पूर्ण भारत में किया गया है।

18.4.1 विहंगावलोकन

इस अधिनियम में कुल चार अध्याय एवं 23 धाराएँ हैं पहला अध्याय परिचयात्मक प्रकृति का है तथा अधिनियम के शीर्षक एवं परिभाषाओं से सम्बन्ध रखता है। दूसरा अध्याय (धारा 3 से 9 तक) इस अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय में अत्याचार व अपराधों के दण्ड (धारा तीन) कर्त्तव्यों की उपेक्षा के लिए दण्ड (धारा चार) अपराध पुनरावृति के लिए दण्ड वृद्धि (धारा पांच) इस अधिनियम के सम्बन्ध मे भारतीय दण्ड संहिता की प्रांसगिकता (धारा छः) कतिपय व्यक्तियों की सम्पत्ति का समपहरण (forefeiture) अपराधों के बारे मे अवधारणा (धारा 8) जैसे महत्वपूर्ण पक्षों का इसमें समावेश किया गया है। अध्याय तीन अपराधियों को क्षेत्र विशेष से निष्कासित करने की प्रक्रिया से सम्बन्ध रखता है। अध्याय चार के अनुसार इस अधिनियम के अपराधों की अन्दीक्षण व द्रायल के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किये जाने का प्रावधान है। अध्याय पांच अधिनियम के विविध पक्षों एवं पहलुओं का वर्णन करता है।

18.4.2 प्रस्तावना

भारत में प्रचलित जाति व्यवस्था ने सामाजिक असंतुलन के अलावा अनुसूचित जाति एवं जनजातियों से जुडे लगेगों पर अत्याचार व अन्याय के ऐसे आधार बना दिये है जो किसी भी सभ्य समाज के लिए शर्मशार होने की स्थितियां पैदा करते है। समाज को जाति व्यवस्था की इस बुराई से मुक्त करने तथा इन जातियों को अन्याय व अत्याचार से मुक्ति दिलवाने के लिए भारतीय संदर्भो में सशक्त कानून को लागू करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 अधिनियमित किया गया है।

18.4.3 परिचयात्मक परिभाषाएँ

अधिनियम की धारा दो में महत्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख है।''अत्याचार विशेष न्यायालय विशेष लोक अभियोजन जैसी अवधारणाओं को परिभाषित किया गया है। अत्याचार की परिभाषा सबसे महत्वपूर्ण है। जिसका वर्णन धारा तीन के अन्तर्गत किया गया है'।

18.4.4 अत्याचार के अपराध

अत्याचार के अपराधों के लिए दण्ड (1) कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है-

i. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अखाद्य या मृणाजनक पदार्थ पीने या खाने के लिए मजबूर करेगा।

ii. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के परिसर या पड़ोस में मल-मूत्र कूड़ा-करकट, पशु-शव या कोई अन्य मृणाजनक पदार्थ इकट्ठा करके उसे क्षति पहुँचाने, अपमानित करने या क्षुअ करने के आशय से कार्य करेगा।

iii. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के शरीर से बलपूर्वक कपडे उतारेगा या उसे नंगा या उसके चेहरे या शरीर पर पोतकर घुमाएगा या उसी प्रकार का कोई अन्य कार्य ऐसा करेगा जो मानव के सम्मान के विरूद्ध है।

iv. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के स्वामित्वाधीन या उसे आवंटित या किसी सक्षम अधिकारी द्वारा उसे आवटित किये जाने के लिए अधिसूचित किसी भूमि को सदोष अधिभोग में लेगा या उस पर खेती करेगा या उसे आवंटित भूमि को अन्तरित करा लेगा।

v. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को उसकी भूमि या परिसर से सदोष कब्जा करेगा या किसी भूमि, परिसर या जल पर उसके अधिकारों के उपभोग में हस्तक्षेप करेगा।

vi. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को बेगार करने के लिए या सरकार द्वारा लोक प्रयोजन के लिए अधिरोपित किसी अनिवार्य सेवा से भिन्न अन्य समरूप प्रकार के बाल श्रम या बंधुआ मजदूरी के लिए विवश करेगा या फुसलायेगा।

vii. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को मतदान न करने के लिए या किसी विशिष्टि अभ्यर्थी के लिए मतदान करने के लिए या विधि द्वारा उपबन्धित से भिन्न रीति से मतदान करने के लिए मजबूर का अभित्रस्त करेगा

viii. अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य के विरूद्ध मिथ्या, द्वेषपूर्ण या तंग करने वाला वाद या दाण्डिक या अन्य विधिक कार्यवाही स्थापित करेगा।

ix. किसी लोक सेवक को कोई मिथ्या या तुच्छ जानकारी देगा और उसके द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को क्षति पहुंचाने या क्षुअ करने के लिए ऐसे लोक सेवक से उसकी विधिपूर्ण शक्ति का प्रयोग करायेगा।

x. जनता को दृष्टिगोचर किसी स्थान में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य का अपमान करने के आशय से उसको अपमानित या अभित्रस्त करेगा।

xi. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला का अनादर करने या उसकी लज्जा भंग करने के आशय से हमला या बल प्रयोग करेगा।

xii. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की महिला की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति होने पर उस स्थिति का प्रयोग उसका लाकक शोषण करने के लिए, जिसके लिए वह अन्यथा सक्ष्मत नहीं होती, करेगा।

xiii. किसी स्रोत, जलाशय या किसी अन्य उद्गम के जल को या आम तौर पर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्यों द्वारा उपभोग में लाया जाता है, दूषित या गन्दा करेगा जिससे कि वह उस प्रयोजन के लिए कम उपयुक्त हो जाए जिसके लिए उसका आमतौर पर प्रयोग किया जाता है।

xiv. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को सार्वजनिक अभिगमन के स्थान के मार्ग के किसी रूढिज्य अधिकार से वंचित करेगा या ऐसे सदस्य को बाधा पहुंचाएगा जिससे कि वह ऐसे सार्वजनिक अभिगमन के स्थान का उपयोग करने या ऐसे सदस्य को बाधा पहुंचाएगा जिससे कि वह ऐसे सार्वजनिक अभिगमन के स्थान का उपयोग करने या वही पहुंचने से निवारित हो जाये वहाँ जनता के अन्य सदस्यों या उसके किसी भाग को उपयोग करने- की या पहुंचाने का अधिकार है।

xv. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अपना मकान, गांव या अन्य निवास छोडने के लिए मजबूर करेगा या करायेगा।

18.4.5 निष्कासन

अधिनियम का अध्याय चार धारा 10 से 13 तक दोषी व्यक्तियों के क्षेत्र विशेष से निष्कासन से सम्बन्धित है। यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसका वर्णन निम्नानुसार है-

(1) जहाँ विशेष न्यायालय का परिवाद या पुलिस रिपोर्ट पर यह समाधान हो जाता है कि सम्भावयता है कि कोई व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 244 में यथानिर्दिष्ट अनुसूची क्षेत्रों या जनजाति क्षेत्रों में सम्मिलित किसी व्यक्ति को यह निर्देश दे सकेगा कि वह ऐसे क्षेत्र की सीमाओं से परे, ऐसे मार्ग से होकर इतने समय भीतर हट जाए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं और दो वर्ष से अनधिक ऐसे अवधि के लिए जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, उस क्षेत्र में जिससे हट जाने का उसे निर्देश दिया गया था, वापस न लौटे।

किसी व्यक्ति द्वारा सम्बन्धित क्षेत्र से हटने में असफल रहने और वहाँ से हटने के पश्चात उसमें प्रवेश करने की दशा में प्रक्रिया - (1) यदि कोई व्यक्ति जिसकी धारा 10 के अधीन किसी क्षेत्र से हट जाने के लिए कोई निर्देश जारी किया गया है-

(क) निर्देश दिए गये रूप में हटने में असफल रहता है, या

(ख) इस प्रकार हटने के पश्चात उपधारा न्यायालय की लिखित आनुज्ञा के बिना उस क्षेत्र में ऐसे आदेशों में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर प्रवेश करता है तो विशेष न्यायालय उसे गिरफ्दार करा सकेगा और उसे उस क्षेत्र के बाहर ऐसे स्थान पर, जो विशेष न्यायालय विनिर्दिष्ट करे, पुलिस अभिरक्षा में हटवा सकेगा।

18.4.6 विशेष न्यायालय

अध्याय चार की धारा 14 व 15 में इस अधिनियम के अपराधों की विचारणा के लिए विशेष न्यायालय एवं विशेष लोक अभियोजन बनाने का प्रावधान किया गया है।

विशेष न्यायालय:- राज्य सरकार, शीघ्र विचारण का उपबन्ध करने के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए प्रत्येक जिले के लिए एक सेशन न्यायालय को विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट करेगी।

विशेष अभियोजक- राज्य सरकार प्रत्येक विशेष न्यायालय के लिए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा एक लोक अभियोजक विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे अधिवक्ता को, जिसने कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय किया हो उस न्यायालय में मामलों के संचालन के प्रयोजन के लिए विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी।

18.5 सारांश

राजकीय कार्य बुनियादी तौर पर नागरिक हितों के संरक्षण के उद्देश्य से प्रेरित होते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण तथा अनुसूचित जाति तथा जनजाति अधिनियम अधिनियमित किये गये है।

सूचना का अधिकार नियम : कुल छः अध्यायों में विभक्त है, जिनमें कुल 31 धाराएँ एवं दो अनुसूचियां है। प्रथम ध्याय प्रारम्भिक प्रकृति का है जिसमें अधिनियम का नाम, विस्तार तथा प्रारम्भ की तिथि दी गई है। इसके अलावा महत्वपूर्ण परिभाषाओं को भी स्पष्ट किया गया है। अध्याय दो सूचना का अधिकार और प्राधिकारी दो की बाध्यताओं से सम्बन्धित है, तथा इसमें धारा 3 से 11 तक का समावेश किया गया है। अध्याय तीन (धारा 12- 14) केन्द्रीय सूचना आयोग तथा अध्याय चार (धारा 15- 17) राज्य सूचना आयोग के गठन, सेवा शर्तो तथा अधिकारियों की नियुक्त एवं इनको हटाने से सम्बन्ध रखता है। अध्याय पांच (धारा 18-20) में सूचना आयोगों की शक्तियों, कृत्य, अपील और शास्तियों का वर्णन किया गया है। अध्याय छः में (धारा 21 -31) प्रकीर्ण शीर्ष के अन्तर्गत विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है।

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम : पांच अध्यायों में विभक्त है, जिनमें कुल 37 धाराओं के माध्यम से अधिनियम के विभिन्न पक्षों, पहलुओं एवं प्रावधानों का वर्णन किया गया है। अध्याय एक प्रारम्मिक प्रकृति का है, जिसमें महत्वपूर्ण परिभाषाओं का समावेश किया गया है। अध्याय दो घरेलू हिंसा को विस्तार से परिभाषित करता है। अध्याय तीन संरक्षण अधिकारियों तथा सेवा प्रदाताओं की शक्तियाँ एवं कर्त्तव्यों से सम्बन्धित है। अध्याय चार पीड़ित महिला को प्रदान किये जाने वाली राहतों की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित हैं। अध्याय पांच अधिनियम के विविध पक्षों एवं पहलुओं का वर्णन करता है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम : कुल चार अध्याय एवं 23 धाराएँ हैं पहला अध्याय परिचयात्मक प्रकृति का है तथा अधिनियम के शीर्षक एवं परिभाषाओं से सम्बन्ध रखता है। दूसरा अध्याय (धारा 3 से 9 तक) इस अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय में अत्याचार व अपराधों के दण्ड (धारा तीन) कर्त्तव्यों की उपेक्षा के लिए दण्ड (धारा चार) अपराध पुनरावृर्ति के लिए दण्ड वृद्धि (धारा पांच) इस अधिनियम के सम्बन्ध मे भारतीय दण्ड संहिता की प्रांसगिकता (धारा छः) कतिपय व्यक्तियों की सम्पत्ति का समपहरण (forfeiture) अपराधों के बारे मे अवधारणा (धारा 8) जैसे महत्वपूर्ण पक्षों का इसमें समावेश किया गया है। अध्याय तीन अपराधियों को क्षेत्र विशेष से निष्कासित करने की प्रक्रिया से सम्भ्न्द रखता है। अध्याय चार के अनुसार इस अधिनियम के अपराधों की अन्वीक्षण व ट्रायल के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किये जानेका प्रावधान है। अध्याय पांच अधिनियम के विविध पक्षों एवं पहलुओं का वर्णन करता हैं।

18.6 अभ्यास प्रश्न

1 सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 को क्यो अधिनियमित किया गया है? इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए, इस अधिनियम के महत्वपूर्ण प्रावधानों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2 घरेलू हिंसा से क्या तात्पर्य है? इस प्रकार के प्रकरणों के सम्बन्ध में घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 में क्या प्रमुख प्रावधान किए गये हैं?

3 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) 1989 में वर्णित अत्याचार के अपराधों पर सारगर्भित एवं विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

18.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005

2 घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

3 अनुसूचित जाति और जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

इकाई - 19

विधि एवं पर्यावरण

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 जल पर्यावरणीय कानून

19.3 ध्वनि प्रदूषण एवं कानून

19.4 वायु प्रदूषण और कानून

19.5 जमीनी प्रदूषण और कानून

19.6 वन संरक्षण और कानून

19.7 पर्यावरण सुधार और संरक्षण हेतु कुछ अन्य कानून

19.8 सारांश

19.9 अभ्यास प्रश्न

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप. -

- पर्यावरण व कानून सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।
- जल पर्यावरणीय कानूनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- जल प्रदूषण की रोकथाम में नागरिकों की भूमिका को समझ सकेंगे।
- पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के।विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण व जमीनी प्रदूषण से सम्बन्धित विभिन्न कानूनों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- पर्यावरण सुधार और संरक्षण हेतु लागू अन्य कानूनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

आइन्सटाइन ने पर्यावरण को परिभाषित किया'मेरे अलावा सब कुछ"। पर्यावरण की मानव जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। मनुष्य जीवन पर्यावरण पर टिका है। मनुष्य स्वयं ऐसा प्राणी है जो अपने पर्यावरण को स्वस्थ बनाये रख सकता है। इसके लिए भी कानून का सम्बल आवश्यक है। भारत में पर्यावरण के बचाव और संरक्षण के लिए अनेक कानून बने हुए हैं। जल वायु ध्वनि, जमीनी प्रदूषण के विरूद्ध पर्यावरण संरक्षण के लिए कानून हैं।

19.2 जल पर्यावरणीय कानून

जल पर्यावरणीय कानून निम्नांकित हैं।

1. तटीय क्षोभकारी एक्ट, 1853 (shore nuisance act, 1853)
2. ओरियन्टल गेस कम्पनी एक्ट 1857
3. नोर्थ केनाल एंड ड्रेनेज एक्ट 1853
4. इंडियन पीनल कोड 1860
5. ईजमेन्ट एक्ट 1882

6. इंडियन बोइलर्स एक्ट 1897
7. फिशरीज एक्ट 1897
8. फेक्ट्रीज एक्ट 1948
9. रीवर बोर्ड्स एक्ट 1956
10. वाटर एक्ट 1974
11. एनवायरनमेन्ट प्रोटेकान एक्ट 1986

उपयुक्त अधिनियमों में, 1974 में पारित वॉटर एक्ट सबसे महत्वपूर्ण है जो देश के जलस्रोत के बचाव और संरक्षण के लिए प्रयुक्त होता रहा हैं। अधिकारी चाहें तो फेक्टी विशेष की विद्युत और जल सप्लाई को काट सकते हैं यदि वह जल पर्यावरणीय नियमों की अवहेलना करे।

इन नियमों के अन्तर्गत कोई भी फैक्ट्री जलस्रोत/जलाशयों में प्रदूषण उत्पन्न करने वाले पदार्थ नहीं डाल सकती। इसमें दंड का भी प्रावधान है जैसे जुर्माना और 7 वर्ष तक का कारावास। 1986 से पहले, स्टेट बोर्ड्स द्वारा प्रदूषण फेलाने वाले के विरूद्ध आपराधिक कार्यवाही की जाती थी। 1986 में अधिनियम में संशोधन के बाद, बोर्ड्स को अतिरिक्त शक्तियाँ प्रदान की गयी। अब वे प्रशासनिक आदेश द्वारा फेक्ट्रीज की जल और विघ्यूत आपूर्ति को काट सकते हैं।

19.2.1 पोल्यूशन कंट्रोल बोर्ड्स

अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय और राज्य सरकारें क्रमश: केन्द्रीय और राज्य कंट्रोल बोर्ड अपनी शक्तियों को क्रियान्वित करने को अधिकृत करती हैं। ये कंट्रोल बोर्ड, केन्द्रीय और राज्य स्तरीय है। स्टेट बोर्ड का मुख्य कार्य राज्यों में कुओं तथा नदियों की स्वच्छता को बढावा देना है। यह बोर्ड केन्द्र सरकार को जल प्रदूषण की रोकथाम एवं नियंत्रित के लिए परामर्श देता है, राज्य सरकारों को इस कार्य में सहयोग देता है तथा देशभर में जल प्रदूषण के विरूद्ध संचालित विभिन्न परियोजनाओं और कार्यक्रमों की सूचना प्रसारित करता है।

स्टेट बोर्ड, इसके अतिरिक्त स्विवेज तथा वाणिज्यिक जल प्रवाह के सिस्टम का निरीक्षण कर सुधार मरम्मत करा सकता है। स्टेट बोर्ड द्वारा अधिकृत व्यक्ति किसी भी कारखान में प्रवेश कर सकते हैं और दस्तावेजों को चेक कर सकते हैं।

यह अधिनियम किसी भी व्यक्ति को जानबूझ कर जहरीला पदार्थ किसी भी जलाशय में डालने या उसकी इजाजत देने को निषिद्ध करता है। कोई भी व्यक्ति जल प्रवाह को नहीं रोक सकता।

इस प्रकार के अनाधिकृत कार्य के लिए दोषी को डेढ़ वर्ष से छ: वर्षो तक कारावास तथा जुर्माना हो सकता है। कोई भी फैक्ट्री नयी नाली/नाला बनाकर किसी जलाशय में प्रदूषक पदार्थ को नहीं बहा सकती। बोर्ड की पूर्वानुमति के बगैर, कोई भी व्यक्ति ऐसा कोई उद्योग स्थापित नहीं कर सकता जिसके कारण प्रदूषण उत्पन्न होता हो।

19.2.2 नागरिक और वाटर एक्ट

यह स्पष्ट है कि वाटर एक्ट 1974 में जलस्रोत के संरक्षण के लिए बहुत कुछ प्रावधान है। इस अधिनियम की शक्तियों को उपयोग करने के लिए केन्द्रीय और राज्य पोलूसन कन्ट्रोल बोर्ट्स को अधिकृत किया गया है।

जहां तक नागरिकों का प्रश्न है क्या वे पूर्णरूपेण अपनी शक्तियों के प्रयोग के लिए इन बोर्ड्स पर निर्भर हैं। अधिनियम की धारा 49 के तहत, न्यायालय किसी भी नागरिक की शिकायत के खिलाफ संज्ञान ले सकता है। इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि नागरिक सीधे न्यायालय में ही शिकायत

करें यदि जल प्रदूषण का अपराध किया गया है। इसलिए नागरिकों को जलाशयों, कुओं, तालाबों, नदी-नालों पर निगाह रखना चाहिए। यदि इनमें प्रदूषण होता पाया जाये तो नागरिक नियम 35 वाटर रूल्स 1975 के तहत नोटिस दे सकते है। 1923 इण्डियन पीनल कोड तथा जल प्रदूषण

इंडियन पीनल कोड में जो 1860 से लागू हुआ जलप्रदूषण की रोकथाम के लिए विभिन्न प्रावधान हैं। धारा 277 के तहत सार्वजनिक उपयोग में आने वाले जलाशय को कोई गन्दा करता है और उसे उपयोग करने लायक नहीं छोड़ता है तो उसका अपराध तीन माह के कारावास या जुर्माना से दंडनीय है। धारा 288 के तहत कोई व्यक्ति सार्वजनिक स्थान में जल प्रदूषण के कारण नुकसान पहुंचाता है तो वह अपराधी है। धारा 267,270,278,384,336,337,338,425,426,430,431,432 में इंडियन पीनल कोड जल प्रदूषण के कृत्य को अपराध करार देता है हालांकि उपर्युका धाराओं में परिभाषित अपराध 120 के अ-संज्ञानीय अपराध है। इसलिए पुलिस सीधी कार्यवाही (बिना वारन्ट के गिरफ्तारी) करने में अक्षम है। सिर्फ सक्षम न्यायालय इन मामलों में रजिस्ट्रेशन करवाने तथा तफ्तीश का आदेश दे सकता है।

19.2.4 क्रीमिनल प्रोसीजर कोड 1973 तथा जल प्रदूषण

क्रीमिनल प्रोसीजर कोड की धारा 133 में यह प्रावधान है कि जल प्रदूषण के उत्पन्न संकट परेशानी का निवारण कार्यकारी मजिस्ट्रेट कन्डीशन आदेश पारित करके कर सकता है। इस धारा के तहत पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट पर जिला मजिस्ट्रेट, उइ01ऐर्पी या कोई भी कार्यकारी मजिस्ट्रेट जल प्रदूषण में उत्पन्न संकट निवारण हेतु कंडीशनल आदेश दे सकता है। किसी भी सिविल कोर्ट में मजिस्ट्रेट के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती है। इसी तरह धारा 144 (क्रीमिनल प्रोसीजर कोड) के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट अर्जेन्ट खतरनाक मामलों में निवारण हेतु आदेश दे सकता है।

19.2.5 IPIC तथा Cr. PC के तहत जल प्रदूषण की रोकथाम में नागरिकों की भूमिका

जैसा कि ऊपर जिक्र किया जा चुका है, IPC में प्रावधान किया गया है कि प्रासंगिक धारा में मामला दर्ज करवा कर जल प्रदूषण रोका जा सकता है। यद्यपि पुलिस तो सीधी कार्यवाही नहीं कर सकती परन्तु सक्षम कोर्ट में प्रार्थना पत्र दिया जा सकता है।

19.2.6 एनवायरमेन्ट प्रोटेक्शन एक्ट (EPA), 1988

स्वतंत्रता के बाद पारित पर्यावरण संरक्षण हेतु यह अधिनियम बहुत महत्वपूर्ण है इसमें पर्यावरण के हर पक्ष को सम्मिलित किया गया है तथा इसमें जल को प्रमुखता दी गई है। कोई भी व्यक्ति जो जल प्रदूषण का दोषी है, वह 5 वर्ष के कारावास तथा/या 1 लाख रुपये के जुर्माने से दंडित किया जा सकता है। यदि प्रदूषण जारी रहता है तो अतिरिक्त 5000 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से दोषी व्यक्ति से वसूला जा सकता है। यह प्रावधान सरकारी विभागों तथा कम्पनियों पर भी लागू है। धारा 7 (EPA) 1986 के अनुसार प्रत्येक उद्योग और निर्माणाधीन इकाई के लिए अनिवार्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि उसके द्वारा उत्सर्जित पदार्थ में सामान्य और हानिरहित मात्रा से अधिक प्रदूषक तत्व विद्यमान नहीं है।

19.2.7 नागरिक और EPA

EPA,1966 का महत्वपूर्ण प्रावधान हैं कि कोई भी व्यक्ति पोल्युसन कंट्रोल बोर्ड को नोटिस दिये जाने के बाद 2 माह की अवधि के अन्दर अन्दर सीधा न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि आम आदमी जो जल प्रदूषण के निराकरण हेतु न्यायालय से गुहार करने

का अधिकार है। फेक्ट्रीज एक्ट 1948 में धारा 12 में जल प्रदूषण की रोकथाम का प्रावधान है। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक फेक्ट्री मालिक के लिए अनिवार्य है कि वह फेक्ट्री की औद्योगिक प्रक्रिया में उत्पन्न प्रदूषक पदार्थो को उचित तरीके से रफा दफा करे। सम्बन्धित विभाग के अधिकारी ऐसा न करने पर उसके विरूद्ध कानूनी कार्यवाही कर सकते है। फिशरीज एक्ट 1897 के मुताबिक मछली मारने में डाइनेमाइट या अन्य विस्फोटक का प्रयोग निषिद्ध है। किसी भी व्यक्ति को जो जहरीले रसायन पदार्थ का मछली में उपयोग करता है, दंडित किया जा सकता है। इस तरह के मामले में यदि दोषी अपना पता ठिकाना नहीं बतलाता है पुलिस उसे गिरफ्तार कर सकती है।

19.3 ध्वनि प्रदूषण एवं कानून

शोर से अभिप्राय अवांछनीय तेज अप्रिय आवाज से है। एक व्यक्ति के लिए जो शोरगुल है, वह दूसरे के लिए संगीत हो सकता है। जो व्यक्ति अध्ययन में एकाग्र होने का प्रयत्न कर रहा हो, उसके लिए संगीत भी शोर है। यदि कोई ध्वनि किसी के जीवन में खलल डालती है तो वह शोर है।

19.3.1 कानून और ध्वनि प्रदूषण

वैसे तो भारत में ध्वनि प्रदूषण को लेकर अलग से कानून नहीं है परन्तु इसके नियंत्रण के प्रावधान विभिन्न कानूनों में उपलब्ध है जो समय समय पर पारित किये गये हैं। पुलिस एक्ट 1661 के तहत, पुलिस सुपरिटेंडेंट को उत्सव और त्यौहारों के अवसरों पर जुलूस और सम्मेलन आदि को सड़कों/सार्वजनिक स्थानों पर व्यवस्थित करने के लिए अधिकृत किया गया है। उसके आदेशों की अवहेलना दंडनीय है। भारतीय दंड संहिता 1860 धारा 268 में सार्वजनिक रूप से हंगामा करने तथा जनता नुकसान पहुंचाने या चोट पहुंचाने के विरूद्ध प्रावधान है। ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ कानूनी की जा सकती है जो तेज शोर गुल मचाते है और पड़ोस में लोगों की नींद और चैन अमन में खलल डालते हैं। सीआरपीसी. 1973 धारा 133 के अन्तर्गत ध्वनि प्रदूषण के मामले जल प्रदूषण के मामलों की तरह कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा निस्तारणीय है। मोटर व्हीकल एक्ट 1988 में भी ध्वनि प्रदूषण के विरूद्ध प्रावधान है।

सेंट्रल मोटर व्हीकल रूल्स 1989 की धारा 119(1) के अनुसार यह अनिवार्य है कि हर वाहन पर ब्यूरों ऑफ इंडियन स्टेण्डर्ड द्वारा मान्य स्तर का इलेक्ट्रिक होर्न लगा हो। आजकल सामान्यता गाड़ियों पर जिस तरह के होर्न लगे होते है उनसे बहुत कर्कश कर्णकटु आवाज होती है।

धारा 120(1) के तहत, हर वाहन में साइलेन्सर फिट होना चाहिए। इससे इंजन में उत्पन्न आवाज की कर्कश तीव्रता कम होती है।

मोटर व्हीकल एक्ट, 1988 के अन्तर्गत ध्वनि प्रदूषण के दोषी दंडनीय है।

19.3.2 एनवायरमेन्ट प्रोटेक्शन एक्ट तथा ध्वनि प्रदूषण

EPA, 1986 तथा एनवायरमेन्ट प्रोटेक्शन रूल्स के अन्तर्गत, केन्द्र सरकार ने ध्वनि प्रदूषण (नियमन और नियंत्रण) रूल्स 2000 पारित किये हैं। इसके नियम 13 में अलग-अलग क्षेत्रों में ध्वनि अलग-अलग डिग्री निश्चित की है।

एरिया कोड	क्षेत्र की श्रेणी	DBCA की सीमा	
		दिन में	रात में
A	औघयोगिक क्षेत्र	75	70
B	वाणिज्य क्षेत्र	65	55
C	रिहायशी क्षेत्र	55	45

D	शांत क्षेत्र	50	40

DB से अभिप्राय'डेसीबल' से है जो ध्वनि की तीव्रता मापन की यूनिट है दिन से तात्पर्य प्रात: 6 बजे से सायं 10 बजे तक रात्रि में तात्पर्य सायं 10 बजे से प्रात: 8 बजे तक है। अस्पताल, विद्यालय, अदालत परिसरों के 100 मीटर का क्षेत्र शान्त क्षेत्र कहलाता है। नियम लाउड स्पीकर्स और माइक का प्रयोग भी अधिकारियों की पूर्वानुमति के निषेध हैं। मीटिंग हाल कम्यूनिटी हॉल, ओडिटोरियम सम्मेलन कक्ष इत्यादि को छोड़ अन्य जगहों पर रात्रिकाल में लाउडस्पीकर/माइक का प्रयोग वर्जित है। शान्त क्षेत्रों में भी यह वर्जित है और दंडनीय है।

1. जोर से संगीत बजाना, तथा माइक का प्रयोग करना
2. ढोल, बिगुल, शंखनाद इत्यादि करना
3. तीव्र संगीत (आर्केस्ट्रा) जैसा प्रदर्शन करना।

नियमानुसार राज्य प्रशासनिक अधिकारियों से शिकायत की जा सकती है।

महाराष्ट्र जैसे राज्यों में पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट कमीश्नर पुलिस ध्वनि नियंत्रक के उल्लंघन के मामलों में निस्तारण हेतु समर्थ अधिकारी घोषित किये गये हैं। यह एक महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि पड़ोस में बेहद शोरगुल होने की स्थिति में नागरिक सीधे ही अधिकारियों के पास शिकायत दर्ज करा सकते हैं।

19.4 वायु प्रदूषण और कानून

आधुनिक समय में वायु प्रदूषण सबसे बड़ी समस्या हो गयी है। विशेषकर शहरी क्षेत्रों में तो यह बहुत ज्यादा है। ओजोन परत में छिद्र होना, तेजाब की वर्षा की आशंका तथा वायु प्रदूषण का प्राणियों पर कुप्रभाव चर्चित है। वायु प्रदूषण के नियंत्रण सम्बन्धी नियम निम्नांकित हैं. एयर पोल्युशन (प्रिवेन्दान एंड कंट्रोल) एक्ट वायु प्रदूषण से संरक्षण का अग्रणी कानून है। इस अधिनियम के तहत राज्य और केन्द्र के स्तर पर पोल्यूशन कंट्रोल बोर्ड स्थापित किये गये हैं। इन बोर्ड्स को अधिकृत किया गया है कि वे वायु प्रदूषण को नियंत्रित कर पर्यावरण को स्वच्छ रखें। वे वायु की स्वच्छता के मानक तय कर समय समय पर डाटा प्रकाशित करें। इस अधिनियम की धारा 19 के तहत राज्य सरकार किसी भी क्षेत्र को नियंत्रित क्षेत्र घोषित कर सकती है। एक बार कोई स्थान नियंत्रित क्षेत्र घोषित हो जाने पर वहाँ कोई बोर्ड की पूर्वानुमति के कोई ओद्योगिक उपक्रम प्रारंभ नहीं हो सकता। बोर्ड के अधिकारी किसी भी ओद्योगिक परिसर में दाखिल होकर मौका मुआइना करने को अधिकृत हैं। बोर्ड समय-समय पर वातावरण की स्वच्छता के लिए निर्देश दे सकता है।

स्वच्छता के मानकों के उल्लंघन के फलस्वरूप औद्योगिक इकाई की जल और विघ्यूत आपूर्ति ठप्प की जा सकती है। इस अधिनियम में दंड कठोर है : दोषी व्यक्ति को 6 माह तक का कारावास हो सकता है। यह दंड कम्पनियों तथा सरकारी विभागों में भी लागू है। बोर्ड को नोटिस देने के उपरान्त 2 माह के अन्दर अन्दर आम नागरिक अदालत का द्वार खटखटा सकता है। कोई भी व्यक्ति बोर्ड द्वारा वायु प्रदूषण अनदेखी करने पर अदालत में शिकायत प्रस्तुत कर सकता है।

इण्डस्ट्रीज (डिवेलपमेन्ट एंड रेगुलेशन) एक्ट 1957 के तहत कोई भी औद्योगिक इकाई बिना लायसेन्स कार्य नहीं कर सकती। लाइसेन्स देते वक्त सरकार, वायु प्रदूषण के बारे में उसे सावचेत कर शर्तें थोप सकती हैं। फैक्ट्रीज एक्ट 1948 में अनिवार्य रूप से प्रावधान है कि कोई भी फेक्ट्री मालिक पहले फेक्ट्री में से उत्सर्जित धुहां को ठिकाने लगाये ताकि कार्यरत श्रमिकों के स्वास्थ्य को नुकसान न हो। बोइलर्स एक्ट 1923 में बोइलर्स के निमार्ण और अवस्थित करने पर काफी निर्देश दिये गये हैं। इन निर्देशों के उल्लंघन पर जुर्माना हो सकता है।

खदानों की कोई भी गतिविधि वायु प्रदूषण पैदा करती है। किसी भी खदान के कार्य हेतु माइन्स एक्ट 1947 के अनुसार अनिवार्य रूप से लाइसेन्स लिया जाना जरूरी है। खदान का लाइसेन्स देते समय सक्षम अधिकारी को सन्तुष्ट किया जाना आवश्यक है कि कम से कम वायु प्रदूषण होगा। भारतीय दंड संहिता 1960 में अनेक प्रावधान है जो वायु प्रदूषण से संरक्षण हेतु प्रयुक्त हो सकते हैं। धारा 268,269, 270,178,284,337,338,425,426 वातावरण संरक्षण हेतु प्रयुक्त हो सकती हैं। सीआरपीसी. (1973) की धारा 133 और 144 भी वायु प्रदूषण के नियंत्रण में प्रभावी ढंग से उपयोग में लाई जा सकती हैं। यद्यपि इनकी इबारत में प्रदूषण शब्द का इस्तेमाल नहीं किया गया है परन्तु ये सभी प्रकार के प्रदूषण को संदर्भित करती है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, इन मामलों में कार्यकारी मजिस्ट्रेट से सीधा सम्पर्क किया जा सकता है। एनवायरमेन्ट प्रोटेक्शन एक्ट 1986 में दोषी व्यक्ति के लिए 5 वर्ष तक का कारावास या 1 लाख रूपये तक का जुर्माना है यदि वह वायु प्रदूषित करता है। यह सरकार विभागों तथा कम्पनीज पर लागू है। यह इस अधिनियम के तहत अनिवार्य है कि प्रत्येक उद्योगपति वायु प्रदूषण के मर्यादित स्तर का निर्वाह करे।

मोटर वाहन से उत्सर्जित वायु प्रदूषण का विधिक समाधान मोटर व्हीकल एक्ट 1988 तथा 1989 में वर्णित है। असुरक्षित स्थिति में वाहन चलाना दंडनीय है। असुरक्षित वाहन से अभिप्राय वायु प्रदूषण उत्सर्जित करने वाले वाहन से है। धारा 115 के तहत कहा गया है कि एक निश्चित सीमा से ज्यादा वाहन वायु प्रदूषण उत्सर्जित नहीं करें। प्रत्येक वाहन में इस आशय का PVC प्रमाण पत्र उपलब्ध होना चाहिए वह जरूरत से ज्यादा वायु उत्सर्जित नहीं करता है। इसकी दंड व्यवस्था धारा 190 में उल्लेखित है। एक्सप्लोजिव सब्सटान्स एक्ट 1908 में यद्यपि वायु प्रदूषण का जिक्र नहीं है परन्तु इस संदर्भ में भी यह प्रयुक्त हो सकती है।

19.5 जमीनी प्रदूषण और कानून

यह चौथी प्रकार का पर्यावरणीय प्रदूषण है। जब कोई प्रदूषण उत्पन्न करने वाला पदार्थ लम्बे समय तक किसी जगह पड़ा रहता है तो वह जमीन की उर्वरकता को नष्ट कर देता है। वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाता है। उदाहरण जगह जगह बिखरी पड़ी पोलिथीन की थेलिया जल और थल का प्रदूषण उत्पन्न करती है।

जमीनी प्रदूषण और कानून

भारतवर्ष में जमीनी प्रदूषण के विरूद्ध अलग से कानून नहीं है। परन्तु लव ऑफ टोर्ट्स इत्यादि इसके मामलों में प्रयुक्त हो सकता है। लॉ ऑफ टोर्ट्स किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके अधिकारों का हनन हुआ हो राहत देता हैं। व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का चैन अमन से उपभोग कर सकता है। सिविल प्रोजीसर कोड 1908 के तहत ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध स्थगन आदेश पारित किया जा सकता है जो जमीनी प्रदूषण का दोषी पाया जाये। फोरेस्ट एक्ट 1927 वन सम्पदा के संरक्षण का पक्षधर है। फोरेस्ट कन्जरवेशन एक्ट 1980 वन-वृक्षों की कटाई निषिद्ध है। यह केन्द्र सरकार द्वारा नियंत्रित है।

19.6 वन संरक्षण और कानून

किसी भी क्षेत्र की वन सम्पदा वहाँ के पर्यावरण की निधि है। वाणिज्यिक उद्देश्य से वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई पर्यावरण को भारी क्षति पहुंचाती है। इस संदर्भ में कुछ कानून निम्नांकित है :-

19.6.1 इंडियन फोरेस्ट एक्ट (1928)

इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई भी वन क्षेत्र रिजर्वड (आरक्षित) घोषित हो सकता है। इन क्षेत्रों में शिकार करना, वृक्ष काटना, आग लगाना. मिट्टी के पत्थरों का खनन, वन क्षेत्र में खेती करना

वर्जित है। इस अधिनियम के उल्लंघन पर दोषी व्यक्ति को 6 माह तक का कारावास या जुर्माना हो सकता है। कोई भी पुलिस अधिकारी वन अधिकारी अधिनियम के उल्लंघन पर कानूनी कार्यवाही कर सकता है। वे व्यक्ति की तलाशी ले सकते है सामान जब्त कर सकते है और बिना वारन्ट के गिरफ्तार भी कर सकते हैं। अधिनियम के प्रभावी होने के लिए आवश्यक है कि हर नागरिक घोषित आरक्षित वन्य क्षेत्र में इसके उल्लंघन होने पर पुलिस/वन अधिकारी को सूचित करे फोरेस्ट कंजरवेशन एक्ट (1980) देश की वन सम्पदा के संरक्षण हेतु ही बनाया गया है। इस अधिनियम के तहत, राज्य सरकार को केन्द्रीय सरकार से वन्यभूमि को किसी संस्था/संगठन को लीज पर देने या अन्य उपयोग करने से पहले अनुमति लेना आवश्यक है। ऐसे मामलों में उच्च स्तरीय केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड फोरेस्ट कन्जरवेशन एक्ट के तहत समीक्षा करता है। इस अधिनियम के तहत दोषी व्यक्ति को 15 दिन तक का कारावास हो सकता है। फोरेस्ट कन्जरवेशन एक्ट 2003 में अनेक नियम बनाये गये हैं। केटल ट्रेसपास एक्ट 1871 के मुताबिक पशुओं की गतिविधि से वन्य क्षेत्र को नुकसान नहीं किया जा सकता है। इसमें प्रावधान है कि अतिक्रमी जानवरों को पकड़ लिया जावे। जिला मजिस्ट्रेट, पुलिस/वन अधिकारी कार्यवाही करने के लिए अधिकृत हैं।

वन्य पशु जीवन वन्य क्षेत्र का प्रमुख आयाम है। वन्य पशु जीवन के संरक्षण हेतु भी न्यिम बने हुए है। वाइल्ड लाइफ कन्जरवेशन 1972 एक्ट एक महत्वपूर्ण अधिनियम है। इस अधिनियम में वन्य पशुओं, पक्षियों और पेड़ पौधों के संरक्षण की बात कही गयी है। वन्य पशुओं का शिकार और पेड़ पौधों की क्षति वर्जित हैं। इस सैंचुअरी (वन्य जीव अभयारण्य) या निषिद्ध क्षेत्र घोषित किया जा सकता है। सरकार को उपर्युक्त क्षेत्र घोषित करने, तथा वन्य जीवन और पेड़ पौधों पर विमर्श हेतु वाइल्ड लाइफ एडवाइजरी बोर्ड स्थापित किया गया है। अधिनियम में वाइल्ड लाइफ सेंचुअरीज (अभयारण्य), नेशनल पार्क तथा निषिद्ध वन क्षेत्रों के संरक्षण हेतु अनेक बन्दिशे तय की गयी हैं। वन्य जीवन के उत्पाद की तिजारत वर्जित है। पुलिस और वनविभाग के अधिकारी किसी भी सन्दिग्ध/दोषी की तलाशी लेने, समान जब्त कापे और गिरफ्तारी के लिए अधिकृत है। आम आदमी को अधिकार है कि वह बोर्ड/समर्थ अधिकारी को नोटिस देने के 2 माह के अन्दर अन्दर अदालत में शिकायत कर सकता है। भारत के वन्य जानवरों, पक्षियों और पौधों की सूची बहुत लम्बी है। द एलीफेन्ट्स प्रिजर्वेशन एक्ट (1879) हाथियों के पकड़ने और मारने को वर्जित करता है। इसके लिए कारावास तथा जुर्माने का प्रावधान है। जैसा कि निर्णय किया गया, स्टोक हागम में 1972 में आयोजित यूनाइटेड नेशन्स कॉन्फ्रेंस में भाग लेने वाले प्रत्येक देश ने पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रतिबद्धता जाहिर की। भारत में 1986 में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम पारित किया गया है। यह पर्यावरण संरक्षण के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिनिमय है। इसके अन्तर्गत नागरिकों को इसके उल्लंघन होने पर शिकायत करने का अधिकार दिया गया है तथा दाषी व्यक्ति के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया है।

इस अधिनियम की धारा 2 (अ) के अन्तर्गत, पर्यावरण में जल, वायु, जमीन तथा इनके अन्तसम्बन्धों को, मनुष्यों अन्य जीवों पेडद्व-पौधों, कीड़े-मकोड़ों तथा प्राकृतिक सम्पदा को सम्मिलित किया गया है। पर्यावरणीय प्रदूषक पदार्थ ठोस द्रव और गैस के रूप में हो सकता है। धारा (15) के तहत अधिनियम का उल्लंघन दंडनीय है। इसमें 5 वर्ष तक का कारावास या 1 लाख रूपये तक जुर्माना हो सकता है। यदि उल्लंघन जारी रहता है तो 5000/- रूपये प्रतिदिन बतौर जुर्माना वसूला जा सकता है। यह नियम कम्पनियों तथा सरकारी विभागों पर लागू है। इस अधिनियम में पर्यावरण संरक्षण में नागरिकों की भूमिका का जिक्र धारा 19 में है। इसके अन्तर्गत यह प्रावधान है कि समर्थ अधिकारी के नोटिस दिये जाने के बाद भी कार्यवाही नहीं होती है तो 2 माह के भीतर-भीतर वह न्यायालय में शिकायत दर्ज करा सकता है। धारा 3 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण संरक्षण, नियंत्रण, सुधार

आदि के बाबत सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त है तथा वह नये नियम भी बना सकती है। समय-समय पर इस अधिनियम के तहत पर्यावरण संरक्षण हेतु कुछ महत्वपूर्ण नियम बनाये गये जो निम्नांकित है :

द एनवायरमेन्ट (प्रोटेक्शन) रूल्स, 1986

द हेजार्डस वेस्ट्रस (मेनेजमेन्ट एंड हेडलिंग) रूल्स, 1989

द मेनीफेस्वर, स्टोरेज, इम्पोर्ट ऑफ हेजार्डस केमीकल रूल्स, 1989

द केमीकल एक्सीडेन्ट्स (एमरजेन्सी) (प्लानिंग प्रिपेयर्डनेस एंड रेसपोन्स) रूल्स, 1996

द बायो-केमिकल वेस्टर (मेनेजमेन्ट एंड हेंडलिग) रूल्स, 1998

द रिसाइकल्स प्लासटिक्स मेनिफेक्चर, एंड यूसेज रूल्स, 1999

द नोइज पोल्यूशन (रेगलेशन एंड कंट्रोल) रूलर, 2000

द म्युनिस्पल सोलिड वेस्ट्स (मेनेजमेन्ट एंड हेंडलिग) रूल्स,, 2000

द ओजोन डिप्लीटिंग सब्सटान्सेज (रेगुलेशन एंड कंट्रोल) रूल्स, 2000

द बेटरीज (मेनेजमेन्ट एंड हैंडलिंग) रूल्स, 2001

इन्वायरनमेन्ट प्रोटेक्शन रूल्स, 1986 के तहत पर्यावरणीय प्रदूषक तत्वों का जो उद्योगों से उत्सर्जित है, निश्चित स्तर वातावरण की स्वच्छता बनाये रखने हेतु निर्दिष्ट है। केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह विशेष क्षेत्रों में फैक्ट्रीज़ पर बन्दिशें लगायें। केन्द्रीय और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डस की जिम्मेदारी है कि वे निश्चित स्तर बनाये रखें। हेजार्डस वेस्ट (मेनेजमेन्ट एंड हेंडलिग) रूल्स, 1989 के तहत कर्मचारियों/श्रमिकों की जिम्मेदारी तय की गयी है जो खतरनाक हानिकारण अपशिष्ट पदार्थ के संग्रहण और निपटारे में लगे हों। सूची विशेष में अंकित सभी खतरनाक अपशिष्ट पदार्थो पर रूल्स लागू होते हैं। उल्लंघनकर्त्ताओं के खिलाफ कानूनी कार्यवाही हेतु सेत्रल और स्टेट पोल्यूशन कंट्रोल बोर्ड्स अधिकृत हैं। अपशिष्ट पदार्थो को पेक करना, लेबल लगाना, उनका लाना, ले जाना, आयात-निर्यात करना, उनका पुन: उपयोग करना, एक जगह संग्रह करना आदि से सम्बन्धित नियम बने हुए हैं। द मेनिफेक्वर, संग्रहण हेजार्डस केमिकल्स रूल्स, 1989 पर्यावरणीय प्रदूषण उत्पन्न करने वाले रसायनों के प्रति सावधान करते हैं। भोपाल गेस लीकेज तथा दिल्ली का ओलियम मामला बड़े पर्यावरणीय खतरे साबित हुए हैं। अनेक औद्योगिक उपक्रमों में विभिन्न प्रक्रियाओं में खतरनाक रासायनिक पदार्थ उपयोग में लिए जाते हैं। उनके आयात, संग्रहण और निर्माण से सम्बन्धित नियम हैं। इन नियमों के तहत पोल्यूशन कंट्रोल बोर्ड्स, चीफ इन्स्पेक्टर ऑफ फेन्ट्रीज, चीफ इंस्पेक्टर ऑफ माइन्स तथा जिला कलेक्टर पाबन्द हैं। इसी तरह केमीकल एक्सीडेन्ट्स (एमरजेन्सी प्लेनिंग प्रिपेयर्डनेस एंड रिसपोन्स) रूल्स 1996 में रासायनिक दुर्घटनाओं के घटित होने पर जिनसे पर्यावरण प्रदूषित हो दोषी व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही हो सकती है।

सरकारी और निजी अस्पतालों की संख्या में वृद्धि होने के कारण, कूड़ा -कर्कट और अपशिष्ट पदार्थो में भी बढ़ोतरी हो रही है। अस्पतालों के अपशिष्ट पदार्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए ही नहीं बल्कि -पर्यावरण के लिए भी हानिकारक है। द बायो केमिकल अपशिष्ट के खतरे की वजह से ही बनाये गये। नियमानुसार प्रत्येक कर्मचारी की जिम्मेदारी है कि अस्पताल, नर्सिग होम, क्लिनिक, डिस्पेन्सरी, पशु चिकित्सालय, केंजी हाउस, मेडिकल लेबोरेटरी, ब्लड बैंक आदि के अपशिष्ट पदार्थो को इस तरह ठिकाने लगाया जाये की मनुष्य के स्वास्थ्य और पर्यावरण को हानि न पहुंचे। बायो-केमिकल अपशिष्ट के पेक करने, संग्रहण करने, लाने-लें जाने सम्बन्धी नियम बने हुए हैं। म्यूनिस्पल कोरपोरेशन म्यूनिस्पल बोर्डस तथा अर्बन लोकल बोडीज की जिम्मेदारी है कि शहर के बायो-केमिकल को उचित स्थान पर ठिकाने लगायें।

पृथ्वी के वातावरण में ऊपर 15 से 21 किलोमीटर मोटी ओजोन परत विद्यमान है जो सूर्य के पराबैंगनी विकिरण के कुभावों से मानवजाति की सुरक्षा करती हैं। बढ़ते हुए वायु प्रदूषण से यह ओजोन परत तेजी से क्षतिग्रस्त हो रही है। मोन्द्रियल प्रोटोकोल 1987 के मुताबिक, हर देश से अपेक्षा की वह आजोन परत को क्षतिग्रस्त करने वाली प्रक्रियाओं को कम करें। द औजोन डिप्लीटिंग सब्सटान्सेज (रेग्यूलेशन एंड कंट्रोल) रूल्स, 2000 में ओजोन परत को क्षतिग्रस्त करने वाले पदार्थो के उत्पाद खपत, आयात, निर्यात, प्रयोग खरीद फरोस्त, इत्यादि के बारे में कानूनी प्रावधान हैं।

बढ़ते हुए शहरीकरण के कारण ठोस अपशिष्ट पदार्थ भी भारी मात्रा में बढ़ रहे हैं। योजनाबद्ध प्रबन्धन न होने के कारण यह पर्यावरण के लिए खतरनाक हैं। म्यूनिस्पल सोलिड वेस्ट (मेनेजमेन्ट एंड हेंडलिग) रूल्स, 2000 में शहरी क्षेत्रों में सोलिड वेस्ट (ठोस अपशिष्ट) को ठिकाने लगाने के प्रबन्धन पर विस्तार से बतलाया गया है। इन नियमों के अन्तर्गत, म्यूनसीपल अधिकारी को ठोस अपशिष्ट को उठाने एकत्र करवाने, ले जाने ओर रफा-दफा करने के लिए बुनियादी संसाधन जुटाने के लिए अधिकृत किया गया है। इसके निष्पादन के लिए राज्य सरकार, सेक्रेटरी ऑफ अर्बन डिवेलपमेन्ट तथा जिला मजिस्ट्रेट का भी उत्तरदायित्व है। केन्द्रीय और राज्य प्रदूषण बोर्ड्स को भूतल जल, स्वाद वातावरण की स्वच्छता का जिम्मा दिया गया है। ठोस अपशिष्ट के संग्रहण लाने ले जाने प्रबन्धन के नियम से विस्तार से दिये गये हैं।

पोलीथीन की थेलियो के अत्यधिक प्रयोग से उत्पन्न प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए 1999 में नियम बनाये गये। स्टेट पोल्यूबोर्ड को पोलिथीन की थैलियों के निर्माण और पुनर्चलन के नियंत्रण हेतु अधिकृत किया गया। जिला कलेक्टर की जिम्मेदारी दी गयी है कि इनके उपयोग, संग्रहण लाने ले जाने इत्यादि पर नियंत्रण करे। यहां तक कि पोलीथीन की थैलियों में भोज्य पदार्थो का ले जाना या एकत्रित करना भी कानूनन वर्जित है। पोलीथीन की थेलिया या प्लास्टिक के पात्र बनाने वालों के लिए अनिवार्य है? कि वह उत्पाद को प्राकृतिक रंग दे। पोलिथीन की थैली नियमानुसार 20 माइक्रोन से पतली नहीं होनी चाहिए।

19.7 पर्यावरण सुधार और संरक्षण हेतु कुछ अन्य कानून

19.7.1 द वाटर (प्रिवेन्शन एंड कंट्रोल ऑफ पोल्यूशन) सेस एक्ट 1977

केन्द्रीय तथा राज्य वाटर बोर्ड्स के खर्च की लागत निकालने के लिए वाटर सेल एक्ट पारित किया गया। इसके अन्तर्गत पानी की खपत की एवज में स्थानीय कार्यालयों तथा औद्योगिक उपक्रमों को टेक्स देना पड़ता है। अर्थात् टेक्स वसूल कर अधिनियम के जरिये प्रदूषण नियंत्रण राशि जुटाई जाती है। इस आय से वाटर एक्ट का निष्पादन कार्य होता है। केन्द्र सरकार संग्रहण के मद में कुछ राशि काट कर शेष राशि सेन्द्रल बोर्ड तथा राज्यों को वाटर एक्ट के निष्पादन कार्य हेतु प्रदान करती है। प्रदूषण नियंत्रण के बुनियादी साधन जुटाने और अधिनियम के मानकों का अनुसरण करने वाले को सेस (टेक्स) में 25 प्रतिशत छूट मिलती है।

19.7.2 द पब्लिक लायबिलिटी इन्शोरेन्स एक्ट 1991)

किसी खतरनाक पदार्थ से पीड़ितों को तात्कालिक राहत देने हेतु PLIA पारित किया गया। अधिनियम के मुताबिक, खतरनाक पदार्थ के मालिक को क्षतिपूर्ति के रूप में पीड़ितों को राशि देनी पड़ती है। PLIA के तहत चोटिल होने या मृत्यु होने पर 25000/- रूपये की राशि मुआवजे के रूप में देय है। निजी सम्पत्ति के नुकसान होने पर यह 6000/- रूपये है। अन्य प्रावधान के अन्तर्गत पीड़ित अतिरिक्त मुआवजे का दावा कर सकता है। अधिनियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जिसका खतरनाक

पदार्थ पर स्वामित्व है, दुर्घटना की संभावना के मद्देनजर बीमा पोलिसी लेना अनिवार्य है। दुर्घटना से अभिप्राय ऐसी अनहोनी घटना से हैं जिसमें खतरनाक पदार्था के'साथ कार्य करते हुए चोट लग सकती है या मृत्यु हो सकती है अथवा किसी की निजी सम्पत्ति को क्षति पहुंच सकती है। अधिनियम में युद्ध में हुई दुर्घटनाओं तथा रेडियो-एक्टिविटी जनित दुर्घटनाओं को शामिल नहीं किया गया है। हेंडलिग से अर्थ खतरनाक पदार्थो के उत्पादन, व्यापार, तथा लाने ले जाने से है।

बीमा प्रीमियम के अतिरिक्त, खतरनाक पदार्थ के स्वामी को केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित एनवायरनमेन्ट रिलीफ फंड में भी अपनी हिस्सा राशि जमा करानी पड़ती है। इस फंड में दुर्घटना पीड़ितों को राहत दी जाती है। औद्योगिक उपक्रम में दुर्घटना का सत्यापन करने में, तथा पीड़ितों से क्षतिपूर्ति के आवेदन आमंत्रित करने तथा राहत प्रदान करने में प्रमुख प्रमुख अधिकार जिला कलेक्टर होता है।

यह अधिनियम रिलीफ फंड के प्रावधानों बाबत 1992 में संशोधित किया गया। 1991 में नियम बनाये गये थे वे मुवावजे की आवेदन पत्र आमंत्रित करने और बाद की कार्यवाही से सम्बन्धित थे। बीमाकर्त्ता संभाव्य देय राशि 45 करोड़ रूपये हो सकती है।

19.7.3 द नेशनल एनवायरनमेन्ट ट्रिब्यूनल एक्ट. 1995

यह अधिनियम (NETA) PLIA पर आधारित है। इसमें लॉ ऑफ लोर्ट्स को जहरीले पदार्थो को जहरीले पदार्थो के बारे में बदलाव किया गया है। NETA वास्तव में''नो फोल्ट' दायित्व के सिद्धान्त का ही विस्तार है। इस सिद्धान्त को PLIA में मान्य करार दिया गया था। यह स्थिति अनिवार्य क्षतिपूर्ति की सीमा के अतिरिक्त थी। NETA लागू होता है। जब खतरनाक पदार्थ को हेंडल करने में किसी को चोट लग जाये या मृत्यु हो जाये या सम्पत्ति को नुकसान हो जाये। दोनों अधिनियमों से'दुर्घटना; और हेडलिंग की व्याख्या समान है।

NETA ने केन्द्र को अधिकार दिया है कि वह नई दिल्ली में राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल की स्थापना करे जो मुचावजे से सम्बन्धी आवेदन प्राप्त करे।

तत्पश्चात हर दावे के बारे में पूछताछ करके, मुवावजे की राशि तय कर भुगतान करे। ट्रिब्यूनल प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए पीड़ित को मुवावजे के दावे हेतु स्वतंत्र अन्तरिम प्रक्रिया अपना सकता है। NETA धारा 19 के तहत क्षतिपूर्ति के दावे को कोई सिविल कोर्ट नहीं झेल सकता। यह कार्य ट्रिब्यूनल का ही है। मुवावजे की राशि को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी जा सकती है या धारा 226 तथा 227 के तहत हाईकोट में परिवाद लाया जा सकता है।

19.7.4 द नेशलन एनवायरनमेन्द एपीलेट अथोरिटी एक्ट, 1997

यह कानून अपेक्षा करता है कि केन्द्र सरकार उन अपीलों को सुनवाई हेतु नेशनल एनवायरनमेन्ट अपीलेट अथोरिटी का गठन करे जो उन आदेशों के विरूद्ध अपीलों की सुनवाई करे। उद्योगपतियों पर अनेक बन्दिश लाद दी गयी हो जबकि पर्यावरणीय हरी झंडी दे दी विधिवत गयी हो और औद्योगिक उपक्रम की स्थापना की गयी हो अथवा एनवायरनमेन्ट प्रोटेक्शन एक्ट 1986 के अनुसार औद्योगिक प्रक्रिया जारी हो।

19.7.5 दी इन्सेक्टीसाइड एक्ट, 1988

इन्सेक्टीसाइड एक्ट केरल और मद्रास फूड-पोइजनिंग केसेज इन्स्पायरी कमीशन की अनुशंसा पर बनाया गया जिसने अप्रेल, मई 1958 में कीटाणुनाशक के जहरीले प्रभाव से हुई मोतों के मामलों में इंक्व्यरी की। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य और केन्द्र सरकार को तकनीकी सलाह देने हेतु सेंट्रल

इन्सेक्टीसाइड बोर्ड का गठन किया गया। बोर्ड के तत्वाधान में एक कमेटी बनी हुई है जो कीटाणुनाशकों का रजिस्ट्रेशन करती है और मेडीकल दृष्टि से उनकी गुणवत्ता की जाँच पड़ताल करती है।

कीटाणुनाशकों का उत्पादन और वितरण लाइसेन्स द्वारा किया जाता है। अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रेशन तथा लाइसेन्स के प्रावधानों का उल्लंघन दंडनीय है।

19.7.6 द कोस्टल रेग्यूलेशन जोन नोटिफिकेशन (28 फरवरी, 1991 के विशेष गजट ऑफ इंडिया में प्रकाशित)

यह नोटिफिकेशन देश में समुद्र तटीय इलाकों के संरक्षण और सुधार हेतु जारी किया गया। यह निम्नांकित गतिविधियों को कोस्टल रेग्यूलेशन जोन में निषिद्ध करता है।

1. नवीन ओद्यौगिक उपक्रमों की स्थापना तथा चालू उद्योगों का विस्तार।
2. खतरनाक पदार्थो का उत्पादन, हैंडलिंग संग्रहण तथा रफा दफा करना।
3. फिश प्रोसेसिंग स्थापना और इकाइयों का विस्तार।
4. शहरों और बस्तियों से औद्योगिक उपक्रमों से जलीय और अन्य अपशिष्ट पदार्थो का उत्सर्जन।
5. शहर और' कस्बे के कूड़े-कर्कट का अनुचित स्थान पर -एकत्रीकरण और संग्रहण।
6. 6 अपशिष्ट पदार्थो का यत्र तत्र फैलाव और ठिकाने लगाना।
7. थर्मल पावर स्टेशन से राख और अन्य अपशिष्ट पदार्थो का पटकना।
8. समुद्री जल के सहज प्रवाह को बाधित करना तथा जमीन पर अनधिकृत कब्जा करना।
9. रेत, चट्टानों तथा अन्य वस्तुओं का खनन।

10.8 सारांश

ज्ञातव्य है कि भारत वर्ष में पर्यावरण संरक्षण हेतु समय-समय पर विभिन्न कानून कायदे बनाये गये हैं। परन्तु आवश्यकता से अधिक हड़पने का प्रलोभन पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है। यदि हम व्यक्तिगत रूप से पर्यावरण संरक्षण में योगदान करें तो हम इस पृथ्वी को कई पीढ़ियों के सुखद अस्तित्व के लिए बचा सकते हैं।

19.9 अभ्यास प्रश्न

1. जल पर्यावरणीय विभिन्न कानूनों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
2. पोल्यूशन कंट्रोल बोर्ड के अधिकारी का वर्णन कीजिये।
3. IPC तथा CRPC के तहत जल प्रदूषण की रोकथाम में नागरिकों की भूमिका पर प्रकाश डालिये।
4. "'पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986" पर एक लेख लिखिये।
5. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम तथा ध्वनि प्रदूषण के विभिन्न पहलुओं को समझाइए।
6. निम्न पर टिप्पणी लिखिए.
   (i) वायु प्रदूषण तथा कानून
   (ii) जमीनी प्रदूषण तथा कानून
7. इंडियन फोरेस्ट एक्ट 1928 पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

ISBN 13/978-81-8496-376-2